छान्दोग्योपनिषद्

भाषाटीका सहित ॥

जिसमें

प्रणव प्राणादिकों की उपासनासे सगुण ब्रह्मोपासना अरु तिसका फल पुनरावृत्ति से रहित ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप उत्तरगतिका वर्णन, इन्द्रियादिकों के संघात में स्थित प्राणकी सबसे ज्येष्ठता श्रेष्ठता का एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन और नारद सनत्कुमारके संवादरूप आख्यायिका द्वारा भूमा विद्याकी रीतिसे आत्मोपासनका वर्णन इत्यादि अच्छे प्रकारसे वर्णितहै ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्यसम्पन्न श्रीमुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) ने भारतवर्षीयजनों के उपकारार्थ बहुत सा धन व्ययकरके कोलाख्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणसे सरल देशभाषा में उल्था कराय अपने यंत्रालयमें मुद्रित कराय प्रकाशित किया ॥

दूसरीबार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी
जौलाई सन् १९०२ ई० ॥

२६ जुज़ ४ वर्क़

भगवद्गीतानवलभाष्यका विज्ञापनपत्र ॥

प्रकटहो कि यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता सकल निगम पुराणस्मृति सांख्यादिसारभूत परमरहस्यगीताशास्त्रका सर्वविद्या निधान सौशील्यविनयौदार्य सत्यसंगरसौर्य्यादिगुणसम्पन्न नरावतारमहानुभावअर्जुनकोपरमअधिकारीजानके हृदयजनितमोहनाशार्थ सबप्रकार अपारसंसारनिस्तारक भगवद्भक्तिमार्ग दृष्टिगोचरकरायाहै वहीउक्तभगवद्गीतावज्रवत्वेदांतवयोगशास्त्रांतर्गत जिसको अच्छे२शास्त्रवेत्ताअपनीबुद्धिसे पारनहींपासक्के तबमंदबुद्धी जिनको कि केवल देशभाषाही पठनपाठनकरनेकी सामर्थ्य है वहकब इसके अन्तराभिप्रायको जानसक्केहैं-और यह प्रत्यक्षही है कि जबतक किसीपुस्तक अथवा किसीबस्तुका अन्तराभिप्राय अच्छेप्रकार बुद्धिमें न भासितहो तबतक आनन्द क्योंकर मिले इसप्रकार सम्पूर्ण भारतनिवासी भगवद्भक्तपादाब्ज रसिक जनों के चित्तानन्दार्थ व बुद्धिबोधार्थ सन्ततधर्मधुरीण सकल कलाचातुरीण सर्व्वविद्याविलासी भगवद्भक्त्यनुरागी श्रीमन्मुंशीनवलकिशोर जी (सी, आई, ई) ने बहुतसा धन व्ययकर फ़र्रुख़ाबादनिवासि स्वर्गवासि पण्डित उमादत्तजी से इसमनोरंजन वेदवेदान्तशास्त्रोपरि पुस्तकको श्रीशङ्कराचार्य्यनिर्म्मित भाष्यानुसार संस्कृतसे सरल देशभाषामें तिलकरचाय नवलभाष्य आख्यसे प्रभातकालिक कमलसरिसप्रफुल्लित करादियाहै कि जिसको भाषामात्र के जाननेवाले पुरुष भी जानसक्के हैं ॥

जबछपनेका समयआया तो बहुतसे विद्वज्जन महात्माओंकी सम्मति से यह बिचार हुआ कि इस अमूल्य व अपूर्व्व ग्रन्थ की भाष्यमें अधिकतर उत्तमता उस समयपरहोगी कि इस शंकराचार्य्यकृत भाष्य भाषाकेसाथ और इसग्रन्थकेटीकाकारोंकी टीका भी जितनीमिलें शामिलकीजावें जिसमें उनटीकाकारोंके अभिप्रायकाभीबोधहोवेइसकारणसे श्रीस्वामीशंकराचार्यजीकी शंकरभाष्यका तिलक व श्रीआनन्दगिरिकृत तिलक अरु श्रीधरस्वामिकृत तिलकभी मूलश्लोकों सहित इसपुस्तकमें उपस्थितहै ॥

ॐ

अथ सामवेदीय

छान्दोग्योपनिषद्

उत्तरार्द्ध का भाषाभाष्य प्रारभ्यते

भूमिका

हे सौम्य इस उपनिषद् के प्रपाठक (अध्याय) चतुष्टयात्मक पूर्वार्द्धकरके प्रणव प्राणादिकों की उपासना से सगुण ब्रह्मोपासना अरु तिसका फल पुनरावृत्ति से रहित ब्रह्मलोक प्राप्ति रूप उत्तरगति कहा॥ अब इस उत्तरार्द्ध के प्रथम औ उपनिषद् के पंचम प्रपाठकः (अध्याय) करके प्रथम इन इन्द्रियादिकों के संघात बिषे स्थित जो प्राण तिसकी सर्व से ज्येष्ठता श्रेष्ठताको एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन करेंगे॥ पश्चात जे ऊर्द्धरेताहैं औ पञ्चाग्नि विद्याके ज्ञाता 'अर्थात् जे पंचाग्नि विद्याकी ज्ञात से उपासना पूर्वक अग्निहोत्रादि करनेवाले हैं' परमश्रद्धालु पुरुषोंकी सर्वोत्तम उत्तर गति। अरु तिनसे अन्य जे दक्षिणदिक् सम्बन्धिनी धूमादि लक्षणवाली पुनरावृत्तिरूपा तृतीयागति। औ तिसके अनन्तर अतिकष्टतरा संसारगति कि जिसके जानने से मुमुक्षु पुरुषको इस दुःखमय संसारसे वैराग्य होवे, कहेंगे॥ तिसके पश्चात् एक आख्यायिका द्वारा वैश्वानर विद्या 'कि जिसकी ज्ञात बिना अग्निहोत्र भस्ममें आहुति देनेवत् व्यर्थ होताहै' प्रकाशित करेंगे। 'अर्थात् प्रथम प्राणकी ज्येष्ठ श्रेष्ठता अरु तिसकी प्राप्तिकी कामनावाले के अर्थ मन्थाख्यकर्म अरु द्वितीय पञ्चाग्नि की उपासना से उत्तरायण अर्चि-

रादि क्रमसे अग्निके उपासक की सर्वोत्तम उत्तर गति' अरु केवल कर्म्मीयों की दक्षिणायन धूमादि क्रमसे पुनरावृत्तिरूपा तृतीया गति औ दोनों मार्गों से रहित पुरुषोंकी अतिकष्टतरा वारंवार जन्ममरण रूप संसारगति। अरु तृतीय वैश्वानर विद्याकी श्रेष्ठता औ तिसके ज्ञाताके भोजन से जगत् की तृप्ति । इन तीन प्रसंगात्मक इस उत्तरार्द्ध के प्रथम औ उपनिषद्के पञ्चम प्रपाठकको कहेंगे ॥ पश्चात् इस उत्तरार्द्ध के द्वितीय अरु उपनिषद् के षष्ठ प्रपाठक (अध्याय) करके एक पिता पुत्रके संवाद रूप आख्यायिका द्वारा श्रुति करके प्रकाशित किया जो एक अद्वैत आत्मतत्त्व अरु महावाक्य से तिसका उपदेश, सो कहेंगे ॥ तदनन्तर इस उत्तरार्द्ध के तृतीय औ उपनिषद् के सप्तम प्रपाठक (अध्याय) करके नारद सनत्कुमारके संवादरूप आख्यायिका द्वारा भूमाविद्या की रीति से आत्मोपासन कहेंगे ॥ औ इस उत्तरार्द्ध के चतुर्थ अरु उपनिषद् के अष्टम प्रपाठक (अध्याय) करके दहर विद्यापूर्वक 'इन्द्र, विरोचन, अरु ब्रह्मा के उपदेशरूप आख्यायिका द्वारा श्रुतिने कहा जो आत्मोपदेश' सो सर्व इस मध्यदेशीय भाषामें निरूपण करेंगे। तहां अब प्रथम इस उत्तरार्द्ध का प्रथम औ उपनिषद्का पञ्चम प्रपाठकः (अध्याय) प्रारम्भ करते हैं ॥

ॐ सहनाववतुसहनौभुनक्तुसहवीर्य्यंकरवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

ॐ ब्रह्मानन्दंपरमसुखदं केवलंज्ञानमूर्त्तिं
द्वंद्वातीतंगगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकंनित्यंविमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुंतन्नमामि ॥

अथ उत्तरार्द्धस्य प्रथम, उपनिषद् सुपंचम प्रपाठकः॥

ॐ यो ह वै ज्येष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च १॥

अक्षरार्थ

जो प्रसिद्धही ज्येष्ठको श्रेष्ठको जानता है सो प्रसिद्धही ज्येष्ठ श्रेष्ठ होता है। प्राणही ज्येष्ठ श्रेष्ठ है १॥

भावार्थ

श्रीगुरुरुवाच॥ हे शिष्य इस उपनिषद् के अध्याय चतुष्टयात्मक पर्वार्द्ध करके सगुण ब्रह्मविद्या करके [अर्थात् पंचाग्नि विद्या से अतिरिक्त सगुण ब्रह्मविद्या करके तिन विद्या बिषे निष्ठावान् उपासकों की] उत्तरा गति कहा। अब इस उत्तरार्द्ध के प्रथम औ उपनिषद् के पंचम अध्याय बिषे पंचाग्निविद्याके ज्ञाता गृहस्थ की अरु ऊर्द्ध्वरेतापुरुषों की जोकि विद्या बिषे शील (स्वभाव) वाले परमश्रद्धालुओं की गति कहके, पश्चात् तिस से अन्य जे दक्षिणायन सम्बन्धी केवल कर्मियोंका धूमादि लक्षणवाली पुनरावृत्तिरूपा द्वितीया गति। तिसके अनन्तरविद्या (उपासना) अरु कर्म (इष्टापूर्त्तादि) इन दोनोंसे रहित पुरुषों की अति दुःखरूप संसारगतिको कहते हैं [ननुक्रमसे मुक्ति का संभव होनेसे सगुण ब्रह्मविद्यारूपा उत्तरागति कहा सो अस्तु, परन्तु पुनरावृत्तिरूपा दक्षिणायनगति अरु वारंवार जन्म मरण रूपा संसारगति 'जो कि अतिनिकृष्टा हैं' क्यों उपदेश करते हौ] समाधान। उक्त दोनों गति अतिही कष्टरूपा हैं ताते तिनसे मुमुक्षुको सम्यक् प्रकार वैराग्य होय एतदर्थ इस पंचम प्रपाठक की भाषा टीका का प्रारम्भ करते हैं॥ तहां। "प्राणोवाव संवर्ग इत्यादि"। प्राणही संवर्ग है, इत्यादि इस उपनिषद्के पूर्वार्द्ध बिषे कहाहै, अतएव तिस प्राणके उपासिकके अर्थ वागादि सर्वइंद्रियादिकोंसे प्राणकी ज्येष्ठता औ श्रेष्ठताको प्रथम निरूपण करते हैं।

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वा व वसिष्ठः २ ॥

जो स्पष्टही इस प्रथम बय करके सर्व से ज्येष्ठको औ सर्व से अधिक गुणवान् होने से सर्व से श्रेष्ठको जानता है सो स्पष्टही ज्येष्ठ अरु श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार श्रुति फलवाद प्रथम श्रवण कराय (फलका लोभ देखाय) पुरुषकी वृत्तिको अपने सन्मुख कर कहती है । "प्राणोवाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।" [प्राणही ज्येष्ठ श्रेष्ठ है] अर्थात् वागादि सर्व इन्द्रियोंसे प्रथम उत्पन्न होने से यह प्राणही सर्वसे ज्येष्ठ है, क्योंकि गर्भस्थ पुरुषको वागादि इन्द्रिय वृत्तिके लाभसे पूर्वही प्राण वृत्तिका लाभ अर्थात् प्राण वृत्ति लब्धात्मिका होती है। औ जैसे जैसे गर्भ (गर्भस्थशरीर) वृद्धिको प्राप्त होता है तैसे तैसेही चक्षुरादि स्थान (गोलक) रूप अवयवों करके निष्पन्न होता है तब तिसके पश्चात् वागादि इन्द्रिय वृत्तिका लाभ होताहै। औ गर्भ बिषे जो शरीरकी वृद्धि औ चक्षुरादि स्थानोंकी प्राप्ति होती है सो सामान्य प्राण वृत्तिके आश्रय होती है प्राणवृत्तिके पूर्वलाभ विना गर्भ में शरीर की वृद्धि होवे नहीं, अतएव गर्भ में वागादि इन्द्रिय वृद्धि के लाभ से पूर्व प्राण वृत्ति का लाभ होने से प्राण सर्वमें वय करके ज्येष्ठ है।' अथवा ।'.'एतस्माज्जायतेप्राणो'.'। '.'प्राणमसृजत'.'। इत्यादि श्रुति प्रमाणकरके प्राणकी सर्व से प्रथम उत्पत्ति होनेसे भी प्राण अन्य सव से ज्येष्ठ है ;। अरु उसकी श्रेष्ठता तो अग्रिम । "सु हय"। इत्यादि वाक्यों केदेखने से स्पष्ट है सो प्राणकी गुणों करके जो वागादि सर्व में श्रेष्ठता है सो कहते हैं १॥

अक्षरार्थ

जो प्रसिद्धही वसिष्ठको जानता है सो प्रसिद्धही अपने बिषे वसिष्ठ होता है, वागही वसिष्ठ है २ ॥

योह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ३ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का

हे सौम्य,।" योह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति"। [जो स्पष्टही वसिष्ठ को जानता है सो अपने में वसिष्ठही होताहै] अर्थात् जो इस प्रसिद्धही सर्व को आच्छादित करने वाला धनवान् वायु वसिष्ठको जानताहै सो अपनी ज्ञाति के मध्य वायुवत् धनवान् प्रसिद्धही वसिष्ठ होताहै। प्रश्न। तर्हि वसिष्ठ कौनहै। उ०॥ "वाग्वाव वसिष्ठः"। [वागूही वसिष्ठहै] अर्थात् जो वेद शास्त्रकी विद्या करके सम्पन्न प्रखर वाणीवाला पुरुषहै सो सभाविषे अन्य पण्डितोंको तथा धनवानोंको पराभव करता है।:- अर्थात् जो वाणीरूप प्राणकी उपासना करताहै सो वाणीमान् औ धनवान् हुआ सर्वको पराजय करनेवाला अपनी ज्ञाति बिषे वायुवत् उक्तप्रकारका वसिष्ठही होताहै २॥

अक्षरार्थ

जो स्पष्टही प्रतिष्ठाको जानता है सो इसलोक परलोक में स्पष्ट प्रतिष्ठित होताहै। चक्षुही प्रतिष्ठा है ॥ ३ ॥

भावार्थ

हे सौम्य,।" यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा"। [जो प्रसिद्धही प्रतिष्ठा को जानताहै सो इस लोक परलोक में प्रतिष्ठाको पावताहै] अर्थात् जो पुरुष इस प्रसिद्ध प्रतिष्ठाको (चक्षुविशिष्टप्राणको) जानताहै सो जीवते इसलोक में औ मरणोत्तर परलोक में प्रतिष्ठा (उत्तम स्थान) को प्राप्त होताहै। प्रश्न। प्रतिष्ठा क्याहै। उत्तर।" चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा"। [चक्षुही प्रतिष्ठाहै] अर्थात् यह पुरुष सम शुद्ध धरातल विषे वा ऊंचे नीचे दुर्गम स्थल बिषे चक्षु से सम्यक् प्रकार देखके उत्तम स्थान बिषे स्थित होताहै, एतदर्थ चक्षुही प्रतिष्ठा है ३ ॥

योहवै सम्पदं वेद सछंहास्मैकामः पद्यन्ते देवाश्च मनुष्याश्च श्रोत्रं वाव सम्पत् ४ यो ह वा आयतनं वेदा यतनछं ह स्वानांभवति मनो ह वा आयतनम् ५ ॥

अक्षरार्थ

जो प्रसिद्धही सम्पदाको जानता है तिसको देवता औ मनुष्य सर्व काम प्राप्त करते हैं श्रोत्रही सम्पत् है ४ जो प्रसिद्धही आयतन (स्थान) को जानता है सो अपने का प्रसिद्ध आयतन होताहै । मन प्रसिद्धही आयतन है ५ ॥

भावार्थ

हे सौम्य ।" योह वै सम्पदं वेद सछंहास्मैः कामाः पद्यन्ते देवाश्च मानुषाश्च "। [जो प्रसिद्धही सम्पदा को जानताहै तिस को देवता अरु मनुष्य सर्व कामोंको प्राप्त करते हैं] अर्थात् हे प्रियदर्शन जो पुरुष सम्पदाको जानके तिसकी उपासना करता है तिसको देवता और मनुष्य सर्वकामोंको प्राप्त करते हैं । प्रश्न । तर्हि सम्पदा क्या है । उत्तर ॥" श्रोत्रं वाव सम्पत् "। [श्रोत्रही सम्पत् है] अर्थात् श्रोत्र करके ही वेदों के मंत्रों को ग्रहण करते हैं पश्चात् तिसके अर्थ को जानके तिसके अनन्तर तिसके अनुसार कर्मों को करते हैं तदनन्तर कामों को प्राप्त होते हैं । अतएव काम सम्पत्ति की प्राप्ति का हेतु होने से सम्पत् श्रोत्रही है ४ ॥ हे सौम्य, । " यो ह वा आयतनं वेदायतन छं ह स्वानां भवति " [जो प्रसिद्धही आयतन (स्थान) को जानता है सो अपने का आयतन होताहै] अर्थात् इन्द्रियों करके ग्रहण किये भोगार्थ विषयों का औ तिनकी प्रत्ययों का मन आयतन कहिये आश्रयहै । एतदर्थ ।" मनो ह वा आयतनम् "। [मनही प्रसिद्ध आयतन है] ॥ :–हे सौम्य वाग् चक्षु श्रोत्र औ मन इनको क्रम से जो वसिष्ठत्व प्रतिष्ठत्व सम्पतत्व औ आयतनत्व पना कहा है सो तत्तद्विशिष्ट प्राण का जानना ५ ॥

अथ ह प्राणा अहꣳ श्रेयसि व्युदिरेऽहꣳ श्रेयान स्म्यहꣳ श्रेयानस्मीति ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमे त्योचुभगवन् को नः श्रेष्ठ इति ६ ॥

अक्षरार्थ

अथ प्रसिद्ध सर्व प्राण (इन्द्रियां) हम श्रेय हैं (ऐसा विचार के) विवाद करते हम श्रेय हैं हमाराही श्रेयत्वहै (ऐसा मानके) अपने पिता प्रजापति के समीप जाय प्रश्न करते हुए कि हम सर्व में श्रेष्ठ कौन है ६ ॥

भावार्थ

हे सौम्य, । " अथ ह प्राण अहꣳ श्रयसि व्यदिरेऽहꣳ श्रेयान-स्म्यहꣳ श्रेयानस्मीति " । [सोप्रसिद्ध इन्द्रियां हम श्रेय (श्रेष्ठ) हैं 'ऐसा विचार' परस्पर विरुद्ध होय विवाद करते कहतेहुए हम श्रेष्ठहैं हमश्रेष्ठहैं] । हे सौम्य अब इन्द्रियों के परस्पर विवाद औ तिनकी अश्रेष्ठतापूर्वक प्राणकी श्रेष्ठताको श्रवण करो । हे शिष्य कहे प्रकार वागादि इन्द्रियां यथोक्त गुणों करके युक्त होते संते भी हम श्रेष्ठ हैं हम श्रेष्ठ हैं, इस प्रकार विचार के अपनी २ श्रे-ष्ठता के हेतु परस्पर में नाना विरुद्ध कहते हुये ।:-अर्थात् एक दूसरेकी श्रेष्ठता का खंडनकर अपनी २ श्रेष्ठताको प्रगट करते हुए, परन्तु विरुद्ध विवादयुक्त होने से श्रेष्ठताका निर्णय न हुआ-: । तब सो प्रसिद्ध इन्द्रियां विवाद करते हुए अपने विष-यक श्रेष्ठत्व के जानने के अर्थ अपने उत्पादक पिता प्रजापति (ब्रह्मा) के समीप जाय प्रणामकर कहते हुए कि हे भगवन् हमारे सर्व के मध्य श्रेष्ठ 'अर्थात् गुणों करके अधिक, कौन है सो आप कृपा करके कहिये । क्योंकि आप वृद्धपुरुषके कहे विना हम अज्ञातों का परस्पर का विवाद मिटना नहीं ६ ॥

तान् होवाच यस्मिन् व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतर मिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ७ ॥

अक्षरार्थ

तिन इन्द्रियों के प्रति स्पष्ट कहता हुआ जिसके निकसजाने से शरीर पापिष्ठतर ऐसा दृष्ट आवे सो वो श्रेष्ठ है ७ ॥

भावार्थ

हे सौम्य उक्त प्रकार जब अपनी २ श्रेष्ठता के विज्ञानार्थ वागादि इन्द्रियों ने परस्पर विवादकर तिसके निर्णयार्थ अपने पिता प्रजाप्रति के निकट जाय प्रश्न किया । तब तिसको श्रवण कर सो प्रजापति उन इन्द्रियों प्रति कहता हुआ । :—अर्थात् वागादि इन्द्रियों ने अपनी २ श्रेष्ठता के अर्थ परस्पर में विवाद कर अपने सर्व के मध्य कौन श्रेष्ठ है ऐसा विचार तिसके विज्ञानार्थ अपने पिता प्रजापति के समीप जाय प्रश्न किया तब उस प्रजापति ने विचार किया कि जो इनमें श्रेष्ठहै तिसको न जानके ये सर्व अपने बिषे श्रेष्ठताका मिथ्या अभिमान कर अपने सर्व के मध्य कौन श्रेष्ठ है तिसके निर्णयार्थ यहां आये हैं, अतएव अब इनको ऐसा कहिये जो यह अपने मध्य श्रेष्ठको आपही सम्यक् प्रकार जानलेवें । ऐसा विचार वो प्रजापति कहता हुआ—: । हे वागादिको तुम्हारे सर्व के मध्य जिसके निकलजाने से यह शरीर 'जो जीवते भी अतिशय करके पापिष्ठ (अपवित्र) ऐसा है, सो विशेष करके पापिष्ठतर ।:—अर्थात् यह शरीर अस्थि मांसादि अतिअपवित्र वस्तुओं से निर्मित औ मल मूत्रादि अपवित्र पदार्थों का आयतन होने से जीवतेही यह पापिष्ठ ऐसा (पापोंका कार्य) है, औ तिसके अनन्तर जिसके निकसजाने से यह शरीर अतिशयकरके पापिष्ठतर (महाअपवित्र) —: । दृष्ट आवे, अर्थात् गत प्राण स्पर्श करनेकी योग्यता से रहित महाअपवित्र होय,

साह वागुच्चक्राम सासंवत्सरं प्रोष्यपर्य्योत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः प्राणन्ता प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषाशृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमितिप्रविवेशह वाक् ८ ॥

सोई तुम्हारे सर्व के मध्य श्रेष्ठ है। अर्थात् जिसके न रहने से यह शरीर अतिशय करके अपवित्र होय तिसही को तुम अपने सर्व के मध्य श्रेष्ठ जानो ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

सोप्रसिद्धवाग् निकसती हुई सो एक वर्ष पर्य्यन्त अपने व्यापार से निवृत्त होय पुनः आय कहती हुई मेरे बिना तुम जीवने को कैसे समर्थ हुए जैसे मूक (गूँगा) पुरुष न बोलता हुआ प्राणकरके जीवता है, चक्षुकरके देखता है श्रोत्रकरके श्रवण करता है मनकरकेही ध्यान करताहै। इसप्रकार जब (अन्यों ने कहा) तब वो प्रसिद्ध वाक् अपने स्थान में प्रवेश करती हुई ८ ॥

भावार्थ मंत्र आठवें का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार जब प्रजापतिने वागादि इन्द्रियों से कहा [शंका। ननु सर्वज्ञ प्रजापति ने वागादि इन्द्रियों को यह क्यों न कहा कि तुम सर्व में एक मुख्य प्राणही श्रेष्ठहै] समाधान। जो प्रजापति उनको प्रथमही कहता कि तुम्हारे सर्व के मध्य एक मुख्य प्राणही श्रेष्ठहै, तो वो वागादि सर्व दुःखित होते। :—क्योंकि जब अपनी श्रेष्ठता वा नेष्टता अपने यथार्थ अनुभव से सम्यक्प्रकार जानी जातीहै तब दुःख नहीं होता-:। अतएव उनको दुःख न होने के कारण सर्वज्ञ प्रजापतिने उनके प्रति प्राणको श्रेष्ठ न कहके ऐसाकहा कि वो अपना निर्णयआप ही करलेवें। हे सौम्य उक्त प्रकार जब प्रजापति ने कहा तब वागेन्द्रिय अपने स्थानसे निकल एक संवत्सर पर्यंत अपने व्यापार से उपराम हो वाह्य स्थितहुई, औ संवत्सर के व्यतीतहुये पुनः

चक्षुर्होच्चक्रामतत्संवत्सरं प्रोष्यपर्य्येत्योवाचकथमशकतर्त्तेमज्जीवितुमिति । यथाऽन्धाअपश्यन्तःप्राणन्तःप्राणेनवदन्तोवाचाशृण्वन्तःश्रोत्रेणध्यायन्तोमनसैवमितिप्रविवेशहचक्षुः ९ ॥

शरीर के निकट आय अन्य शरीरादिकों से पूश्न करती हुई, हे शरीरादिको तुम सर्व मुझबिना अपने जीवन के धारण करनेविषे किसप्रकार समर्थ हुये । इस प्रकार अपनी श्रेष्ठता के अभिमान वश वागेन्द्रियने प्रश्न किया तब वो सर्व कहते हुये कि जैसे मूक (गूँगा) पुरुष लोकविषे वाणी बिनाका हुआ प्राणकरके जीवता है, चक्षुकरके देखता है, श्रोत्रकरके श्रवण करता है, मनकरके ध्यान करता है । अर्थात् एक मुख्य प्राणके आश्रय सर्व करण (इंद्रियादिक) अपने २ व्यापारों को करते हैं । इसप्रकार एक तुझ बिना मूक पुरुषवत् जीवते हैं । इसप्रकार जब शरीरादिकों ने वाक् से कहा तब वो वाक् अपनी अश्रेष्ठता समुझ श्रेष्ठता का अभिमान त्याग स्वस्थान में स्थितहोय अपने व्यापार में प्रवृत्त होताहुआ ८॥

अक्षरार्थ ॥

चक्षु निकलता हुआ एक वर्ष पर्यन्त बाह्यरह अपने व्यापार से रहितहो पुनः निकटजाय कहताहुआ तुम मुझ बिना अपने जीवनके धारने विषे कैसे समर्थ हुए । जैसे अन्धा बिनाही देखे प्राणकरके जीवता है वाणीसे बोलता है श्रोत्रसे सुनता है मन करके ध्यान करता है । इसप्रकार सुनके चक्षु अपने स्थान में स्थित हुआ ९ ॥

भावार्थमन्त्रनववेंका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब वागेन्द्रिय अपनी अश्रेष्ठताको यथार्थ अनुभवकर लज्जितहो अपने स्थानविषे स्थितहोय अपने व्यापार में प्रवृत्त हुई । तदनन्तर चक्षु इन्द्रिय अपने विषे श्रेष्ठ-

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकतर्त्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेशह श्रोत्रम् १० ॥

ता का अभिमान धार शरीर से निकल एक संवत्सर पर्य्यन्त वाह्यरह अपने व्यापारसे उपराम हो पुनः शरीरादिकोंके समीप आय प्रश्न करतीहुई कि तुम सर्व मुझ बिना अपने जीवन के धारण करने विषे कैसे समर्थहुये। इसप्रकार जब चक्षुने प्रश्न किया तब शरीरादिक कहतेहुये कि, जैसे लोकविषे अन्धा बिनाही देखे प्राणकरके जीवता है, वाणी करके बोलता है, श्रोत्र करके श्रवणकरता है, मनकरके ध्यान करता है। इसप्रकार अन्य पुरुषवत् तुझ बिना हम सर्व अपने २ व्यापारों कोकरत सन्ते प्राण करके जीवते हैं। इसप्रकार जब शरीरादिकों ने कहा तब अपनी अश्रेष्ठता को अनुभवकर श्रेष्ठताके अभिमानके अभाव पूर्वक अपने स्थानमें प्रवेशकर स्वव्यापार में प्रवृत्तिहोती हुई ९ ॥

अक्षरार्थ ॥

श्रोतेन्द्रिय निकलतीहुई सो एक वर्ष पर्य्यन्त वाह्यरह पुनः आयके कहतीहुई कि तुम सर्व मुझबिना अपने जीवनके धारण करने में कैसे समर्थहुये। जैसे बधिर बिनाही श्रवणकिये प्राण करके जीवता है वाणी करके बोलता है चक्षुकरके देखता है मन करके ध्यान करता है। इस प्रकार श्रवण करके श्रोत्र स्वस्थान में स्थित हुआ १० ॥

भावार्थ मन्त्र दशवेंका ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार जब चक्षु इन्द्रियभी अपनी अश्रेष्ठता को अनुभवकर लज्जितहो अपने स्थानमें स्थितहुई तिसके अनन्तर श्रोत्र इन्द्रिय शरीरसे निकल वाह्यजाय अपने व्यापारसे उपरामहो एक संवत्सरके उपरान्त पुनः आय शरीरादिकों से

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्य्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तोवाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेशह मनः ११ ॥

प्रश्न करती हुई कि मुझ बिना तुम सर्व अपने जीवनके धारण करने के विषय में कैसे समर्थहुये । इसप्रकार जब श्रोत्रेंद्रिय ने अभिमान पूर्वक प्रश्न किया तब शरीरादिक कहतेहुये कि जैसे बधिर (बहिरा) पुरुष बिनाही श्रवणकिये प्राणकरके जीवता है, वाणी करके बोलता है, चक्षुकरके देखता है, मनकरके ध्यान करता है। ताते श्रवणेन्द्रिय बिनाके बधिरपुरुषके जीवन व्यापारवत् हमारे सर्व का जीवन व्यापार होता है, अतएव अब तुझ को जहां की इच्छाहोय तहां जा । इस प्रकार जब शरीरादिकों ने कहा तब तिसको श्रवणकर अपने श्रेष्ठत्वपनेके अभिमानको त्याग अति लज्जित होय श्रोत्रेन्द्रिय अपने स्थान में पुनःस्थित होय अपने व्यापार में प्रवृत्त होतीहुई १० ॥

अक्षरार्थ ॥

मन निकलता हुआ सो एक संवत्सर पर्य्यन्त वाह्यरह पुनः आयकहताहुआ कि मुझ बिना तुम सर्व अपने जीवनके धारण करने विषे कैसे समर्थहुए। जैसे बालक मन बिनाका प्राणकरके जीवता है वाचाकरके बोलताहै चक्षुकरके देखताहै श्रोत्रकरके ही श्रवण करता है । ऐसा श्रवणकर स्पष्टमन पुनः स्वस्थानमें प्रवेश करता हुआ ११ ॥

भावार्थमन्त्र ग्यारहवें का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार वागादि सर्व इन्द्रियां अपने २ विषे श्रेष्ठत्वपनेका अभिमान धार शरीरका जीवन अपने आश्रय जान तिसकी परिक्षाके अर्थ एक एक वाह्य निकल एकएक वर्ष पर्य्यन्त अपने अपने व्यापार से उपराम होय पुनः आय अपने बिना

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिष्यन्त्स यथासुहयः पड्वीश शंकून् सङ्खिदेदेवमितरान् प्राणान् समखिदत्त छंहाभि समेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वन्नः श्रेष्ठःऽसिमोत्क्रमीरिति १२ ॥

सर्वका जीवना देख लज्जित होय अपने २ स्थान में स्थितहोय अपने अपने व्यापार में प्रवृत्त हुई । तदनन्तर सर्व इन्द्रियों के नायक मनने बिचार किया कि हमको इन सर्वका नायक होनेसे इन सर्वका जीवन व्यापार हमारे आधीनहै ऐसा अभिमानकर मन निकसताहुआ सो एक संवत्सर पर्य्यन्त वाह्यरह अपने व्यापारसे उपरामहो पुनः शरीरादिकों के निकट आय प्रश्न करता हुआ कि मुझबिना तुम सर्व अपने जीवनके धारणविषे कैसे समर्थहुये । तब शरीरादिकों ने कहा कि जैसे बालक मनबिना प्राण करके जीवताहै वाणीकरके बोलताहै चक्षुकरके देखता है श्रोत्रकरकेही श्रवण करताहै । एतदर्थ मनबिनाके बालक के जीवन व्यापारवत् तुझबिना हमारा जीवन व्यापार होताहै । इसप्रकार जब शरीरादिकों ने कहा तब तिसको श्रवणकर अपने श्रेष्ठत्वपने के अभिमान को त्याग लज्जा पूर्वक अपने स्थान में स्थित होय अपने व्यापार में प्रवृत्त होता हुआ ११ ॥

अक्षरार्थं ॥

अब प्रसिद्ध मुख्य प्राण निकसने की इच्छा करता हुआ सो जैसे श्रेष्ठ अश्व अपने पाद बन्धन कीलोंको उखाडताहै तैसे इतर प्राणों (इन्द्रियों) को उखाडताहुआ तब सो प्राण समीप आय कहते हुये हे भगवन् आप हम सर्व के मध्य ज्येष्ठ श्रेष्ठहौ आप उत्क्रमण मतकरो १२ ॥

भावार्थ मंत्र बारहवें का ॥

हे सौम्य ।:—उक्त प्रकार वागेन्द्रियादि लेके मन पर्य्यन्त सर्व अपने २ विषे श्रेष्ठत्वपने का अभिमान धार शरीर का जीवन अपने आधीनजान तिसके निश्चयार्थ शरीर से एक एक नि-

अथहैनंवागुवाच यदहं वसिष्ठाऽस्मित्वंतद्वसिष्ठोऽसीत्य
थ हैनं चक्षुरुवाच यदहंप्रतिष्ठाऽस्मित्वं तत्प्रतिष्ठा १३॥
कल्ल एक एक वर्ष पर्यंत अपने २ व्यापार से उपरामहो बाह्यरह
पुनः शरीर के निकट आय अपने बिना अन्यों का जीवन देख
आप अपने २ मिथ्या अभिमान से लज्जितहो स्वस्वस्थान में
स्थितहोय अपने २ व्यापार में प्रवृत्तहुये तब मुख्य प्राणने कहा
कि अब हम यहां से जाते हैं—ः॥ तदनन्तर मुख्य प्राण शरीरसे
निकसने की इच्छा करता हुआ । प्रश्न । सो इच्छा करके क्या
करता हुआ । उ० । जैसे अति श्रेष्ठ अश्वकी परीक्षाके अर्थ परी-
क्षक उसपर आरूढ होय कोड़ेसे ताड़ना करता है तब सो अश्व
भागने की इच्छासे अपने पैर बन्धन के कीलाओं (मेखों) को
उखाड़ताहै । तैसेही प्राणने ।ः—इन्द्रियों से अपने विषे अनादर
रूप ताड़ना पाय अपने निकलने की इच्छाकर । —ः अपने
अंश अपानादि वा वागादि इन्द्रिय विशिष्ट रूप इतरप्राणोंको
उनके उनके स्थान से उखाड़ा । तब वो इन्द्रिय रूप इतरप्राण
चलायमान हुये सन्ते अपने स्थान में स्थितहोने को न सहसके
(न समर्थ हुये) तब सर्व दुःखितहोय प्राणके समीप आय नम्रता
पूर्वक कहते हुये । हे भगवन् (हे पूजा नमस्कार करने योग्य)
जैसे बैश्य राजा से धन उपार्जन करके पुनः वो धन राजा के
अर्थ बलि (कर) दान में देते हैं, तैसे हम सर्व आपको आप
काही धन अर्पण करते हैं क्योंकि आप हम सर्व के स्वामी हो ।
अतएव आप अपनाकरले इसदेहसे मत निकलो, क्योंकि आपके
निकलने से हम सर्वही नाशको प्राप्तहोते हैं १२ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ प्रसिद्ध प्राणको वाग् कहती हुई जो मैं वसिष्ठहों सो तुम
वसिष्ठहो । तदनन्तर उस प्राणको चक्षुकहताहुआ जो मैं प्रति-
ष्ठाहौं सो तुम प्रतिष्ठाहो १३ ॥

अथ हैनछं श्रोत्रमुवाच यदह छंसम्पदस्मित्वं तत्स
म्पदसीत्यथ हैनंमनउवाच यदहमायतनमस्मित्वं तदा
यतनमसीति १४ ॥ नवै वाचो न चक्षुछंषि न श्रोत्राणिन
मना छंसीत्याचक्षते। प्राण इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैता
निसर्व्वाणि भवन्ति ॥ १५ ॥ इति प्रथमखण्डः ॥ १ ॥

भावार्थ मन्त्र तेरहवें का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार कहके पुनः वागेन्द्रिय कहती हुई कि जो हम वसिष्ठहैं सो तुम वसिष्ठहौ। अर्थात् यहां जो यत् (जो) शब्द है सो क्रिया विशेषण है अतएव जो वसिष्ठत्वगुण मैं हौं सो वसि-ष्ठत्व गुणकरे आप वसिष्ठहौ। अथवा यहां जो तत् (सो) शब्दहै सो भी क्रिया विशेषणहै एतदर्थ आपका किया जो वसिष्ठत्वगुण सो आपकाही है, परन्तु अज्ञान करके उस आपके गुणको मैंने अपना मानके अभिमान कियाहै तथापि जो मुझमें वसिष्ठत्व गुणहै सो आपकाही है। इस प्रकार वागेन्द्रियके कहेउपरांत मुख्य प्राणसे चक्षु कहताहुआ कि हे भगवन् जो प्रतिष्ठा मैं हौं सो प्र-तिष्ठा आपहौ अर्थात् जो प्रतिष्ठत्व गुण मुझविषे है सो आपही काहै परंतु तिसको न जानके आपके उस गुणविषे मैंने अपना अभिमान किया तथापि मुझमें जो प्रतिष्ठत्व गुणहै सो आपही काहै ॥ १३ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ मुख्य प्राणको श्रोत्र कहताहुआ जो मैं सम्पत् हौं सो आप सम्पत्हौ। तदनन्तर मुख्य प्राणको मन कहताहुआ जो मैं आयतनहौं सो आप आयतनहौ १४॥ निश्चय करके न वाक्है न चक्षुहै न श्रोत्र है न मनहै, ऐसा कहते हैं प्राणही है जो यह सर्व हुआहै ऐसा कहते हैं॥ १५ ॥ इति प्रथमखण्डः ॥ १ ॥

भावार्थ मन्त्र चौदहवें का ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब मुख्य प्राणसे वाक् अरु चक्षु ये

दोनों कहचुके तदनन्तर श्रोत्र अरु मन ये दोनों उस मुख्य प्राण
से कहतेहुये । तहां प्रथम श्रोत्र कहता हुआ कि हे भगवन् (हे
नमस्कार करने के योग्य मैं जो सम्पदा हौं सो आपसम्पदा हौ ।
अर्थात् मुझमें जो सम्पदत्व रूप गुणहै सो आपहीका गुणहै, परंतु
तिसके अज्ञान से मैंने आपके सम्पदत्वरूप गुणको अपनामान
के अभिमान किया तथापि सो गुण आपका किन्तु आपही हौ ॥
हे सौम्य इसप्रकार जब श्रोत्र कहरहा तिसके उपरान्त उसमुख्य
प्राण से मन कहताहुआ कि हे भगवन् हे पूजाकरने के योग्य
मैं जो आयतन हौं सो आपही आयतनहौ । अर्थात् मुझ में जो
आयतनपनारूप गुण है सो आपकाही है, परंतु तैसे जाने बिना
आपके (उस) आयतनपनेरूप गुण में मैंने अपना अभिमान
किया कि यह आयतनत्वरूप गुण मेरा है परन्तु सो मेरा नहीं
किंतु सो गुण आपका है वा आपही हौ ॥ १४ ॥ हे सौम्य श्रुति
का यह कथन युक्तही है जो वागादि इन्द्रियों करके एक मुख्य
प्राणही सर्व से श्रेष्ठहै । जिसकरके ही लोकविषे न वाचाहै, न
चक्षु है, न श्रोत्रहै, न मनहै । इस प्रकार वागादि करणों को
साधारण लौकिक पुरुष वा शास्त्र के जाननेवाले पुरुष कहते
हैं । प्रश्न । तब क्याहै । उत्तर । प्राणही कहते हैं [अर्थात्
वागादि इन्द्रियों को प्राणकी परतन्त्रता है] जिस करके प्राण
ही इन सर्व वागादि करणजात (करण रूप) हुआ है । वागादि
इन्द्रियों से प्रति अनुरूप एक मुख्य प्राणही हुआ है वा कहाहै ॥
शङ्का ॥ ननु जैसे चेतनावान् पुरुष परस्पर विवाद करतेहुये स्पर्द्धा
करते हैं, तैसेही अचेतनवान् वागादि इन्द्रियों का अपनी अपनी
श्रेष्ठता के प्रख्यायनार्थ परस्पर में विवादपूर्वक स्पर्द्धा करना
ऐसा जो कथन सो उन अचेतनों के अर्थ युक्त नहीं, क्योंकि अ-
चेतनों विषे स्पर्द्धादिकोंका अदर्शनहै । अरु वाणी से अतिरिक्त
चक्षुरादि इन्द्रियोंका जो परस्पर में सम्वादका कथन सो भी अ-
नुचितही है, क्योंकि कथनको वाणीका व्यापारपनाहै सो चक्षु-

रादिकोंको नहीं। अरु तैसेही वागादि इन्द्रियोंको अचेतन होने से उनका शरीरसे निकलना प्रजापतिके पास जाना पुनःशरीर में प्रवेश करना।:-औ पुनः शरीर से निकलना एक संवत्सर पर्यन्त बाह्य रहना स्वव्यापार से उपरामहोना पुनः समीप आवना अपने बिना सर्वको जीवता देख लज्जितहो स्वस्थान में स्थितहोने पूर्वक स्वव्यापार में प्रवृत्तहोना-:। इत्यादि कुछ भी सम्भवे नहीं॥ समाधान॥ अग्नि आदिक चेतनावान् देवताओं को उन वागादि इन्द्रियों का अधिष्ठाता होनेसे उन वागादि इन्द्रियोंको चेतनवान्पना आगम (वेद) करके अनादि सिद्धहै। अर्थात् [अग्नि आदिक जे चेतनावान् देवताहैं तिन्होंकरके अधिष्ठितहोने से इन्द्रिय अरु तिनके अधिष्ठाता देवताओं का तादात्म्यरूप अभिप्राय से वागादि इन्द्रियों को चेतनावान्पने का सम्भव है, अतएव उन विषे वचनादि सर्व व्यापार सम्भवे है। तथाच। "अग्निवाग् भूत्वा मुखं प्राविषदिति ॥ शंका॥ ननु एक देहको अनेक चेतन करके युक्त होना युक्त नहीं, क्योंकि ईश्वर के निमित्त कारणपने का अग्रहण होने से ॥ समाधान ॥ [वादी के मतकरके जैसे एक देहको चेतन जीवकरके अधिष्ठितपना है तैसे चेतन ईश्वरकरके भी अधिष्ठितपना मानते हैं, तब एक शरीरको अनेक चेतन करके अधिष्ठितपना सम्भवे नहीं ऐसी जो ईश्वर वादियों की शंका सो युक्त नहीं]।:- हे सौम्य यह जो विद्वानों ने अन्वय व्यतिरेक करके वागादि॥- इन्द्रियों का औ प्राणका परस्पर में संवाद रूप उक्त आख्यायिका कही है सो सर्वमें एक प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके निर्द्धारणार्थ अध्यारोपमात्र है। जैसे लोकविषे बहुत से पुरुष अपनी २ श्रेष्ठताके प्रकट करनेके अर्थ परस्परमें विवाद करत सन्ते किसी एक गुण विशेष के जाननेवाले गुणज्ञ पुरुषके निकट जाय प्रश्न करते हुये कि हे भाई हम सर्व में गुणों करके अधिक कौन है। तब उसने उत्तर दिया कि जिस एक एक गुण (कार्य्य करने)

का तुम अपने २ विषे अभिमान मानतेहौ उन सर्व कार्य्य के करने में जो एक समर्थ होय तिसही को तुम अपने मध्यगुणों करके अधिक मानो । तैसेही इन वागादिकों का विवाद औ निर्णयरूप आख्यायिका श्रुतिने कल्पना कियाहै । क्योंकि श्रुतिका तात्पर्य आख्यायिका के कथन विषे न होके प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके निर्द्धार विषयकहै । क्योंकि उक्त अध्यारोपका अपवाद एक प्राणकी महिमा विषे है । अरु [अध्यात्म अधिदैव अधिभूतादि रूप सर्व देवतादिकोंका एक मुख्य प्राणरूप देवताविषे समास है । तथाच । "कतम एको देव इति, प्राण इति"। यह बृहदारण्यक उपनिषद्के तृतीयाध्याय के शाकल्य ब्राह्मणविषे शाकल्यनाम ऋषिसे याज्ञवल्क्य ऋषिका वाक्यहै । अर्थात् उक्त ऋषियोंके संवाद द्वारा अध्यात्म आदि सर्व देवताओंका एक मुख्य प्राणरूप देवता विषे समास निर्णय हुआहै]।:-अतएव अध्यात्म आदि सर्व देवतादिकोंका जीवन एक मुख्य प्राणकोहोनेसे एक प्राणही सर्व में श्रेष्ठहै । अथवा प्राणको अपरब्रह्मत्व औ प्रत्यक्ष ब्रह्मत्व होनेसे भी प्राणही श्रेष्ठहै-:। औ वागादि एक एक इन्द्रियोंके अभावहुए भी शरीरका जीवन देखते हैं न तु प्राणके । अर्थात् मुख्य प्राणके अभावहुए किसीकाभी जीवन देखते नहीं । अतएव एक मुख्य प्राणही सर्व में श्रेष्ठताको प्राप्तहोता है, इस विषय में कौशीतकी उपनिषद्की श्रुति भी प्रमाणहै । तथाच । "जीवति वागपेतो मूकान्हि पश्यामो जीवति चक्षुरपतोऽन्धान्हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्हि पश्यामो जीवति मनोपेतो बालान्हि पश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्नः"। इत्यादि १५ ॥ इतिप्रथमखण्ड १ ॥

अथ द्वितीयखण्ड प्रारभ्यते २ ॥

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चिदिदमा श्वभ्य आशकुनिभ्य इति होचुस्तद्वाएतदनस्यान्नमनोह वै नाम प्रत्यक्षं न ह्वा एवंविदि किञ्चनान्नं भवतीति १ ॥

अक्षरार्थ

सो प्राण स्पष्ट कहता हुआ क्या मेरा अन्न होगा वागादिको-वाच, जो कुछ यह सहित अश्व के औ सहित शकुनी के भक्षण किया जाताहै सो तुम्हाराही अन्न है। यह अन (प्राण) काही अन्न है, ताते स्पष्टही प्राणका प्रत्यक्ष नाम अन है, जो स्पष्टही उक्त प्रकारके प्राणको जानताहै तिसका सर्व अन्न नहीं ऐसानहीं१॥

अथ द्वितीयखंडः। भावार्थमन्त्रपहिले का ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब प्राणके उत्क्रमण (निकलने) से वागादि इन्द्रियोंने इस शरीरमें अपनी स्थिति किसी प्रकारभी न देखा तब व्याकुल होय प्राण के स्थित रहनेमें उसकी प्रार्थना किया अरु अपने अपने विषे जो जो गुण विशेषहैं सो तुम्हारेहीहैं ऐसा कहके अपने २ विषे जे प्राणके वशिष्ठत्वादि गुण सो' जैसे राजाको वैश्य तैसे प्राणरूप अपने राजाको बलि अर्पणकिया,तब शरीर में स्वस्थ होय प्राण उन वागादिकों के प्रति प्रश्न करता हु-आ-:। अर्थात् मुख्य प्राणको प्रश्नकरनेवालेवत् अरु वागादिकों को उत्तर दातावत् कल्पनाकर श्रुति कहती हुई॥ सोप्राण जो सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठहै वागादि इन्द्रियोंसे प्रश्नकरताहुआ कि मेराअन्न क्या होगा। इसप्रकार जब मुख्य प्राणने प्रश्नकिया तब वागादि इन्द्रियां कहती हुईं कि हे भगवन जो इसलोक विषे यावत् अन्न (भक्षण करने योग्य पदार्थ) प्रसिद्धहैं, अरु जो सहित अश्वकर-के अरु सहित शकुनी (पक्षी) करके भक्षण कियाजाता है।:-

अर्थात् अश्व उपलक्षण करके समस्त जे रजजातिके जीव अरु शकुनी उपलक्षण करके अंडज जाति के समस्त जीव जो अन्न तृणादिकों के भक्षकहैं तिन्हों करके–ः। वा सामान्यरीत्या सर्व प्राणियोंका जो अन्नहै, अर्थात् सर्व प्राणधारीजीव मात्र का जो अन्नहै सो तुम्हाराहीअन्नहै। प्राणकाही सर्व अन्नहै, क्योंकि "प्राणोऽत्ता सर्व स्यान्नस्येति"। ऐसा प्रतिपाद्यहै । इसप्रकार इन्द्रिय अरुप्राणकेपरस्पर सम्बादरूप कल्पित आख्यायिकारूप श्रुतिको समाप्त वा पृथक् करके अब स्वयंश्रुति कहती है। सोई यह लोक विषे किंचिन्मात्रभी जो प्राणियों करके अन्न भोजन कियाजाता है सो सर्व 'अन' नामवाले प्राणकाही अन्न होताहै। अर्थ यह जो प्राणकरकेही सो अन्न भक्षणकिया होताहै। अरु सर्व प्रकार चेष्टा व्याप्ति गुण प्रदर्शनार्थ 'अन' यह प्राणका प्रत्यक्ष नामहै। अथवा तैसे सर्व अन्नोंका अत्ता (भोक्ता) इस नामके ग्रहणार्थ प्राणका यह प्रत्यक्षनाम 'अन' है॥ अरु सर्व अन्नका भोक्तापना प्राणका सर्वको प्रत्यक्ष अनुभव है । अतएव स्पष्टही जो उक्त प्रकारके भोक्तारूप प्राणका जाननेवाला (अहमग्रे उपासनाकरनेवाला) अर्थात् जो सर्व भूतोंविषे स्थितहोयके सर्व अन्नका भोक्ता जो प्राण है सो प्राणमैंहों मुझसे इतर भोक्ता प्राण कोई नहीं। इसप्रकार का जो अहमग्रे उपासना करनेवाला जो कोई विद्वान् पुरुष है तिसकरके जो ' किंचिन्मात्र भी सर्व प्राणियों करके भोजन किया होता है सो सर्व उस विद्वान् करके भोजन किया न होता होवे ऐसा नहीं। अर्थात् सर्व प्राणिमात्रों करके जो कुछ भोजन किया होता है सो सर्व उसप्राणके उपासक विद्वान् करकेही किया होता है। क्योंकि वो विद्वान् अहमग्रे उपासना द्वारा प्राणभूत (प्राणसाथ अभेद) हुआ है ताते। तथाच।" प्राणाद्वाएष उदेति प्राणोऽस्तमेति "। " त्युपक्रम्यवंविदो हवा उदेति सूर्य एवंविद्यस्तमेतीति। श्रुत्यन्तरात् १॥

———

सहोवाचकिं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्त
स्माद्वाएतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिःपरिदधति
लम्भुको हवासो भवत्यनग्नो ह भवति २॥

अक्षरार्थ

सो प्राण कहताहुआ कि मेरा वस्त्र क्या होगा वागादिक कहते हुये जल आपका वस्त्र है तस्मात् यह जो विद्वान् भोजनकरताहै तिसके पूर्व औ पश्चात् जल करके परिधान करता है सो लाभ हुआ होताहै तब स्पष्ट अनग्न होताहै ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्रदूसरेका

हे सौम्य पूर्ववत् पुनः श्रुति आख्यायिकाकी कल्पना करके कहे है ।:—उक्त प्रकार जब वागादि इन्द्रियों ने मुख्य प्राण के अर्थ सर्व प्राणियों करके भक्षण किया जो अन्न सो आपकाही होताहै, ऐसा प्राण के प्रश्न के उत्तरमें कहा तब पुनः। सो प्राण प्रश्न करताहुआ कि मेरा वस्त्र क्या होगा, तब वागादि इन्द्रियों-ने पुनः उत्तरदिया कि जल आपका वस्त्र होगा। अर्थात् प्राणका वस्त्र जल होने करके यह जो यथोक्त प्राण विद्याका जाननेवाला विद्वान् ब्राह्मण जो सर्व जीवोंका एक प्राणरूपहुआ सर्वत्र सब अन्नका भोक्ता है सो भोजनकरनेके पूर्व औ पश्चात् जलपान वा जलका आचमन रूप परिधान करता है तब ओ जल मुख्य प्राणको लाभहुआ वस्त्र होताहै, अर्थ यह जो वो जल प्राणको वस्त्र प्राप्तहुयेवत्हीं होताहै। तब वो प्राण अनग्न होता है ॥ :— अर्थात् वस्त्र से रहितका नाम नग्न होताहै अरु वस्त्र वालेका नाम अनग्नहै (नग्नतासे रहित का नाम अनग्न है) सो प्राण विद्याको यथार्थ जानके तिसकी अहमग्रे उपासना क-रनेवाले विद्वान्का जो भोजनके पूर्व औ उत्तर जलपान वा आचमन है सो मुख्य प्राणका वस्त्र स्थानापन्न होने से वो प्राण अनग्न होताहै —:। अर्थात् वस्त्रवान् होताहै। अरु भोजन करने

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ३ ॥

वाले विद्वान् ब्राह्मण के अर्थ भोजन से पूर्वोत्तर जो आचमन विधि है सो शुद्धिके अर्थ जानी गई है तिस विधि विषे जो प्राण का वस्त्र होताहै सो केवल दर्शन (देखावने) मात्र है। अर्थात् जैसे कहाहै कि लौकिक प्राणीमात्रकरके भोजनकिया जो अन्नहै सो सर्व प्राणकाही है, ऐसा देखावनेके अर्थ कहा है । तैसेही सर्व प्राणियोंकरके पानकिया जल सामान्यरीत्या प्राणका वस्त्र होता है, क्योंकि जैसे प्राणने कहा कि मेरा अन्नक्याहोगा, तैसेही पुनः कहा कि मेरा वस्त्र क्याहोगा, इसके उत्तरमें इन्द्रियोंने कहा किं सर्व प्राणियोंकरके भक्षण किया जो अन्न सो तुम्हाराही होगा,तैसे भोजनके पूर्वोत्तर में जो जलपानहै सो तुम्हारावस्त्र होगा ऐसा देखायाहै, क्योंकि दोनों प्रश्नोत्तरोंकी समानताहै। :—अरुविशेषकरके प्राणविद्याजाननेवाले विद्वान् के अर्थ भोजनके पूर्वोत्तरमें आचमनकरनेकी विधिभीहै। अरु सो विद्वान्करके किये जे भोजनके पूर्वोत्तरमें आचमन सो प्राणके बिछावने ओढने के वस्त्र स्थानापन्न होते हैं ॥ २ ॥

अक्षरार्थ

सो स्पष्ट यह (प्राणविद्या) सत्यकामो जाबाल नामवाला ऋषि गोश्रुत वैयाघ्रपद्य ऋषिके अर्थ कहताहुआ, यद्यपि जिस करके शुष्क स्थाणुप्रति कहे तो उसविषे नवीन शाखा पत्र पुष्पादिक प्रकट हो आवते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थमन्त्रतीसरेका

हे सौम्य अब श्रुति जो है सो प्राणविद्याकी स्तुतिकरतीहैं। प्रश्न कैसी वो स्तुतिहै । उत्तर। सोई प्राणविद्याजो पूर्वस्पष्टकहीहै तिस की महिमा सत्यकामजाबाल नामवालाऋषिगोश्रुत वैयाघ्रपद्य

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याᳬं रात्रौ सर्व्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरूपथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वामन्थे सम्पातमवनयेत् ४॥

नामवाले ऋषिके प्रतिकहताहुआ। अर्थात् व्याघ्रपदनामवाले के पुत्रको वैयाघ्रपद्यनामसे कहते हैं, ताते व्याघ्रपद नामवालेके पुत्र वैयाघ्रपद्यगोश्रुत नामवाले ऋषि के प्रति सत्यकाम जाबालनाम वाला ऋषीश्वर जोप्राणविद्याका सम्यक् प्रकार ज्ञाताहै सो कहता हुआ कि हे गोश्रुत जो कदापि प्राणविद्याकेजाननेवालाप्राण का उपासक यह प्राणविद्या शुष्क (सूखे) काष्ठकेठूठ प्रतिकहै तो उस सूखे ठूठविषे नवीनशाखा औ पत्र पुष्पादिकप्रकट (उत्पन्न) होते हैं। तो यदि यह प्राणविद्या साधन सम्पन्न शुद्ध जिज्ञासु प्रति सम्यक् प्राणोपासक करके उपदेश कियाजाय अरु उस जिज्ञासुके अज्ञात अन्तःकरण रूप शुष्क स्थाणुविषे श्रद्धा रूपा शाखा अरु प्राणविद्याके मन्त्रोंकी धारणारूप पत्र अरु प्राण की अहमग्रे उपासनारूप पुष्प अरु सूत्र आत्माके पदकी प्राप्ति रूप फल, प्राप्तहोवे तो क्या आश्चर्य है किन्तु कुछ भी नहीं॥ ३॥

अक्षरार्थ॥

तिसके अनन्तर यदि महत्त्वकी इच्छाहोय तो अमावास्याको दीक्षावान् होय पूर्णमासीकीरात्रिको सर्वओषधियोंका मन्थनकर दधिमधुमिलाय, ज्येष्ठाय श्रेष्ठायस्वाहा, इस मन्त्रसे अग्नि विषे घृतकी आहुतिकरे (जो श्रुवामें लगारहेतिसको) मन्थमें डाले४॥

भावार्थ मन्त्र ४ से खण्ड समाप्ति पर्यन्त॥

हे सौम्य उक्त प्राणविद्याके जाननेवाला जो उपासक है तिस के अर्थ इस मन्थ नामवाले कर्म्म के कहनेका आरंभकरते हैं। तिसके अनन्तर।:-अर्थात् वागादि सर्वमें प्राणकी ज्येष्ठता श्रेष्ठताके जाननेके अनन्तर-:। जो कदापि उस विद्वान् को सर्व में

महत्त्वपनेके प्राप्तहोनेकी इच्छाहोय तो तिसके अर्थ यह कर्मविधि कहते हैं। अर्थात् बहुतसे धनादि प्राप्तिवालेको यह कर्मानुष्ठान है क्योंकि धनकरके यज्ञादिक होते हैं अरु तिसकरके पुनःदेवयान को औ पितृयानको वा अन्यमार्गोंको प्राप्तहोताहै, अतएव उक्त मार्गोंकी प्राप्ति रूप प्रयोजनको एकत्र करनेकी इच्छावालेके अर्थ यह कर्म्म है, विषय भोगोंकी कामनावालेके अर्थ नहीं ।:– अर्थात् यह जो प्राण विद्याकी ज्ञातवाले प्राणोपासक के अर्थ महत्त्व प्राप्तिकी इच्छासे मन्थाख्य कर्महै सो मुख्यकरके प्राणोपासनाद्वारा सूत्रात्माके पदकी प्राप्तिरूप महत्त्व, अरु देवयानमार्गसे प्राप्त जो ब्रह्मलोक तिसकी प्राप्तिरूप महत्त्व, अरु पितृयान मार्ग से प्राप्त जो पितृलोक तिसकी प्राप्तिरूप महत्त्व, वा अन्यविद्याके मार्ग से अन्य देवभावकी प्राप्तिरूप महत्त्व, तिन महत्त्वोंके अर्थ जानना। अरु इस लोकके महत्त्व का प्राप्ति इस कर्मका मुख्य अरु आवान्तर फलहै ऐसा जानना । तात्पर्य यहहै जो इस मन्थाख्यकर्म का फल विशेष धनकी प्राप्तिहै सो इस कर्म से जो धनप्राप्तहोवे तो तिस धनसे वो विद्वान् अपने विषे उत्तरायण आदि मार्ग से प्राप्त जो ब्रह्मलोक तिसकी प्राप्तिरूप महत्त्व तिसको सम्पादन करे । इस कर्मसे प्राप्तहुआ जो धन तिसको विषय भोगमें व्यय न करे क्योंकि विषय भोगमें व्ययकिया धन अनर्थ का हेतुहोता है। ताते हय जो अग्रिम कहने का मन्थाख्य कर्म्म है सो विषय भोगकी कामनावालोंके अर्थ नहीं –:। हे सौम्य अब इस अग्रिम कहने के मन्थाख्य कर्म के करनेके कालादि विधिको कहतेहैं।:– हे प्रियदर्शन मूल श्रुति ने औ भाष्यकार स्वामीने अयन विधि कही नहीं कि अमुक अयन के सूर्य्य में यह कर्म करना, परंतु मैं अपनी अल्पबुद्धिके विचारानुसार अनुमान करके कहता हौं कि इस कर्म के करने में प्रथम उत्तरायण का सूर्य्य होय तो अति उत्तमहै –:। अमावास्या के दिवस दीक्षावान् होय, अर्थात् यज्ञादिकों की दीक्षाको प्राप्तहुये यजमानवत् भूमि शयनादि नियमों

को करे जो तपरूप है, तहां सत्यभाषण करना ब्रह्मचर्य विधि से रहना अर्थात् स्त्री संगका त्यागकरना क्षौर अभ्यंगादि न करावना किसी से स्पर्श न करना त्रिकाल स्नानादिक करके पवित्र रहना,भूमिपर कम्बल चटाई वा धौत वस्त्र बिछायके शयनकरना इन्द्रियों को विषयों से रोकना समाहित चित्तसे प्राणके ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्वादि गुणोंको श्रुतियोंके वाक्यानुसार विचारते रहना अन्न भक्षण न करना,उपसद्व्रति होना।" उपसद्व्रतीति।" श्रुत्यन्तरात्। अर्थात् पय (दूध) मात्रका आहारकरना (दूधमात्रका आहारकरके जो तपाचरणकरते हैं तिनको उपसद्व्रति कहते हैं) इसप्रकार शुद्धिके कारण तपको करना। इस प्रकार अमावास्या से दीक्षित होय तपाचरण करतसन्ते जब पूर्णमासीका दिवस आय प्राप्त होवे तब तिसकी रात्रिमें कर्मका प्रारंभकरना, तहां ग्राममें अरु अरण्य में प्राप्तहोने वाली सर्व ओषधियोंको अपनी शक्तिके अनुसार थोडा थोडा इकट्ठा करना।:—यहां जो शक्तिके अनुसार थोडा थोडा लेनेको कहाहै तिसका तात्पर्य यह है कि अग्रिम कहनेका सर्व ओषधियोंका मन्थ अन्तमें यजमानको भक्षण करनापड़ताहै अतएव अपने भक्षण करनेकी शक्तिके अनुसारग्रहण करे क्योंकि वो फेंकानहीं जाता—:। और श्रवणकरो हे सौम्य।:— बृहदारण्यक उपनिषद्के अष्टमाध्याय विषे भी इस प्राणविद्या पूर्वक मन्थाख्य कर्मकी विधि कही है, तहां अमावास्यासे प्रारंभ पौर्णिमा पर्यन्तका नियमकिया नहीं, वहां शुक्लपक्ष अरु द्वादश दिवसका नियमकियाहै। अरु ग्रामकी सर्वौषधि में व्रीहि यवादि सर्व अन्नके ग्रहणकरनेका नियमहै। अरु अरण्यकी ओषधियों में उस समय जितने ऋतुफल होयँ तिनको भी यथाशक्ति लेना कहाहै। अरु कर्म्म में विधानकिये जे श्रुवादि पात्र सो सर्वगूलरके काष्ठके होने चाहिये ऐसाकहाहै। अरु इस छान्दोग्यउपनिषद्में कहेकी अपेक्षा बृहदारण्यमें विधि विशेषभीहै —:। हे सौम्य पूर्व कही जो ग्रामकी सर्व अन्नरूपा ओषधि अरु अरण्यकी सर्व

ऋतुफल रूपा ओषधिः–अरण्यकी सर्व ओषधियों का रात्रि में प्राप्तहोना प्रायः कठिनहै अतएव उसको दिवसमेंही संग्रह करना–ः। तिन सर्व के छिकुले आदि पृथक् कर उनको शुद्ध स्वच्छ करना, पश्चात् सहित दधि मधुके उनसर्व ओषधियोंको पीसना पश्चात् ।" औदुम्बरे कंसाकारे चमसाकारे पात्रे"।इस अन्य (बृहदारण्यकी श्रुतिके प्रमाण से गूलरके काष्ठका चमसके आकार पात्र में उन पिसीहुई सर्वौषधियों को रखके अपने अग्रभाग में रखना ।:– हे सौम्य जिस स्थानमें हवनकरे वहांकी भूमिको प्रथम झड़वाय लिपवायके शुद्ध करे पश्चात् उस भूमिके मध्य एकहाथ लम्बी अरु एकहाथ चौड़ी चार अंगुल ऊंची शुद्ध मृत्तिका की वेदी निर्माण करे, पुनः । " परिसमूह्य परिलिप्य अग्निमुपसमाध्याय" । इत्यादि श्रुति स्मृतिके कहे प्रमाण उस वेदीको संस्कार करके शुद्धकरे' तहां प्रथम तीन कुशासे उस वेदीको तीनबार झाड़े पश्चात् अपने अंगुष्ठ औ अनामिका अंगुली इनकी चुटकीसे तीनबार उस वेदी में से मृत्तिका बाहिर डाले, पश्चात् तीनबार उस वेदी पर पानी का छींटादे उपलेपनकरे। इस प्रकार उस वेदीको शुद्धकर पश्चात् उस वेदीपर धूम रहित अंगार अग्निको स्थापितकर उसपर गूलर वा पलाश काष्ठका समिध रख उस अग्निको प्रज्वलितकर उसपर एकपात्रमें गोके घृतको तपावे, पश्चात् उस घृतकी । " अग्नयेस्वाहा " । इत्यादि मन्त्रसे तीन तीन अहुतिकरे अर्थात् प्रथम कुशकंडिका कर अग्निके संस्कारकरे पश्चात् मन्थाख्य कर्म की आहुतिकरे –ः। पश्चात् । "ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा" । इस मन्त्रसे घृतकी आहुतिकरे औ श्रुवामें रहा जो आहुति का शेष घृत सो उस मन्थमें डाले ४ ॥

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्यहुत्वा मन्थे सम्पातमवनयेत्सम्पदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थेसम्पातमवनयेदायतनायस्वाहेत्यग्नावाज्यस्यहुत्वामंथेसम्पातमवनयेत् ५ अथप्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमाहिते सर्वमिदꣳ सहिज्येष्ठः श्रेष्ठोराजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यंगमयत्वहमवेदꣳ सर्वमसानीति ६ अथ खल्वेतयर्चापच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति वयंदेवस्य

हे सौम्य, । इसप्रकार । "वसिष्ठाय स्वाहा" । इस मन्त्रसे अग्निमें घृतकी आहुति करे औ श्रुवामें रहे आहुतिके शेष घृतको उसमंथमेंडाले । ऐसेही । "प्रतिष्ठायै स्वाहा" । "सम्पदेस्वाहा" "आयतनाय स्वाहा" । इन मंत्रों करके भी अग्निमें घृतकी आहुति करे औ पूर्ववत्ही प्रति आहुति के श्रुवामें रहे शेष घृतको उस मंथमें डालताजावे ५ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार आहुतिकरके पश्चात् अपने दोनों हाथों की अंजली में उस मंथको लेके इस मन्त्रसे उस मंथकी स्तुति करे। मंत्र । "अमोनामास्यमाहितेसर्वमिदꣳ सहिज्येष्ठःश्रेष्ठो राजाधिपतिः समाज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यंगमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति"। अर्थ। अम यह प्राणकानामहै अन्न करकेही प्राण शरीरमेंरहताहै, एतदर्थ मंथरूप द्रव्य प्राणका अन्न (आश्रय) होने से उस मन्थकी प्राणरूप से स्तुति करतेहैं किंतु अम नामवालाहै, जो तू प्राणके साथ एकहै इस करके तुझ इस प्राणभूतका यह समस्तजगत् होनेसे अम नामवालाहै। सो निश्चयकरके प्राणभूत मंथ ज्येष्ठ श्रेष्ठहै। एतदर्थही सर्व का राजा दीप्तिमान् सर्वका अधिपति (अधिष्ठाता) होने से सर्व

भोजनमित्याचामति श्रेष्ठं सर्वधातममित्याचामति तुरंभगस्य धीमहीति सर्वंपिबति७निर्णिज्यकछंसंचमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्म्मणि वा स्थण्डिले वा वा चोयमोऽप्रसाहः स यदि स्त्रियं पश्येत् समृद्धं कर्मेति विद्यात् ८ तदेषश्लोको "यदा कर्म सु काम्येषु स्त्रियछंस्वप्नेषुपश्यति समृद्धितत्रजानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ९ ॥ २ ॥

इतिछान्दोग्योपनिषादिपञ्चमप्रपाठकेप्राणविद्यासमाप्ता॥

का तू पालयिताहै। सो तू मुझकोभी प्राणात्मभूत प्राणकेज्येष्ठत्वादि गुणोंकोप्राप्तकर कि जिसकरके मैंभीप्राणवत् गुणवान्होवों इति। शब्दमंत्रकी समाप्तिके अर्थ है॥ तिसके अनन्तर कहनेके मंत्रके एक एक पादकरके मंथमें से एक एक ग्रास भक्षण करे। तहां। "तत्सवितुर्वृणीमहे"। इस प्रथम पादसे प्रथमग्रास भक्षण करे। "वयंदेवस्यभोजनं"। इस द्वितीयपादसे द्वितीयग्रासभक्षण करे। "श्रेष्ठछं सर्वधातमं"। इस तृतीयपादसे तृतीयग्रास भक्षणकरे पश्चात्। "तुरंभगस्य धीमहि"। इस चतुर्थपादसे सर्व पानकरे अर्थात् उस मंथके पात्रको कि जिस चमसाकार पात्रविषे मंथ स्थापित कियारहा उसको धोयके उस जलकोपान करे। पश्चात् वाणीका बोलनेसेसंयमकर अफुरचित्तहो अर्थात्सर्वअशुभ व्यावहारिक चिंतवनाको त्यागकरे कि जिसके संस्कारसे स्वप्नमें अनिष्ट दर्शन न होय, ऐसा समाहित चित्तहोयके अग्नि की ओर मस्तककर अर्थात् वो अग्नि कि जिस विषे हवनकियाहै' अपने मस्तकके निकट पूर्वदिशामें होय ऐसे स्थानमें अजिन(मृगचर्म) पर वा केवल भूमिपर शयनकरे। इस प्रकार कर्म समाप्तकरके वहां सोयाहुआ यजमान यदि स्वप्नमें स्त्रीको देखे तो यह निश्चयकरे कि मेरा यह कर्म यथार्थ हुआ औ मुझको समृद्धि (लक्ष्मी) प्राप्तहोगी ८ इस अर्थविषे वेदका मन्त्रभी प्रमाणहै।

अथ पंचम प्रपाठके पंचाग्नि विद्याप्रारभ्यते ॥

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पिता इत्यनु हि भगव इति १ ॥

यदि (धनकी) कामना से किया जो कर्म तिसकी समाप्तिहुए स्वप्नमें जो (अपूर्व) स्त्रीको देखे तो यह जाने कि मुझको समृद्धि प्राप्तहोगी क्योंकि मैंने स्वप्नमें स्त्रीको देखाहै । दोबार जो कथनहै सो कर्म्म समाप्ति के सूचनार्थ है ६ इतिद्वितीय खंडः२॥

इतिछान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठकविषयकप्राणविद्या समाप्ता ॥

अक्षरार्थ ॥

श्वेतकेतु नाम प्रसिद्ध आरुणेय पंचालदेशके राजाकी सभा में प्राप्तहोताहुआ तब तिससे प्रवाहण नाम जैबली राजा प्रश्न करता हुआ हे कुमार तुझको पिताने विद्यापढ़ायाहै, उसने कहा हां भगवन् पढ़ायाहै १ ॥

भावार्थ मन्त्र पहिले का ॥

श्री गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य अब मुमुक्षु पुरुषजो मोक्षकी दृढ़ इच्छावालाहै तिसको इसनामरूप क्रियात्मक अतिदुःखमय असत् संसारसे, जो दृढ़ बन्धनका हेतुहै, दृढ़ वैराग्यहोनेके अर्थ ब्रह्मासे आदिलेके स्तम्बपर्यंत संसारगतिका कहना योग्य जानके परम उपकार करनेवाली श्रुति भगवती एक आख्यायिका द्वारा संसार गतिको देखावे है ॥:—तहां एक उद्दालकनाम ऋषि औ प्रवाहण नाम राजाका सम्बादहै,तहां उक्तराजाने उक्तऋषिश्वरको संसार गति देखावने के अर्थ पंचाग्नि विद्या उपदेश करीहै । हे सौम्य

यह जो पंचमाध्याय सम्बन्धी कथा है अर्थात् आख्यायिका है सो षष्ठ अध्यायकी आख्यायिकाके पश्चात् की है, क्योंकि उद्दालकऋषिने अपने श्वेतकेतुनाम पुत्रको षष्ठ अध्यायमें उपदेश कियाहै तिसके पूर्व उद्दालकने आप उस श्वेतकेतुको विद्या अध्ययनकरायानहीं अन्यआचार्यके यहां भेजकेउसको विद्या अध्ययन करवाया। अरु इस पंचमाध्यायकी आख्यायिकामें उक्त राजाने श्वेतकेतु से प्रश्न कियाहै कि हे कुमार तुझको तेरे पिताने सर्व विद्या उपदेश कियाहै तब श्वेतकेतुने कहा कि हां मुझको पिताने सर्वविद्या उपदेशकियाहै। अतएव जाननाचाहियेजो षष्ठ अध्यायकी कथाके पश्चात्की यह कथा है। अरु वो श्वेतकेतुको राजा करके किये पांचों प्रश्नों में से किसीका भी उत्तर न आया तब वो अति लज्जितहो अपने पिता समीपजाय सर्व वृत्तान्त कह कहताहुआ कि हे भगवन् आपने मुझसे कहाथा कि मैंने तुझको सर्व विद्या अध्ययनकराया है परन्तु मुझसे राजा करके प्रश्नकरीगई जो विद्या सो आपने नहीं पढ़ाया॥ हे सौम्य इन सर्व प्रसङ्गों से प्रतीतहोताहै जो यह पंचमाध्याय सम्बन्धी श्वेतकेतुकीकथा षष्ठ अध्याय के पश्चात्की है। परन्तु षष्ठ अध्याय में जो कथाहै सो औ सप्तम अष्टम अध्याय में जो कथा है सो सर्व आत्मविद्या महावाक्य औ आत्मोपासनाका उपदेश है, अतएव इस षष्ठ अध्याय की आख्यायिका कथा से पश्चात् होने वाली आख्यायिका कथा को उपासना सम्बन्धिनी होने से इस पंचमाध्याय में कि जिसमें अन्य भी उपासनविद्याहै कहाहै—:॥

हे सौम्य, एकसमय श्वेतकेतु नामवाला प्रसिद्ध अरुण नाम वाले ऋषिका पौत्र अरु आरुणिनामवाले ऋषिका पुत्र आरुणेय सो पांचालदेश के राजाकी सभा में आय प्राप्तहुआ, तब तिसको अपनी सभामें आया देख प्रसिद्ध जो प्रवाहण नामवाला औ जिवलिनामवाले राजाका पुत्र ताते जैबलीनामवाला राजा सो उस श्वेतकेतुको कहताहुआ कि हे कुमार तुझको पिताने विद्या

शिक्षा कियाहै, अर्थात् तू अपने पिता से विद्या शिक्षापाय अनुशिष्ट (सर्व विद्या सम्पन्न) हुआहै। इसप्रकार जब उस प्रवाहण नाम जैबालि राजाने श्वेतकेतु से प्रश्न किया तब वो कहताहुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं अनुशिष्टहौं ॥:-हे सौम्य वो श्वेतकेतु अपनी बाल्यावस्थामेंमातापिताको अधिकप्यारा औ चंचल स्वभाव होनेसे शिक्षाको न ग्रहणकर मूर्खबालकोंवत् खेलताही रहा, तब उसके पिताने उसके स्वभावको देख अनुमानकिया कि यह यहां विद्या अध्ययनकरनेका नहीं, अतएव इसका किसी अन्य आचार्यकेयहां विद्या अध्ययनकरनेकोभेजनाचाहिये।ऐसाविचार उसकायज्ञोपवीत संस्कारकरआचार्यके यहां विद्याअध्ययनकरने के अर्थ भेजा, तब वो किसी अन्य कुलीन आचार्य के यहां विद्या अध्ययनार्थ गया, उस समय उस श्वेतकेतुकी द्वादशवर्ष की अवस्थाथी औ तीव्र बुद्धिहोनेके कारण वो चौबीस वर्षकी अवस्था होने पर्य्यंत उसने छहो अंग अरु अर्थ सहित ऋगादि चारों वेद अध्ययन करलिया, औ अन्य सर्व विद्यार्थियों में अधिक विद्वान् होने से उसको यह अभिमान हुआ कि इस समय मुझसमान विद्वान् अन्य कोई नहीं। इसप्रकार अहंकारी अप्रणतस्वभाव हुआ वो श्वेतकेतु देश देशान्तरमें जाय अन्य ब्राह्मणोंको शास्त्रार्थ में परास्त करता घूमता अपने पिताके निकट आय प्राप्तहुआ, परंतु अपने को विद्वान् अधिक समझने के कारण पिताको भी प्रणाम न किया, तब उसके पिता उद्दालकने अपने पुत्र उस श्वेतकेतु को महा अभिमानी अप्रणत स्वभावरूप दोषकरके युक्त होने से उसको अपने शुद्ध कुलमें कलंकरूपहुआ जान उसके दोषकी निवृत्ति करना विचार प्रश्नकिया कि हे पुत्र तू जो इस प्रकारअहंकारी अप्रणत स्वभावहुआहै सो अन्य विद्वान् ब्राह्मणों से तुझमें क्या विशेषहै, जो तू अपने विषे विद्याका इतना अभिमान करताहै सो उस विद्याको भी जानताहै या नहीं कि जिस एक के जानने से सर्व जानाजाताहै तब उसने कहा कि उस

"वेत्थयदितोऽधिप्रजाः प्रयन्तीति" "नभगवइति" "वेत्थयथापुनरावर्त्तन्ता ३ इति" "नभगव इति" "वेत्थपथोर्देवयानस्यपितृयाणस्यचव्यावर्त्तना ३ इति" "नभगवइति २ ॥

विद्याको मैं नहीं जानता औ आचार्यने भी मुझको वो विद्यानहीं कही। अतएव हे भगवन् आप उस विद्याको मेरे प्रति कहिये। इस प्रकार जब श्वेतकेतुने कहा तबउसके पिताने दृष्टान्त पूर्वक एक अद्वैत आत्मविद्या उपदेशकिया। तब वो श्वेतकेतु अपने विषे परा अपरा उभय विद्यापाय सर्व विद्याका अहंकारी हुआ किसी एक समय पांचाल देशके राजाकी सभामें आय प्राप्तहुआ। अरु उस राजाने पूर्व श्रवण भी किया रहा कि एक ऋषिका पुत्र विद्या में अपने को सर्व से अधिकमान जहां तहां ब्राह्मणों से विवादकरता फिरताहै। सो उसको अपनीसभामेंदेखके उक्तराजा ने उसकुमारसे प्रश्नकिया कि हे कुमार तू अपनेपितासेविद्यापाय शिक्षितहुआहै तब उसनेकहा कि हां मैं पिताकरके शिक्षित अनुशिष्टहौं—: ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जानताहै जिसप्रकारअधोसे प्रजा ऊद्‌र्ध्वकोजातीहै, नहीं भगवन्, जानताहै जिसप्रकार फिरके आवतीहै, नहीं भगवन्, जानता है मार्ग देवयानका पितृयानका अरु जहांसे इनका भेदहोता है, नहीं भगवन् इति २ ॥

भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब उस कुमारावस्थावाले श्वेतकेतुने अपनेको पिताकरके शिक्षित अनुशिष्ट सूचित किया, तब उसजैबलीनाम राजाने कहा कि यदि तू अनुशिष्टहै तो तू जानता है जिस प्रकार इस लोकसे प्रजा मरके ऊद्‌र्ध्वलोकको जाती है इस प्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब सो श्वेतकेतु कहताहुआ। कि हे भगवन् मैं उस प्रकारको जानता नहीं ॥ तब पुनः राजाने

वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पूर्य्यता ३ इति नभगव इति वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुता वापः पुरुषवच सो भवन्तीति नैव भगव इति ३॥

प्रश्नकिया कि जिसप्रकारसे वो प्रजा पुनः इसलोक में आवती है तिसको तू जानता है। इस प्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब सो श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् मैं सो भी जानता नहीं॥ तब पुनः राजाने प्रश्न किया कि हे कुमार जिसप्रकार देवयान अरु पितृयान इन दोनों मार्गोंका कि जिस मार्गसेगये एक तो फिरके आवते हैं अरु एक पुनरावृत्तिको नहीं प्राप्तहोते वो दो मार्ग जहां से पृथक् २ होते हैं सो तू जानताहै। इसप्रकार जब उस राजाने प्रश्नकिया तब श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् मैं उसको नहीं जानता २॥ अक्षरार्थ॥

जैसे स्वर्गलोक नहीं पूर्णहोता सो तू जानताहै। नहीं भगवन् जानताहै जैसे पांचवीं आहुति में आयके जल पुरुष नामवाला होताहै। नहीं भगवन् ३॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का ३॥

हे सौम्य, उसराजा जैवली के किये तीन प्रश्नों के उत्तर में उस श्वेतकेतुने यही उत्तर दिया कि हे भगवन् मैं उसको नहीं जानता॥ तब पुनः राजाने प्रश्नकिया कि पितृलोक सम्बन्धी स्वर्गलोक कि जिसकोप्राप्तहोयके पुनरावृत्तिकोपावते हैं औ तिस विषे बहुतसे केवल कर्म्मके करनेवालेचले भीजातेहैं तोभी जिस कारणसे वो लोकभर नहीं जाता तिसको तू जानताहै। तब श्वेत-केतुनेकहा कि हे भगवन् उसको मैं नहीं जानता। तब पुनःउस राजाने उससे प्रश्न किया कि हे कुमार जिस क्रमकरके पांच संख्यावाली जे आहुति हवनकरी अरु आहुतिका साधन जे जल 'अर्थात् श्रद्धाशब्दका वाच्यजे जल सो जिसप्रकार पांच अग्नि विषे आहुतिकिया षष्ठ परिणामसे पुरुषनामवाली षष्ठ आहुति

अथनु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात् कथ छं सोऽनुशिष्टो ब्रवीतेति सहायस्तः पितुरर्द्ध मेयाय तछंहोवाचाऽननुशिष्य वावकिल मा भगवान ब्रवीदनु त्वाशिषमिति ॥ ४ ॥

भूतको 'अर्थात् क्रमकरके आहुति किया जल षष्ठ आहुतिरूपपुरुष नामको, प्राप्तहोताहै, तिसको तू जानता है इसप्रकार जब उस जैवलिनामराजाने प्रश्नकिया तब वो श्वेतकेतु पुनः वोही उत्तरकहताहुआ कि हे भगवन् मैं उसको नहीं जानता । अर्थात् आपकरके किये जे प्रश्न तिनमेंसे एकको भी मैं जानतानहीं ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

जब नहीं जानता तब कैसे कहता है मैं अनुशिष्टहौं, जो निश्चयकरके उनप्रश्नों को न जानता होगा सो कैसे कहेगा मैं अनुशिष्टहौं । सो श्वेतकेतु लज्जितहो पिता के स्थानपर आय तिस पितासे कहताहुआ मुझको स्पष्ट अनुशासन किये बिनाही आपने कहा कि तुझको सर्व विद्या शिक्षाकियाहै ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ४ ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब उस श्वेतकेतुने निरुत्तरहोयके कहा तब वो राजा कहताहुआ कि हे कुमार जो तू इसप्रकारका अज्ञ है कि मेरे किये प्रश्नोंमें से जब एकका भी उत्तर नहीं जानता तब अपने को मैं अनुशिष्टहौं ऐसा क्यों कहा । जो प्रसिद्ध इन मुझकरके पूछे प्रश्नों के अर्थोंको (उत्तरोंको) न जानता होवे सो विद्वानों विषे कैसे कहेगा कि मैं अनुशिष्टहौं, किन्तु कदापि न कहेगा । इसप्रकार जब उस राजाने किंचित् निरादर पूर्वक उस श्वेतकेतु से कहा तब वो अतिलज्जितहो उस सभासे निकल अपने पिताके स्थानपर जाताहुआ । औ अपने पिता के निकट प्राप्तहो कहताहुआ कि हे पिताजी आपने मुझको अनुशासन किये बिना (अर्थात् सर्व विद्या उपदेश कियेबिना) ही मुझकोस-

पंचमा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकञ्चना शकंविवक्तुमिति सहोवाच यथा मा त्वंतदैतानवदोयथाह मेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथंतेनावक्ष्य मिति ५॥

मावर्त्तन के समय (अर्थात् ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्याऽध्ययनकी समाप्तिके समय) आपने कहा कि मैंने तुझको सर्व विद्या अध्ययन कराया है अब कोई विद्या तेरे अध्ययनकरनेयोग्य अवशिष्ट नहीं, सो आपने मिथ्याही कहा ४॥

अक्षरार्थ॥

हे भगवन् राजा है बन्धु जिसके तिस राजा मुझसे पांच प्रश्नों को पूछताहुआ तिनमें से एक का उत्तर कहनेको मैं समर्थ न हुआ। पिता कहता हुआ जैसे तू नहीं जानता है तैसे मुझको भी जान मैं भी उन प्रश्नोंके उत्तरको जानता नहीं जो कदापि मैं इनको जानता होता तो तुझको क्यों न कहता ५॥

भावार्थ मन्त्र पांचवें का ५॥

हे सौम्य, पुनः वो श्वेतकेतु कहताहुआ कि। हे भगवन् इस कारणसे सर्व राजाहैं बन्धु जिसके ऐसा जो पांचालदेशका प्रवाहण नामवाला जैवलि राजा सो बड़ा विद्वान्है।:—उस राजा की सभामें मैं गया तब उस राजाने मुझको देख प्रश्न किया कि तुझको पिताने सर्व विद्या अध्ययन कराय अनुशिष्ट कियाहै औ तू अनुशिष्ट हुआहै, तब मैंने कहा हां मैं अनुशिष्टहौं आपको जो प्रश्न करनाहोय सो करिये। तब उस राजाने मुझसे पांच प्रश्न किये तहां। प्रश्न। जिसप्रकार इसलोकसे सर्वप्रजा ऊर्द्ध्वको जाती है तिसको तू जानताहै १ अरु ऊर्द्ध्वको गई प्रजा जिस प्रकार फिरके आवती है तिसको तू जानताहै २ अरु जहांसे देवयान अरु पितृयान यह दो मार्ग पृथक् २ होते हैं तिसको तू जानताहै ३ अरु जिसप्रकार पितृलोक सम्बन्धी स्वर्गलोक प्रजाकर-

के पूर्ण नहींहोता तिसको तू जानता है ४ अरु जिसप्रकार जल पांच आहुत भावको प्राप्तहोके पुरुषनामवाला षष्ठ आहुतिरूप होताहै तिसको तू जानता है ५।—:॥ उसने मुझसे उक्त पांच प्रश्न किये परन्तु उन पांच प्रश्नोंमेंसे एकका भी उत्तर दे तिसका निर्णयकरने के अर्थमें मैं समर्थ न होताहुआ। अतएव जो आपने मुझसे समावर्त्तनकालमें कहा कि मैंने तुझको सर्व विद्या अध्ययनकरायाहै,सो आपने असत्यही कहाहै। इसप्रकार जब श्वेतकेतुने अपने पितासे कहा तब वो उद्दालक अपने असत्यवादीपनेके निवारणार्थ अपने श्वेतकेतुनाम पुत्र से कहता हुआ कि हे वत्स जैसे राजाकरके किये प्रश्नों में से एकके भी उत्तर कहने को तू समर्थ न हुआ तैसेही तू मुझको भी जान मैं भी उन प्रश्नों के उत्तरको जानता नहीं, अर्थात् हे पुत्र तेरेअज्ञानरूप लिंगकरके मेरे भी उसविद्या विषयक अज्ञानको अनुमानकरके जानले। हे पुत्र जैसे मैं उन प्रश्नों में से एकका उत्तर भी नहीं जानता तैसे 'मुझकरके शिक्षित' तू भी नहीं जानता। अरु जिस करके तू नहीं जानता तिसही कारण से मैं भी उन प्रश्नों के उत्तरको नहीं जानता।:— अर्थात् जिस विद्याको शिष्य नहीं जानता तिस शिष्यके अज्ञानरूप लिंगसे उसके अध्यापक विषे भी उस विद्या विषयक अज्ञान सिद्ध होताहै। अरु जिस विद्याको अध्यापक नहीं जानता तब उसकरके शिक्षित शिष्य उसको कैसे जानेगा अतएव गुरु शिष्य में से एकके अज्ञानरूप लिंगकरके दूसरेके विषे अनुमानकरके अज्ञानकी सिद्धिहै —:। अतएव हे पुत्र मेरे ऊपर असत्यवादीपनेका आरोपकर क्रोधकरना तुझको योग्य नहीं अतएव मुझपर क्रोध मतकरे। हे सौम्य उक्तप्रकार कहके पुनः वो उद्दालक कहताहुआ कि हे पुत्र जो मैं इन तेरे प्रति राजाकरके किये प्रश्नों के उत्तरोंको यदि जानताहोता तो कैसे मैं तुझ प्रिय पुत्रके अर्थ पूर्व समावर्त्तन कालविषे न कहता 'किन्तु अवश्यही कहता।:—जो यह विद्या तुझको अध्ययन करने योग्य

स ह गौतमो राज्ञोऽर्द्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हाञ्च कारस ह प्रातः सभाग उदेयायतं होवाचमानुषस्य भगवन् । गौतम । वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैवराजन् मानुषं वित्तं, यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति ६ ॥

अवशिष्टहै, अर्थात् मैं जानता होता तो वो विद्या तुझको अवश्य ही कहता परन्तु मैं जानता नहीं अतएव असत्यवादी नहीं ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो प्रसिद्ध गौतम (उद्दालक) राजाके स्थानपर जाताहुआ तिस प्रसिद्ध अपने यहां प्राप्तहुए गौतमका राजाने सम्यक्प्रकार आतिथ्यादि सत्कारकिया तदनन्तर दूसरे दिवस प्रातःकालके समय गौतम राजाकी सभामें जाताहुआ, तब राजा कहताहुआ हे पूजाके योग्य गौतम इस मनुष्य लोक सम्बंधी वित्तादिकों की इच्छाहोय तो मांगिये। ऐसे राजाने कहा तब गौतम कहताहुआ हे राजन् यह जो आपका मनुष्य लोक सम्बन्धी वित्तादिकहै सो आपके आपको ही रहो। जो आपने मेरे पुत्रसे पांच प्रश्नकहे हैं सो मेरे प्रतिकहो ६ ॥

भावार्थ मन्त्रछठवें का ६ ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार गौतम गोत्रवाला उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहकर उस विद्याको, कि जिसविद्या सम्बन्धी पांच प्रश्न राजाने श्वेतकेतु प्रति कियेरहे औ जिनका उत्तर श्वेतकेतुको न आयारहा, जिज्ञासाधारके पांचाल देशके जैवलिनाम राजाके स्थानपर आवताहुआ। तब तिस लोक प्रसिद्ध गौतमको अपने स्थानपर प्राप्तहुआ जानके राजा उसके समीपजाय कुशल प्रश्न पूर्वक अर्घ पाद्यादि आतिथ्य सत्कारकर उसको सुख विश्राम करावताहुआ। तब वो गौतम उसदिन रात्रिको वहां निवासकर दूसरे दिन प्रातःकालके होते।:—अपने स्नान संध्यादि

स ह कृच्छ्री बभूवतछ्ंहचिरंवसेत्याज्ञापयाञ्चकारत छ्ंहोवाच यथा मात्वंगौतमाऽवदोयथेयत्रप्राक्त्वत्तःपुरा विद्याब्राह्मणान्गच्छति तस्माद्उसर्वेषुलोकेषुक्षत्रस्यैवप्र शासनमभूदिति तस्मै होवाच ७ ॥ ३ ॥

नित्यकर्म से निवृत्त होय राजाकी सभामें जाताहुआ, तब पुनः उस राजाने उस गौतमका पूजादि सत्कारकिया । अथवा ।"स- भागः" । अन्योंकरके पूज्यमान जो लोक प्रसिद्ध विद्वान् स्वयं गौतम सो राजाकी सभामें प्राप्तहोताहुआ । तब तिस गौतमके प्रति हाथजोड़ विनय पूर्वक राजा कहताहुआ, हे पूजाके योग्य गौतम मनुष्यलोक सम्बन्धी धन ग्राम रत्न रथादि पदार्थों में से आप अपनी कामनाके अनुसार मांगलीजिये ।:—जिस पदार्थकी आपको इच्छाहोगी सोई मैं आपके अर्थ अर्पणकरोंगा—:।इसप्र- कार जब राजाने कहा तब सो प्रसिद्ध गौतम कहताहुआ कि आ- पका मनुष्यलोक सम्बन्धी वित्तादि सर्व आपके पासही रहो उन की मुझको कामना नहीं । इस प्रकार जब गौतमने कहा तब पुनः राजा कहताहुआ कि [हे भगवन् जब आपको वित्तादिकों की कामना नहीं तब कृतकृत्य जो आप तिसका यहां आगमन कैसे हुआहै, इसप्रकार जब राजाने उनके आगमनमें शंका पूर्वक प्रश्न किया तब पुनः गौतम कहताहुआ] हेराजन् जोआपने मेरेपुत्रके समीप पांच प्रश्न किये हैं 'अरु जिसका उत्तर उससे न आया, मैंभी उसको जानता नहीं, अतएव सो पांच प्रश्न लक्षणवाली विद्या आप मेरे प्रति कहिये ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो प्रसिद्ध राजा दुःखीहोताहुआ, तिसको प्रसिद्ध चिरकाल बसनेकी आज्ञा करताहुआ, तिसके अर्थ सो राजा कहताहुआ हे गौतम तुमने मुझसे विद्याकहनेको कहा सो यह विद्या तुमसेपूर्व ब्राह्मणोंविषे गई नहीं, तिसही करके सर्व लोकविषे क्षत्रियोंकाही

प्रशासन होताहुआहै । इतना कह तिसके प्रति राजा कहता हुआ ॥ ७ ॥ इति तृतीयखंडः ३ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ७ ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार जब गौतम ने मनुष्यलोक सम्बन्धी बित्तादिकों की याचना न करके विद्या की याचना किया ॥ तब तिसको श्रवण करके वो राजा अपने चित्तमें दुःखितहोय विचार ने लगा कि । :-यह विद्या आजपर्यन्त क्षत्रियोंमेंही रही है तिस को आज यह ब्राह्मण मांगताहै-: । ब्राह्मण सर्व प्रकार मान्य करने योग्य हैं, अरु तिसमें भी यह गौतम साधारण ब्राह्मणोंवत् नहीं यह सर्वोत्तमब्राह्मण है परंतु न्यायकरके विद्या कहने योग्य है । :-अर्थात् यह गौतम ब्रह्मचर्यादि सर्व साधनों करके सम्पन्न अति उत्तम अधिकारी है ताते इसको विद्या कहनी योग्यही है तथापि जिज्ञासुकी परीक्षापूर्वक विद्यादेनेकी सनातनीय आम्नाय है अतएव इससे ब्रह्मचर्यादि करवावनाभी योग्यहै-: । ऐसा अपने चित्तमें विचार वो राजाकहताहुआ कि हे गौतम आपयहां दीर्घकाल (एकवर्ष) निवास करो पश्चात् मैं विद्याकहोंगा, इस प्रकार आज्ञाकरताहुआ । जो पूर्व तो राजाने प्रश्नकरके विद्याकहा अरु पश्चात् दीर्घकाल बसने की आज्ञाकिया तिस निमित्त के अपराधको ब्राह्मण क्षमाकरे, अरु जिस निमित्त चिरकाल बसनेकी आज्ञाकिया तिसके हेतुको कहताहौं ॥ राजोवाच ॥ हे गौतम आप सर्व विद्याकरके सम्पन्न होने से अरु जाति में सर्वोत्तम ब्राह्मण होने से सर्वप्रकार श्रेष्ठहो, तथापि हे गौतम आपने मुझसेकहा कि जो आपने मेरे पुत्र से प्रश्नकिये तिन प्रश्न लक्षणवाली विद्याको आप मेरे प्रतिकहो, सो आपने उस विद्या सम्बन्धी अपने अज्ञानकरकेही कहा । ताते मुझकरके तुम्हारे प्रति विद्या कहनीहै । हे गौतम जिसकरके यह (अग्रिम कहनेकी) विद्या तुम से पूर्व ब्राह्मणों विषे गई नहीं । :-अर्थात् हे गौतम जिस विद्याकी आपयाचना करते हो सो विद्या जब मैं आपके प्रति कहोंगा तिस

अथ पंचमप्रपाठके चतुर्थखण्डप्रारम्यते ॥

असौ वावलोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धांजुह्वति तस्या आहुते सोमो राजा सम्भवति २ इति चतुर्थ खण्डः ४ ॥

काल से ब्राह्मण जातिमें जायगी इससे पूर्व ब्राह्मण जातिमें यह विद्या गई नहीं—: । इस विद्याकरके ब्राह्मण अनुशासित नहीं हैं यह सर्व लोकविषे प्रसिद्ध है । :—अर्थात् जो यह विद्या ब्राह्मणों विषे होती तो आप इस विद्याके अर्थ यहां क्यों आवते किन्तु न आवते—: । अरु इस विद्याकरके ब्राह्मण अनुशासितवन्त (शिक्षित) नहीं । तथा यह लोकविषे प्रसिद्ध एतदर्थ पूर्व सर्व लोकविषे क्षत्रिय जातिही इसविद्याका शिष्यों प्रति उपदेश करनेवाले हुये हैं । अरु क्षत्रियों में ही यह विद्या परम्पराकरके अद्यावधि चली आवती है । तथापि मैं इन विद्याओं को जब तुम्हारे प्रति कहोंगा तिसके पश्चात् तुम्हारे द्वारा यह विद्या अन्य ब्राह्मणों विषे जावेगी । अतएव मैंने जो आपसे कहा कि आप यहां चिरकाल निवास करके ब्रह्मचर्य्यादि करो तिसके पश्चात् मैं विद्या कहोंगा, सो आप क्षमा करने के योग्यहो, इतना कहके तिस गौतम के प्रति राजा जैवलि विद्या कहता हुआ ७ ॥

इति पंचम प्रपाठके तृतीयखंडः ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम स्वर्गलोक प्रसिद्ध अग्नि है तिसका आदित्यही समित्है, किरण धूमहैं, दिवस ज्वालाहै, चन्द्रमा अंगारहै, नक्षत्र तिसके विस्फुलिंग (चिनगारियां) हैं १ तिस इस अग्निविषे देवता श्रद्धा (जल) की आहुति करते हैं तिस आहुतिसे सोम राजा उत्पन्न होताहै २ ॥ इतिचतुर्थखंडः ४ ॥

अथ पंचमप्रपाठके चतुर्थखण्डभावार्थ ४ ॥

हे सौम्य, अब पूर्व जो राजा जैबलिने श्वेतकेतु प्रति जो पंचम प्रश्न कियारहा कि जिस प्रकार पांचवीं आहुति में आयके जल पुरुष नामवाला होताहै, तिस प्रश्नका निर्णय प्रथम कहते हैं क्योंकि इस प्रश्न के निर्णय के आवान्तर अन्य प्रश्नोंका निर्णय कहना सुगम होगा ताते। हे सौम्य अग्निहोत्रकी आहुतियां जो कार्यका प्रारंभ करती हैं सो वाजसनेयि बृहदारण्य उपनिषद् विषेकहाहै तहां आहुतिका उत्क्रामण गति प्रतिष्ठा तृप्ति पुनरावृत्ति अरुप्रत्युत्थान (पुनः जाना) इनसबका निर्णय तहांही कियाहै॥ सो इतनी अग्निहोत्रकी आहुति कीहुई यहां से उत्क्रमण होय के (उठके) अन्तरिक्षविषे प्रवेशको पावती है, अर्थात् सो आहुति अन्तरिक्ष रूप आहवनीय अग्निविषे आहुति की होती है, कैसाहै वो अन्तरिक्ष रूपअग्नि वायु जिसका समित्है, अरु सूर्यकी किरणाही शुद्ध आहुति हैं तिस आहुतिसे वो अन्तरिक्ष तृप्तहोताहै। ते आहुति वहांसे उत्क्रमणहोती है, इत्यादि॥ अरु इस प्रकारही अन्तरिक्षसे ऊर्ध्वको उत्थानहुई आहुति स्वर्गलोकको तृप्तकरती है।:—उक्तप्रकार आहुति के साथ भावना करके तादात्म्यता को प्राप्तहुआ यजमान भी आहुति करके आकर्षित हुआ उक्त प्रकार स्वर्गको प्राप्तहोताहै। अर्थात् जिसप्रकार अग्निहोत्रकीआहुति अन्तरिक्षादिक्रमसे स्वर्गको प्राप्तहोती है सो यजमानके सहितही होतीहै अरु सो आहुति स्वर्गस्थ अपने कर्ता यजमानको फलदान से तृप्त करती है सो यजमान अपनेकर्म के क्षयहुए जल रूपहुई आहुतिसे साथ हुआ (तादात्म्यकोपाया)—:। प्रथम द्युलोकमें पुनः अन्तरिक्ष में इस क्रमसे—:। पृथिवी में प्रवेश पावताहै तहां तृप्तहोके व्रीहादि अन्नरूपहोय पुनः पुरुष विषे प्रवेश कर वहां वीर्यरूप परिणामको पाय तदनन्तर स्त्रीविषे प्रवेशको पाय वहांसे पुरुषाकार शरीररूप परिणामको पाय लोकविषे प्रकट

होताहै । इस प्रकार अग्निहोत्रकी आहुति अपने कार्यकी आरंभकहोती है ऐसाकहते हैं ॥

हे सौम्य इस लोकमें तो सो कार्य्यारंभ अग्निहोत्र अपूर्व परिणाम लक्षणको पांच प्रकार विभाग करके तिसविषे अग्निकी भावनासे उपासनाको उत्तरमार्ग की प्राप्तिका साधन विधि करते कहते हैं ॥ः— हे सौम्य उक्त प्रकार राजा जैबलिके कहे प्रमाण वो गौतम उद्दालक एकवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करके पुनः उस राजाके समीपगया तब उस उद्दालकके प्रति राजा कहताहुआ—ः । जो स्वर्गलोकही अग्निहै इत्यादिक ॥ हे गौतम स्वर्गलोकही प्रसिद्ध अग्निहै । जैसे अग्निहोत्रका अधिकरण आहवनीयहै । तैसे यहां तिस स्वर्गलोकाख्य अग्निका आदित्यही समित्है, क्योंकि तिस आदित्यरूप समिधाकरकेही स्वर्गलोक दीप्यमान होताहै अतएव स्वर्गलोकको दीप्यमान करनेसे सूर्य उसका समित् है । अरु सूर्यकी जो किरणाहै सोई उसका धूमहै क्योंकि समित्सेही धूम उत्थान होताहै । अरु दिवसही उस अग्निकी ज्वालाहै क्योंकि दिवसकी अरु ज्वालाकी प्रकाशरूपतामें समताहै । अथवा दिवस को आदित्यका कार्यपनाहै, तैसे ज्वालाको अग्निका, ताते । अरु उस स्वर्गाख्य अग्निका चन्द्रमाही अंगारहैक्योंकि दिवसकेशान्त हुए चन्द्रमा प्रकटहोता है, जैसे ज्वालाके शान्तहुए अंगार । अरु उसस्वर्गाख्य अग्निके नक्षत्रगणही चिनगारियांहैं, क्योंकि चन्द्रमा से अवयववत् अरु चन्द्रमासे निकसेवत् नक्षत्रहैं, जैसे अंगारके अवयव अरु अंगारसे निकसेवत् विस्फुलिंग (चिनगार) होतेहैं, ताते नक्षत्र अरु चिनगारकी उत्थानविषे समताहै ताते ॥ तिस इस यथोक्त लक्षणवाले स्वर्गाख्य अग्निविषे देवता जलरूपश्रद्धा की आहुति करते हैं । अर्थात् यजमानकी प्राणादि इन्द्रियां, जो स्वर्गलोकविषे अग्निआदिक अधिदैवभावकोपाय देवतारूप हुए हैं सो श्रद्धाको, अर्थात् यह अग्निहोत्रकी जो पय आदि आहुति हैं सो अपने परिणाम अवस्थारूपसे सूक्ष्म जलभूत तिसको श्रद्धा

करके भावितहोनेसे उस जलको श्रद्धारूपसे कहतेहैं। क्योंकि पां-
चवीं आहुति से हवन किया जलपुरुष नामसे प्रकटहोताहै,ऐसा
आहुति रूपसे जलको पूर्व श्वेतकेतु प्रति राजाके प्रश्नकरके श्र-
वण हुआहै ताते ॥ तिस जलरूप श्रद्धाको देवता उस उक्त स्व-
र्गाख्य अग्निविषे आहुति करतेहैं, तब तिस आहुतिसेसोमराजा,
अर्थात् श्रद्धा शब्दका वाच्य जल जो स्वर्गलोकरूप अग्निमें देव-
ताकरके आहुतिहुआ है तिसका परिणामरूप सोम राजा 'जो ब्रा-
ह्मणोंकाहै, उत्पन्न होताहै ॥:—हे सौम्य यहां जो श्रुतिविषे कहाहै
कि देवता श्रद्धाकी आहुति करतेहैं, तिसका बिचार करना योग्य
है जो कौन वो देवताहैं औ किसप्रकार आहुति करतेहैं अरु कौन
सा वो श्रद्धानामवाला हवि (हवनकरनेयोग्यद्रव्य) है। इसका
विचार किंचित् बृहदारण्य विषे कहे प्रकार अरु अपनी युक्तिसे
कहते हैं। हे प्रियदर्शन यह जो अग्निहोत्रकी आहवनीयनाम अ-
ग्निहै औ हवनकरनेका दुग्ध घृतादि हविहै तिसविषे ज्ञानी दृढ
भावना करके भावितहुआ यजमान वेदोक्त मन्त्रोंसे श्रद्धाकरके
समन्वितहुआ उभयकाल उस अग्निविषे उक्त हविकी आहुति
करताहै, तब सो आहुति प्रथम अन्तरिक्षरूप आहवनीय अग्निमें
कि जिसका समित् वायु है परिणाम को पाय सूक्ष्म रूप से
प्राप्त होती है अरु वो अग्नि सूर्यकी किरणों करके व्याप्तहै, तब
उस अन्तरिक्ष रूप आहवनीय अग्नि विषे सूक्ष्म परिणाम रूप
से प्राप्तहुई जे दुग्धादि हविकी आहुति सो वहांसे उत्क्रमणहोय
के (उठके) सूर्यकी किरणोंके सम्बन्धसे स्वर्गलोक रूप आहव-
नीय विषे कि जिसका समित् सूर्य्य है आहुतिहुई होती है तब
वहां अति सूक्ष्म परिणाम को पाय श्रद्धा से समन्वित हुआ
श्रद्धाशब्दका वाच्य होताहै। अरु यहां श्रद्धा अग्नि औ हवि, इन
विषे अपनी भावना करके भावितहुआ यजमान जब मृत्युको प्रा-
वताहै तब उसको ग्रामसे बाह्य लेजाय के उसकी अग्निहोत्रकी
अग्निविषे उसके शरीरकी आहुतिकरते हैं, तब उस यजमानका

कर्म उसको यहांसेऊर्द्ध्वको आकर्षण करताहै अरु उसकाउपास्य अग्नि उसको ऊर्द्ध्वको प्राप्त करताहै तब वो आहुतिके क्रमसे अन्तरिक्षमें प्राप्तहो तिसलोक सम्बन्धी शरीरको पावताहै पुनः वहां से उत्क्रमणकोपाय आहुतिके क्रमसे स्वर्गलोकमें प्रवेशको पाय तिसलोक सम्बन्धीदेव शरीरकोपाय वहांअपने कर्मानुसार दिव्य भोगोंको भोगताहै। अरु जब उसके कर्म समाप्त होनेपर आवते हैं तब वो वहां रहने पावता नहीं, तब उन कर्म फलमें आसक्त हुआ उन भोगोंके भोगार्थ इस कर्म लोक में आय कर्म करने के अर्थ पूर्वकी की आहुति जो उसको वहां श्रद्धाशब्दका वाच्यहुई सूक्ष्म जल रूपसे प्राप्तहै तिसको वो आप देवरूपहुआ उसस्वर्ग लोकाख्य अग्निविषे कि जिसका समित् सूर्य है आहुति करताहै अरु उस आहुति विषे अपनीभावनासे भावित तन्मयहुआ आप भी उस आहुतिके साथ हुतहुआ सोमरूप से परिणामको पाय प्रकट होताहै, अर्थात् सोमलोक सम्बन्धी शरीरको पावताहै, तब यहांके भोग्य भोगके कर्मके क्षयहुए अपने सोम सम्बन्धी देवरूप से अपने सोमत्वपनेरूपकी पूर्ववत् पर्जन्य रूप अग्निमें आहुति कर वहां से वर्षारूप परिणामको पाय पुनः पृथिवी रूप अग्नि विषे आवता है वहां अन्न रूप परिणाम को पाय पुरुष रूप अग्निविषे आवताहै वहां वीर्यरूप परिणामको पाय स्त्री रूपा अग्निविषे आवताहै, वहां गर्भरूप परिणाम को पाय नव वा दशमास वहां रह पुरुषनाम से प्रकटहो पुनः इसलोकविषे कर्म्मों को करता है। इसप्रकार देवता हवन अरु हविका बिचार जानना—:। अर्थात जैसे ऋग्वेदादि पुष्पों के रसऋगादिरूप मधुकर करके ग्रहण किया वा प्राप्तकिया आदित्य के विषे यशआदि रूप कार्य्य को औ लोहितादिरूप लक्षण को आरंभ करते हैं, यह मधु विद्याविषे कहाहै। तैसे यह अग्निहोत्रकी आहुति समवायवाला श्रद्धा शब्दकावाच्य सूक्ष्म जल द्युलोकमें प्रवेशकर चंद्र रूप कार्य्य को आरंभकरे है, सो अग्निहोत्रकी आहुति का फल

अथ पंचमप्रपाठके पंचमखंडः प्रारभ्यते ॥

पर्यन्यो वाव गौतमाऽग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रंधूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादुनयो विस्फुलिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमछं राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षछं सम्भवति २ ॥ इतिपंचमखंडः ५ ॥

रूपहै। अरु आहुतिकी भावना करके भावित आहुतिमयहुआ अग्निहोत्र के कर्त्ता यजमानोंको जो आहुति की भावनाकरके भावित श्रद्धा शब्दकेवाच्य जल से समवायको पाया आहुतिरूप कर्मकरके आकर्षित हुआ वा तिसके वशहुआ द्युलोक में प्रवेश कर सोमरूपहुआ होता है [अर्थात् सोमसम्बन्धी सोमसमीपस्थ शरीर को पावता है] अरु तिसकरके अग्निहोत्र हुतहोता है अरु आहुति का परिणाम पंचाग्नि के सम्बन्ध क्रमसे प्रधानता (मुख्यता) करके उपासना के अर्थही विवक्षितहै यजमानोंकी गतिके अर्थ नहीं। अरु तिस (पंचाग्नि उपासनाको) न जाननेवाले को धूमादि क्रमसे गति कही है, अरु उन उपासना विद्या के जाननेवाले विद्वान् के विद्याकृत अर्चिरादि क्रमसे उत्तरागति कही है ॥ इति पंचम प्रपाठके चतुर्थखण्डः ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम पर्जन्य ही अग्निहै तिसका वायुही समित्है अभ्र धूमहै, बिजली ज्वालाहै बिजली का चमत्कार अंगारहै, गर्जना विस्फुलिंगहै १ ॥ तिस इस अग्निविषे देवता सोमराजा को आहुति करते हैं तिस आहुति से वर्षा उत्पन्नहोती है २ ॥

इति पंचमप्रपाठके पंचमखंडः ५ ॥

अथ पंचम प्रपाठके पंचमखण्ड प्रारंभ ॥

हे सौम्य, अब द्वितीय होम पर्य्यायको कहते हैं तिसको भी

श्रवण करो, राजा जैबलि कहताहै कि । हे गौतम पर्जन्यही अग्निहै । अर्थात् पर्जन्यनाम वृष्टि उपकरणके अभिमानी देवता विशेषकाहै । तिसपर्जन्याख्य अग्निका वायुही समित्है, क्योंकि वायुकरके ही पर्जन्यरूप अग्नि वर्द्धमान् प्रकाशित होताहै, पूर्व दिशाके वायुके अधिक चलने से वृष्टिहोती देखते हैं ताते। औ उस पर्जन्याख्य अग्निका अभ्र धूमहै, जैसे अग्निका कार्य भूत धूमहोताहै, तद्वत् होनेसे, अथवा धूमवत् अभ्र दृष्टमें आवताहै ताते। औ उस पर्जन्याख्य अग्निकी विद्युत (बिजली) अर्ची (ज्वाला) है क्योंकि ज्वाला अरु विद्युतकी प्रकाशरूपतामें समताहै। अरु उस पर्जन्याख्य अग्निका विद्युतका चमकनाही अंगारहै, क्योंकि अंगारकी औ बिजली के चमकने वा 'गिरने' की काठिन्यतामें वा विद्युत अरु अग्निके कार्य होने में समता है । अरु उस पर्जन्याख्य अग्निका जो गर्जना शब्द विशेष है सोई उस अग्निकी चिनगारियाँ हैं, क्योंकि गर्जना होनेसे चिनगारियोंवत् मेघ प्रायः सर्व ओरको बिखर जाते हैं १ ॥ तिसही इस अग्निविषे देवता पूर्ववत् सोमराजाकी आहुति देते हैं, तब तिस आहुतिसे वर्षा उत्पन्न होती है । अर्थात् पूर्व जो श्रद्धाशब्दका वाच्य जल कहाहै सो प्रथम द्युलोकाख्य अग्निविषे हवनक्रिया सोमरूप परिणामसे उत्पन्न होताहै, पुनः वो सोम पर्जन्यरूप अग्निविषे आहुतिहुआ वर्षारूप परिणामसे उत्पन्न होताहै २ ॥

इति पंचमप्रपाठके पंचमखण्डः ५ ॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव स
मिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा आवान्तरदिशो
विस्फुलिङ्गाः १ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति
तस्याहुतेरन्नꣳ सम्भवति ॥ २ ॥ इतिषष्ठखंडः ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम पृथिवी ही अग्नि है, तिसका संवत्सरही समित् है, आकाश धूम है, रात्रि ज्वाला है, दिशा अंगार हैं, आवान्तर दिशा चिनगारियाँ हैं १ ॥ तिस इस अग्नि विषे देवता वर्षाकी आहुति करते हैं तिस आहुति से अन्न उत्पन्न होता है २ ॥

इतिषष्ठखंडः ६ ॥

भावार्थ खंड छठवें का ६ ॥

हे सौम्य, अब तृतीय हवनपर्यायको श्रवणकरो। राजाजैबलि कहताहै कि हे गौतम यह पृथिवी ही प्रसिद्ध अग्नि है, अरु तिस पृथिवी रूप अग्निका संवत्सरही समित् है, क्योंकि संवत्सर के अवयव भूतकालकरकेही ब्रीहादि अन्न रूप से पृथिवी निष्पन्न वर्द्धमान होतीहै। अरु तिस पृथिवी रूपा अग्निका आकाश धूम है, क्योंकि जैसे अग्नि से धूम उठता है तैसेही पृथिवी से उत्थानहुयेवत् आकाश भासता है ताते। अरु तिस पृथिवीरूप अग्निका पूर्वादि दिशायें अंगार हैं, क्योंकि अंगारकी औ दिशाओं की उपशान्तता में समानपना है ताते। अरु तिस पृथिवी रूप अग्निकी आवान्तर ईशानादि दिशायें चिनगारियांहैं १ तिस इस पृथिवी रूप अग्नि विषे देवता वर्षाकी आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से ब्रीहि यवादि अन्न उत्पन्न होता है २ ॥ इतिपंचम प्रपाठके षष्ठखंडः ६ ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रंविस्फुलिङ्गाः १ ॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुतेरेतः सम्भवति २ ॥ इतिसप्तमखण्डः ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे गौतम पुरुषही अग्नि है, तिसका वाणी ही समित्है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वालाहै, चक्षुः अंगारहैं, श्रोत्र चिनगारियां हैं, १ तिस इस अग्निविषे देवता अन्नकी आहुति करतेहैं, तिस आहुति से रेत (वीर्य) उत्पन्न होता है २ ॥ इतिसप्तमखण्डः ७ ॥

अथ भावार्थ सप्तमखंडका ७ ॥

हे सौम्य, अब चतुर्थ होम पर्य्याय को श्रवणकरो। राजा जैबलि कहताहुआ कि हे गौतम यह पुरुष प्रसिद्ध अग्नि है, तिस पुरुष रूप अग्निका वाणी ही समित् है, क्योंकि मुख रूप द्वारकरके वाणीही प्रकाशित होती है कि यह पुरुष बोलता है, गूंगाप्रकाशतानहीं। अरु तिस पुरुषरूप अग्नि का प्राणही धूमहै, क्योंकि जैसे अग्नि से धूमका उत्थान होताहै, तैसे मुखसे धूमवत् प्राणउत्थान होताहै ताते। अरु तिस पुरुष रूप अग्नि का जिह्वा ज्वालाहै, क्योंकि ज्वालाकी अरु जिह्वाकी अरुणता विषे समताहै ताते। अरु तिस पुरूषरूप अग्निकाचक्षु अंगारहै भासका आश्रयपना होने से। अरु तिस पुरुषरूप अग्निका श्रोत्र चिनगारियां हैं, क्योंकि इनकी विखरने में समताहै १ तिसहीइस अग्निविषे देवता व्रीहि यवादि संस्कृत (सिद्धकिये) अन्नकी आहुति करतेहैं, तब तिस आहुति से रेत (वीर्य) रूप फल उत्पन्न होता है २ ॥ इति सप्तमखण्डः ७ ॥

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्च्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः १॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भवति २

इतिअष्टमखंडः ८॥

अक्षरार्थ॥

हे गौतम स्त्रीही अग्नि है, तिसका उपस्थ समित् है, तिसका उपमन्त्रण धूमहै, योनि ज्वालाहै, भोगकरनाअंगारहै, आनन्द चिन्गारियां हैं, १ तिस इस अग्निबिषे देवता वीर्य्यकीआहुति करते हैं तिस आहुति से गर्भउत्पन्न होता है २॥

इतिअष्टमखण्डः८॥

अथ भावार्थ अष्टमखंडका॥

हे सौम्य, अब पंचम होमपर्यायको श्रवणकरो, राजा जैवलि कहताहै कि। हे गौतम यह स्त्री ही प्रसिद्ध अग्निहै, अरु तिस अग्निका 'पुरुषका' उपस्थ (लिंग) ही समित् है, क्योंकि तिस उपस्थ रूप समित् करके ही सो स्त्री पुत्रादि उत्पन्न करने के अर्थ बर्द्धमान होती है। अरु उस स्त्रीरूप अग्निका उपमन्त्रण (निकट होना वा निकट बोलावना) धूमहै। अरु उस स्त्रीरूप अग्निकी योनि ज्वालाहै, क्योंकि योनि अरु ज्वाला कि अरुणतामें समताहै। अरु स्त्रीरूप अग्निका जो भोगकरना है सोई उसका अंगारवत् अंगारहै। अरु स्त्री रूप अग्निका जो विषयजन्य अभिनन्द (आनन्द) है सोई उसकी चिन्गारियां हैं, क्योंकि विषयजन्य सुखकी औ चिन्गारियों कीक्षुद्रताबिषे समताहै ताते १॥ तिस इस अग्निबिषे देवता वीर्य्यकी आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से गर्भरूप फल उत्पन्न होताहै २॥

इति पंचमप्रपाठके अष्टमखंडः ८॥

हेसौम्य, इसप्रकार ।:—अग्निहोत्रकी आहुति का अन्तिम परिणाम जो द्युलोक संबन्धी—: । जल सो श्रद्धा सोम पर्जन्य वर्षा अन्न रेत, हवन पर्यायकरके गर्भी भूतहोता है ।:—अर्थात् श्रद्धा शब्द का वाच्य जल द्युलोकादि उक्त अग्नियोंविषे हवन क्रमकरके ,श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न,रेत, इत्यादि परिणाम को पावता हुआ स्त्री रूप अग्निबिषे गर्भरूप परिणामको प्राप्त होता है —:। तहां जलको याहुति समवाई होनेसे प्राधान्यकरके विवक्षित है। सो आपः "। पंचम्यामाहुतौपुरुषवचसो भवतीति "। इस श्रुतिसे है। परन्तु केवल जलही सोमादि कार्य को करता नहीं, क्योंकि केवल जल त्रिवृत्कृतनहीं है। शंका। सर्वका त्रिवृत्करण होनेसे जलकाही विशेषकथन कैसे देखते हैं।समाधान। सर्वको त्रिवृत्कृत होने से भी विशेष संज्ञाकालाभ देखते हैं। यह पृथिवी है यह जल है यह अग्नि है, बाहुल्यताके निमित्त से॥:—अर्थात् यह जो अग्नि जल पृथिवी है सो सर्व त्रिवृत्कृत है, अर्थात् एक पृथिवी तत्त्वमें अर्द्धभाग पृथिवीका है अरु अर्द्धभागमें जल औ अग्नि है, अतएव उसबिषे पृथिवीका अर्द्धभाग मुख्य होनेसे सो पृथिवीही कही जाती है, तैसेही जलमें जलका भाग मुख्य होनेसे सो जलही कहाजाता है—: । अतएव बाहुल्यता होनेसे अरु कर्मसे समवाय होनेसे जल सोमादि कार्य्यका आरंभकहोता है ऐसा कहते हैं। अरु उन जलके कार्य्य'सोम' वृष्टि अन्न, रेत, देह,इन विषे जलके धर्म्म द्रवताकी बाहुल्यता देखते हैं, शरीर में बहुत द्रवता है। यद्यपि शरीर पार्थिव (पृथिवीका विकार) है, तथापि पांचवीं आहुति करके स्त्रीरूप अग्नि में वीर्य्यरूपसे हवन हुआ जल गर्भीभूत होता है ॥ इति ॥

अथ पंचम प्रपाठके नवम खंड प्रारभ्यते ॥

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापःपुरुषवचसो भवन्तीति सउल्वावृतो गर्भो दशवा मासानन्तःशयित्वा यावद्वाथजायते १ ॥ अक्षरार्थ ॥

इसप्रकार तो पांचवीं आहुति करके हवन किया जल पुरुष नामवाला होताहै। सो गर्भ जरायु (झिल्ली) करके वेष्टितहुआ दश वा नव मास पर्य्यन्त यावत् नैमितकालहै तावत् माताके गर्भस्थान में शयन करके पुनः उत्पन्न होताहै १ ॥

अथ भावार्थ नवम खंड मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, इस प्रकार तो ।ः-उस जैबलि नाम राजाने श्वेतकेतुसे जो पंचम प्रश्न कियारहा कि-ः। जिसप्रकार पांचवीं आहुति करके हवनकिया जल पुरुषनामवालाहोताहै सो तू जानताहै तिस एकप्रश्नका व्याख्यान (राजाने गौतमप्रति) कहा॥ अबपूर्वोत्तर प्रश्नकी संगति देखावते कहते हैं। उस राजाने श्वेतकेतु से जो प्रथम प्रश्नकिया रहा कि "वेत्थयदितोऽधिप्रजाःप्रयन्तीति" तू जानताहै जो यहां से यह सर्व प्रजा जिसप्रकार ऊर्द्ध्वको जाती है। तिस प्रश्नका यह उपक्रमहै। सो गर्भ जो जलका पंचम परिणाम विशेषहै, अरु श्रद्धा शब्दका वाच्य आहुतिरूप कर्म्मसे समवायको पायाहै, सो जरायु (झिल्ली) करके आवृत कहिये वेष्टितआहुआ दश वा नव वा तिससे न्यून अधिक मास पर्य्यन्त माताकी कोख (गर्भस्थान) विषे शयन (निवास) करके कर्म्मानुसार जब प्रकट होनेका समय प्राप्तहोताहै तब गर्भ से बाह्य उत्पन्न होताहै ॥

हे सौम्य, "उल्वावृतः" इत्यादि जो श्रुतिका कथनहै सो शरीरादि संसारसे केवल वैराग्यकेही हेतुहै। 'हे प्रियदर्शन' देखो यह बड़ाही कष्टहै जो माताकी कुक्षिमें शयन (निवास) है क्योंकि वो माताकी कुक्षि (गर्भस्थान) कैसाहै 'मूत्र' विष्टा, वात, पित्त,

कफ, रुधिर, पीब, इत्यादि अति अपवित्र वस्तुओं करके पूर्ण है। औ तिसकरके वो जरायु अति लिप्त अतिही अपवित्रहै। अरु देहका जो कारण स्त्री का शोणित (मासधर्मका रुधिर) अरु पुरुषका वीर्य रूप बीज सो भी अतिही अपवित्रहै।:—अर्थात् अति अपवित्र कि जिसके स्पर्शमात्रसे पुरुष सचिल स्नानादिक प्रायश्चित्तका अधिकारी अशुचि होताहै ऐसे, शुक्र शोणितका परिणाम कार्य शरीर सो पुनः वो उक्तप्रकारकी जरायुमें वेष्टित अरु उक्तप्रकारके गर्भाशयमें स्थित ताते यह महान् कष्ट दशावाला—:। अरु तिसपर भी माताकरके भोजनकिये अन्नादिक तिसका परिणाम रस तिसकरके वर्द्धमान होनेवाले का महान् कष्टहै।:—अर्थात् गर्भस्थान 'जो अति अल्प संकुचित स्थानहै' तिसविषे अन्नके बिकार शुक्र शोणितके मिश्रितहुये उपजनेवाला गर्भ सो माता करके भक्षणकिये अन्न जलादिकों के सूक्ष्मरसको नाल नाम्नी नाड़ी विशेष द्वारापायके जबउस स्थानमें वर्द्धमान होता है तब उस स्थानको अति अल्पहोनेकेकारण तहांगठरीमें बँधेवत् फसा हुआ, अपने अंगों के पसारनेको स्थान न पायके अतिही दुःखित होताहै—:। अरु तिस दशापर भी अपने कर्मों के अनुसार जो वो गर्भ मेंही नष्ट न होके जब उसकेजन्म होनेका समयआय प्राप्त होताहै तब अपान वायु करके ढकेला हुआ योनिद्वार से जब बाहर आवताहै तब।:—जैसे सुवर्णकार लोहकी जन्तीनामक शस्त्र विशेषमें तारको खींचताहै तैसे योनिद्वारसे खींचा हुआ—वो अत्यन्त क्लेश पावता है अरु तिस कारण से मूर्च्छित होताहै, अरु जब उस मूर्च्छा से जागताहै तब उस तात्कालीय अनुभव किये महान् क्लेशकी स्मृतिकर प्रथम रुदन करताहै—:। इस प्रकार जो उस अति क्लेशितके कष्टतर जन्मका कथनहै सो केवल वैराग्यकोही ग्रहण करावताहै ।। हे प्रियदर्शन जिसस्थान के निवास को मनुष्य एक क्षणमात्रको भी असह्य मानता है तिस स्थानमें दश वा कुछ न्यूनाधिक्य एतने दीर्घकाल पर्यन्त

स जातोयावदायुषं जीवति तं प्रेतंदिष्टमितोऽग्नयएव हरन्तियतएवेतोयतःसम्भूतोभवति २ ॥ ६ ॥
माताकी उक्त प्रकारकी कुक्षि (गर्भस्थान) में निवास तो अत्यन्तही दुःखतरहै। उसस्थान् अरु तज्जनित दुःखको कहने को वाणी समर्थ नहीं १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो (गर्भस्थ) जन्मको पाय यावत् आयुष तावत् जीवताहै सो मरता है अग्नि बिषे दाह करनेको लेजातेहैं, क्योंकि द्युलोकादि अग्निक्रमसे यहां उत्पन्न हुआहै तिसहीसे अग्नि में दाह करनेके अर्थ कहआये हैं २ ॥ इति पंचम प्रपाठके नवमखंडः ६ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका २ ॥

हे सौम्य, ।ः-यह जो श्रद्धाख्य जलको द्युलोकादि अग्निबिषे देवतारूपहुआ हवनकर्त्ता यजमान, जो यहांसेअग्निहोत्रकीआहुतिके साथ अपनीभावनाकरके भावित तन्मयहुआ आहुतिकेक्रम से परिणामको पावतेसन्ते अन्तरिक्षके मार्गसे स्वर्गलोकमें जाय देवभावको प्राप्तहुआ है, सोई उस श्रद्धाशब्द के वाच्य जलरूप आहुति साथ अपनी भावना से तन्मय हुआ द्युलोकादि रूप अग्निबिषे आहुति हुआ क्रमसे परिणामको पावता हुआ पंचम रेतरूप परिणाम को पाय स्त्रीरूप अग्निमें आहुति हुआ देहके साथ तादात्म्य को पाया गर्भबिषे देहाकार परिणाम को पाय विशेषरूपसे प्रकटहो गर्भमें निवास करनेकी अवधिके पूर्ण हुए जन्म पावताहै-ः ॥ सो (अग्निहोत्रका कर्त्ता यजमान) कथित प्रकार जन्मको पाय यावत् आयुष्य जीवताहै तावत् पुनः घडी यन्त्रवत् अपने गमनागमन के अर्थ कर्म करताही रहताहै। ः-अर्थात् घटीयन्त्र रहटको कहते हैं, जैसे रहटकी हांडियां एक रस्सी साथ बँधीहुई कूपके भीतर अरु बाहर अधो ऊर्द्ध्व को भ्रमती हैं। तैसेही केवल अग्निहोत्रादि कर्म के कर्त्ता यजमान

रूप हांड़ियां अपने कर्म्मरूप रज्जुमें बँधे अन्तर्यामी की सत्ता के आश्रय अज्ञानरूप बैलके भ्रमाये इस संसाररूप महा अन्ध कूपविषे इस लोकरूप अधो से स्वर्गलोकरूप ऊर्द्ध्व को अरु स्वर्गलोक रूप ऊर्द्ध्व से इसलोकरूप अधो को उक्त प्रकार आवते जातेही रहते हैं। अरु जैसे रहटकी हांड़ियां भरीहुई ऊपर आवती हैं औ खाली हुई नीचे को जाती हैं। तैसे ही कर्म्मी अपने कर्म्मों करके संयुक्त स्वर्ग को जाते हैं वहां अपने कर्म्मोंके फल भोग के खालीहुए अधो इस लोक विषे आवते हैं–:॥ अथवा कुलालके चक्रवत् तिर्य्यग् भ्रमण के अर्थ। :– अर्थात् घटी यन्त्र के दृष्टान्तसे जो ऊर्द्ध्व अधो गमनागमनरूपा गति कही है सो अग्निहोत्रादि कर्म्मके कर्त्ता कर्मीयोंके अर्थ जानना, अरु जो कर्म्म से रहित है सो कुलाल के चक्रवत् तिर्य्यग् भ्रमण कहिये ऊर्द्ध्व गमनसे रहितहुए इसही लोकविषे अनेक योनियों में भ्रमण करते हैं –:। यावत् कर्म्म करके प्राप्त किया शरीर का आयुष्य तावत् जीवता है। अरु सो इस प्रकार जीवताहुआ अपने आयुष्य के क्षीण हुए मरके अपने कर्म्मानुसार प्राप्त किया जो अपने अर्थ परलोक (अन्यशरीर) तिसके प्रति प्राप्त होता है [अर्थात् " जातस्यहिध्रुवोमृत्यु ध्रुवंजन्ममृतस्यच " इस गीता स्मृति के प्रमाण से सम्यक् आत्मज्ञान विना जन्म मरणसे रहिततारूप स्वस्ति (शान्ति) प्राप्त होतीनहीं] अरु जो कदापि जीवते वेदोक्त कर्म्म व उपासना बिषे अधिकारीहुआ कर्म उपासना करत सन्ते मरणको पाया तब उसको अग्नि में अन्तेष्टिकर्म (दाह) करनेके अर्थ इस ग्रामसे वाह्य अरण्य श्मशानमें ऋत्विज वा पुत्र लेजाते हैं।:– अर्थात् राजा जब मृतक होता है तब उसके शरीरके अन्तेष्टि संस्कारके अर्थ ऋत्विज अरु सामान्य गृहस्थको उसही निमित्त उसके पुत्रादि श्मशानपर्यंत लेजाते हैं –:। हे सौम्य ऐसेही अग्निके सकाशसे श्रद्धादि आहुति क्रम करके यहां आवता है। अरु जिस करके पांचो अग्निबिषे

आहुति हुआ परिणामको पाया उत्पन्न होता है,इसहीसे मरता है तब अग्नि बिषे दाह करते हैं। अर्थात् वो कर्मी यजमान अपनीयोनि (उत्पत्तिका स्थान) जो अग्नि तिसको अपने बिषे प्राप्तकरता है। अर्थात् वो यजमान अग्निभावको प्राप्तहोता है॥

हे सौम्य इस अग्निहोत्रके कर्त्ता यजमानकी अन्तेष्टिका प्रकार वृहदारण्य उपनिषद्के अष्टमाध्याय बिषे इसप्रकार कहा है कि "।अथैनमग्नयेहरन्ति तस्याग्निरेवाग्निर्भवति समित्समिद्धूमोधूमोऽर्च्चिरर्च्चिरंगारा अंगारा विस्फुलिंगा विस्फुलिंगा तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पुरुषं जुह्वति तस्या आहुत्यै पुरुषो भास्वरवर्णः सम्भवति"॥ अर्थ, जब यह अग्नि होत्रका कर्त्ता यजमान मरणको प्राप्तहोता है तब उसको अग्निमें आहुति करनेके अर्थ ऋत्विजादि नगरसे बाह्यलेजाते हैं (अर्थात् अग्निहोत्र के मरे पश्चात् उसके शरीरका दाह उस अग्निहोत्रकी अग्नि विषेहोता है अरु उसके शरीरके साथ उसकी अग्नि होत्रकी अग्निको भी बाहर लेजाते हैं) अरु तिस आहुति भूत शरीरके हवन करने की जो यह प्रसिद्ध अग्नि है सोई अग्नि है।:— हे प्रियदर्शन जैसे अग्निहोत्रकाकर्त्ता यजमान द्युलोकसे श्रद्धाख्य जलरूप आहुतिबिषे अपनी भावनाकर भावित तन्मयहुआ आहुति के क्रम से सोमादि रूप परिणामको पावता स्त्रीरूप अग्निबिषे वीर्यरूप से आहुतिहुआ गर्भरूपसे प्रकटहोय जन्मता है, अरु यावत् आयुष तावत् जीवता अग्निहोत्र करता है, अरु जैसे पूर्वकी आहुतियों में अपनी भावनाकर भावित तन्मयहुआ होता है तैसेही इस शरीररूप आहुति ' जो पंचम आहुतिका परिणाम षष्ठ आहुति है, तिस साथ तन्मयहुआ मरणोत्तर ऋत्विजादि द्वारा वेदोक्त मन्त्रकरके अपने अग्निहोत्रकी इस प्रत्यक्ष अग्निबिषे आहुति हवनहुआ होताहै—:। जो हवनका अधिकरण अग्निहै सो उसके शरीरकी आहुतिहोनेका द्युलोकादिवत् परिकल्पित अग्नि नहीं। अरु यह जो प्रसिद्ध पलाशादि काष्टरूप समित्है सोई उस प्र-

अथ पञ्चम प्रपाठके दशमखंडः ॥

तद्यइत्थंविदुःयचेमेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासतेतेऽर्चिषमभिसम्भवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदंङेतिमासाछंस्तान् १ ॥

सिद्ध अग्निका समित्है । अरु जो प्रसिद्ध धूमहै सोई धूमहै । अरु जो प्रसिद्ध अर्चि (ज्वाला) है सोई उस प्रसिद्ध अग्निकी ज्वालाहै । अरु जो प्रसिद्ध अंगार है सोई उसका अंगार है । अरु जो प्रसिद्ध चिन्गारियां हैं सोई उस अग्निकी चिन्गारियां हैं ऐसी जो प्रसिद्धअग्नि तिसही इसअग्निबिषे (ऋत्विजादि रूप) देवता पुरुषनाम शरीर रूप हविकी अन्तिम आहुति करते हैं, तब तिस आहुति से पुरुष (यजमान) भास्वरवर्ण (अतिशय प्रकाशवान्) होता है ॥ः—हे सौम्य उक्तप्रकार द्युलोकादि अग्नि बिषे जलादि रूपसे आहुति हुआ यजमान इसलोकबिषे आवता है, अरु यहां यावत् आयुष तावत् अग्निहोत्र कर्मद्वारा अग्निकी आराधना उपासना करता है । अरु जब मरता है तब अपने उपास्य अग्निबिषे ऋत्विजादि द्वारा आहुतिहुआ उस अग्निकरके प्रथम अन्तरिक्ष लोकमें प्राप्तहो पुनः स्वर्गलोकमें जाय अतिशय प्रकाशवान् देवतारूप होता है । इस प्रकार अग्निहोत्र के कर्त्ता यजमानका आवागमन जानना ॥ २ ॥ इतिनवमखंडः ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो सो इस (विद्या) को जानते हैं, औ जो अरण्यमें श्रद्धा तपको उपासते हैं सो अर्चिषको प्राप्तहोते हैं अर्चिषसे दिवसको दिवस से शुक्लपक्ष को शुक्लपक्षसे छः उत्तरायण के मासोंको तिन (मासों से) १ ॥

अथ पंचम प्रपाठकेदशमखंडः १० ॥

भावार्थ मन्त्र प्रथमका ॥

हे सौम्य, पूर्व जो राजा जैबलिने श्वेतकेतु प्रति प्रथम प्रश्न

किया रहा कि "वेत्थ यदितोऽधिप्रजाःप्रयन्ति" तू जानता है जिस प्रकार यह सर्वप्रजा मरके ऊद्ध्र्वको जाती है। यह प्रश्न अब निर्णय करने को उपस्थित है। तहां लोकविषे जो अधिकृत (यथा समय सर्व संस्कारको प्राप्तहुआ अधिकारी गृहस्थ गृह-मेधी) (न्यायसे कुटुम्ब का पोषणकर्त्ता) अग्निहोत्रिगृहस्थ के अर्थ यह यथोक्त पंचाग्नि विद्याको कि हम द्युलोकादि पांच अ-ग्निसे क्रमकरके उत्पन्नहुये हैं ।:—अर्थात् अग्निके अरु आहुति के साथ अपनी भावनाकरके भावित तन्मय अग्निरूप हुये हम प्रथम श्रद्धाख्य जलविषे अपनी भावनासेभावितहुये द्युलोकाख्य अग्निविषे आहुतिहुये सोमरूपसे, अरु तिस अपने सोमरूपकी पर्जन्याख्य अग्निविषे आहुतिहुये वर्षारूपसे, अरु तिस अपने वर्षारूपकी पृथिवीरूपा अग्निविषे आहुतिहुये अन्नरूप से, तिस अपने अन्नरूपकी पुरुषाग्नि विषे आहुतिहुये वीर्य्यरूपसे, अरु तिस अपने वीर्यरूपकी स्त्री रूप अग्नि विषे आहुति हुये इस पुरुषनामक शरीररूपसे हम प्रकटहुये हैं। इसप्रकार द्युलो-कादि पांचअग्नि के क्रम से हम उत्पन्नहुये हैं—: ॥ अतएव हम अग्निरूप हैं। इस प्रकार जो जानता है (सो उत्तर मार्ग को प्राप्तहोता है) ॥ प्रश्न ॥ "तद्य इत्थं विदुः" सो जो इसको जानताहै, ऐसा जो श्रुतिका कथनहै सो किसके अर्थहै ॥ उत्तर ॥ यह कथन गृहस्थ के अर्थ है अन्यके अर्थ नहीं। गृहस्थों के मध्य जो उक्त विद्याको न जानके केवल इष्टापूर्त्त दत्तके परायणहो-रहेहैं॥:—अर्थात् इष्टा कहते हैं अग्निहोत्रादि वैदिक नित्यकर्मा-दिकोंको, अरु पूर्त्ता कहते हैं 'वापि,कूप, तलाव, बाग, धर्मशाला आदिक अन्योंके सुखार्थ स्मृति उक्त प्रमाणानुसार करनेको, अरु दान कहते हैं'अन्न गौ धन ग्रामादि, यथाधिकारसे दान करना-:॥ तिन केवल कर्म्मी गृहस्थोंके अर्थ धूमादि क्रम से (दक्षिणा-यनमार्गसे) चन्द्रलोकको जाते हैं, ऐसा कहाहै ॥ अरु जे अर-ण्योपलक्षित।:—अर्थात् "ये चेमेऽरण्ये" इस वाक्य करके अ-

रण्योपलक्षित (अरण्यके निवासी) वानप्रस्थ अरु संन्यासी श्रद्धा तपकी उपासना करनेवाले) हिरण्यगर्भादि सगुणब्रह्मकी उपासना करनेवाले) तिनको अर्चिरादिमार्ग से (उत्तरायणमार्गसे) गमन कहाहै ॥ः-अर्थात् अरण्यके निवासी वानप्रस्थ अरु आत्मज्ञानसे रहित त्रिदंडि आदिकों को श्रद्धा तपपूर्वक हिरण्यगर्भ वा प्रणवादि सगुणब्रह्मकी उपासना से अर्चिरादिमार्ग करके उत्तरायणगतिकी प्राप्ति कही है । अतएव उनके अर्थ "। इत्थं विदुः" पंचाग्निका जानना उत्तरमार्गकी प्राप्तिके अर्थ मुख्य नहीं -ः॥ अतएव उनसे पारिशेष (अवशेष) रहनेसे अरु अग्निहोत्र की आहुति के सम्बन्धसे केवल गृहस्थही के अर्थ "। इत्थंविदुः "। इस वाक्यका कथन है ॥

हे सौम्य ।ः-अब गृहस्थ के अर्थ कहा जो पारिशेष तिसविषे वादी आक्षेप करता है-ः॥ शंका ॥ ननु ग्रामश्रुति करके अरु अरण्य श्रुति करके ।ः-अर्थात् "। येचेमेऽरण्ये "। अरु "। अथ य इमे ग्रामा "। इन दोनों श्रुति करके अरण्य उपलक्षण करके वानप्रस्थ अरु संन्यासी का अरु ग्राम उपलक्षण करके गृहस्थों का, ग्रहण है -ः। वानप्रस्थ संन्यासी औ गृहस्थ इनका ग्रहण है । तैसे उभय स्थान में ब्रह्मचारी का भी ग्रहण है तब गृहस्थको ही " इत्थं विदुः " पंचाग्निकी विद्याके जानने के अर्थ कैसे पारिशेष कहते हो । ः-अर्थात् अरण्योपलक्षित वानप्रस्थ अरु संन्यासी को उत्तर मार्गकी प्राप्तिके अर्थ पंचाग्नि विद्याका ज्ञान न होके हिरण्यगर्भादि सगुणब्रह्मकी उपासनाहै, अतएव अरण्योपलक्षितों से इतर ग्रामोपलक्षित गृहस्थको ही पारिशेष मानके उसको उत्तरमार्गकी प्राप्तिके अर्थ पंचाग्नि विद्याका ज्ञान कहा सो युक्त नहीं, क्योंकि जैसे अरण्योपलक्षितों से गृहस्थको पारिशेष माना, तैसे दोनों उपलक्षणों करके लक्षितों में ब्रह्मचारी भी पारिशेष ग्रहण होता है। अतएव ब्रह्मचारीको उत्तरमार्ग की प्राप्ति के अर्थ "। इत्थं विदुः "। इस श्रुतिसे पंचाग्नि विद्याकाज्ञान

कहना युतहै-ः। [हे वादी तैंने जो "तद्य इत्थं विदुः" 'सो जो इस (पंचाग्नि विद्या) को जानता है, इस श्रुतिको ब्रह्मचारी के अर्थ कहा-ः। क्या नैष्ठिक ब्रह्मचारीके अर्थ ग्रहण किया वा उपकुर्वाण ब्रह्मचारी के अर्थ कहा (ग्रहण किया) तहां प्रथम आदि विकल्पको दुषण कहते हैं] ॥ उत्तर ॥ हे वादी तूनेकहा सो दोष नहीं, क्योंकि ऊद्‌र्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी के अर्थ पुराण स्मृतियों के प्रमाणसे उत्तरमार्ग की गति प्रसिद्ध है, अतएव सो भी अरण्योपलक्षित वानप्रस्थ संन्यासियों के साथ उत्तरगतिको जाताहै। अरु जो उपकुर्वाण संज्ञक ब्रह्मचारी है सो वेदाध्ययन करने पर्य्यन्तही है अतएव इसका विशेष करके ग्रहण नहीं॥ः- अर्थात् जो यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् आजन्मपर्य्यन्त विवाह न करके ब्रह्मचर्यसे गुरुकुलमें वास करते हैं अरु जिनका वीर्यपात होता नहीं तिनको ऊद्‌र्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं तिनको अपने ब्रह्मचर्य्य धर्मके प्रभावसे उत्तरायणमार्ग प्राप्त होताहै। अरु जो यज्ञोपवीत संस्कारके उत्तर वेदाध्ययन करनेपर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य करके पश्चात् गृहस्थाश्रमको ग्रहण करते हैं तिनको उपकुर्वाण ब्रह्मचारीकहतेहैं। तातें नैष्ठिकब्रह्मचारीका अरण्योपलक्षितोंके साथग्रहणहै, अरु उपकुर्वाण ब्रह्मचारीका ग्रामोपलक्षित गृहस्थके साथ ग्रहण है। तातें उभय प्रकारके ब्रह्मचारियों का पृथक् ग्रहण नहीं-ः ॥ शंका। ननुयदि ऊद्‌र्ध्वरेतत्व उत्तरमार्गकी प्राप्तिका कारण पुराण स्मृतियों के प्रमाण होने से इच्छितहै तो "इत्थंवित्त्व" पंचाग्नि विद्याके जाननेपने को (अर्थात् ज्ञान को) अनर्थताकी प्राप्ति होती है ॥ समाधान ॥ सो नहीं, क्योंकि "इत्थंवित्त्व" को अर्थात् पंचाग्नि विद्याके जाननेपनेको गृहस्थोंके अर्थहोने से, सो अनर्थक (निष्प्रयोजन) नहीं। अरु जो गृहस्थ लोक इस पंचाग्नि विद्याके न जाननेवाले अग्निहोत्रके कर्त्ता केवल कर्म्मी हैं तिसके अर्थ स्वभावसे ही धूमादि लक्षणवान् दक्षिणमार्ग (गति) प्रसिद्धहै। तिन केवल कर्म्मी गृहस्थों

ही के मध्य जे कोई कहे प्रकारसे इस पंचाग्नि विद्याको जानता है, अर्थात पंचाग्नि विद्याकरके वा अन्य प्रकारसे सगुणब्रह्मको जानता (उपासताहै) सो देवयान उत्तरायणमार्गकरके (ब्रह्मलोक) को जाताहै। "। अथ यदुचैवास्मिन् शव्यंकुर्वन्ति यदिच नार्चिषमेवेतिलिंगादुत्तरेण ते गच्छन्ति"। शंका ॥ ननु ऊद्ध्र्वरेतोंका अरु गृहस्थोंका आश्रमित्वपने में समानता होनेसे ऊद्ध्र्वरेताही उत्तरायण मार्गसे जाताहै गृहस्थ नहीं ऐसा कथन युक्त नहीं। क्योंकि गृहस्थको अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मकी बाहुल्यता होने से (फलबाहुल्यताभी युक्तहै) [ऊद्ध्र्वरेता अरु गृहस्थकी आश्रमित्वपने विषे समता कही तहां गृहस्थको विशेषता देखावते हैं, गृहस्थको अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म्मोंकी बाहुल्यताहै तिस बाहुल्यता के होते सन्ते भी अविद्वान् (पंचाग्नि विद्याके न जाननेवाले) ऊद्ध्र्वरेताओंकोही देवयान मार्गकरके गमन है गृहस्थोंका नहीं, ऐसा कथन योग्य नहीं। क्योंकि अग्निहोत्रादि साधनोंकी बाहुल्यतासे फलकी बाहुल्यता न होनी यह न्यायसे विरुद्धहै] ॥ समाधान ॥ यह दोष नहीं [ऊद्ध्र्वरेता अरु गृहस्थके आश्रमित्वपने में अविशेषताके हुएभी उनके परस्परके धर्म्मकी विशेषतासे विशुद्धिकी तारतम्यताहोने से इनकी एकरूपता नहीं इसप्रकार उक्त शंकाका परिहार करतेहैं] ॥ः—अर्थात् वादी शंका करताहै कि पंचाग्नि विद्याके जाननेवाले अविद्वान् ऊद्ध्र्वरेताको उसके धर्म्मानुसार उसको उत्तरमार्गकी गति पुराण स्मृतियोंके प्रमाण से कही, अरु अविद्वान् (पंचाग्नि विद्याके न जानने वाले) गृहस्थ के अर्थ न कही सो युक्त नहीं, क्योंकि उस अविद्वान् ऊद्ध्र्वरेताकी अपेक्षा उस अविद्वान् गृहस्थके अग्निहोत्रादि वैदिक धर्म्म की विशेषताहै, अतएव उसके अर्थ उत्तरायण गति रूप फलकी विशेषता न होनी यह न्याय करके विरुद्धहै, इस प्रकार की जो वादीकी शंका तिसका समाधान करते हैं—ः॥ हे वादी तूने कहा सो यह दोष नहीं, क्योंकि सो अपूत (अशुचि)

ही है ताते ॥ शंका ॥ पंचाग्नि विद्या ते हीन अग्निहोत्रादि बहुत से धर्म्मवान् को भी अशुचिता कैसे है ॥ समाधान ॥ तिस अग्निहोत्रादि धर्म्म की बाहुल्यतावाले अविद्वान् कर्म्मी गृहस्थ को शत्रु मित्रके संयोग निमित्तों सेही रागद्वेष है। तैसेही हिंसा अनुग्रह के निमित्त के किये धर्म्म अधर्म्म भी हैं ॥ः—अर्थात् गृहस्थ को पुत्रादि कुटुम्बवान् होने से उसके शत्रु मित्रका होना सम्भव है। अरु शत्रु मित्र के होनेसे रागद्वेषका भी सम्भव है। अरु रागद्वेष होनेसे शत्रुके निमित्त की अशुभ चितवना रूपा हिंसा अरु मित्रके निमित्तका शुभ चितवनरूप अनुग्रहका सम्भवहै, अरु सोई धर्म्म अधर्म का निमित्त है—ः॥ अरु हिंसा मिथ्याभाषण कपट अब्रह्मचर्य्य परिग्रहादि पुनः अन्य भी। अरु तिसके बहुतसे शुद्धिके कारण भी हैं तथापि उक्त अपूतत्वको परिहार (निवारण वा प्रायश्चित्त) नहीं, अतएव वो अपूत (अशुचि वा अपवित्र) ही है ॥ शंका ॥ तुल्य ऊर्द्ध्वरेताकोभी अशुद्धिके हेतुकी बाहुल्यता होनेसे उसकोभी अपूतत्व है॥ समाधान॥ः—उसऊर्द्ध्वरेताकोतमोगुणके कार्य—ः।हिंसा (निर्दयता) मिथ्याभाषण कपट अब्रह्मचर्य्य (स्त्रीलम्पटता) आदिकोंका परिहार होनेसे उस शुद्धात्माको (शुद्ध अन्तःकरणवालेको) ही इतर शत्रु मित्र रागद्वेषादिको (रजोगुण के कार्य्यों) का परिहारहोनेसे सो विरज।ः—अर्थात् वो उक्तदोषोंके परिहारसे रजतमके कार्य्यसे रहित विरजशुद्ध अन्तःकरणवाला है—ः। तिसको उत्तरमार्गयुक्त है ॥ तहां पौराणिक कहते हैं। तथाच "येप्रजामीषिरेऽधीरास्तेश्मशानानि भेजिरे। येप्रजानेषिरेधीरास्तेऽमृतत्वंहिभेजिर, इत्याहुः"। शंका ॥ पंचाग्नि विद्याके जाननेवाले गृहस्थोंको अरु अरण्यवासी वानप्रस्थ संन्यासियोंको समान मार्गकरके अमृतत्वरूप फलकी प्राप्ति से अरण्यवासियोंको विद्या अनर्थकी प्रापक है अरु तैसेही श्रुतिसे भी विरोध है। तथाच "न तत्र दक्षिणायन्ति नाविद्वांसस्तपस्विन इति" "स एवमविदितो नभुनक्तीति" यह विरोध

है॥समाधान॥ सो नहीं "आभूत संप्लवस्थान" का अमृतत्व करके कथन है ताते। तहां पौराणिक ही कहते हैं "आभूत संप्लवंस्थानममृतत्वंहिभाष्यत इति" जो कि आत्यन्तिक अमृतत्व मोक्ष है तिसकी अपेक्षा करके "न तत्र दक्षिणा यन्ति, स एनम विदितो न भुनक्तीत्याद्याः श्रुतयः" तहां दक्षिण मार्गवाला नहीं जाता, सो इसको न जाननेवाला नहीं भोक्ता (नहीं प्राप्तहोता) इत्यादि श्रुतियोंका विरोध नहीं।ः—अर्थात् ऊर्द्ध्वरेताको जो उत्तरमार्ग से ब्रह्मलोकप्राप्ति सम्बन्धी अमृतत्व प्राप्ति है सो पंचाग्नि विद्याके न जाननेवाले अविद्वान् गृहस्थ जो दक्षिण मार्गसे पितृलोकके अधिकारी हैं तिनकी अपेक्षावाला होनेसे सापेक्षिक हैं, वा आत्यन्तिक मोक्षकी अपेक्षा ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अमृतत्व गौण है, क्योंकि उत्तरायण मार्ग से वा सुषुम्णा नाडीद्वारा ब्रह्मरंध्रको भेदनकरके उक्तनाडीके मार्गसे जानेवाले की है ताते। अरु ब्रह्मलोक रूप अमृतत्व पावनेवाला पुनः इस कल्पमें इसलोकमें पुनरावृत्ति न पायके वहांही रहता है परन्तु कल्पान्तरमें पुनः आवता है। अतएव ब्रह्मलोककी प्राप्तिसे आवागमन से रहितरूप जो मोक्ष है सो आत्यन्तिकी मोक्षकी अपेक्षा गौण है॥ अरु "सदेकमेवाद्वितीयम" एकही अद्वितीय सत् मैं हौं इसप्रकारकी प्रत्ययवाला (साक्षात् अनुभवनिश्चयवाला) ।ः—अर्थात् "एतदात्म्यमिद ꣳ सर्वंतत्सत्य ꣳ सआत्मातत्त्वमसि" इत्यादि प्रकार तत्त्वमस्यादि महावाक्य के श्रवण से जिस को अपने आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अपने आप आत्मा का, संशय विपर्ययादि सर्व व्यवधान से रहित सम्यक् साक्षात्कार अनुभव निश्चय हुआ है तिस आत्मज्ञानी का मस्तक विदीर्ण करके सुषुम्णा नाडीद्वारा वा अर्चिरादिमार्गद्वारा उसका लोकान्तर में गमन नहीं, उसका जो स्व स्वरूप का यथार्थ ज्ञान से ब्रह्म आत्माका अभेदरूप मोक्षहै सो यहां जीवतेही होता है, आत्मज्ञान के निमित्तवाला होने से। तथाच "ब्रह्मैवसन् ब्रह्म

च्येति"। "।तस्मात्तत्सर्वमभवत्"। "।न तस्यप्राणा उत्क्रामन्ति"। "।अत्रैव सम वलीयन्त"। इत्यादि श्रुतिशतेभ्यः॥ इत्यादि सैकड़ों श्रुतियों के प्रमाण से॥ शंका॥ हे वादी जो तू ऐसी कल्पनाकरे कि यह जो "।न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति"। श्रुति है तिसका अर्थ यह है कि जीवसे पृथक् होके प्राण उत्क्रमण होते नहीं किन्तु जीवके साथही जाते हैं, तो सो नहीं। क्योंकि जो उक्त अर्थ को अंगीकारकरेंगे तो "।अत्रैव समवलीयन्त"। यह श्रुतिने जो कहा है यहांही सम्यक् प्रकार लय होताहै, सो यह विशेषण अनर्थक होनेसे, अतएव आत्मज्ञानीके प्राणके उत्क्रमणकी शंकाही करनी योग्यनहीं। अरु यद्यपि मोक्षहुए का संसारगति की विलक्षणता होनेसे प्राणोंका जीवकेसाथ आगमन की शंका न होवे एतदर्थ "।तस्मान्नोत्क्रामन्ति"। उत्क्रमण नहीं होते,ऐसा श्रुति का कहना है। अरु जो जीव करके सहित प्राणोंके उत्क्रमणकी शङ्काहोवेगी तो यह जो श्रुतिने विशेषण कहाहै कि "। अत्रैव समविलीयन्त"। सो अनर्थक होताहै ताते। अतएव प्राण से पृथक् हुएको शरीरसे बाह्य निकलके लोकान्तरकी गति प्राप्त नहीं॥ :—अर्थात् जिसके प्राण आत्मज्ञानके न होनेसे अधिष्ठान चैतन्यमें लीन होते नहीं तिसका प्राणकेसाथ शरीरसे उत्क्रमणहोय लोकान्तर वा शरीरान्तरको गमनहै। अरु जिसकेप्राण सम्यक् आत्मज्ञान द्वारा अपने अधिष्ठान में लीन होताहै तिस ज्ञानवान् के प्राण शरीरसे उत्क्रमण होते नहीं वो जिस आत्मअधिष्ठान से फुरे हैं तिसही में लयहोते हैं—:॥ ["। कस्मिन्नहमुत्क्रांतउत्क्रान्तोभविष्यामि। कस्मिन्वाप्रतिष्ठितेप्रतिष्ठास्यामीति॥ स प्राणमसृजत"। अर्थ, सो परमात्मा प्रथम इच्छा करता हुआ कि मुझ निराकार निर्विशेष का किसके उत्क्रमण (निकलने) से उत्क्रमण होगा, औ किसके रहने से रहनाहोगा। :—क्योंकि मुझ अक्रिय निराकार बिषे गमन अरु स्थित होने रूप व्यापार बनेनहीं, अरु गमनादि व्यापार सर्व सिद्धहुआ चाहिये—:। ऐसा विचार वो

परमात्मा अपने गमनागमन वा स्थिति के अर्थ प्रथम प्राणको सृजता हुआ]। :—अतएव उक्त श्रुति के प्रमाण से एक अद्वैत सत् निराकार निर्विशेष आत्माके जो जीवत्वपने की प्राप्ति अरु आवागमनकी प्राप्तिहै सो प्राणरूप उपाधि के सम्बन्धसे ही है, प्राणसे पृथक् हुएकी गमनागमन रूपागति उपपद्य नहीं—:। अरु [एक अद्वैत चिदात्मा को प्राणसे पृथक् हुए जीवपनेकी भी प्राप्ति नहीं, क्योंकि उस एक अद्वैत चिदात्माको जो जीवशब्दका वाच्यपनाहै सो प्राणरूप उपाधि का किया है]॥ एक अद्वैत चैतन्यको सर्वात्मा अरु निरवयव होने से प्राणके सम्बन्ध मात्र से ही अग्नि से विस्फुलिंग (चिनगारी) वत् जीवत्वपने अरु भेद की प्राप्ति का कारण है। अतएव तिस प्राणरूप उपाधि के वियोग (अभाव) हुए सामान्य सर्व्वात्मा निराकार निरवयव चैतन्यविषे जीवपने अरु गमनागमन गतिकी कल्पना करनेको कोई भी समर्थ नहीं॥ :—अर्थात् जैसे इंधनयुक्त विशेष प्रज्वलित अग्नि से इंधनरूप उपाधि के सम्बन्धसे अल्पचिनगारियां उत्थान होती हैं तब उस उपाधि के सम्बन्ध से उस अग्नि विषे चिनगारीपना अरु उस महत् अग्नि से पृथक्पना अल्पपना प्राप्त होता है, अरु जब वो चिनगारी विशिष्ट अग्नि चिनगारी को त्याग निर्विशेष सामान्य अग्नि साथ अभेद होताहै तब उस विषे उस सामान्य अग्नि से भिन्न अल्परूप चिनगारी हैं ऐसी कल्पना करनेको कोई भी समर्थ नहीं। तैसेही समान सर्वात्मा निराकार परमात्मा से उसकी इच्छानुसार, अर्थात् इच्छारूपा माया विशिष्ट चैतन्य से प्राणके स्फुरणहुए प्राण विशिष्ट चैतन्यकी प्राणके सम्बन्धसे जीवसंज्ञा अरु गमनागमनवान् ब्रह्मसे भिन्नपना भासेहै। अरु जब सम्यक् आत्मज्ञानकरके प्राणरूप उपाधि चैतन्य सत्तासे पृथक् होती है वा प्राण अपने अधिष्ठान में लयहोताहै तब उस प्राणरूपा उपाधि से रहित शुद्ध सामान्य निर्विशेष सर्व्वाधिष्ठान चैतन्य विषे जीवपने की अरु गमना-

गमनकी अरु ब्रह्म से पृथक्पनेकी कल्पना करने को कोई भी समर्थ नहीं-:। ताते सर्वात्मा शुद्ध निर्विशेष निरावयव निर्विकार निराकार सत् चैतन्यविषे अणुभाव जीवत्व अरुब्रह्मरन्ध्र में छिद्र करके 'ब्रह्मलोकको वा अन्य नाडियों के मार्ग से अन्य लोकान्तरको, जाताहै। इसप्रकारकी कल्पना करनेको कोई भी समर्थ नहीं॥ एतदर्थ।"। तयोद्र्ध्वमापन्नमृतत्वमेतीति "। यह जो नाड़ी द्वारा उत्क्रमण होय अमृतत्वकी प्राप्तिहै सो सगुण ब्रह्मकी उपासनावाले उपासककोहै अरु सोअमृतत्वकीप्राप्ति नाड़ीके मार्गकी अपेक्षा करनेवाली होने से सो (ब्रह्मलोक सम्बन्धी) सापेक्षक अमृतत्वहै। वो साक्षात् मोक्ष नहीं। तथाच "। तदपराजितापूस्त देरं मदीयंसर तदश्वत्थःसोमसवन "। इत्यादि श्रुतिने कहा है। अरु "। तेषामेवैषब्रह्मलोक "। इत्यादि विशेषणों से। एतदर्थ 'पंचाग्निविदो, गृहस्थकोही कहाहै।:- अर्थात् तात्पर्य यहहै कि "। तद्य इत्थं विदुः"। इस श्रुतिने जो कहाहै कि इस पंचाग्नि विद्याका जाननेवाला उत्तरायण मार्गकी गतिको प्राप्तहोता है, सो केवल गृहस्थके अर्थही कहाहै अन्यके अर्थ नहीं, क्योंकि गृहस्थसे इतर जे'नैष्ठिक ब्रह्मचारी,वानप्रस्थ, अरु संन्यासी, ये अपने२ आश्रम धर्म्म करके अरु हिरण्यगर्भादि सगुणब्रह्म की उपासना करके उत्तरायण मार्गकी गतिको प्राप्त होते हैं। अरु गृहस्थको अग्निहोत्रादि इष्टा, अरु वापी कूप आरामादि पूर्त्ता अरु दान, इन कर्मोंका अधिकार विशेष है क्योंकि इसके न करनेसे उसकोप्रत्यवायहै,अरुहिरण्यगर्भादिकोंकी उपासना न करनेसे उसकोप्रत्यवाय नहीं। तैसेही नैष्ठिक ब्रह्मचारी अरु वानप्रस्थ अरु संन्यासी तिनमें संन्यासी को छोड़के उक्त दोनों को हिरण्यगर्भ की उपासना मुख्यहै और गौण है। अरु संन्यासी को एक प्रणवरूप सगुण ब्रह्मकीही उपासना कर्त्तव्यहै और नहीं। अतएव इन तीनों को उक्त सगुण ब्रह्मोपासना उत्तरमार्ग प्राप्ति का कारणहै, ताते इनके अर्थ पंचाग्नि विद्याका ज्ञान उत्कगति की प्राप्ति में

हुआ न हुआ तुल्यहै। अरु गृहस्थ को उत्तरमार्ग की गति की प्राप्ति में एक पंचाग्नि विद्याका उक्तप्रकार का ज्ञानही मुख्य कारणहै और नहीं। अतएव "तद्यइत्थं विदुः" यह जो श्रुतिका कथनहै सो केवल गृहस्थ के अर्थही है अन्य के अर्थ नहीं ॥ अरु अरण्योपलक्षित जे वानप्रस्थ संन्यासी नैष्ठिक ब्रह्मचारी करके सहित श्रद्धा सम्पन्न हुए तपाचरण के करनेवाले सगुणब्रह्म के उपासक। अर्थात् "श्रद्धातपइत्युपासत" इस श्रुति में जो उपासन शब्द है सो तात्पर्य्यवाची है, जैसे गृहस्थ के अर्थ "इष्टापूर्त्तेदत्तमित्युपासते" इस श्रुति में उपासन शब्द तात्पर्य्य वाची है तैसे॥ श्रुत्यन्तर प्रमाण "येचसत्यं ब्रह्म हिरण्यगर्भाख्यमुपासते तेसर्वेऽर्चिषं" अर्चिरभिमानीन्देवतामभिसंविशयति, प्रतिपद्यन्ते" ताते जे अरण्य निवासी वानप्रस्थ संन्यासी अरु नैष्ठिक ब्रह्मचारी, श्रद्धासम्पन्न तपाचरण उपासनाके करनेवाले हैं सो देह त्यागोत्तर अर्चि के अभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। तिस अर्चिअभिमानी देवतासे आगे दिवस के अभिमानी देवता को प्राप्तहोते हैं। तिस दिवसाभिमानी देवतासे आगे शुक्लपक्षाभिमानी देवता को प्राप्तहोते हैं। तिस शुक्लपक्षाभिमानी देवता से आगे उत्तरायण के षट्मासाभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं, तिन (मासों से) ॥ १ ॥—॥ अथवा पंचाग्नि विद्याकी सम्यक् ज्ञात पूर्वक इष्टापूर्त्तीदत्त (दान) का करनेवाला गृहस्थ अरु नैष्ठिक ब्रह्मचारी अरु वानप्रस्थ यह तीनों कि जिनके मरणोत्तर शरीरका दाह अग्निविषे होताहै सो अरु चतुर्थ त्रिदण्डी आदिक गौण संन्यासी जिनके शरीरका दाह अग्निविषे होता नहीं सो, इसप्रकार उक्त चारोंअपनेसत्यधर्म्माचरणविद्याकेप्रभावसेशरीर त्यागोत्तर प्रथम अर्चि अभिमानी देवता को प्राप्तहोता है, वहांसे उसको दिवसका अभिमानी देवता लेजाताहै दिवसकेअभिमानी देवतासे उसकोशुक्लपक्षकाअभिमानीदेवतालेजाताहै। पुनःवहां से उसकोउत्तरायणकाषट्मासाभिमानीदेवतालेजाताहैतिन॥१॥

मासेभ्यः संवत्सरष्ठं संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसे चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो मानवः सएनां ब्रह्मगमयत्येष देवयानः पन्था इति २॥

अक्षरार्थ ॥

तिन, मासोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमाको, चन्द्रमासे विद्युतको। तिस विद्युतको प्राप्त हुएको ब्रह्माका मानसपुरुष ब्रह्मलोक लेजाताहै, यह देवयान मार्ग है २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका २॥

हे सौम्य ' राजा जैबलि उद्दालक से कहताहै कि हे गौतम, उक्त प्रकार के चारो आश्रमके विद्वान् उपासक पुरुष देह त्यागोत्तर उत्तरायण के षट्मासाभिमानी को प्राप्तहोते हैं, तब उन षट्मासाभिमानी देवता से आगे संवत्सराभिमानी देवताको प्राप्तहोता है, तिस संवत्सराभिमानी देवता से आगे आदित्याभिमानी देवता को प्राप्तहोताहै। तिस आदित्याभिमानी देवता से आगे वो चन्द्राभिमानी देवता को प्राप्त होता है। पुनः तिस चद्राभिमानी देवता से आगे वो विद्युताभिमानी देवता को प्राप्तहोता है। इस प्रकार जब वो विद्वान् उपासक विद्युताभिमानी देवताको प्राप्तहोते हैं तब वहां से उनको ब्रह्माके मानस सृष्टिकाब्रह्मलोक निवासीब्राह्मणों में से कोई एक सत्यलोकनाम वाले ब्रह्माके ब्रह्मलोकको प्राप्तकरताहै।:—अथवा उक्त प्रकार जब वो विद्वान् उपासक उत्तरायण के षड्मासाभिमानी देवता करके तहां प्राप्तकिया होताहै तब वहां से उसको संवत्सरकाअभिमानी देवता ले जाताहै। तब उस संवत्सर के अभिमानी देवता से आगे उनको चन्द्राभिमानी देवता लेजाता है। तहां से उनको विद्युतका अभिमानी देवता लेजाता है। इसप्रकार जब वो विद्युताभिमानी देवताको प्राप्त होताहै तब वहांसे उस

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्त्तेदत्तमित्युपासतेतेधूममभि सम्भवन्ति धूमाद्रात्रिꣳरात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्द क्षिणैतिमासाꣳस्तानैतेसंवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ३ ॥

को ब्रह्मलोक से ब्रह्माकी मानस सृष्टिका पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है॥ इसप्रकार करके चारों आश्रम के विद्वान् तपस्वी उपासक ब्रह्मलोक सम्बन्धी पुरुष करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होतेहैं, तब वहां देवतारूप हुए सर्व्वोत्तम सर्वसे उत्कृष्ट भावको पाय वहां अनेकदिव्यवर्ष पर्य्यन्त अर्थात् यावत् पर्य्यन्त ब्रह्मा ब्रह्मलोक में निवासकरताहै तावत् पर्य्यंत वो भी वहां निवास करता है। वो ब्रह्मलोकको प्राप्तहुए पुनः इस संसार में पुनरावृत्तिको पावते नहीं, यही उनको अमृतत्वकी प्राप्तिहै । परन्तु ब्रह्माके मुख्य मोक्षहुए वो प्रकृति लक्षणरूप मोक्षकोपाय पुनः सृष्टिकाल में उनका आगमन होताहै। ताते ब्रह्मलोक प्राप्तिरूप मोक्ष सापेक्षिक होने से गौण है २॥

अक्षरार्थ ॥

जो यह ग्रामनिवासी गृहस्थ इष्टापूर्त्त दान करतेहैं सो धूम को प्राप्तहोते हैं, धूमसे रात्रिको, रात्रिसे कृष्णपक्षको, कृष्णपक्ष से दक्षिणायनके षड् मासों को, तिनमासों से संवत्सरको प्राप्त होताहै ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ३ ॥

हे सौम्य, चतुर्थ गतिके व्याख्यान करके [उत्तरायण मार्गके व्याख्यान का उपसंहार करते हैं] यह देवयान मार्गका कि जिस का सुषुम्णा नाड़ीके मार्ग बाह्य गमन से ब्रह्मलोक परिअवसान (परम फल वा परमगति) है व्याख्यान किया । अरु।:— राजा जैवलिने श्वेतकेतु के प्रति प्रथम यह प्रश्नकिया रहा कि " वेत्थयदितोऽधिप्रजाःप्रयन्तीति " तू जानता है जैसे अधो से प्रजा ऊर्ध्व को जाती है। तिस प्रश्न का उत्तर उस राजानेही

इस उत्तरायण मार्ग के व्याख्यान से गौतम गोत्रवाले उद्दालक के प्रति कहा ॥ अरु कोई एक कहते हैं कि उक्तनाड़ी द्वारा निकल उत्तरायण देवयान मार्ग से जाते हैं सो ब्रह्मांडको भेदनकर तिसके बाह्य ब्रह्मको प्राप्तहोते हैं, तिसका निराकरण करते तिनके प्रति कहतेहैं] "। यदन्तरापितरंमातरञ्चेति, मन्त्रवर्णात्"। [पितर द्युलोक है मातर पृथिवी है तिन माता पिताके मध्यही कर्म्म अरु उपासना के अधिकारी कर्म्मी उपासकों की गति है अंड से बाह्य गति नहीं]।:—क्योंकि कर्म उपासना का फल अरु तिस फलके प्राप्तहोनेके मार्ग ब्रह्माण्डान्तरही है—:॥ अब अर्थान्तर प्रस्तावना करके दक्षिणायन गतिको कहते हैं ॥ हे सौम्य राजा जैबलि उद्दालक प्रति कहता है कि हे गौतम। यह जो ग्राम उपलक्षण करके लक्षित जे गृहस्थ हैं। अर्थात् यहां जे गृहस्थके अर्थ 'ग्राम' यह जो असाधारण बिशेषण है सो अरण्यवासी वानप्रस्थादिकों से पृथक् करनेके अर्थ है। जैसे वानप्रस्थ संन्यासियों को गृहस्थ से पृथक् करने के अर्थ अरण्य विशेषण है तैसे। सो ग्रामोपलक्षित गृहस्थ इष्टापूर्त्ता दानको उपासता (कर्त्ता) है। तहां इष्टा कहिये अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्म्म, अरु पूर्त्ता कहिये वापि (बावली) कूप आराम (बाग) धर्म्मशालादिक कि जिससे मार्ग के चलनेवाले यात्री वा साधु संतोंको निवासादिक के अर्थ स्थानादिकों की प्राप्तिरूप सुखहोवे, तिनका बनवावना। अरु दान कहिये निर्द्धनादि यथाधिकारियों को धन अन्नादिकोंका देना।:—अर्थात् सामान्य साधारण रीतिसे अन्न बस्त्रादिकों से रहित दीन पुरुषों के अर्थ अन्न वस्त्रका यथा शक्तिदेना। अरु विशेष रीति से जो किसी प्रकारके उद्देश से वा वार पर्वणी आदिकों में वा तीर्थों में दान करना सो अधिकारी विद्वान् ब्राह्मणों के अर्थ दान देना। अरु सर्वोत्तम दान वो है कि जो कोई तीनों आश्रम के मनुष्य अपने २ धर्म्म में तत्पर होय ईश्वरोपासन आराधन करते हैं तिन्होंके अन्नवस्त्रकी अप्राप्तिरूप

निमित्त के किये विक्षेपको, जो उनके व्यवधानसे रहित निरन्तर धर्म्मानुष्ठान ईश्वर प्रणिधान में विक्षेपकारी है, अन्न वस्त्र धनादिकों के दान से अभाव करना, इससे अधिक उत्तम दान कोई नहीं—: ॥ अरु [अपने गुरू माता पिता, ज्येष्ठ श्रेष्ठोंकी सुश्रूषा सेवाकरनी अरु शरण आयेकी रक्षाकरनी ।:—अरु अग्निहोत्र से इतर संध्या गायत्री नित्य श्राद्ध तर्पण बलिवैश्वदेव स्वाध्याय अतिथिसेवनादि नित्यकर्म्म —: ।] इन सर्वको यथाविधि उपासते हैं, अरु पंचाग्निविद्याको जानते नहीं सो तिस न जाननेके हेतु से मरणोत्तर अग्निविषे दाहहुए प्रथम धूमको अर्थात् धूम शब्दकरके धूमाभिमानी देवताको प्राप्तहोता है । पश्चात् तिस धूमसे आगे रात्रिको (रात्रिके अभिमानी देवताको) प्राप्तहोते हैं । तिससे आगे कृष्णपक्षके अभिमानी देवताको प्राप्तहोता है । पश्चात् तिस कृष्णपक्षाभिमानी देवतासे आगे दक्षिणायनके षड् ६ मास कि जिन छ मासों (संक्रान्तियों) में सूर्य दक्षिणायन होता है ।:— अर्थात् कर्क संक्रान्तिसे लेके धन संक्रान्ति पर्य्यंत छ संक्रान्तिमें सूर्य दक्षिणायन रहता है—: । तिन षड्मासके अभिमानी देवताको प्राप्त होता है । तिन दक्षिणायनके छ मासोंके अभिमानी देवतासे आगे संवत्सरके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं ॥ शंका ॥ उसको संवत्सरके अभिमानी देवताकी प्राप्ति कैसे कही है, क्योंकि "मासेभ्यः पितृलोकं" ऐसा आगे श्रुतिने कहा है ताते —:॥ समाधान ॥ उसको संवत्सराभिमानी की प्राप्ति है, क्योंकि एक संवत्सर के ही उत्तरायण अरु दक्षिणायन दो अवयव हैं । तहां अर्च्चिरादि मार्गसे प्रवृत्तहुए को उत्तरायणके छ मास रूप अवयवोंकी प्राप्ति से अवयवी संवत्सर की प्राप्ति कही है । एतदर्थ यहां भी तिस संवत्सर अवयव भूत दक्षिणायन सम्बन्धी छ मासोंकी प्राप्ति श्रवण करके तिन अवयवों के अवयवी संवत्सरकी भी पूर्ववत् प्राप्ति प्राप्त है, अतएव तिसका प्रतिषेध नहीं । अर्थात् संवत्सरकी प्राप्तिका निषेध नहीं । इसप्रकार

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्र मसमेष सोमोराजा तद्देवानामन्नंतंदेवा भक्षयन्ति ४ ॥
अवयवके सम्बन्धसे अवयवी रूप संवत्सरकी प्राप्तिजाननी ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन मासोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको, आकाश से चन्द्रमाको, कि जो यह (ब्राह्मणों का) राजा सोमहै, सो देवताओंका अन्नहै तिसको देवता भक्षणकरते हैं ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ४ ॥

हे सौम्य वो राजा जैबलि गौतम (उद्दालक) प्रति कहता हुआ कि हे गौतम तिन दक्षिणायनके षट् मासाभिमानी देवता से आगे 'वो केवल कर्म्मी गृहस्थ पितृलोकको प्राप्तहोताहै, पुनः पितृलोकसे आगे आकाशको अर्थात् आकाशाभिमानी देवता को, प्राप्तहोताहै । पुनः आकाशके आगे चन्द्रमा को प्राप्त होता है ॥ प्रश्न ॥ कौन सा वो चन्द्रमाहै ।:-कि जिसको वो केवल कर्म का करनेवाला गृहस्थ प्राप्तहोताहै ॥ उत्तर ॥ जो यह सोमनामवाला ब्राह्मणोंका राजा अन्तरिक्षमें प्रत्यक्ष दृश्य आवताहै, तिसको वो प्राप्तहोताहै । सो देवताओंकाअन्नहै तिसको इन्द्रादिदेवताभक्षणकरतेहैं ॥ अतः तिस धूमादि लक्षणवान् दक्षिणमार्गकरके गये चन्द्ररूप हुए कर्मियों को देवता भक्षण करत हैं (अर्थात् वो चन्द्रलोकको प्राप्त हुआ यजमान देवताओंकरके भक्षण किया होताहै)॥ शंका ॥ ननु यह इष्टादिक वैदिक कर्म्मोंका करना अनर्थ रूपही है, कि जिसके करने से अन्नरूप हुआ यजमान देवताओं करके भक्षण किया जाताहै ॥ समाधान ॥ यह दोष नहीं ॥ क्योंकि यह जो अन्नका कथनहै उपकरणमात्रही विवक्षितहै ताते । उसको ग्रास करनेवत् देवता भक्षण करते नहीं ॥ प्रश्न ॥ कैसे वो देवताओं का उपकरणमात्र होताहै ॥ उत्तर ॥ वो स्त्री पशु भृत्यादिवत् भोग्यसामग्रीका उपकरण होताहै,

तस्मिन्यावत्सम्पातमुषित्वाऽथैतमध्वानं पुनर्निवर्त्तन्ते तमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमोभवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ५ ॥

अतएव उसको अन्नशब्दकरके कहते हैं ॥ तथाच ॥ "स्त्रियोऽन्न पशवोऽन्नं विशोऽन्नं राज्ञामिति" ॥ः—अर्थात् राजाका 'स्त्री, पशु, वैश्य, भृत्यादि सर्व भोग्यसामग्रीके प्राप्त कर्त्ता उपकरण होने से उनको अन्नकरके कहते हैं —ः॥ पुनः तिन स्त्रियादिकों को पुरुष का उपभोग होने से भी उनको उपभोग नहीं ऐसा नहीं ।ः—अर्थात् स्त्री पशु भृत्यादि राजाको उपभोग होते हैं तथापि उन भृत्यादिकों को भी खान पानादि विषयोंका उपभोग सुख होता है —ः॥ एतदर्थ केवल कर्म्म के कर्त्ता कर्म्मियों को देवताओं का उपभोग्यहोतेसन्ते भी सुखीहुये देवता के साथ क्रीडा करते हैं । अरु तिन कर्म्मियों को सुख के उपभोग योग्य चन्द्र मंडलमें शरीरका आरंभहोताहै । सो पूर्व कहा है श्रद्धा शब्दका वाच्य जल द्युलोकाख्य अग्निविषे हवनकिया सोम राजा रूपसे उत्पन्नहोताहै । अर्थात् चन्द्रलोक सम्बन्धी शरीररूप से उत्पन्न होताहै । सो जल कर्म्म से समवायको प्राप्तहुआ प्रथम द्युलोक को प्राप्तहोके पश्चात् चन्द्रत्व सम्पन्नहोय इष्टादिकों के कर्त्ता उपासकों के अर्थ शरीरादिकों का आरंभकहोताहै ।ः—ताते चन्द्र लोक को प्राप्तहुए केवल इष्टादि कर्म के कर्त्ता कर्म्मी देवताओं के भोग्यों के उपकरण होते हैं, एतदर्थ कहा है कि उनको देवता भक्षणकरते हैं—ः ॥ ४ ॥ अक्षरार्थ ॥

(यावत् कर्म्म का क्षय नहीं) तावत् तिस चन्द्र मंडल विषे भोग्य भोगके तिसके अनन्तर उसही मार्ग से पुनः इसलोक विषे आवताहै, जैसे यह कहा (तिससे अन्य प्रकार भी कहते हैं) आकाशमें आवताहै, आकाशसे वायुमें आवताहै, वायुहोके धूमहोताहै, धूमहोके अभ्रहोताहै ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पांचवें का ॥

हे सौम्य, वो राजा जैबलि उद्दालक प्रति कहताहै कि, हे गौतम शरीरपातके अन्त में शरीर रूप आहुति को (जो षष्ठ आहुतिहै) अग्नि विषे हवनहुए अग्नि करके दह्यमान शरीर विषे जो सूक्ष्म जलहै तिसविषे यजमान को वेष्टन करके ।:–अर्थात् केवल कर्म्मीके मरणोत्तर शरीरका अग्निविषे दाह होताहै तब उस दह्यमान शरीर विषे जो यजमानकी श्रद्धानाम जलहै कि जिसविषे वो कर्त्ता यजमान अपनी भावना करके भावित तन्मय हुआहै, तिस यजमानको वो जल अपनेविषे वेष्टनकरके –:। धूमके साथ मिल चन्द्रमंडल को प्राप्तहो कुश मृत्तिकास्थानीया बाह्य शरीरका आरंभ करनेवाला होताहै। तिस आरंभ किये, अर्थात् चन्द्रमण्डल में प्राप्तहुए शरीर करके इष्टादि कर्म्म के फल का भोक्ता होताहै। सो यावत् उस चन्द्रमण्डलके उपभोगोंका निमित्त जो कर्म्म तिनका क्षय नहीं होता, अर्थात् वहां से सम्यक् पतनके हेतु कर्म्मोंका क्षय नहीं है। क्योंकि सम्यक् पात होवे जिस करके सो कहिये "सम्पातः।,, सो कर्म्मोंका क्षय सम्पात है। ताते यावत् कर्म्मोंका क्षय नहीं होता तावत् वो चन्द्रमण्डल विषे निवास भोग करके तिसके अनन्तर इसही कहे हुए मार्ग से, कि जिस क्रम मार्ग से गया है, पुनः वहां से आवता है। यहां पुनः वहां से आवता है, इस कहने से सिद्ध होताहै कि पूर्व अनेकबार चन्द्रमण्डल को प्राप्त हो वहां से फिर आयाहै ॥ एतदर्थ इस लोकविषे इष्टा पूर्त्तादि कर्म्मों के करनेवाले यहां कर्म करके पुनः मरणोत्तर चन्द्रलोक को जाते हैं वहां अपने कर्म्मों के फलोंको भोगने से कर्म्म के क्षयहुये वहां एक क्षणमात्र भी रहने को समर्थ होते नहीं, क्योंकि वहां की स्थितिका निमित्त जे कर्म्म तिसका क्षयहोताहै ताते। जैसे तेल के क्षीण हुए दीपक क्षणमात्र भी रहता नहीं तैसे ॥ प्रश्न ॥ क्या तहां जिन कर्म्मोंसे चंद्रलोक को प्राप्तहुआहै तिनके अरु तिन-

से जो व्यतिरिक्त हैं तिन सर्व कर्म्मों के क्षयहुये तिस लोक से पुनरावृत्ति पावता है, किम्बा कछ कर्म्मों के अवशेषरहे, पुनरावृत्तिहोती है। इसप्रकार के प्रश्न के हुए उत्तर कहतेहैं ॥ उत्तर ॥ जो कदापि वहां ही सर्व कर्म भोगदेके क्षयहोवे तो वहांही मोक्ष होना चाहिये, अतएव कुछ अवशेष रहे कर्म्मों के यहां आवताहै। अरु ऐसा न मानने से तहांसे आयेहुयेको शरीरोत्पत्ति अरु उपभोग संभवे नहीं (सर्व कर्म्मोंका उपभोगसे क्षयहोनेसे) " ततः शेषेणेत्यादि " स्मृतियों से विरोध होताहै [चन्द्रलोकमेंही जिन कर्म्मोंको भोक्तव्यहै तिनका भोगकरके क्षयहुये पश्चात् अवशेष रहे जे अभुक्त (बिना भोगे) कर्म्म तिनकरके यहां जन्म को पावता है। इत्यादि स्मृतिसे सर्व कर्म्मोंके क्षयहुए आगमन का पक्ष बिरोध को पावताहै ॥ :-अर्थात् जिन कर्म्मों के फल भोगार्थ कर्म्मी यजमान चन्द्रलोकमेंगया है तिनके अवशेष रहे यहां का आवना अरु उन अवशेष रहे कर्म्मों का यहां उपभोग होना संभवे नहीं क्योंकि इष्टा पूर्त्तादि कर्म्म चन्द्रमंडल के ही उपभोग का निमित्त है इस लोकका नहीं। तातें इष्टादि कर्म्म से व्यतिरिक्त भी मनुष्य लोक के शरीर अरु उपभोगके निमित्त वाले अनेक कर्म्मों का संभवहै, औ तिन कर्म्मों का चन्द्रमंडल उपभोग नहीं। अतएव जो चन्द्रमण्डल के उपभोग निमित्तक कर्म हैं तिन सर्व्व के उपभोग से क्षयहुये अरु तिनसे व्यतिरिक्त कि जिनका फल इसही लोकमें भोक्तव्यहै, अवशेषरहे वो कर्म्मी पुनः इसलोक बिषे आवता है। इसमें स्मृति से विरुद्ध नहीं। अरु चन्द्रलोक के उपभोग निमित्तक सर्व्व कर्म्म के क्षयहुए वहांही मोक्ष होगा उसका इस लोक में आवना बने नहीं, यह दोष भी अभाव होवेगा—: ॥ अरु इष्टादि कर्म्मों से विरुद्ध अनेक योनियों में अपने फल का उपभोग देनेवाले अनेक कर्म्म ऐसे हैं जो वो स्थावर जंगमरूप अनेक योनियों में जन्म के आरम्भक हैं ॥ :—अर्थात् उस केवल

कर्म्मों गृहस्थ के आश्रम के सम्बन्ध से व्यावहारिक बहुतसे ऐसे
कर्म्म हैं कि जिसकरके यह अशुचिही रहताहै, यह पूर्वकह भी आये
हैं। अरु वो कर्म्म प्रायः ऐसे हैं कि एक एक कर्म्म अनेक २ जन्मों
में अपना फल भोगवाते हैं। अरु उनके फलका उपभोग इसही
लोक सम्बन्धी अनेक योनियों में होते हैं–:॥ पुनः एकही जन्म
में सर्व कर्म्मोंका उपभोग होयके क्षय होना उपपद्य नहीं। जैसे
ब्रह्महत्यादि एक एक कर्म्मों का अनेक २ जन्मों का आरम्भकर-
ना शास्त्रों करके जाना जाता है। तस्मात् एकही जन्म में सर्व
कर्म्मों के फलका उपभोग बने नहीं॥ अरु कोई एकवादी ऐसा
कहते हैं कि कर्म्मादिकों का आश्रय जो शरीरादि संघात तिसके
नष्ट हुए कर्म्म (अरु व्यतीत हुए अनुभव अभ्यास संस्कार वा-
सनादि सर्व) नष्टहोते हैं॥ सो बने नहीं, जैसे पूर्व अनुभवकिये
मनुष्य, मयूर, मर्कट, आदि जन्म पाय तिन शरीरादिकोंके धर्म
कर्म्मादि अरु तिनकी परस्परमें अनेक विरुद्ध बासनाके संस्कार
सो इन जीवोंके अन्तःकरणमें संस्काररूपसे रहते हैं, सो मरकट
जन्म के प्रापक (देनेवाले) जे कर्म्म तिन करके मर्कट जन्मके
आरम्भकिये नष्ट होते नहीं। तैसेही मर्कटादि जन्म प्राप्तिके नि-
मित्त जे कर्म्म सो भी स्वाश्रय शरीर के नष्ट हुए नष्ट होते नहीं
।:–अर्थात् यह जीव अपने कर्म्मों के अनुसार स्थावर जंगमादि
शरीर धारण करताहै तिन सर्व शरीरोंके अनुभव किये जे धर्म्म
कर्म्मादि सो सर्व संस्कार रूपसे इनकी बुद्धिमें रहते हैं, तैसेही
मर्कटादि अनेक जन्मके देनेवाले जे कर्म्म सो भी भविष्यत ज-
न्मों के बीजरूपसे इनके अन्तःकरण में रहते हैं, तिन कर्म्म सं-
स्कारोंमें से जो कर्म्म इन जीवोंको अपना फल भोगावनेके अर्थ
सम्मुख होय अपने अनुसार जन्मका आरंभ करते हैं, तब उस
शरीरके धर्म कर्मों के संस्कार विशेषतासे स्मृतिमें आय स्फुरण
होय विनाही अन्यके सिखाये उस जीवसे उस शरीरके धर्म कर्म्म
करावते हैं। तातें शरीरके नाशहुये 'व्यतीतहुये शरीरों के अनु-

भवकिये धर्म कर्मके संस्कारोंका अरु भविष्यत जन्मोंके आरंभक कर्म्मोंका नाशहोतानहीं——:॥यदि निश्चयकरके पूर्व जन्मोंकी अनुभव बासना सर्वही नष्ट होतीहोवे तो मर्कटादि जन्मके निमित्तक जे कर्म्म तिन कर्म्मोंकरके मर्कट जन्मविषे होते जे मर्कट के जन्ममात्रसेही माताके उदरकी संलग्नता अर्थात् जब उसकी माता मर्कटी (बानरी) एक शाखासे दूसरी शाखापर उछलके गमन करती है तिस समय उस अल्पकालके उत्पन्न हुये मर्कटी के बालक का जो अपनी माता के उदर से संलग्नहोने आदिक विषे जे उसकी कुशलतासो उसको न प्राप्तहोनी चाहिये।क्योंकि इस जन्म में उसको अपनी माता के उदर को सम्यक् प्रकार ग्रहण करने का अभ्यास है नहीं। :—अर्थात् इन जीवोंने अनादि कालसे जो जो जन्म धारणकियेहैं अरु उन असंख्य जन्मों के धर्म्म कर्मादिकों को अनुभव किये हैं, तिन सर्व के संस्कार सूक्ष्मरूप से इसकी बुद्धिमें रहतेहैं, जब यह जीव अपने कर्म्मानुसार जिस जातिमें जन्म पावताहै तब पूर्वानुभूतहोने से उस शरीर के सर्व धर्म्म कर्म इसको स्फुरण होआवते हैं—:॥अतएव इस कहे प्रकार के अनुभव बिचार से उस मर्कट का जन्म पावने वाले जीवात्माके व्यतीतहुये जन्मों में उसका वानर का जन्म नहीं हुआ ऐसा कहने को कोई भी समर्थ नहीं । तथाच " तं विद्याकर्मणीसमन्वारभेते पूर्वप्रज्ञाच "इत्यादिश्रुति। तातेवासना सहित अशेषकर्मोंका नाशहोवेनहीं । अतएव कर्मोंकाशेष रहना संभव है । जब ऐसे है तिसही करके कहा है कि कर्मोंके शेष रहने से जीवोंको संसार (जन्म) की प्राप्ति है । इस विषय में श्रुतिकरके स्मृति करके युक्तिकरके लौकिक प्रत्यक्ष करके किसी प्रकारभी विरुद्ध नहीं ॥ प्रश्न ॥ कौनसा वो मार्ग है कि जिसमार्ग से यह (क्षीणकर्म) चन्द्रलोक से इसलोक विषे आवता है ॥ उत्तर ॥ जैसे गया है तैसे आवता है ॥ शंका ॥ ननु " मासेभ्य पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमिति " मासों से

पितृलोकको पितृलोक से आकाश को आकाशसे चन्द्रमाको, इस क्रममार्ग से गया है, ऐसा श्रुतिने कहा है, परन्तु तैसे निवृत्ति (आगमन) कहा नहीं। अरु जो तैसेही आगमनहै तो "। यथेतमाकाशमाकाशाद्वायु इत्यादिक्रम कैसे कहाहै ॥ समाधान ॥ हे वादी तूने कहा सो दोष नहीं। आकाशकी प्राप्ति से पृथिवी की प्राप्ति तुल्य होने से ॥ यहां "। यथेतमेवेति "। यह जो श्रुतिने कहाहै इसही प्रकार चन्द्रलोक से इसलोक में आवताहै इस प्रकार मार्गका नियम नहीं, किन्तु येन केन मार्ग से पुनः आवताहै इसका तो नियम है। एतदर्थ पूर्व श्रुतिने जो यह कहाहै कि "। यथैतमध्वानं "। सो केवल उपलक्षणमात्रही कहा है ॥:-अर्थात् इस पांचवें मन्त्रमें प्रथम तो यह कहाहै कि "। अथैतमध्वानं "। जिस मार्गसे चन्द्रलोकमें जाताहै उसहीक्रममार्ग से वहां से यहां आवता है। अरु पुनःकहाहै कि "।यथेतमाकाशं"। चन्द्रमंडल से आकाश बिषे आवता है। इन दोनों वाक्योंसे उस क्षीणकर्म्मा कर्मी यजमान के इसलोक विषे आवने बिषयक क्रम मार्ग के नियमका अभाव देखायाहै। क्योंकि इसलोकसे चन्द्रमण्डलको प्राप्त होनेका निमित्त जो इष्टा पूर्त्तादि कर्म्म सो सर्व गृहस्थोंका धर्म्म होने से सर्व कर्मीयों का धूमादि क्रमसे मार्ग एक है। अरु वो कर्म्म चन्द्रलोक बिषे अपना फल देके आप अभाव होते हैं, क्योंकि उन कर्म्मों के फल भोगार्थही यजमानका चन्द्रलोक में गमनहै, उन कर्म्मोंका फल भोग इस लोक बिषे बने नहीं, ताते वो इष्टा पूर्त्तादिकर्म अपने कर्त्ता को चन्द्रमण्डल में अपना फल भोगाय आप अशेष अभाव होतेहैं, पश्चात् रहगये जे उन कर्मीयों के अन्य जन्मके अरु इस जन्म के अनभोगे अनेक बिचित्र शुभाशुभ कर्म सो सर्वके सम न होके सम विषम होने से अरु उनमें तारतम्यता होने से जिसके जो कर्म्म इसलोकमें प्राप्त करनेवाले होतेहैं वो अपने अनुकूल मार्ग से उस कर्मी को इसलोक में प्राप्त करते हैं। अतएव श्रुतिने

एक मार्गका नियम न करके वहांसे आवनेका नियमकियाहै—:॥ एतदर्थ वो क्षीणकर्मी यजमान चन्द्रलोक से (बर्फवत् पिघल के) प्रथम तावत् भौतिक आकाश को प्राप्तहोता है। जो उन कर्म्मियों को चन्द्रमंडल विषे शरीरके आरंभक जल सो तिनको चन्द्रलोक विषे उपभोग के निमित्त जे कर्म्म तिनके क्षयहुए वो विलीन होता है। जैसे अग्निके संयोग से घृतका पिंड अपनी काठिन्यता को त्याग के द्रवीभूत होता है तैसे, तिस आकाश विषेविलीनहुए जलके साथ वेष्टित वो कर्म्मी यजमान सो प्रथम अन्तरिक्षस्थ भूताकाश विषे सूक्ष्महुए विलीन होते हैं (यहां जो आकाश को भूताकाशका विशेषण कहाहै सो चिदाकाश से पृथक् करने के अर्थ कहाहै) पुनः वो क्षीणकर्मा यजमान अन्तरिक्षरूप आकाशसे वायु रूप हुआ वायुके विषे लीन होताहै।:— अर्थात् आकाश से वायु कुछ स्थूल होता है, तैसेही प्रथम वो कर्म्मी चन्द्रलोक से घृतवत् पिघल आकाशवत् अति सूक्ष्म जलरूपहुए अन्तरिक्षाकाश विषे लीन होते हैं, तिसके पश्चात् आकाशसे वायुवत् कुछ स्थूलहुए वो क्षीणकर्म्मा यजमान वायुरूप हुए वायुविषे लीन हुएवत् होते हैं, अर्थात् वायुभूतहुए होते हैं। वायुहोके तिनकरके सहितही धूमहोताहै। :—अर्थात् अग्नि का काष्ठादिकों से संयोगविना धूमहोता नहीं, अरु यहां कहाहै कि वायुहोके धूम होता है, तहां वायु वृष्टिका हेतु होनेसे वायु से सूक्ष्म परमाणु रूप भाफ होता हुआ, ऐसा मानना युक्त है, अरु जैसे आकाश से वायु स्थूल है तैसे वायु से भाफ कुछ स्थूल है ताते वो क्षीणकर्मा यजमान वायु से स्थूल धूम शब्दका वाच्य भाफ होताहै—:। धूम से अभ्रहोताहै (भाफका विशेषरूप अभ्रहै) कि जिसके देखने से मेघ अरु वर्षा होने का अनुमान होता है ५॥

———

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहि यवा ओषधि वनस्पतयस्तिल माषा इति जायन्ते ऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

अभ्र होयके मेघ होताहै, मेघ होयके प्रकर्ष वर्षा होतीहै (वर्षताहै) तब यहां व्रीहि (धान्य) यव ओषधि वनस्पतियां तिल उडद इत्यादि अन्नरूपसे उत्पन्न होतेहैं, अतएव निश्चय करके अतिदुःखसे निकलतेहैं जो जो अन्न खातेहैं जो रेतको (स्त्रीविषे) सिञ्चन करते हैं तब सो तिसके सदृशही होताहै ६ ॥

भावार्थ मन्त्र छठें का ६ ॥

हे सौम्य राजा जैबलि कहता है कि हे गौतम। अभ्रहोयके तिसके अनन्तर सेचनकरने की सामर्थवाला मेघ होय उन्नत (ऊंचे) प्रदेश विषे प्रकर्ष करके वर्षताहै। अर्थात् चन्द्रमंडल से उक्त क्रम करके आये जे शेषकर्मा यजमान सो वर्षा की धारारूप हुए 'अर्थात् जलधारा विषे अनुगतहुए पृथिवीपर गिरते हैं। तब यहां पृथिवी बिषे, व्रीहि (धान्य) यव, ओषधि, वनस्पतियां, तिल, माष (उडद) अरु इनसे इतर मूँग, मसूर, गेहू, बाजरा, ज्वार, इत्यादि अनेक अन्नरूपसे, वो क्षीणकर्म्मा उत्पन्न होतेहैं। यहां जो बहुबचनसे निर्देश है सो उन क्षीणकर्म्माओंको अनेक होनेसे है। अरु पूर्व जो मेघादिकोंको एक बचनसे कहाहै सो उनके उनके एकरूप होनेसे कहाहै। अरु जिसकरके उन सहस्रावधि जलधाराओंमें अनुगतहुये जे क्षीणकर्म्मा यजमान सो उनजलधाराओंके सहितहुये पर्वत, तट, दुर्ग, नदी, समुद्र, अरण्य, मरुदेश, आदि स्थानोंमें। गिरे तिनबिषे प्रवेशको पावते हैं। तिस हेतु से निश्चय करके उनका दुःखसे भी दुःखतर निकलनाहै। जिसक-

रके पर्वतके ऊपर नीचे निकटसे वो वर्षाका जल प्रथम अनेक छोटे छोटे श्रोत होय पश्चात् परस्परमें मिल नदी भावको प्राप्त होतेहैं तिसके अनन्तर वो नदी समुद्रको प्राप्तहोती है, तिसके अनन्तर उस जलको मकरादि भक्षण करतेहैं, तब तिसजलके भक्षण करनेके साथ उस जलमें अनुगत हुए क्षीणकर्म्मा सो भी मकरादि करके भक्षण किये होते हैं, सो मकरादि अन्यों करके भक्षण किये होते हैं ।:-अर्थात् बर्षाकी धाराके सम्बन्धसे नदी समुद्रादि जलाशयों में पतन हुए क्षीणकर्मा मकरादि रूपसे प्रकटहोते हैं वा उनको मीन मकरादि भक्षण करते हैं, तब उनके उदरमें जाय उनके वीर्यरूपसे प्रकटहो मकरादि रूप जन्मको पावते हैं। वा उन मकरादिकों के उदर में जाय उनके किसी प्रकार अभावहुए पुनः उस जलमें जलरूपहुए रहते हैं-:। तब पुनः जब उस समुद्रादिकों के जलको मेघ वा सूर्य्य आकर्षण करते हैं तब वो क्षीणकर्म्मा भी जलके साथ आकर्षित हुये पुनः उन बर्षाकी धाराओं करके सहित हुये मरुदेशविषे वा शिलातटबिषे, वा किसी अगमदेश बिषे गिरके वहीरहतेहैं, वहां उन जल रूपहुये को जो कदापि उनके कर्मानुसार मृगादि पशु पानकरते हैं तो उन करके भक्षण किये क्षीणकर्म्मा ।:—उनके उदरमें वीर्यरूप होय मृगादिरूप पशुओंके जन्मपावते हैं-:। वा वो जिन मृगादिकों करके भक्षण किये होते हैं तिन मृगादिकों को अन्य किसी सिंहादिकों ने भक्षण किया तो उसके उदरमें जाय वीर्य्य भावको पाय सिंहादिकों का जन्म पावतेहैं। इसप्रकार शुभकर्म जिनका क्षीणहुआ है ऐसे जे क्षीणकर्मा यजमान सो अपने अवशेषरहे अशुभ कर्म्मों के अनुसार उक्त प्रकार से परिवर्त्तन को पावतेही रहते हैं ॥ अरु जो कदापि अभक्षण करनेवाले स्थावरों विषेप्राप्तहुये तो वहांही सूखगये।:-अर्थात् जो कदापि वो क्षीणकर्म्मा यजमान अपने कर्मानुसार वृक्षादि स्थावर योनिको प्राप्त हुआ अरु कर्मानुसार उसही जातिके वृक्षके दो चार जन्म

पावते हैं तो उस वृक्षके बीजमें आय पुनः पृथिवी जल के संयोग को पाय पुनः उस वृक्षाकार से प्रकट हुए, अरु जो कदाचित् वृक्षकी योनिसे पशुआदि जंगम योनिके प्रापक कर्म उदय हुए तो उन्होंने जिस जातिके पशुओं में प्राप्त करना है उसके उदरमें प्राप्तकिया तब वहां उसके वीर्यरूपसे प्रकटहो पुनः उस पशु जातिके जन्मको पाया, वा उसही वृक्षमें सूख सूर्यकी किरणों द्वारा मेघभाव को प्राप्त होय पुनः जहां कहीं कर्म्मोंको प्राप्त करना है तहां वर्षाद्वारा पुनः पतनको पावता है—:॥ हे सौम्य स्थावर योनिसे जिन योनियों में रेत होके स्त्री में सिंचन हुए जन्म पावना है सो दुर्लभ है ।:—अर्थात् स्थावर योनिसे जंगम योनि की प्राप्ति किंचित् पुण्य कर्म्मवाली होने से दुर्लभ है, तिनमें भी वीर्य से अर्थात् माता पिता के संयोगसे वीर्य करके प्राप्त होनेवाला जन्म दुर्लभ है, (स्वेदादिकों से उत्पन्न होने वाले जंगम जन्मों से पशु आदिक जेरज जन्म दुर्लभ है। अरु जैसे व्रीहि आदिक अन्नादि भावकी प्राप्ति से निकलना अतिही दुस्तर है, तैसेही जंगम भावसे निकलना अतिदुस्तर है। अरु अन्नादिकों के साथ पुरुषके उदरमें जाना यह भी अतिही दुःख रूप दुःखका हेतुहै, क्योंकि जो कदापि वो क्षीणकर्म्मा यजमान अपने अशुभ कर्मोंका प्रेरयाअन्नद्वारा होयके जो कदापि, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के वा बालकके वा नपुंसक के वा संन्यासी के वा बिधवा स्त्री के इत्यादि, मनुष्यों के भक्षण किये अन्नद्वारा उन के उदरमें आय वीर्यरूप से उत्पन्न भी हुआ उनके अन्तरही नष्ट होगये, क्योंकि उनबिषे वीर्यरूप हुए भी स्त्री संगके अभाव से शरीरोत्पत्ति का अभावहै ताते। अरु जो कदाचित् कोई शुभ कर्म्मोंका प्रेरया यदि रेतके सिंचन करने के अधिकारवाले गृहस्थके भक्षण किये अन्नद्वारा उसके उदरमें आय रेतभावको प्राप्त होनेवाले उस क्षीणकर्म्मा यजमानको कर्मकरनेकी वृत्तिका लाभहोताहै ।:—अर्थात् गृहस्थ (स्त्रीवाले पुरुष) के भक्षण किये

अन्न के साथ अपने कर्म्मानुसार उसके उदरमें प्राप्तहुआ जो चन्द्रमंडल से आया क्षीणकर्म्मा यजमान सो प्रथम वीर्य्य रूपसे प्रकट होता है—:पश्चात्, वो गृहस्थ पुरुष ,कि जिसके वीर्य्य में क्षीणकर्म्मा प्राप्तहुआ है, यथाविधि ऋतुकाल के समय अपनी स्त्री में उस वीर्य्य को स्थापित करताहै तब तिसहीके आकार।:— अर्थात् मनुष्यकरके सिंचन किये वीर्य्य से स्त्रीके गर्भमें मनुष्याकारही प्रकटहोताहै—:।रेतसे रेतके सिंचन करनेवाले के आकार से प्रकट होताहै । तथाच "।सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजःसम्भूतमितिहि, श्रुत्यन्तरात्" ।अर्थ यह जो सर्व अंगोंका सारभूत रेत सर्व अंगों से एकत्रहोय उपस्थद्वारा स्त्री के गर्भ में जाय जिसके सर्व अंगों से एकत्रहोय आया है तिस रेत सिंचन कर्त्ता के आकार से प्रकट होताहै ॥:—अथवा ऋतुकाल में जब पुरुष स्त्री संग करता है अरु ईश्वर इच्छा से जब उसके वीर्य्य से गर्भाशय में गर्भ रहने को होता है तब तिस दिन उस पुरुष के नेत्रद्वार से उस स्त्री के मुखकी छाया वीर्य्य के स्खलित समय वीर्य में पड़ती है तब उस छायाको ग्रहणकरके वीर्य स्त्री के गर्भाशय में स्थित होय तिस छाया के अनुसार आकृतिका आरंभकहोता है । ताते जो मनुष्य उत्पन्न होताहै सो प्रायः अपनी माताकी मुखाकृतिसे मिलीहुई मुखाकृतिवाला होता है । सो लोक बिषे भी कहते हैं "।मापतपूत"।अरु जो कदापि वीर्य्य के स्खलित होने के समय विषयानन्द के तीव्र संवेग करके परस्पर के दृढ आलिंगनके हुएदोनों की दृष्टि न मिली तो मैथुनके (वीर्य्यस्खलितहुएके) अर्थात् वीर्य के गर्भाशयमें जाने के, पश्चात् अपने पति से इतर जिसका मुख वो स्त्री प्रथम अवलोकन करे कि तिसके मुख की छाया नेत्रद्वारा गर्भाशय के वीर्य में पड़ेगी तिसकी मुखाकृत्ति के समान आकृतिवाला गर्भ प्रकटहोवेगा, इत्यादि प्रकार कल्पित विचार है—: ॥ एतदर्थही पुरुष से पुरुष उत्पन्न होताहै, गौ से गौकी आकृतिवाला प्रकट होता है, जात्यन्तर आकृति

उत्पन्न होवे नहीं। :–अर्थात् मनुष्य से गौ अरु गौसे गज इस प्रकार अन्य जातिसे अन्य जातिकी उत्पत्ति होवे नहीं–:। एतदर्थ ही श्रुतिने कहाहै कि "तद्रूयएवभवति" अरु जे अन्य कर्मी "अनुशयि" चंद्रमंडल से स्खलित अतिघोर पाप कर्म्मों करके ब्रीहि यवादि भावको प्राप्त होते हैं सो यावत् उनके घोर पापों का क्षय होता नहीं तावत् वो उसही में पड़े रहते हैं, वा उसही में घुन नामक कीट विशेष होय अभाव होजाते हैं। जब उनके घोर पाप निवृत्त होते हैं तब वो मनुष्यादि भावको प्राप्त होतेहैं। ताते उनको ब्रीहि यवादि भावसे निकलना अतिकठिन से भी कठिन होताहै। क्योंकि कर्म्मों करके ही तिन्होंने अपने बिषे ब्रीहि आदि भाव प्राप्त कियाहै, ताते ब्रीहिआदि भावरूप उपभोग के निमित्त जे कर्म्म तिनके क्षयहुये ब्रीहि तृणादि जड़ रूप देहके विनाशहुये जैसे जैसे कर्म्मों करके तिनके संस्कार रूप बीज से देहको ग्रहण किया है तैसे तैसे नये नये देहान्तर को तृण जलूकावत् ग्रहण करता चलता है, सो विज्ञान (बुद्धि युक्तही चलताहै। तथाच "संविज्ञानोभवति विज्ञानमेवान्ववक्रामति, इति श्रुत्यन्तरात्" तिसबिषे में बृहदारण्यकी श्रुतिप्रमाण है। यद्यपि चक्षुरादि कारणों से रहित हुआही एक देहको त्याग देहांतर को जाताहै। तथापि जैसे स्वप्नके देहकी प्राप्तिके निमित्त कर्म्मों करके उद्भावित बासना के ज्ञान से सहित विज्ञान के ही देहांतर को जाताहै क्योंकि इस विषय में बृहदारण्य की उक्त श्रुतिही प्रमाणहै, तैसेही पूर्व कर्म्मों के अरु अनुभूत देहों के विज्ञान बासना के संस्कार करके युक्तही अर्चिरादि मार्ग अरु धूमादि मार्ग से जानेवालों की गतिहै। जैसे स्वप्नमें पूर्व बासना संस्कार वश उद्भूत विज्ञान करके कर्म निमित्त करके वृत्तिके लाभ से व्यापार है तैसे देहांतर को प्राप्त होनेवाले को कर्म के निमित्त से विज्ञान वृत्ति का लाभ है, क्योंकि गर्भमें विज्ञान वृत्ति के लाभ से पूर्वानुभूतका स्मरण अनुभव होता है, तैसे जो जीव ब्रीह्यादि

भावसे उत्पन्न होते हैं तिनको विज्ञान वृत्तिका लाभ नहीं ।:- अर्थात् जैसे जाग्रत् के कर्म्म अनुभव के संस्कार के स्वप्नमें तिन संस्कारों के आश्रय विज्ञान का उद्भूत होता है, तैसेही अर्चिरादि अरु धूमादि मार्ग से सत्यलोक अरु चंद्रलोक के जानेवालों के यहां के किये शुभकर्म अरु अनुभव तिनके संस्कार से कर्म्मों के निमित्त से अरु पूर्व के अनुभूत के विज्ञान करके गमनकी वृत्ति का लाभ है। तैसे चंद्रलोक से आवनेवाले कर्मीको कि ब्रीहि आदि जड भावसे उत्पन्न होते हैं तिनको कर्म्मों के क्षयके निमित्त से विज्ञान वृत्तिका लाभ नहीं। ब्रीहि आदिकों के काटने छाटने पीसने आदिक बिषे सविज्ञानों की स्थिति है नहीं। पुनः सविज्ञानकोही वीर्यका जब स्त्रीके देहसे सम्बन्ध होता है तबहीं उत्पन्न होता है ॥ शंका ॥ ननुतृणसे तृणान्तर प्रति जलूकाके गमनवत् चंद्रमंडल से गिरनेवाले का देहसे देहांतर प्रति गमन को तुल्यता होनेसे सविज्ञानसेही होना उक्तहै। उ०। तैसा होने से घोर नरक का अनुभव होगा ।:-अर्थात् सामान्य दुःखका अनुभव होता है अतिघोर का नहीं, क्योंकि अतिघोर दुःख से मूर्च्छाहोती है मूर्च्छा से विज्ञान नष्टहोता है तिसके नष्टहुये अनुभव होवे नहीं, अरु ब्रीहि यवादि भावकी प्राप्तिवाले को लवन पेषणादि करके अतिघोर दुःख के हुये सविज्ञानता रहे नहीं अतएव घोरनरक के दुःखका अनुभव भी बने नहीं-: ॥ शंका ॥ इष्टापूर्त्तादि करनेवाले को चंद्रमण्डलकी प्राप्ति से आरंभ यावत् ब्राह्मणादि जन्म अस्तु। परंतु तैसाहोने से, अर्थात् [इष्टापूर्त्तादि कर्म करनेवालों को अन्त में नरक का अनुभवहै तो तैसा होने से इष्टापूर्त्तादि उपासन केवल अनर्थ के अर्थही हुआ, अरु इष्टापूर्त्तादि कर्म्म को बिहितहोने से श्रेयःसाधक विषयता है, ऐसी जे कर्म्मकाण्ड की श्रुति तिससे विरोध आवता है] श्रुति को अप्रामाण्यता प्राप्त होती है क्योंकि वैदिक कर्मको अनर्थका हेतु होने से, इसप्रकार की शंका के हुये कहते हैं। समाधान।

हे वादी जो तू कहताहै सो नहीं । वृक्षपर चढ़के पतन होनेवत् विशेषता का सम्भव है ताते । [जैसे बुद्धि पूर्वक वृक्षपर चढ़ने वालेको सविज्ञानता जानी जातीहै, तैसेही चन्द्रमंडलपर आरोहण करनेवालेको सविज्ञानता होतेसंते भी तहां से गिरनेवाले को सो विज्ञानत्वहै नहीं क्योंकि उस बिषे विज्ञानत्वके उद्भूत होनेके कर्म्मोंका अभाव है] देहसे देहान्तरकी प्राप्तिवाले को कर्म करवे वृत्तिका लाभहै ताते । एतदर्थ कर्मों करके उद्भूतहुए विज्ञान से सविज्ञानत्व युक्त है । जैसे वृक्षके अग्रभाग में लगे फल की इच्छावाले को सविज्ञानत्व है । तैसे अर्च्चिरादि मार्गसे जानेवालेको, अरु धूमादिमार्ग से जानेवालेको सविज्ञानत्व होताहै ।ः—अर्थात् अर्च्चिरादि अरु धूमादि मार्गसे जानेवाले को विज्ञान के उद्भूतककर्म्मोंका भावहोने से उनको सविज्ञानत्वहै—ः। तिसप्रकार चन्द्रमंडल से पतन होनेवाले को सविज्ञानत्व नहीं, सचेतनत्वहै (क्योंकि विज्ञानके उद्भूत होनेके कर्म्मोंका अभाव है ताते । जैसे वृक्षके अग्रभागसे पतन होनेवाले को सचेतनत्व है सविज्ञानत्व नहीं) दृष्टान्त जैसे मुद्गरादिकोंके घातसे सम्यक् ताड़ित हुएको तिन मुद्गरादिकों की घातसे हुई जे अतिबेदना तिसके निमित्त से मूर्च्छितहुए करणों के (इन्द्रियोंके) प्रतिबन्ध से स्वदेह करकेही एक देशसे दूसरे देशको प्राप्तकिये को विज्ञान की शून्यताही देखी है । तैसे चन्द्रमंडल से देहान्तर प्रति गिरने वालेको स्वर्ग भोग निमित्तिक कर्मों के क्षयहोने से मृग जल देहके कारणोंका । ताते सो अपरित्याग किये देहके बीज भूत कर्म्मों करके जलरूप से मूर्च्छित हुए आकाशादि क्रमकरके आए हुए कर्म निमित्तक स्थावर जाति के देहसे संश्लिष्ट (तन्मय) होते हैं । ताते प्रतिबन्ध करणों करके (करणोंके प्रतिबन्धकरके) अनुद्भूत विज्ञानहीं होते हैं । ताते ब्रीहि आदिकों के काटने छाटने पीसने आदि संस्कार करके भक्षण किये का रक्तादि रसादिकों का परिणाम रेत तिसको स्त्री बिषे सिंचन

करने काल पर्य्यन्त मूर्च्छितहोताहै, देहान्तरके आरंभक कर्मों की अलब्ध वृत्तिहोनेसे ॥ शंका ॥ [जबचन्द्रमंडल से आवने वाले कर्म्मीयों को विज्ञान शून्य होनेसे पुनः श्रुतिने कैसे कहाहै कि "तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तेगत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मनमुपसं हरति" इत्यादि, जलूकाके दृष्टान्त से सचेतना के उपपादन कियाहै । तहां कहतेहैं] समाधान । देहका बीज भूत जे आप तिसके सम्बन्ध के अपरित्याग सेही सर्व अवस्था बिषे वर्त्तताहै ॥ः—अर्थात् देहोत्पत्तिका कारण जे उक्त जल तिस के सम्बन्धके न त्यागने करके ही वो क्षीणकर्मा व्रीहि यवादिकों से संश्लेषको पायेसन्ते उनव्रीहि आदिकों की लवन कंडन पेषणादि सर्व अवस्था बिषे वर्त्तताहै —ः॥ अरु जलूकावत् चेतनता विरोधको पावती नहीं, अर्थात्] जलूकाके दृष्टान्तसे चेतनपना विवक्षितनहीं किन्तु संसरणमात्रही विवक्षितहै ॥ः—ताते उस क्षीणकर्म्मा का व्रीहि आदि भावको प्राप्तहुए चेतनता के अभाव से जलूका के दृष्टान्त से चेतनता का विरोध नहीं क्योंकि यहां केवल संसरणमात्रका ग्रहण है ताते—ः॥] अरु अन्तरालबिषे तो मूर्च्छितवत् अविज्ञातता दोषहै [जो 'ऐसाकहो कि, तो इष्टादि कर्म्मों को हिंसा अनुग्रहात्मक होने से स्थावर भावकी प्राप्ति भी तिसका फलही है, अरु तैसाहोने से वैदिक कर्म्मोंको अनर्थानुबन्धित्वहोनेसे अप्रामाण्यता प्राप्तहोतीहै । ऐसी शंकाके हुए कहतेहैं] वैदिक कर्म्मोंको अर्थ अरु अनर्थ (परस्पर विरोधी होने से) उभयहेतुत्व अनुमान करने को शक्यनहीं "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः इतिश्रुतेः" शास्त्र करके कहीं हिंसा तिसको अनर्थका हेतुपना अंगीकार होता नहीं । अरु जो कदापि उसको अनर्थका हेतुपना अंगीकारहो तो भी मन्त्रों करके विषआदिकोंके दोषके अभाववत् (वेदोक्तमन्त्रसेतिसअधर्मका) अभावहोताहै वा युक्तहै । [जैसे स्वरूप करके विष अरु दधि आदिक मरणरूप अनर्थ के आरंभकहैं ॥ः—अर्थात् संखिया आदिक

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्यासो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्य योनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्यासो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिंवा शूकरयोनिं वा चाण्डाल योनिं वा ७॥

साधारण अरु सर्पादिकोंका असाधारण विष, अरु ज्वरमें भोजनकिया दधि मरणरूप अनर्थ के उपजावनेवाले हैं—ः। सो तैसे होतसन्ते भी मन्त्रकरके विष अरु शर्करा करके युक्त होने से दधि मरणरूप अनर्थ के आरंभक होते नहीं] वेदोक्त कर्म्मों को दुःखरूप कार्य्य के आरंभ करनेपनेकी उपपत्ति नहीं। मन्त्रकरके ही विष भक्षण का इति [पूर्वोक्त दृष्टान्तको स्पष्टकरते हैं, तिस (मन्त्र) करके ।:—वा अन्य अनूपान युक्तिकरके—ःयुक्त भक्षण किये विषका अनर्थ का अहेतुपनाकरके पुष्टिका हेतुपना है, तैसे वैदिककर्म बिषे जो प्रविष्ट हिंसाहै तिस हिंसाकरके पुरुषार्थ ही सिद्धहै] ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

तहां जो इसलोक बिषे शुभाचरणका अभ्यासवाला है सो प्रसिद्ध शुभ योनियों को प्राप्तहोता है, ब्राह्मण योनिको वा क्षत्रिय योनिको वा वैश्ययोनिको। अथवा जो इसलोकबिषे अशुभाचरणके अभ्यासवालाहै सो अशुभयोनिको प्राप्तहोता है तहां श्वानयोनिको वा शूकरयोनिको वा चाण्डालयोनिको ७॥

भावार्थमन्त्रसातवेंका ॥

हे सौम्य, ["तद्भूयएवभवति" इस श्रुति वाक्यसे यह प्रसंग करके प्राप्तहुई प्रासंगिक कथा तिसको परिसमाप्त करके अरु जिसके कहने का आरंभकियाहै तिस प्रकृत श्रुतिका व्याख्यान करते हैं] तिन क्षीणकर्म्माओं के मध्य ।:— जो चन्द्रलोक से पतन पाय व्रीहि आदि भावको प्राप्त हुये हैं—ः। जो इस

लोक बिषे रमणीय चरणाहैं । अर्थात् शुभ कर्मोंके करनेका सुन्दर स्वभाव है जिनका तिनको कहिये रमणीय चरणा । तिस रमणीय चरण करके उपलक्षित जे शोभन क्षीणकर्माको पुण्यकर्म हैं जिनके तिनको रमणीय चरणा कहते हैं । अर्थात् क्रूरता असत्यभाषण कपट इत्यादि (आसुरी सम्पदा करके) बर्जित (रहित) को ही रमणीय चरणापनेका उपलक्षणत्वयुक्त है । अर्थात् उक्त प्रकार के पुरुष को ही रमणीय चरणत्वपना रूप उपलक्षणत्व होने को शक्य है ।:—अर्थात् चन्द्रमंडल की प्राप्ति होने से पूर्व इसलोक विषे इष्टापूर्त्तादि विहिताचरण से इतर जे सत्य दया आर्जवता आदि दैवीसम्पदा रूप शुभाचरण करने के अभ्यासवाले, रमणीय चरणा है–:। सो अपने इष्टादि पुण्य कर्म्मों करके चन्द्रमंडलके ऊपर अपने इष्टादि कर्म्मोंका फलभोग तिनके क्षय हुए अरु इसलोक में किये दैवीसम्पदा शुभाचरण रूप कर्म्मोंके अवशेष रहे तिनके पूर्वाभ्यास बल प्रभावसे चन्द्रमंडल से पतन होय यथाक्रम व्रीहि आदि भावको पाय रेतरूप हुए क्रौर्य्यादि बर्जित रमणीययोनिको प्राप्तहोते हैं ॥:—॥ प्रश्न ॥ कौन वो रमणीय योनि हैं ॥ उ० ॥—:।ब्राह्मण योनिको वा क्षत्रिय योनिको वा वैश्य योनिको, अपने अपने कर्मानुसार प्राप्त होतेहैं ।:—अर्थात् चन्द्रलोक को प्राप्तहोनेवाले कर्मियोंको इस लोक बिषे इष्टापूर्त्तादि विहित कर्मों से इतर भी अभ्यास द्वारा स्वभाव भूतहुये, सत्य दया आर्जव अकुटिलतादि दैवीसम्पदा के लक्षण रूप सत्त्वगुणात्मक अति उत्तम कर्म्म हैं सो चन्द्रलोकसे उक्त मार्गके क्रम करके इसलोकमें आय ब्राह्मण योनि को प्राप्तहोते हैं, अरु जिनके उक्त कर्म मध्यमहोते हैं सो क्षत्रिय योनिको प्राप्तहोते हैं, अरु जिनके उक्त कर्म निकृष्ट होते हैं सो वैश्ययोनिको प्राप्तहोते हैं–:॥ पुनः तिन उक्तप्रकार के रमणीय चरणा अभ्यासियों से विपरीत जे कपूय चरण करके उपलक्षित अशुभ कर्म्मों के करने के अभ्यासवाले अशुभ कर्मी हैं

।:-अर्थात् जिन पुरुषों को इसलोक बिषे इष्टापूर्त्तादि विहित कर्म से इतर रजतमात्मक आसुरी सम्पदा लक्षणरूप कर्म्मों का अभ्यास है-: । सो पुरुष अपने कर्म्मानुसार योनियों को जो कर्म सम्बन्ध से वर्जित (रहित) केवल अधम योनि हैं तिनहीं को प्राप्त होते हैं । :-अर्थात् जो पुरुष इष्टापूर्त्तादि विहित कर्म करत सन्ते अशुभ कर्म्मों के अभ्यास वाले हैं सो चन्द्रलोक में अपने इष्टादि विहित कर्म्मोंका फल भोग तिनके क्षयहुए क्षीण कर्म्मा होय अपने पूर्व के अशुभ कर्म्मों के संस्कारों के अवशेष रहे चन्द्रलोक से पतनको पाय उक्त क्रमसे व्रीहि आदि भाव से उत्पन्न हुए पश्चात् अपने २ अशुभ कर्म्मों के अनुसार श्वानादि अशुभ पशुओं करके भक्षण किये उन के उदरमें जाय वीर्यभाव को पाय अति अधमयोनि को प्राप्त होते हैं ।-: । प्रश्न । कौन सी वो अधमयोनियां हैं कि जिनको उक्त प्रकारके अशुभ कर्मा-भ्यासी प्राप्त होते हैं ॥ उत्तर । वो पुरुष श्वानयोनि को वा शूकर योनि को वा चाण्डाल योनिको प्राप्तहोते हैं ॥ :-यहां जो श्वान योनि अरु शूकरयोनि कही है तिनको उपलक्षण मात्र ग्रहण करके अति अशुभ कर्म्माभ्यासियों को श्वानादि अति अशुभ योनि की प्राप्ति जाननी, अरु जिनको तिनसे कुछ न्यून अशुभ कर्मों का पूर्वला अभ्यास संस्कार है तिनको अश्वादि पशुयोनि की प्राप्ति जाननी । अरु जिनको पूर्व के साधारण अशुभ कर्मों के संस्कार हैं सो अपने कर्म संस्कारवश मनुष्यों में अति अ-धम चाण्डालादि योनियों को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार अशुभ कर्म्मों के अभ्यासी पुरुष अपने इष्टादि विहित कर्म्मों का फल चन्द्रलोक में भोग तिनके क्षयहुए इसलोकमें आय अपने अशुभ कर्म्मों की सामान्य विशेषतारूप तारतम्यताके आश्रय हुए उक्त प्रकारकी अशुभ योनियों को प्राप्त होते हैं ॥ अर्थात् शुभ कर्म्म करने से द्विजाति जे वरणत्रयिके पुरुष सो अपने इष्टादि कर्मों करके धूमादिमार्गसे चंद्रलोक को अरु चन्द्रलोक से इसलोक में

अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्य सकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयंस्थानं तेनासौ लोको न सम्पूर्य्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ८ ॥

आवतेजातेही रहतेहैं घटीयंत्रवत् उनका आवागमन मिटतानहीं अरु जो कदापि वो पंचाग्नि विद्याको प्राप्तहोते हैं तो वो अर्चिरादि मार्ग से सत्यलोकको जाते हैं उनकाइस कल्पमें पुनरागमन न होयके वो कल्पान्तर में आवते हैं ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ यह जो कहे दोमार्ग न जायके अन्यतरमार्ग करकेहीजाते हैं तिनको यह (उक्त प्रकारकी योनि) न प्राप्तहोके अतिक्षुद्र (तुच्छ) कीट मशकादि योनि अनेकबार प्राप्त होती है अरु वो जन्मते मरते रहते हैं । ताते यह तृतीयस्थान (गति) है । तिस करके स्वर्गलोक पूर्ण होता नहीं । ताते घृणा करते हैं, तहां श्लोक (मन्त्र) प्रमाण है ८ ॥

भावार्थ मंत्र आठवें का ॥

हे सौम्य ' राजा जैवलि कहताहै कि हे गौतम ' जो कदापि वर्णत्रयिमें का पुरुष न तो पंचाग्नि विद्याको सेवताहै न इष्टापूर्त्तादि कर्म्मको सेवताहै।:——अर्थात् जो पुरुष न तो इष्टापूर्त्तादि कर्मानुष्ठान पूर्वक पंचाग्निकी उक्तप्रकार विद्यारूपसे उपासना करताहै जो अर्चिरादि मार्ग क्रमसे सत्यलोककी प्राप्तिरूप अमृतत्व प्राप्तिका हेतुहै । अरु न केवल इष्टापूर्त्तादि कर्म्मों को ही यथा शास्त्रविधि करता है ' जो धूमादि मार्ग क्रमसे चन्द्रलोक रूप स्वर्ग प्राप्तिका कारणहै——:॥ सो तिसकरके ' अर्थात् उक्त प्रकारके कर्म्म उपासना न करने करके ' कहे जे अर्चि धूमादि लक्षणवाले दो मार्ग तिनको अन्य किसी प्रकारसे भी पावते नहीं तब जिसकरके इन कीट पतंग मच्छर जूआं खटमल आदि अति

अल्प जीव भावको पाय अति अल्पकाल स्थितहोय असंख्यबार उपजते मरतेही रहते हैं—:। ताते जो उक्त उभय मार्ग से परि- भ्रष्ट हैं सोई बारम्बार कीट पतंगादि भावसे जन्मते मरतेही रहते हैं। :—अर्थात् जे कर्म्म उपासना से रहित यथेष्ट पापा- चरण करनेवाले हैं तिनको मनुष्याकृति कीटपतंगादि अतितुच्छ जीवही जानने—:। तिन उभय मार्ग से भ्रष्टों को निरंतर जन्म मरण होने यह अनुकरण कहते हैं "। जायस्वम्रियस्वेति "। इस श्रुतिवाक्यकरके ईश्वर निमित्त की चेष्टा कहते हैं [जो कि (सर्व का नियन्ता) सर्वेश्वरहै सो मनुष्यों को। :—जोकि उन के कल्याणार्थ आपही ने अपनी वेदरूपा आज्ञासे प्रकाशितकिये हैं तिन—:। मार्गद्वयसे ' अर्थात् उत्तरायण अरु दक्षिणायन इन मार्ग दोनों से भ्रष्टदेखताहै, तब (तिन पर कुपित होय)बार- म्बार कीटादि भाव से जन्मों अरु मरों, इस प्रकार की प्रेरणा करताहै सो यहां कहतेहैं] जन्म मरणरूप लक्षण करकेही काल का जानना होताहै नतु शोभनकर्मों बिषे वा भोगों विषेकालका अस्तित्व जाना जाताहै यह अर्थ है। यह कीटादि क्षुद्र जंतु लक्षण रूप तृतीय ' जो पूर्वोक्त दोनों मार्गों की अपेक्षा से, स्थान है सो उक्त दो मार्गों से भ्रष्ट पापाचरण करनेवाले संसृतों का स्थान है॥ जिस करके इस प्रकार दक्षिण मार्ग से जानेवाले भी पुनः उक्त क्रमसे इस लोक बिषे आवते हैं। अरु जो बिद्या कर्म से अनधिकृत हैं।:—अर्थात् जिन मनुष्यों को उक्त प्रकारके कर्म उपासना का अधिकार नहीं—:। सो दक्षिण मार्ग से चन्द्रमं- डल रूप स्वर्गलोकको जाते नहीं, ताते "तेनासौ लोको न सम्पू- र्यते" तिस करके स्वर्गलोक पूर्णहोता नहीं, अर्थात् भरतानहीं। इस कहनेसे पंचाग्निकरके पंचम प्रश्नका व्याख्यानकिया॥ :—। अर्थात् पूर्व राजा जैवलिने श्वेतकेतु के प्रति पांच प्रश्न कियेरहे तिनमें चतुर्थ प्रश्न यह रहाकि "। वेत्थ यथाऽसौ लोको न सम्पू- र्य्यता ३ इति "। तू जानता है कि जिसप्रकार स्वर्गलोक पूर्ण

होता नहीं, तब उस प्रश्न का उत्तर श्वेतकेतुको न आया । तिस प्रश्न का उत्तर राजाने उद्दालक प्रति कहा–: । अरु प्रथम प्रश्नका उत्तर दक्षिणायन उत्तरायण मार्ग करके निर्णय किया ।:–अर्थात् पूर्व राजाने श्वेतकेतु से प्रथम "यदितो ऽधिप्रजाः प्रयन्तीत" यह प्रश्न किया रहा कि जिस प्रकार यह सर्व प्रजा नीचे से ऊपरको जाती है तिसको तू जानता है । तिस प्रश्नका उत्तर राजाने उद्दालक प्रतिकहा –:॥ अरु दक्षिणायन उत्तरायण मार्गोंका व्यावर्तन (पृथक् २) होना भी कहा ।:–अर्थात् उक्त दो मार्गों के सेवियों का मरणोत्तर अग्नि में दाह होना समान है । तिसके अन्तर उनका पृथक् होना होता है, तहां उत्तरायण वाले अर्चिरादि मार्ग से, इतर, दक्षिणायन मार्ग वाले, धूमादि मार्ग से जाते हैं । पुनः उत्तर दक्षिण अयन करके षण्मासको प्राप्तहोय,एक संवत्सर के अवयव बिषे दोनों मिलते हैं । पुनः वहां से पृथक् होय अपने अपने मार्गोंको जाते हैं तहां उत्तरायण वाला उत्तरायण के षण्मास से आगे संवत्सर को 'संवत्सर से आदित्य को, इस प्रकार प्राप्तहोता जाताहै । अरु दक्षिणायनवाला दक्षणायन के षण्मास के आगे पितृलोक को प्राप्तहोताहै, सो व्याख्यान किया ।:––अर्थात् पूर्व राजा जैवलिने श्वेतकेतुसे तीसरा प्रश्न यह कियारहा कि "वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयानस्यच व्यावर्त्तना" तू जानता है कि देवयानका अरु पितृयानके मार्ग जहांसे भिन्न २ होते हैं । तिसका उत्तर राजाने उद्दालक से उक्त प्रकार करके कहा–:।अरु क्षीणकर्माओंका पुनरावर्त्तन जिसप्रकार चन्द्रलोक से आकाशादि क्रमकरके होता है सोभी कहा ॥ :–अर्थात् राजा जैबलि ने पूर्व श्वेतकेतु से द्वितीय प्रश्न यह किया रहा कि "वेत्थ यथा पुनरावर्तन्ता" तू जानताहै जिस प्रकार फेर आवतेहैं । तिसका उत्तर भी राजा ने उद्दालक से कहा –: । अरु स्वर्ग लोककी अपूर्णताको स्व शब्द करके कहा कि "तेनासौ लोको न सम्पूर्य्यत इति" तिसकरके स्वर्गलोक पूर्ण नहीं होता

जिस करके ऐसाहै तिस करके संसार गति अति कष्टतरा है, तिस हेतुसे इस संसारगति से घृणा कहिये ग्लानि करते हैं। अरु जिस करके बारम्बारके जन्म मरण से उत्पन्न हुई जो वेदना तिसको अनुभव करके तिनको क्षणमात्र भी अन्यत्र (सुख) नहीं॥—अर्थात् देवयान पितृयानकी कर्मगति से भ्रष्ट कीट पतंगादि क्षुद्रजीव भावकी प्राप्ति रूप तृतीयस्थानवाले को निरन्तर जन्म मरणहोने से सर्व क्षण अति दुःखही है—:।अरु कीटादि क्षुद्र जन्तु (जीव) जन्ममरण लक्षण रूप अतिदुःखमय अति अपार महाघोर दुस्तर समुद्रविषे प्रवेशको पाये निकसने की आशासे रहित निरालम्ब अत्यन्त दुःखी हैं जैसे कोईनकोई करके रहित महा अगाध अपार दुस्तर समुद्रमें निमग्न निकलने की आशासे रहित अतिदुःखित होताहै तैसे। तिसहेतु से इसप्रकार की अति घोर कष्टतर संसारगति देख विवेकी उक्त प्रकार की संसार गतिसे मुक्त होनेकी इच्छावाले इस उक्त प्रकारकी संसार गति को देख तिससे दोष दर्शनपूर्वक अति ग्लानि करते कहते हैं कि इस प्रकारके महाघोर संसार रूप महा समुद्र विषे हमारा पात कहिये गिरना कदापि मतहो॥:—अर्थात् जैसे तृतीय स्थान रूप कीटपतंगादि जन्म मरणको पावते हैं तैसे इष्टा पूर्त्तादिकों के करनेवाले जन्म मरणको पावते हैं, ताते जन्म मरण लक्षण रूप दुःखमय संसारकी प्राप्ति दोनोंकोही तुल्य है। ऐसा अनुभव कर मुमुक्षुपुरुष उक्त प्रकारकी संसारगति से मुक्त होने के अर्थ ईश्वर सद्गुरु से प्रार्थना करताहै कि उक्त प्रकारके संसार सागरमें मेरा पात न हो। अरु कीट पतंगादि अतिही अल्पायु अरु क्षुद्र जीव भावकी अरु बारम्बार के जन्म मरण भावकी प्राप्ति महापातकोंसे होती है, तिसकी निवृत्ति पंचाग्नि विद्याके सम्यक् ज्ञान से होतीहै—:। तिस इस अर्थ विषे अरु पंचाग्नि विद्याकी स्तुति विषेअग्रिम कहने का श्लोक (मन्त्र) प्रमाण है ८॥

—○—

स्तेनो हिरण्यस्य सुरांपिबँश्च गुरोस्तल्पमावसन्
ब्रह्महा चैतेपतन्ति चत्वारः पञ्चमाश्चाचरँस्तैरिति॥९॥
अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्निन् वेद न सहस्तैरथा
चरन् पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति
य एवंवेद य एवंवेद ॥ १० ॥ इति दशम खण्डः १० ॥
इति छान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठके पंचाग्निविद्यासमाप्ता ॥

अक्षरार्थ ॥

सुवर्णका चुरावने वाला, ब्राह्मण मद्यपान कर्त्ता, गुरुकी स्त्री से भोग करने वाला, ब्राह्मण का बधकरनेवाला, यह चार महापातकी गिरते हैं, पंचम जो उक्त पतितों के साथ आचरता है (सो भी उनवत् हुआ गिरताहै) ९ ॥

भावार्थमन्त्र नवमे का ९ ॥

हे सौम्य, राजा जैवलि कहता है कि हे गौतम चार प्रकारके महापातकी हैं । तहां प्रथम ब्राह्मण के सुवर्ण का चुरावने वाला, अरु द्वितीय ब्राह्मण होय के मद्यपान करने वाला । अरु तृतीय अपनी गुरुपत्नि (गुरुकी स्त्री) के साथ बिषय भोग करने वाला अरु चतुर्थ ब्राह्मण का बध करनेवाला । यह इतने चार (उक्त प्रकारके तृतीय स्थान रूप अपार समुद्र बिषे) गिरते हैं । अरु पांचवां जो उक्त महापातकियों के साथ आचरता है॥ :—अर्थात् उक्त प्रकार महापातकियों के साथ जो पुरुष संसर्ग करता है अर्थात् खान पान भाषण सहवासादि करता है सो पंचम भी तद्वत् हुआ गिरताहै——: ९ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ पुनः जो प्रसिद्ध इतने इन पाँचअग्नियों को जानता है सोप्रसिद्ध तिनके साथ आचरण करने जन्य पापों से लिपायमान न होयके शुद्ध पवित्र पुन्यलोक होता है, जो इसप्रकार

अथ छान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठके वैश्वानरविद्या ॥

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञ पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते है ते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमा छं सा ञ्चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ॥ १ ॥

जानता है जो इस प्रकार जानताहै ॥ १० ॥ इति दशमखंडः १०

भावार्थ मन्त्र दशवेंका १० ॥

हे सौम्य, राजा जैबलि उद्दालक प्रति कहता हुआ कि हेगौतम। पुनः जो प्रसिद्ध यथोक्त प्रकार के पांचों अग्नियोंको सम्यक् प्रकार जानता है सो तिन महापातकियों करके सहित उनके साथ आचरण (सहवासादि) करताहुआ भी तज्जन्यपापों से लिपायमान न होके सदा शुद्ध ही होती है। अरु तिस पंचाग्नि के दर्शन (ज्ञानकरके रक्षितहै ताते परमपवित्रहै। अरु तिस करके पुण्य लोकहै। अर्थात् प्राजापत्यादि (वा ब्रह्मलोकादि) पुण्य लोककी प्राप्तिहै जिसको सो कहिये। पुण्य लोको। ताते पंचाग्नि विद्याका जाननेवाला पुण्यलोक होताहै। जो पांचों प्रश्नोंकरके प्रश्न किये यथोक्त समस्त प्रश्नों के उत्तर अर्थ जातको जानता है (सो पुण्यलोक होताहै) यहां जो " य एवंवेद यएवंवेद " इस प्रकार दोबार कहाहै सो समस्त प्रश्नोंके निर्णय के दर्शनार्थ अरु पंचाग्नि विद्याकी समाप्ति के अर्थ है ॥१०॥ इति दशमखंडः १० ॥

इतिछान्दोग्योपनिषदिपंचमप्रपाठके पञ्चाग्नि विद्या ॥

अक्षरार्थ ॥

प्राचीन शाल नामवाला उपमन्युका पुत्र ताते औपमन्यवः अरु सत्ययज्ञ नाम वाला पुलुषका पुत्र ताते पौलुषिः। अरु तैसे इन्द्रद्युम्न नाम वाला भल्लवका पुत्र भाल्लवि। तिसका पुत्र ता-

ते भाल्लवेयः । अरु जन नाम वाला शर्कराक्ष्य का पुत्र ताते शार्कराक्ष्यः । अरु बुडिल नाम वाला अश्वतराश्वका पुत्र ताते आश्वतराश्विः । सो यह प्रसिद्ध पांच बड़े घर वाले बड़े श्रोत्रिय एकत्रहोके बिचार करतेहुए कौन इसमें आत्मा है क्या ब्रह्म है १

अथ वैश्वानर विद्या ॥

भावार्थ मन्त्रपहिलेका ॥ १ ॥

हे सौम्य, । पूर्व "तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति" इस श्रुति करके दक्षिणायन मार्ग से चन्द्रलोक को प्राप्त होनेवाले को अन्न भावकी प्राप्ति कही है, अरु क्षुद्र जन्तु लक्षण करके अति कष्टतरा संसार गति कही है । तिन उभय दोषकी निवृत्ति के अर्थ वैश्वानर विद्यासे त्रिभावकी प्राप्तिके अर्थ उत्तर ग्रन्थका आरंभ करते हैं " अत्स्यन्नं पश्यति प्रियं " इत्यादि लिंगसे सुख से जानने के अर्थ अरु विद्या सम्प्रदान न्यायके देखावने के अर्थ आख्यायिका कहते हैं ।

हे सौम्य (किसी एकसमय) प्राचीनशाल यह नाम वाला, उपमन्यु का पुत्र ताते औपमन्यवः इस अपत्य नाम वाला अर्थात् पिता के नाम से औपमन्यव नाम वाला । अरु सत्य यज्ञ नाम वाला पुलुषका पुत्र पौलुषि । अरु तैसेही इन्द्रद्युम्न नाम वाला भल्लवका पौत्र अरु भल्लविका पुत्र भालवेय इस द्वितीय नामवाला । अरु जन नाम वाला शर्कराक्ष्यका पुत्र ताते शार्कराक्ष्य । अरु बुडिल नामवाला अश्वतराश्व का पुत्र आश्वतराश्विः ॥ :-यहां जो एक एक ऋषि के दो दो नाम कहे हैं तहां प्रथम का तो उनका है, अरु द्वितीय नाम पिता के सम्बन्ध से है, सो उसही नाम के दूसरे से पृथक् करने के अर्थ जानने । अर्थात् एक नामके बहुत से मनुष्य होवें तिनमें से जिसको पृथक् करके कहनाहोय तहां कहते हैं कि अमुकाऽमुके का पुत्र तैसे जानना -: ॥ सो यह उक्त पाँचोंऋषि महा शाला कहिये बड़े घरानेके बड़े गृहस्थ सन्तति सम्पत्ति वाले अरु नि-

ते ह सम्पादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः सम्प्रतीममात्मानं वैश्वानर मध्येति त छं हन्ताभ्यागच्छामेति त छं हाभ्याजग्मुः॥ २॥

वास के अति दीर्घ आयतन वाले। अरु महा श्रोत्रिय कहिये बहुतसे वेद शास्त्रादि पढ़े अरु श्रवणकिये, ऐसे पाँचों एकत्रहोय विचार करने लगे॥:—अर्थात् किसी एक महत् पूर्व में किसी गंगादि तीर्थ पर उक्त पाँचोंऋषि अकस्मात् काकतालीय न्यायवत् एकत्रहोय परस्पर के परिचय बिनाही स्नानोत्तर पाँचों ही वैश्वानर विद्याका पाठ करने लगे, परन्तु वैश्वानरके एक एक अंगके ज्ञाताहोने से उनका परस्पर का पाठ मिले नहीं तब पांचों ही परस्परमें परिचय कर वैश्वानर आत्मा निमित्तका विचार करते हुए—:॥ प्र०। क्या विचार करते हुए। उ०। हमारा आत्मा कौन है, क्या ब्रह्म आत्मा है, क्या ब्रह्म अरु आत्मा इन दोनों शब्दोंका विशेष्य विशेषण भाव है। क्या अध्यात्मोपाधि परिच्छिन्न होने से ब्रह्मही आत्मा कहा जाता है, अरु उक्त उपाधि के अभाव से आत्माही ब्रह्म कहा जाता है, क्या आत्मा से अतिरिक्त करके ब्रह्म अरु तिसके उपासकत्व का निवारण करते हैं। क्या अभेद करके "अयमात्मा ब्रह्म, नातः परमस्ति" "तत्त्वमसि" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म आत्मा का अभेद करके—:। आत्माही ब्रह्म है। इस प्रकार सर्वात्मा वैश्वानर ब्रह्म सोई आत्मा है। इसप्रकार विचार सिद्ध करते हुए॥ १॥

अक्षरार्थ॥

सो प्रसिद्ध पाँचों अन्यों करके पूज्यहोते सन्ते भी वैश्वानर के उपदेष्टाको शोचते वा विचारते हुए, यह अरुणका पुत्र आरुणिः उद्दालक इस प्रसिद्ध नाम वाला ऋषि सम्यक् प्रकार वैश्वानर आत्मा को जानता है, अतएव अपने उसके पास चलो ऐसा विचार तिसके पास जाते हुए॥ २॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हेसौम्य प्राचीन शालादिक पाँचों ऋषि जो अन्यों करके पूजनीय महाशाला महा श्रोत्रिया सो परस्पर में वैश्वानर आत्मा विषयक विचार करत सन्तेभी निश्चयको न प्राप्तहोके वैश्वानर आत्माकेउपदेष्टाको चित्तसे विचारते वा अन्वेषण करतेहुए॥:- अर्थात् उक्त पाँचोंऋषि अकस्मात् किसी एक तीर्थ में स्नानार्थ प्राप्तहो सर्व समकालमें एकही स्थानपर स्नानकर अपनी २ ज्ञातके अनुसार वैश्वानर विद्याका पाठ करनेलगे ' अर्थात् वो पाँचोंऋषि सर्वांग समस्त वैश्वानरको न जानके एक एक पृथक् २ अंगके ज्ञाता उपासकथे, परन्तु उक्त हेतुसे पाँचोंके पाठ भिन्न २ होवें तथापि करें सर्व वैश्वानर विद्याका पाठ, अरु यह न जानें कि हम वैश्वानरके एक एक अंगके ज्ञाता होयके पूर्ण सर्वांग वैश्वानर विद्याका अहंकार अपने बिषे क्यों करते हैं। अरु जब उनके परस्पर का पाठ एक दूसरे के पाठसे न मिला तब किसी एक स्थानपर पाँचों एकत्रहो उक्त प्रकार विचार करतेहुए, तथापि पाठान्तरके भेद होनेसे सम्यक् एक निश्चयको न प्राप्तहो वैश्वानर विद्याके सम्यक् जाननेवाले को विचारते हुए कि जो कोई ऋषि सम्यक् प्रकार वैश्वानर विद्याको जानता होय तिसके समीप चलके विद्या अध्ययन करनी वा जाननी चाहिये —:॥ तब उनमें से किसी ने कहा कि हे पूजावन्तो जिसकरके जिसका प्रसिद्धनाम उद्दालक है सो अरुणका पुत्र आरुणि: इस द्वितीय नामवाला ऋषि यहां आया है अरु वो वैश्वानर विद्याको कि जो हमको अभीष्टहै, सम्यक् प्रकारजानताहै, अतएव अपने सर्व उसके पास चलो । इस प्रकार वो सर्व ऋषि परस्पर में सम्मत निश्चयकर उस उद्दालकके आश्रमपर जातेहुए २॥

———

स ह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्तिमामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्व्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ३ तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः सम्प्रतीममात्मानंवैश्वानरमध्येति तच्छंहन्ताभ्यागच्छामेतितच्छंहाभ्याजग्मुः ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो उद्दालक प्रसिद्ध उन पांचोंको अपने आश्रमपर आवते देख विचारता हुआ कि यह पांचों महाशाला महाश्रोत्रिया मेरे समीप आयके वैश्वानर विद्याको पूछेंगे अरु मैं सो विद्या सम्पूर्ण जानता नहीं, ताते अन्य किसी जाननेवाले के पास इनको भेजें (अरु हमभी जावें)॥ ३॥ ऐसा विचार उनके प्रति कहताहुआ कि हे भगवन्तः केकयदेशके केकयनाम राजाका पुत्र अश्वपतिनाम प्रसिद्ध राजाहै वो वैश्वानरविद्याको सम्यक् प्रकार जानताहै उसके समीप आपजावो (मैंभी चलताहौं) सो तिसके पास जातेहुये ४ ॥

भावार्थ मन्त्रतीसरेचौथेका ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार प्राचीन शाल आदिक पांचोंऋषि वैश्वानर विद्याको सम्यक् प्रकार जानने के अर्थ तिसका ज्ञाता उद्दालक मुनिको जानके तिसके आश्रमपर चले । तब उस उद्दालक मुनिने उन पांचों को अपने आश्रमपर दूरसेही आवते देख उनके आगमन का हेतु जान विचारने लगा ।प्र०। क्या विचारने लगा। उ०। यह विचारने लगा कि यह पांचों ऋषि यहां आय जिस वैश्वानर विद्याको मुझसे पूछेंगे तिसको मैं समस्त जानता नहीं, अरु ये सर्व बड़े घरके बड़े कुलवाले बड़े विद्वान् बहुश्रुतहैं अतएव इन करके प्रश्न कियेहुएका सर्व उत्तर कहनेको मैं समर्थ नहीं। अतएव अब इनको अन्य किसी सम्यक् वैश्वानर विद्याके जाननेवाले के पास भेजें अरु मैं भी

तेभ्योहप्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार सह प्रातः सञ्जिहान उवाच नमे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणि कुतो यक्ष्यमणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मात्त्रृत्विगे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ५ ॥

इनके साथ जावों। इस प्रकार उद्दालक अपने चित्तमें विचारताही है कि उसही समय वो पांचों ऋषि उसके आश्रमपर आय प्राप्तहुए, तब उनके आवतेही प्रश्नकरने से पूर्वही वो उद्दालक कहता हुआ कि जिस वैश्वानर विद्याके जाननेके अर्थ आपसर्व मेरे पास आयेहौ तिसको मैं सम्यक् प्रकार जानता नहीं जो तुम्हारे प्रतिकहौं। हे पूजाकरनेके योग्यो अश्वपति नामवाला यह केकय देशके केकयनाम राजा का पुत्र है सो कैकेयः इसद्वितीय नामवाला है सो इस वैश्वानर नामक आत्मविद्याको 'कि जिसका जानना आपको अभीष्ट है, सम्यक् प्रकार जानताहै। अतएव तिसकी प्राप्ति के अर्थ आप उसके पास जाइये (मैं भी तुम्हारे साथ चलताहौं) ऐसा कह उद्दालक सहित छओं ऋषि वैश्वानर विद्या की प्राप्ति की दृढ कामना धार उस राजा अश्वपति के पास केकय देशको जाते हुए ३ । ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन अपने यहां प्राप्तहुए के अर्थ पृथक् पृथक् उनका आतिथ्यादि सत्कार करावता हुआ अरु सो प्रसिद्धराजा प्रातःकाल उनके समीप जाय कहता हुआ मेरे राज्य में चोर नहीं, कृपण नहीं, मद्यपेयी नहीं, अग्निहोत्र न करता होय ऐसा नहीं, अविद्वान् नहीं, परस्त्रीगामी पुरुष नहीं, पर पुरुषगामी स्त्री नहीं, तुम ने कहीं भी मेरे राज्य में देखाहै। हे पूजाके योग्य मैं इन अपने

एक एक ऋत्विजों को जेतना जेतना धन दूँगा तेतना तेतना आप लोगों को भी दूँगा, हे भगवन्त आप यहां निवास करिये, इति ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पञ्चमका ॥

हे सौम्य, उक्त छवों ऋषि जब वैश्वानर विद्याकी जिज्ञासा धार उस राजा अश्वपति के नगरमें जाय प्राप्त हुए अरु उन ऋषियों का अपने यहां आगमन राजाने श्रवणकिया–ः॥ तब तिन अपने यहां प्राप्तहुए ऋषियों का सुख वासादि आतिथ्य सत्कार वो राजा अपने पुरोहित अरु भृत्यादि द्वारा करावताहुआ, क्योंकि उस समय राजा आप दीक्षित यजमान हुआ अपने यज्ञकार्यमें स्थित था ताते दूसरे दिवस वो राजा प्रातःकाल के समय उन ऋषियों के पास जाय प्रणामकर विनय पूर्वक कहता हुआ कि हे भगवन् यह इतना धन मुझ करके दियाहुआ आप ग्रहण करिये। तब उन ऋषियोंने कहा हम धनार्थी नहीं। तब वो राजा अपने चित्तमें विचारताहुआ कि यह सर्व ऋषि निश्चयकरके मेरे बिषे दोष देखते हैं एतदर्थ मेरे दिये धनको ग्रहण करते नहीं। ऐसा विचार अपनी सद्वृत्ति (धर्मनीति) को प्रकट करत सन्ते कहता हुआ। राजोवाच। हे पूजा करने योग्य ब्राह्मणो मेरे राज्य में पराये धनके हरणकर्त्ता तस्कर चोर, कोई नहीं, अरु तैसेही मेरेराज्य में कृपण भी कोई नहीं किन्तु सर्व ही स्वशक्त्यनुसार दाता हैं। अरु मेरे राज्य में सामान्यरीत्या मद्यपान करनेवाला कोई नहीं, अरु विशेष करके ब्राह्मण होयके मद्यका पानकर्त्ता तो स्वप्नमें भी नहीं। अरु तैसेही मेरे राज्य में ऐसा कोई नहीं जो अग्निहोत्र न करता हो 'अर्थात् जिनको वेदोक्त कर्म का अधिकार है सो सर्वही अग्निहोत्रके कर्त्ता हैं। अरु अविद्वान् भी कोई नहीं।ः– अर्थात् चारों वर्ण के मनुष्य अपने २ अधिकारानुसार विद्या के अध्ययन कर्त्ता हैं॥ः– हे सौम्य ब्राह्मणादि तीनों वर्णोंके मनुष्योंको वेदाध्ययनकरने का अधिकार

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तछंहैव वदेदात्मान मेवेमं वैश्वानरछं सम्प्रत्यध्येषि तमेवनो ब्रूहीति ६ ॥

है । अरु शूद्रको पुराण अध्ययन का अधिकार जानना क्योंकि भारतादि ग्रन्थों में शूद्रके अर्थ पुराणोक्त मन्त्रसे कर्म करना कहा है । अरु ऐसा भी कहा है कि जो कदापि ब्राह्मणशूद्रके यहां कर्म्म करावे तो पुराणोक्त मन्त्रों से करावे । अरु याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों में शूद्र के अर्थ आचमनादि करनेकी विधि कही है अरु उनके धर्म भी कहे हैं, एतदर्थ शूद्रके अर्थ वेदाध्ययनका अधिकार न होके पुराण अध्ययनका अधिकार सिद्धहोता है -:॥अरु तैसेही मेरे राज्य में परस्त्री से गमन (भोग) करनेवाला पुरुष कोई नहीं (सर्वही यथाशास्त्र स्वस्त्री में ऋतुदान के कर्त्ता हैं परस्त्रीगामी कोई नहीं) अरु जिसकरके मेरे राज्यमें परस्त्रीगामी पुरुष नहीं तिसही कारण से परपुरुषगामी व्यभिचारिणी स्त्री सो कहां किंतु दुष्टाचारिणी स्त्री तो स्वप्न में भी नहीं । आपने मेरी प्रजाको उक्त प्रकारसे विपरीताचरणवाली कहीं देखा होय तो कहो ।:— अतएव जिस प्रजा का धन मेरे कोशमें आवता है सो सर्व धर्मात्मा होनेसे अरु मेरे न्यायनीति प्रमाण ग्रहण करने से मेरा धन अन्य साधारण राजाओं के धनवत् आप सरीखे ब्राह्मणों करके अग्रहण करने योग्य नहीं -: । अरु आपने कहा कि हम इस धनके अर्थी नहीं ताते हम इस धनको ग्रहण न करेंगे, सो क्या इस धनको अल्प मानके आप ग्रहण नहीं करते । हे पूजा करने के योग्य ब्राह्मणो मैं अपने एक एक ऋत्विजों को जितना जितना धन यज्ञकी दक्षिणामें दानकरोंगा तितना २ प्रत्येक आपलोगोंको भी दूँगा । अतएव आपसर्व यहां निवासकर मेरे यज्ञ को देखिये ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

(उक्त प्रकार जब राजाने कहा तब) सो ब्राह्मण कहते हुए

तान् होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्ताऽस्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रति चक्रमिरे तान् हानुपनीयैवैतदुवाच ७। ११॥

यह पुरुष जिस प्रयोजन के अर्थ जिसके पास जाय प्रथम उस प्रयोजन को सिद्ध करलेवे, हमारा यही प्रयोजन है कि आप वैश्वानर आत्माको सम्यक् प्रकार जानतेहौ सो हम सर्वके प्रति उपदेश करो ६ ॥

भावार्थ मन्त्र षष्ठका ॥

हे सौम्य,।:—उक्त प्रकार जब राजा अश्वपतिने अपने यहां प्राप्त हुए उपमन्यु आदि छओं ऋषियों के समक्ष अपनी प्रजा का स्वधर्म पूर्वक आचरण अरु अपने धनकी निर्दोषता कही तब तिसको श्रवण कर-: । सो ब्राह्मण कहते हुए कि हे राजन् पुरुषों को उचित है कि जिस प्रयोजन के अर्थ जिसके समीप जाय उससे प्रथम उस प्रयोजन को सिद्धकरले ॥:—अरु उसके सिद्ध किये विना अन्य कार्य्यमें प्रवृत्तहोता है तो वो पूर्वका कार्य्य उसको शापदेता है कि तू मेरे अर्थ प्रवृत्तहोके प्रथम मेरे सिद्धकिये विना अन्य कार्य्य में प्रवृत्तहुआ अतएव अहं तुझको सिद्ध होनेके नहीं अरु अन्य कार्य्य भी सिद्ध होने का नहीं—:॥ ताते हम जिस प्रयोजनके अर्थ आपके निकट आये हैं सो जब सिद्धहोलेगा तब और करेंगे। हे राजन् हम सर्व धनार्थी न होके वैश्वानरके ज्ञानार्थी आपके समीप आयेहैं, अरु आप इसआत्मा वैश्वानर को सम्यक् प्रकार जानतेहौ, ताते आपसो वैश्वानर विद्या हम सर्व के प्रति उपदेश करिये ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिनकेप्रति राजा कहताहुआ प्रातःकाल(कल्ह)तुम्हारेप्रति उत्तर मैं देवोंगा (एतना कह राजा अपने गृहको गया) तब वो प्रसिद्ध छओं ऋषि समिधा हाथमें ले दूसरे दिवस प्रातःकाल

राजाके समीप जातेहुए तब तिन प्रसिद्ध अपने यहां प्राप्तहुए को (विनाही शिष्यकिये कहताहुआ ७॥ इतिप्रथमखंडः१।११॥

भावार्थ मन्त्रसातवेंका॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार जब प्राचीन शाल आदि ऋषियों ने राजा अश्वपति से कहा कि हे राजन् हम आपके यहां धनके प्रयोजनार्थ आये नहीं किन्तु वैश्वानर विद्याके प्रयोजनार्थ आये हैं अतएव आप हम सर्वको वैश्वानर विद्या कहिये,तब—:। तिन ऋषियों प्रति राजा कहताहुआ कि मैं कल्ह प्रातःकालको (यज्ञसे निवृत्तहोके) तुम्हारे प्रति उत्तर देवोंगा (इतना कह वो राजा उन ऋषियों के स्थानसे अपने भवनको पगधारता हुआ) तब उस राजा के वाक्यके अभिप्राय के जाननेवाले ऋषि॥:-अर्थात् राजाने जो उनसे कहा कि मैं तुमको कल्ह प्रातःकालको उत्तर कहोंगा, तिसका तात्पर्य यहहै कि जब तुम शास्त्र रीति प्रमाण समित्पाणिहोय जिज्ञासापूर्वक नम्र भावसे मेरे निकट आवोगे तब मैं तुमको कहोंगा, तिस तात्पर्यके जाननेवाले वो छत्रों महाशाला महाश्रोत्रिया ऋषि—:॥ समित्का भार अपने हाथमें ग्रहणकर दूसरे दिवस पूर्वाह्णको राजाके समीप जातेहुये। जब इस प्रकार वो छत्रों ऋषि अपने महाशालत्वपने अरु महाश्रोत्रियत्वपने आदिकों के अभिमान को त्याग समित्का भार अपने हाथमें ग्रहणकर अपने से जाति में हीन जो क्षत्रिय राजा तिसके पास विद्यार्थी हो नम्र भाव पूर्वक प्राप्तहुए। तैसेही अन्य विद्या उपार्जित करनेवाले को भी करना चाहिये ॥:- अर्थात् जैसे प्राचीन शाल आदि ऋषि अपने सर्व प्रकार के महत्त्वपने आदिकोंके अभिमानको त्याग समित् काभार अपने हाथमें ले अति नम्र भाव पूर्वक अपने से जाति में हीन जो क्षत्रिय तिसके पास विद्या प्राप्त करनेके अर्थ गये अरु तिसका दिया धन न अंगीकार करके अपने प्रयोजनमें दृढ़ रहे। तैसे अन्य विद्यार्थियों ने भी अपने सर्व अभिमानको त्याग

अथ वैश्वानर विद्याका द्वितीय खंड प्रारभ्यते २ ॥

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्से इति दिवमेव भाग
वो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरोऽयं
त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृ
श्यते ॥ १ ॥

शास्त्ररीत्या समित्पाणि होय आचार्य के पास जाय विद्या उ-
पार्जन करना अरु जो वो आचार्य जाति में अपने से हीन भी
होय तोभी उसकी हीनताको न विचार उसमें आचार्यत्व भाव
मानना—:॥ तब राजा ने विचार किया कि इन ऋषियों के अर्थ
विद्या देनी चाहिये (क्योंकि यह उत्तम ब्राह्मणहोके अपने सर्व
अहंकार को त्याग समित्पाणिहोय चित्तमें शिष्यभाव धार वि-
द्यार्थियोंवत् मेरे यहां अतिदूरसे आये हैं, इस प्रकार विचार
के) अपनयन (शिष्य) न करके केवल उनके प्रणिपातादि
भावको देख केही तिन यथा योग्योंके अर्थ विद्या देताहुआ । तैसे
अन्यों ने भी विद्या देनी चाहिये ॥:—अर्थात् जो कोई जिस वि-
द्या को जानता होवे अरु उसविद्या अर्थी जिज्ञासु श्रद्धा विनय
सम्पन्न होय अपने सर्व अहंकार त्याग शास्त्ररीत्या समित्पाणि
होय उसके समीप प्राप्तहोय तो उसके अर्थ विद्या कहनी चा-
हिये—:॥ यह इस आख्यायिकाका तात्पर्यहै॥ १ इति॥ वैश्वानर
विद्याका प्रथमप्रपाठकका ११ वां खंडः १ । ११ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे औपमन्यु किस आत्माको तू उपासता है। हे पूजा के यो-
ग्य राजन् मैं द्युलोकको उपासता हौं। राजा कहता हुआ यह
ही सुतेजानाम आत्मा वैश्वानरहै, इस आत्माको तू उपासता
है तिसके प्रभावसे तेरेकुलमें सुत प्रसुत आसुत दृश्य आवते हैं १

अथ भावार्थ खंड २ मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, (उक्तप्रकार जब छओं ऋषि राजा अश्वपति के पास वैश्वानरविद्याके अर्थ समित्पाणिहोय विधिवत् प्राप्तहुए तब विद्या उपदेश करने से पूर्व राजा उन प्रत्येकसे भिन्न भिन्न प्रश्न करताहुआ ॥ प्रश्न ॥ वो राजा क्या प्रश्न करताहुआ ॥ उत्तर॥ वो राजा अश्वपति प्रश्नकरताहुआ कि हे औपमन्यु किस आत्माको तू वैश्वानर जानके उपासताहै। यह राजाने प्रश्नकिया॥ शंका॥ ननु, आप आचार्यहो के शिष्यसे प्रश्न करना यह अन्याय है॥ उत्तर॥ यह दोष नहीं, क्योंकि "। यद्वेत्थ ते न मोपसीद ततस्त ऊद्ध्र्वं वक्ष्यामीति "। यह श्रुति वाक्यरूप न्यायके देखने से ॥:— अर्थात् यह नारद सनत्कुमार संवादकी श्रुति न्याय प्रमाणहै। जब नारदऋषि आत्मजिज्ञासाधार के सनत्कुमारके पास जाय विनय पूर्वक कहताहुआ कि आप मुझको आत्मविद्या उपदेश करो, तब सनत्कुमारने कहा कि जो तू जानताहै सो प्रथममेरे आगेकह मैं प्रथम तिसको जानलूं तब तिसके पश्चात् जोकुछकहना होगा सो कहौंगा—:॥ अरु अन्यत्र भी शिष्यके प्रति आचार्य्य का प्रश्न देखते हैं "। क्वैषतदाऽभूत्कुत एतदागादिति "। यह बृहदारण्यक के चतुर्थाध्यायमें राजा अजातशत्रुने गार्गनाम ब्राह्मण से ' जो उसका शिष्यहुआ प्रश्न किया है—: ॥ ताते आचार्य का शिष्यसे प्रश्न करना अन्यायनहीं॥ तब वो औपमन्यु कहता हुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं द्युलोक कोही वैश्वानरजानके उपासता हौं। तब राजा कहताहुआ कि यह ही सुतेजा है, अर्थात् शोभन दिव्य तेजहै जिसका सो यह द्युलोक सुतेजा यह प्रसिद्ध वैश्वानर आत्माहै। अरु यह सुतेज द्युलोक वैश्वानरका अवयव भूतहोने से, जिसको तू पूर्ण वैश्वानर मानके उपासता है सो उसको एकदेश उपासता है। अरु उस वैश्वानरका एक अवयव जो सुतेजा नाम है तिसकी उपासना के प्रभाव से तेरे पुत्र पौत्र प्रपौत्रादि अतितेजस्वी दृष्ट आवते हैं, अर्थात् तेरे

अत्त्यन्नं पश्यति प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्य स्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्द्धात्वेष आत्मन इति होवाच मूर्द्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति २॥ १२॥

इति वैश्वानर विद्यायांद्वितीयखंडः २॥ १२॥

कुल के पुरुष अतिही कर्म्मीष्ठ (वेदोक्त कर्म्म के कर्त्ता) हैं १॥

अक्षरार्थ॥

और भी जो कोई अन्न को देखताहै (वैश्वानरको उपासताहै) तिसका प्रियहोताहै, तिसके कुलमें सर्व तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं, जो कोई इस सुतेजानाम वैश्वानरको उपासताहै, यह द्युलोक वैश्वानरका मस्तक है। इतना कह पुनः राजा कहता हुआ कि मस्तक तेरा गिरपड़ता जो तू मेरे निकट न आवता २॥ इति द्वितीयखण्डः २॥ १२॥

अथ भावार्थ मंत्र दूसरे का॥

हे सौम्य, [यह जो वैश्वानरके मस्तक द्युलोककी उपासना का फल कहाहै सो केवल प्राचीनशालकेही अर्थहोय ऐसा नहीं किन्तु अन्य भी जो कोई उक्त उपासना को करताहै तिसको भी सो फल प्राप्तहोता है] सो कहते हैं, पुनः श्रुति कहतीहै कि जो कोई सर्व अन्न के भोक्ता वैश्वानरके द्युलोकरूप सुतेजा नाम मस्तकरूप अवयवकी उपासना करताहै तिसका सर्व प्रिय होताहै अरु उसके कुलमें पुत्र पौत्रादि सर्व तत्त्ववेत्ता सब कर्म्मीष्ठ होते हैं, जो कोई यथोक्त वैश्वानरकी उपासना करता है, अरु सो सुतेजानामद्युलोक जो वैश्वानरका मस्तक रूप एक अवयवहै, सो समस्त वैश्वानर नहीं॥:—यद्यपि इस वैश्वानर के एक अवयव मस्तककी उपासनाका धन सन्तति की प्राप्ति रूप फल है, तथापि समस्त वैश्वानरके अभेद ज्ञानवान् उपा-

अथ वैश्वानर विद्यायां तृतीय प्रपाठके त्रयोदशमंखंडः ३॥ १३॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्व मात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवा चैष वैविश्वरूप आत्मा वैश्वानरोऽयं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तवबहु विश्वरूपं कुले दृश्यते॥ १॥

सककी दृष्टिमें सो अज्ञानही है-॥ पुनः राजा कहता हुआ कि हे प्राचीन शाल एतदर्थ अर्थात् वैश्वानर के मस्तक रूप एक अवयवको समस्त वैश्वानरका रूप जानके उपासना करने के प्रभाव से तेरा मस्तक गिरपड़ता, जो तू मेरे निकट न आवता, अभिप्राय यह है कि जो तू वैश्वानर विद्या के ज्ञानार्थ मेरे निकट आया सो अतिश्रेष्ठ किया॥२ ॥ इतिद्वितीय अरु द्वादश खण्डः॥ २॥१२॥

अक्षरार्थ॥

तिसके अनन्तर राजा सत्ययज्ञ पौलुषिको पूछताहुआ कि हे प्राचीन योग्य तू किस आत्माको उपासता है इति, हे पूजाके योग्य राजन् आदित्यकोही, उपासताहौं, राजा कहताहुआ यह ही विश्वरूप (आदित्य) आत्मा वैश्वानर है, इस आत्माको तू उपासताहै तिसकरके बहुत विश्वरूपको तेरे कुलमें देखते हैं १॥

भावार्थ खण्डः ३ मन्त्र प्रथमका॥

हे सौम्य, [यहां जो अथ शब्द है सो प्राचीन शालके तूष्णीं होनेके अनन्तरका बोधकहै] उपमन्युकेपुत्र प्राचीनशालके तूष्णी होने के अनन्तर राजा अश्वपति पुलुषके पुत्र सत्ययज्ञसे कहता (प्रश्नकरता) हुआ कि हे प्राचीन योग्य तू किस आत्मा (वैश्वा-नर) को उपासता है, इसप्रकार जब राजाने प्रश्न किया, तब सत्ययज्ञ कहता हुआ कि हे पूजा करने के योग्य हे राजन् मैं आदित्यकोही वैश्वानर आत्मा मानके उपासना करताहौं, इस

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नंपश्यसि प्रिय मत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमे वमात्मानंवैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वे तदात्मनइति होवाचा न्धोऽभविष्यद्यन्मां नागमिष्य इति ॥ २॥ इति तृतीय खण्डः ३ ॥ १३ ॥

प्रकार जब सत्ययज्ञने कहा तब पुनः राजा अश्वपति कहताहुआ कि यह आदित्य विश्वरूप है, अर्थात् आदित्य के शुक्ल रक्त कृष्णादि रूपहोने से विश्वरूप कहते हैं, अथवा आदित्य को सर्व रूप होने से विश्वरूप कहते हैं । अर्थात् त्वष्ट्रा जो सूर्य्य तिसके ही सर्वरूप हैं याते, एतदर्थ। तिस विश्वरूप आदित्य की उपासना के प्रभाव से तुझको बहुत विश्वरूप है, अर्थात् इस लोक परलोक के भोगार्थ बहुत से उपकरण तेरे कुलमें देखते हैं १॥

अक्षरार्थ॥

प्रवृत्त है अश्वतरी युक्तरथ अरु दासी दासादि तुझको। और कोई भी जो अन्न (वैश्वानर) को देखता (उपासता) है सो अति प्रिय अन्नको देखता है, उसका प्रिय होता है, तिसके कुलमें सर्व तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं, जो कोई इस आदित्य वैश्वानर को उपासता है, यह आदित्य वैश्वानरका चक्षु है, राजा कहता हुआ कि तू अन्धाहोजाता जो मेरे निकट न आवता॥ २॥ इति तृतीय खण्डः॥ ३॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का॥

हे सौम्य, (पुनः वो राजा कहताहुआ कि हे सत्ययज्ञ) किंच तुझको जो अश्वतरी (खच्चर) युक्त रथ वा अश्वतरी रथ कहने से अश्वतरी उपलक्षणकरके, अश्वतरी, अश्व, रथ, हस्ती, उष्ट्रादि यान वाहन अरु अनेक दास दासी आदि भृत्य सेवक बहुत हैं॥:—अर्थात् विश्व भोगके उपकरण सामग्री यावत् हैं सो

अथ वैश्वानर विद्यायांचतुर्थखण्डः ॥

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भालवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मा नमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आययन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति १ ॥

सर्व तुझको प्राप्त हैं—: ॥ अरु सो सर्व इस आदित्यरूप वैश्वानर आत्माकी उपासना फल प्रभाव है (सो यह तुझही को प्राप्त होय ऐसा नहीं) किंतु अन्यकोई भी जो इस सर्व अन्नके भोक्ता आदित्य रूप वैश्वानर आत्माको देखता कहिये उपासता है सो अतिप्रिय अन्न (भोग्य) को देखता है अरु उसका अति प्रिय होता है। तिसके कुलमेंसर्व तत्त्ववेत्ता अरु कर्मीष्ठ होते हैं। जो इसही आदित्यरूप आत्मा वैश्वानरको उपासता है। यह आदित्य वैश्वानर आत्माकाचक्षुहै, समस्त वैश्वानरनहीं। पुनःराजाकह-ताहुआ कि जो तू मेरेपास न आवता तो चक्षुविनाका अन्धाहोजा-ता॥ः—अर्थात् तूने वैश्वानर के सर्व अंगों से उसके चक्षुरूप अव-यवको उससे पृथक् कर उसमें समस्त वैश्वानरकी भावना से उपासना किया तिस दोषकरके तेरा चक्षु मुझसे पृथक् होजाता अर्थात् तू चक्षुहीन अन्धाहोजाता जो कदापि मेरेपास न आव-ता। अभिप्राय यह जो तूमेरे निकट आया सो अति श्रेष्ठ किया२॥ इति वैश्वानर विद्यायां तृतीयखंडः ॥ ३ ॥ १३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तरराजा इन्द्रद्युम्नको पूछताहुआ तू किस आत्मा वैश्वानर को उपासता है, इति। हे पूजाके योग्य राजन् मैं वायु को ही (वैश्वानर जानके उपासता हों) इति । राजाने कहा यहही नाना भेदवाला आत्मा वैश्वानर है कि जिसको तू आत्मा जानके उपासता है, तिसकरके तुझको नानाजाति के अन्न व-स्त्रादि आयप्राप्तहोते हैं अरुरथोंकीश्रेणीभी तुझको प्राप्तहोती है१॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियंभवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्तेप्राण त्वेषआत्मानइति होवाच प्राणस्तउदक्रमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति २॥ इति चतुर्थखंडः ४॥१४॥

अर्थ भावार्थ खंड चतुर्थ मन्त्र प्रथमका॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार सत्ययज्ञनाम ऋषि से कहके पुनः वो राजा अश्वपति इन्द्रद्युम्न नामवाला भल्लवीका पुत्र भाल्लवेय तिसके प्रति कहता हुआ कि हे वैयाघ्रपद्य तू किस आत्मावैश्वानरको उपासता है। इस प्रकार जब राजाने प्रश्न किया तब वो इन्द्रद्युम्न कहता हुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं वायु को वैश्वानर आत्मा जानके उपासताहौं। इसप्रकार जब इन्द्रद्युम्नने कहा तब पुनः वो राजा अश्वपति कहते हुआ यह नाना गतिवाला वायु वैश्वानर आत्मा है जिसको तू आत्मा मानके उपासताहै। अर्थात् जिसवायुको तू उपासता है सो "पृथग्वर्त्माऽऽत्मा" इस नाम से कहाजाता है, अर्थात् आवह उद्वहादि नाना गति भेद वर्त्तमान हैं जिसमें वा नाना दिशाओं से चलने वाला होने से नाना गति भेद वर्त्तमान हैं जिसमें, ऐसा यह वायुहै। तिस वायुरूप वैश्वानर आत्माको तू उपासताहै तिस करके तेरेपास नाना दिशा देश देशान्तर के अन्न वस्त्रादि लक्षण रूप बलय (भोग्य) आय प्राप्तहोते हैं, अरु नानाप्रकारके (वायुवत् शीघ्रगामी) रथोंकी पंगतियां भी तेरेको प्राप्तहोती हैं (यह सर्व वायुरूप वैश्वानर आत्माकी उपासना का फलहै) १॥

अक्षरार्थ॥

जो इस अन्नके भोक्ता वैश्वानरको उपासताहै सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता है (पावताहै) तिसका प्रिय होता है। इसके कुलमें तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासताहै यहवायु तो वैश्वानर आत्माका

॥ अथ वैश्वानर विद्यायां पंचम खण्डः ॥

अथ होवाच जनछं शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपा
स्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति हो वाचैषवै बहुल
आत्मा वैश्वानरो ऽयं त्वमात्मान मुपास्से तस्मात्त्वं बहु
लोसि प्रजयाच धनेन च॥ १ ॥

प्राणहै इति । राजा कहता हुआ तेरा प्राण निकसजाता जो तू
मेरे पास न आवता २ इतिचतुर्थ खंडः ४ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति कहताहुआ कि हे इन्द्र-
द्युम्न जैसे वायुरूप वैश्वानरकी उपासनासे तुझको नानाजाति
के अन्न वस्त्रादि अरु नानाजाति के रथ पंक्ति आदि तुझको प्राप्तहैं
तैसे) अन्यभी जो कोई सर्व अन्न (भोग्य सामग्री) के भोक्ता
वायुरूप वैश्वानरको उपासताहै वो अतिप्रिय अन्नको देखताहै
'अर्थात् तिसको अतिप्रिय भोग्य सामग्री प्राप्तहोती है, अरु उ-
सका प्रियहोताहै ॥:—अर्थात् उसका सर्व अभीष्ट सिद्धहोताहै-:॥
अरु जो इसही वायुरूप आत्मा वैश्वानरकी उपासनाकरतेहैं ति-
सके कुलमें सर्व तत्त्ववेत्ता कर्म्मीष्ठ होते हैं । अरु यह वायु तो
वैश्वानरकाप्राणहै, यह समस्त वैश्वानर नहीं । एतना कह पुनः
राजा कहता हुआ कि हे इन्द्रद्युम्न जो तू मेरेनिकट न आवता
तो तेरेप्राण निकसजाते ॥:—अर्थात् समस्त वैश्वानरको न जान
के तिसके प्राणरूप वायु एक अवयवको उससे पृथक्कर तिसको
समस्त वैश्वानरकारूप जानके तैंने उपासना किया, ताते जैसे
तैंने वैश्वानरके प्राणवायुको समस्त वैश्वानरसे पृथक्किया तैसे
तेरा प्राणभी तेरे शरीर से पृथक् होजाता जो तू वैश्वानर विद्या
के अर्थ मेरे निकट न आवता-: ॥ अतएव यह तूने अतिश्रेष्ठ
किया जो तू मेरे निकट आया ॥ २ ॥ इति वैश्वानर विद्यायां
चतुर्थखंडः ॥ ४ ॥ १४ ॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एत मेवमात्मानं वैश्वानर मुपास्ते सन्देहस्त्वेष आत्मन इति होवाच सन्देहस्ते व्यशीर्य्यद्यन्मां नागमिष्य इति २।५॥

अक्षरार्थ॥

तिसके अनन्तर राजा कहता हुआ कि हे जन शार्कराक्ष्य तू किस आत्मा वैश्वानरको उपासताहै इति, हे पूजाकेयोग्य राजन् आकाशको ही उपासता हों इति, राजानेकहा यहही बहुल नाम आत्मा वैश्वानर है जिसको तू आत्मा जानके उपासता है, तिस कारणसे तू प्रजा अरु धन करके बहुल है॥१॥

अथ भावार्थ खंड ५ मन्त्र प्रथमका॥

हे सौम्य, इन्द्रद्युम्नसे कहने के अनन्तर राजा अश्वपति शर्कराक्षके पुत्रजन नामवाले ऋषि से प्रश्न करता हुआ कि हे जन तूकिसआत्मा वैश्वानरको उपासताहै। इसप्रकार जब राजा ने प्रश्नकिया तब वो जन नामवाला ऋषीश्वर कहता हुआ कि हे पूजाकेयोग्य राजन् मैं आकाशकोही वैश्वानरजानके उपासता हौं इस प्रकार जब उस जन नाम ऋषि ने कहा तब पुनः राजा कहता हुआ कि हे जन यहही बहुल नाम वाला आत्मा वैश्वानर है कि जिसको तू आत्मा वैश्वानर जानके उपासता है। अरु तिस उपासना के ही प्रभाव करके तू प्रजा अरु धनादि करके बहुल है॥१॥

अक्षरार्थ॥

जो इस भोक्ता वैश्वानरको उपासताहै सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता (पावता) है तिसका प्रिय होता है इस के कुलमें तत्त्ववेत्ता कर्मनिष्ठ होते हैं जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासता है। यह आकाश तो वैश्वानर आत्मा का मध्य

अथ वैश्वानरविद्यायांषष्ठवांप्रपाठकेषु १६ वां खण्डः ॥

अथ होवाचबुडिलमाश्वतराश्विं वैय्याघ्रपद्य कंत्व त्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वैरयिरात्मा वैश्वानरोऽय त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वछ रयिमान् पुष्टिमानूसि ॥ १ ॥

का शरीर है । पुनः राजा कहता हुआ तेरा मध्य शरीर बिखर वा फट जाता जो तू मेरे पास न आवता ॥ २ ॥ इति पंचम खंडः ॥५ ॥

भावार्थमन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, पुनः वो राजा कहता हुआ कि हे जन (उक्त वैश्वानरकी उपासना से जो फल तुझको प्राप्त है सो तेरे ही अर्थ होय ऐसा नहीं किन्तु) जो कोई इस सर्व अन्नके भोक्ता आत्मा वैश्वानरको देवता कहिये उपासताहै सो अति प्रिय भोग्य सामग्रीको पावता है अरु उसका सर्व प्रिय होता है, अरु उसके कुल में सर्वही तत्ववेत्ता कर्म्मिष्ठ होते हैं, जो इसही आकाश वैश्वानर आत्मा को उपासते हैं। यह आकाश तो वैश्वानर आत्माका मध्य (कंठसे नीचे कटि से ऊपर) का शरीरहै । पुनः राजा कहताहुआ कि मध्यका शरीर तेरा बिखर वा फट जाता जो तू मेरे पास न आवता अतएव यह तैंने बहुत श्रेष्ठ किया जो तू मेरे निकट आया ॥ २ ॥ इति पंचमखंडः ॥ ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर राजा अश्वतरा के पुत्र बुडिलनामवाले ऋषि से प्रश्न करता हुआ कि हे व्याघ्रपद्य तू किस आत्मा को उपासता है इति, हे पूजाके योग्य राजन् जल ही को (आत्मा वैश्वानर मानके उपासताहौं) इति, राजा कहताहुआ सो रयि (धन) नामवाला आत्मा वैश्वानरहै, जिस आत्मा वैश्वानर

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते व स्तिस्त्वेष आत्मन इतिहोवाच वस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति २ ॥ इति षष्ठ खंडः ६ ॥ १६ ॥

को तू उपासता है, तिसके प्रभावसे तू धनवान् अरु शरीर से पुष्टिमान् है ॥ १ ॥

भावार्थ खंड ६ मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य, जन नाम ऋषीश्वरसे कहनेके अनन्तर राजा अश्वपति अश्वतराश्वके पुत्र बुडिलनामवाले ऋषिसे कहता हुआ कि हे व्याघ्रपद्य तू किस आत्मा वैश्वानरको उपासता है। इसप्रकार जब राजाने प्रश्नाकिया तब वो, बुडिल कहता हुआ कि हे पूजा के योग्य राजन् मैं जलको आत्मा वैश्वानर जानके उपासताहौं। इस प्रकार जबउस बुडिलने कहा तबपुनः राजा कहताहुआ कि। यह जल जोहै सोरयि नामवाला आत्मा वैश्वानर है। रयिनाम धनका है अर्थात् जलसे अन्न होता है अन्नसे धनहोता है ॥:-हे सौम्य जल शब्दका पर्याय द्रव्य भीहै अरु द्रव्यका पर्य्याय धनहै अरु धनका नाम रयिहै अतएव यहां जलको धननामसे कहा है, अरु जल जो है सो वैश्वानर आत्माका मूत्रस्थानरूप अवयव विशेष है ऐसा आगे कहेंगे -: ॥ एतदर्थ जिसकी तू उपासना करता है सो रयिनाम आत्मा वैश्वानरहै, तिसकी उपासना के प्रभावसे तू धनवान् अरु शरीर करके पुष्टिमान् है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो इस अन्न के भोक्ता वैश्वानर को उपासताहै सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता (पावता) है, उसका प्रियहोता है इसके कुलमें तत्ववेत्ता कर्म्मनिष्ठ होते हैं जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासता है, इस आत्माका जल मूत्र संग्रहस्थान

अथ वैश्वानर विद्यायां ७ प्रपाठकेषु १७ खंडः ॥

अथ होवाचौद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मान मुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो ऽ य त्वमात्मानमुपासे तस्मात्त्वं प्र तिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च १ ॥

है इति। पुनः राजा कहताहुआ तेरा मूत्रसंग्रहका स्थान भिन्न हो जाता वा फट जाता जो तू मेरे निकट न आवता २ इति षष्ठ खण्डः

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति उस बुडिलनाम ऋषि से कहता हुआ कि हे बुडिल जलरूप वैश्वानर की उपासना से तू ही धनवान् पुष्टिमान् होवे ऐसा नहीं किन्तु) जो अन्यकोई भी सर्व अन्न के भोक्ता वैश्वानर को उपासताहै सो भी धना-दिक अति प्रिय अन्न (भोग्यपदार्थों) को पावताहै, अरु उसका सर्व प्रिय (अभीष्टसिद्ध) होताहै, अरु उसके कुलमें सर्व ही तत्त्व-वेत्ता परम कर्म्मिष्ठ होतेहैं, जो इसही जलरूप आत्मा वैश्वानर को उपासताहै यह जो जलहै सो वैश्वानर आत्माका मूत्रसंग्रह कास्थान (उपस्थ) है इतनाकह पुनः राजा कहताहुआ कि हे बुडिल जो तू मेरे निकट न आवता तो तेरा मूत्रसंग्रहका स्थान भेदको पावता अर्थात् फटजाता, क्योंकि जिसको तू उपासताहै सो समस्त वैश्वानर नहीं किन्तु समस्त वैश्वानरके स्वरूप से उसके जिस अवयवको पृथक् करके तू उपासना करता है सो अवयव तेरा तुझसे पृथक् होजाता। अतएव यह तैंने अति श्रेष्ठ किया जो तू मेरेपास आया २ इतिषष्ठखंडः ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर राजा कहताहुआ कि हे अरुणके पुत्र उद्दालक

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुलेय एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मा नागमिष्य इति॥ २॥ इति सप्तमखण्डः॥ ७॥

गौतम किस आत्माको तू उपासताहै इति, हे पूजाके योग्य राजन् मैं पृथिवी को आत्मा वैश्वानर मानके उपासताहौं इति, राजाने कहा यह ही प्रतिष्ठा आत्मा वैश्वानरहै, इसको तू उपासताहै तिसकेप्रभावसे तू प्रजा अरु पशु करके प्रतिष्ठितहै १॥

भावार्थ खंडसातवां मन्त्र पहिला॥

हे सौम्य 'बुडिलऋषिसे कहने के अनन्तर वो राजा अश्वपति अरुण के पुत्र उदालक नाम ऋषिसे कहताहुआ कि हे गौतम गोत्रवाले उद्दालक तू किस आत्मा वैश्वानर को उपासता हैं। इसप्रकार जब राजाने प्रश्नकिया तब वो उद्दालक कहता हुआ कि हे पूजाके योग्य राजन् मैं पृथिवीको वैश्वानर जानके उपासता हौं। इसप्रकार जब उद्दालकने कहा तब पुनः राजा कहताहुआ कि यह पृथिवी ही प्रतिष्ठा (पाद) हैं वैश्वानर आत्माके, इस आत्मा वैश्वानर को तू उपासताहै, तिस उपासनाके ही प्रभावसे तू इसलोक विषे पुत्रादि अरु पशु आदिकों करके प्रतिष्ठित है १॥

अक्षरार्थ॥

जो इस अन्नके भोक्ता वैश्वानरको उपासताहै सो अति प्रिय अन्न (भोग्य) को देखता (पावता) है, उसका प्रिय होता है, इसके कुल में तत्त्ववेत्ता कर्म्मिष्ठ होतेहैं, जो इसही आत्मा वैश्वानरको उपासता है यह पृथिवी पादहै आत्मा वैश्वानरको इति, पुनः राजा कहता हुआ पाद तेरे शिथिल होजाते तू मेरे निकट न आवता॥ २॥ इति वैश्वानर विद्यायां सप्तमखंडः ७

अथ वैश्वानर विद्यायां ८ वां प्रपाठकेषु १८ वां खंडः ॥

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानंवैश्वानरंविद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥ १ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य, वो राजा अश्वपति उद्दालक से पुनः कहता हुआ कि इस पृथिवी रूप वैश्वानरकी उपासनासे तू ही प्रजा अरु पशु करके प्रतिष्ठित होवे ऐसा नहीं किन्तु) और भी जो कोई इस सर्व अन्नके भोक्ता वैश्वानरको उपासता है सो भी अति प्रिय अन्न (भोग्य पदार्थों) को देखता कहिये प्राप्तहोताहै । अरु उसका सर्व प्रिय (अभीष्ट सिद्ध) होताहै । अरु इसके कुल में सर्व तत्त्ववेत्ता परम कर्म्मिष्ठ होते हैं, जो इसही पृथिवी रूप आत्मा वैश्वानरकी उपासता है, अरु यह पृथिवी तो आत्मा वैश्वानरके पाद हैं। इतना कहके पुनः राजा कहता हुआ कि हे गौतम यह तेरे पाद शिथिल होजाते जो तू मेरे पास न आवता ॥ अर्थात् यह पृथिवी समस्त वैश्वानर नहीं किन्तु वैश्वानर के पाद रूप अवयवहै तिसको तैंने समस्त वैश्वानर से पृथक् कर उस एक पाद रूप अवयव को समस्त वैश्वानर का रूप जान उपासना किया है ताते तैंने समस्त वैश्वानरके एक अंग को पृथक् कर उपासना किया तिस अज्ञान करके तेरा पाद रूप अंग नष्ट होजाता जो मेरे निकट न आवता ताते तैंने अति श्रेष्ठ किया जो मेरे निकट आया ॥ २ ॥

इति वैश्वानर विद्यायां सप्तम खण्डः ॥ ७ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन सर्व ऋषियों प्रति राजा कहता हुआ एते तुम सर्वही निश्चय करकें पृथक् इव आत्मा वैश्वानरको (जो अपृथक् हैं)

परिच्छिन्न बुद्धिसे उपासते हो। अरु इस उक्त प्रकार अवयवों युक्त एक प्रादेशमात्र (सर्व अवयवोंमें एक अवयवी) अपने से अभिन्नजानके आत्मा वैश्वानरको जो उपासताहै सो सर्वलोकों बिषे सर्व भूतों विषे सर्व आत्मों विषे अन्नको भोक्ताहै॥ १॥

भावार्थ खंड आठवें मन्त्र पहिलेका॥

हे सौम्य॥ः–उक्त प्रकार राजा जैवलि ने प्राचीनशाल आदि छओं ऋषि 'जो वैश्वानर आत्माके सम्यक् ज्ञानार्थ उक्त राजा के समीप विधिवत् प्राप्तहुए हैं, तिनसे एक एक करके क्रम साध्य वैश्वानरकी उपासना सम्बन्धी उनकी परीक्षाके अर्थ प्रश्न किये, तब उन प्रत्येक के उत्तरसे उनको वैश्वानरके पृथक्२ एक एक अंगके उपासकजान उनकी उपासना के अनुसार उनको प्राप्त फल देखाया, अरु उन सर्वको समस्त वैश्वानरके स्वरूपकाज्ञान न होनेसे अरुवैश्वानरके एकएक अंगको समस्त वैश्वानर जान-के उपासना करने से। अर्थात् समस्त वैश्वानर के स्वरूप को न जानके उसके जिस जिस अवयवों को पृथक्२ करके जिस जिसने उनउन अवयवको समस्त वैश्वानर मान के उपास-ना किया तिसके तिसके उस उस अवयवका अभाव होना, अपने समीप न आवने से कहा–ः॥ अब उन छओं ऋषियों से जो उक्त प्रकार के वैश्वानरके उपासक हैं अरु वैश्वानर के सम्यक् ज्ञानार्थ राजाके निकट प्राप्तहुए हैं, तिनके प्रति प्रसिद्ध वो वैश्वानरका सम्यक् उपासक राजा कहताहुआ कि यह जो तुम्हारे सर्वकी उपासना है सो निश्चय करके (मिथ्या ज्ञान-वत् होने से) अनर्थकारी है (क्योंकि तुमने समस्त वैश्वा-नरके स्वरूप को न जानके उसके एक एक अवयवको उस से पृथक्कर उसही को समस्त वैश्वानर मानके उपासना किया है, अतएव तिस अज्ञानके प्रभावसे तुम्हारा सोई सो अवयव, कि वैश्वानरके जिस जिस अवयवको जिसने २ पृथक्कर उपा-सना किया है, नष्ट होजाना, जो समस्त वैश्वानर के सम्यक्

ज्ञानार्थ मेरे निकट न आवते–: ॥ क्योंकि तुम सर्व ने वैश्वानर को अपृथक् होते सन्ते भी पृथक् मानके उपासना किया है सो (अविद्वानोंवत्) वैश्वानरमें परिच्छिन्न बुद्धिसे किया है ताते, जैसे जन्मके अन्धे पुरुष एक अपरिच्छिन्न हस्तिविषे परिच्छिन्न बुद्धिकरके उसके एक एक अवयवको समस्त हस्तिमाने तैसे ॥:–अर्थात् एक किसी ग्राम में बहुतसे जन्मके अन्ध पुरुष रहते रहैं तिस ग्राममें एक हस्ति आय प्राप्तहुआ तब उस हस्ति को देखने को सर्व अन्ध पुरुष एकत्र होय उसके समीपजाय अपने नेत्रों के अभाव से अपने हाथों से उसको स्पर्शकर उस हस्तिको अयथार्थ अनुभव करतेहुए, तहां जिसने उसकी सूंडको स्पर्श करके देखा तिसने कहा यह हस्ति तो दीर्घ मूसल के समान है, अरु जिसने उसके पैरको स्पर्श करके देखा तिसने कहा हस्ति स्तम्भके आकारहै, जिसने उसके मध्यशरीरको स्पर्शकरके देखा तिसने कहा यह हस्ति भीत वा पर्वतके आकारहै, जिसने उसकी पुच्छको स्पर्श करके देखा तिसने कहा हस्ति पुष्टरज्जुरूपहै, जिसने उसके कानको स्पर्श करके देखा तिसने कहा यहहस्ति तो सूपके आकारवालाहै । इसप्रकार एक अभिन्न हस्तिको अन्धोंने अपनी २ कल्पनाके अनुसार अनेक रूपसे भिन्न भिन्न जाना अरु उसके एक एक अवयवको पूर्ण हस्ति करके माना ॥ तैसेही तुम सर्वने ज्ञानरूप चक्षु के अभाव से एक अभिन्न परिपूर्ण वैश्वानर आत्माके एक एक अवयवको समस्त वैश्वानरका स्वरूपमानके पृथक् २ उपासनाकियाहै–:॥ अरु यह वैश्वानर आत्मा तो यथोक्त द्युलोकादि रूप मूर्द्धादि अवयव विशिष्ट एक प्रादेशमात्रहै, अर्थात् द्युलोक मूर्द्धादिसेके पृथिवीरूप पादपर्यन्त आत्मरूपसे जो जाने-गा जानाजाय तिसको प्रादेशमात्र कहते हैं । अथवा मुखादि करणों विषे वा करणों से अकर्त्ता रूपसे जानाजाय वा अनुभव कियाजाय सो प्रादेशमात्रहै । अथवा द्युलोक से पृथिवी पर्यन्त प्रदेश परिमाण जो व्याप्त होवेसे कहिये प्रादेशमात्र । अथवा जो

प्रकर्षकरके शास्त्रद्वारा आदेशकिया जो द्युलोकादि तावत् परिमाण जोहोय सो कहिये प्रादेशमात्र ॥ः—अर्थात् द्युलोककहिये ब्रह्मलोकसे पृथिवी वा पातालपर्यन्त सर्वविराट्रूप शरीरके अन्तर आकाशवत् पूर्णतासे व्याप्त जो विराट्का चैतन्यआत्मा सोई वैश्वानर आत्मा है। अरु तिसको समस्त विराट्रूप वपुमें व्याप्त होने से अरु वेद करके प्रतिपाद्यहोनेसे प्रादेशमात्र कहते हैं—ः॥ अरु शाखान्तरमें "मूर्द्धादिचिबुकप्रतिष्ठ" मस्तकके अग्रभाग से चिबुक (ठोडी) पर्य्यन्तको प्रादेशमात्र कहते हैं, सो अस्तु, परन्तु यहां सो ग्रहण नहीं, क्योंकि आगे "तस्य हवा एतस्य आत्मनः" इसवाक्यसेउपसंहारहै ताते। अरु (उसविराट्विशिष्ट चैतन्य वैश्वानर आत्माको) प्रत्यगात्मा करके जानना। इसको अभिविमान। कहतेहैं ॥ः—अर्थात् जो द्युलोकसे पातालपर्य्यन्त समस्त विराट्रूप समष्टि शरीरमें एक भोक्ता वैश्वानर आत्माहै, सो आत्मा वैश्वानर मैंहूं इसप्रकार—ः॥ तिस इस आत्मा वैश्वानरको। अर्थात् विश्वके समस्त नरों (जीवों) को उनके पुण्य पापरूप कर्म्मोंके अनुसारगतिको प्राप्तकरे तिसको कहिये वैश्वानर। यह सर्वात्मा ईश्वर वैश्वानरहै। अथवा सर्वात्मत्वहोने से वैश्वानरहै। अथवा जो आत्मरूप करके समस्त विश्व के नरों (जीवों) का विभागकर तिनके प्रत्यगात्मरूपसे स्थितहोवे सो कहिये वैश्वानर। ऐसे समस्त विश्वके एक अभिन्नप्रत्यगात्मा वैश्वानरको अभेदभावसे कि सो वैश्वानर आत्मा मैं हौं। इस प्रकार अहमग्रे भावसे जो उपासना करताहै सो द्युलोकादि सर्व लोकोंबिषे अरु चराचर सर्वभूतोंबिषे अरु शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदिक आत्मोंबिषे, अर्थात् ॥ः—शरीर प्राण इन्द्रिय मन बुद्धिआदिक संघात को पांच विभागसे पांच कोशकरके जहां वर्णनकिया है तहां उन कोशोकों आत्माकरकेही कहाहै क्योंकि जो जिसके अन्तरहै सो तिसका आत्माहै, तहां बाह्य गृहके अन्तर अरु धारकहोने से गृहका आत्मा शरीरहै, शरीर के अन्तर प्राणहै ताते

तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजा श्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेवरयिः पृथिव्येव पादौ, उदरएव वेदिर्लोमानिबर्हि हृदयंगार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्य्यपचन आस्यमाहवनीयः २ ॥ इत्यष्टमखंडः ॥ ८ ॥ १८ ॥

सो शरीरके आत्माहै, प्राणके अन्तर मनहै ताते सो प्राणका आत्माहै, मनके अन्तर बुद्धिहै ताते सो मनका आत्माहै, इस प्रकार शरीर से बुद्धि पर्य्यन्त सर्वको आत्मत्व कहा—ः ॥ इस प्रकार एक सर्वात्मा वैश्वानर का अभेद उपासक सर्वात्माहुआ सर्वमें स्थितहोय सर्व अन्नका भोक्ताहै । अर्थात् द्युलोकसे पाताल पर्य्यन्तके प्राणीमात्र जो अन्न भोक्ते हैं, सो एक वैश्वानर आत्मा का अभेद उपासकही सर्वात्माहुआ भोक्ताहै । अरु जो सर्वात्मा वैश्वानरके न जाननेवाला अज्ञ केवल शरीरमात्रकाही परिच्छिन्न अभिमानी है सो नहीं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिस प्रसिद्ध वा इस प्रकृत आत्मा वैश्वानरका सुतेजा (द्युलोक) मस्तकही है, आदित्य चक्षुहै, वायु प्राणहै, आकाश मध्य का शरीर है, जल मूत्रका स्थानहै, पृथिवी पादहै (ऐसे वैश्वानरके अभेद उपासकका भोजनकालका अन्तर अग्निहोत्र कहते हैं, तहां) उसका उदर वेदी है उदरके रोम दर्भ (कुशा) हैं हृदय गार्हपत्य अग्निहै मन दक्षिणाग्नि है, मुख आहवनीय अग्निहै ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य ॥ः—पुनः वो राजा अश्वपति प्राचीनशालआदिक ऋषियोंप्रति समस्त वैश्वानरका स्वरूप कहता हुआ कि जिस की जिज्ञासासे वो ऋषि विधिवत् उसकेपास प्राप्तहुएहैं——ः ॥

हे ब्राह्मणो! तिस प्रसिद्ध सर्वात्मा वैश्वानरका सुतेजा नामवाला द्युलोक (सत्यलोक) मस्तकही है, अरु विश्वरूप नामवाला आदित्य उसका चक्षुहै, अरु 'पृथग्वर्त्मात्मा' इसनामवाला वायु उसका प्राणहै, अरु बहुल नामवाला आकाश उसका मध्यका शरीरहै, अरु रयिः नामवाला जल उसका मूत्रसंग्रहका स्थान (उपस्थ) है, अरु पृथिवी उसके पादहैं॥ इसप्रकार विराट्रूपशरीर के छओंअंगों में व्याप्त जो एकचैतन्यआत्मा तिसकी। उसकी उपासनाके अर्थ उपासकोंप्रतिविधिके अर्थही राजाकायहवचनहै [अर्थात् राजा ने उन ऋषियों प्रति प्रधान वैश्वानर विद्या कही, अब आगे तिसका अंगभूत प्राणाग्निहोत्रविद्याविधि, अरु तिस का फल, देखावनेकी कामनासे भूमिका करते (कहते) हैं]॥:-- अर्थात् जो समष्टि विराट्शरीर के उक्त सर्वअवयवों में व्याप्त जो एक चैतन्य आत्मा वैश्वानरहै। सोई व्यष्टि शरीरके मस्त-कादि पादपर्यन्त व्याप्तभी सोई चैतन्य आत्मा वैश्वानरहै, ताते व्यष्टि समष्टि उभय उपाधि में व्याप्त एक चैतन्य आत्मा है, ताते वैश्वानरके उपासक को अभेद उपासना कर्त्तव्य है, कि जिसको अहमग्रे उपासना कहतेहैं। अर्थात् जैसे वैश्वानर आ-त्मा समष्टि विराट्का है सोई मैं व्यष्टि विराट्का आत्मा मैं हौं, इसप्रकार के अभेद अनन्य उपासकके अर्थ प्राणाग्निहोत्रविधि कहते हैं--॥ राजा अश्वपति उन ऋषियों प्रति कहताहुआ कि उक्त प्रकारके वैश्वानर के भोजनकाल में प्राणाग्निहोत्र की विधि श्रवणकरो। उक्तप्रकारके उपासकका जो उदर है सोई वेदीहै आकारकी सामान्यता होनेसे अरु उदर के ऊपर के जो रोम हैं सोई बर्हि (कुशा) हैं, जैसे वेदी (हवन की सामग्री के रखने का स्थान) ऊपर कुशास्तरण (बिछी) होती है तैसे, अरु उस उपासकका हृदय गार्हपत्य अग्नि है, अरु मन प्रजापति नामवाला वा दक्षिणाग्नि नामवाला अग्निहै॥:- अर्थात् "गार्हपत्यात्प्रणीयते" इस श्रुतिके प्रमाणसे दक्षिणाग्नि

अथ वैश्वानरविद्यायां नवमप्रपाठकेषु १९ वा खंडः ॥

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति १ ॥ प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवितृप्यतां यत्किञ्च द्यौश्चादित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिंतृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २ । ९ ॥

जो है सो गार्हपत्याग्निसे निकसा होताहै । तैसेही मनरूप दक्षिणाग्नि हृदयरूप गार्हपत्याग्निसे निकसा होनेसे मन दक्षिणाग्नि है–ः॥ अरु उस उपासक का मुख आहवनीय अग्निहै । आहवनीय उसको कहते हैं कि जिसबिषे हवन कियाजाय । अग्निहोत्रादि हवनकी आहवनीय अग्निहै २ ॥ इत्यष्टमखंडः ८ ॥

भावार्थ खंड ९ वां मन्त्र १–२ का ॥

हे सौम्य (अब राजा अश्वपति प्राचीन शालादिऋषियोंप्रति उक्तप्रकारके वैश्वानरविद्याके उपासकों के अर्थ भोजनकाल में प्राणाग्निहोत्र कहताहै) हे ब्राह्मणो तहां इस (उक्त) प्रकार होने से जो उस विद्वान्के भोजनकाल में भोजनार्थ भोजनपात्र में प्रथम प्राप्तहोवे सो होमके अर्थ है ॥ ः–अर्थात् सामान्यरीति से वर्णत्रयीके पुरुषों के अरु अर्थ विशेष करके अग्निहोत्र के कर्त्ता वैश्वानर के उपासकके अर्थ उनके भोजनकाल में भोजन के पात्र में प्रथम वो अन्न आवना चाहिये जिसमें लवणका योग संस्कार न होय, तहां विशेष करके प्रायः घृतयुक्त ओदन (भात) भोजन पात्रमें प्रथम आवना चाहिये क्योंकि सो हवन का मुख्य द्रव्य है –ः॥ तिसका हवनकरना । यह जो कथनहै सो अग्निहोत्रसम्पन्नके अर्थ विवक्षित होने से अग्निहोत्राङ्ग

अथ वैश्वानरविद्यायां दशमप्रपाठकेषु २० वा खण्डः ॥

अथयांद्वितीयांजुहुयात्तांजुहुयाद्व्यानाय स्वाहेतिव्या नस्तृप्यति १ ॥ व्यानेतृप्यतिश्रोत्रंतृप्यति श्रोत्रेतृप्यति चन्द्रमास्तृप्यतिचन्द्रमसितृप्यतिदिशस्तृप्यति दिक्षुतृ प्यतिषु यत्किञ्चदिशश्चचन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्य तितस्यानुतृप्तिं तृप्यतिप्रजया पशुभिरन्नाद्येनतेजसाब्र ह्मवर्चसेनेति २ ॥ इति दशमखण्डः १० ॥

विषे कर्त्तव्यता की प्राप्ति नहीं । इस भोजनकाल में प्रथम प्राप्त हुए अन्न को सो भोक्ता इस प्रथम आहुति को हवन करे प्र० ॥ तिस आहुतिको कैसे हवन करे ॥ उ०।" प्राणायस्वाहा" इस मन्त्र करके आहुति करे । अर्थ यह जो आहुतिशब्द करके अवदानमात्र अन्नको मुखमें डाले ॥:—अर्थात् वो विद्वान् भोज-नार्थ प्रथम प्राप्त हुए उक्तप्रकार के अन्नको अंगुष्ठ मध्यमा अरु अनामिका, इन तीन अंगुलीकी पूर्ण चुटुकी से ग्रासमात्र ग्रहण कर उक्त मन्त्रपढ़ मुखमें डाले, अरु उसको दांतोंसे चबाये विना कंठमें उतारलेवे—: ॥.तब तिस आहुति से प्राण तृप्त होताहै १॥ प्राणके तृप्तहुए चक्षु तृप्त होताहै । चक्षुके तृप्तहोने से आदित्य तृप्त होताहै, आदित्यके तृप्तहुए द्युलोक तृप्त होताहै । द्युलोकके तृप्त हुए जो कुछ द्यौ अरु आदित्य बिषे तिसके अधिष्ठातादि अधि-ष्ठित हैं सो तृप्त होते हैं तिनके तृप्त होने से तिस हवनकर्त्ता की (बाधितानुवृत्तिप्रमाण) अनुतृप्ति होती है, इसप्रकार प्र-त्यक्षहै । प्रजा करके पशु करके अन्नादि पुनः शारीरक तेज करके अरु अपने वेदशाखा के स्वाध्याय करने से बुद्धिके तेज करके (इस उक्तप्रकारके प्राणाग्निहोत्रके कर्त्ताकी तृप्ति होती है २ ॥ इति नवमखण्डः ६ ॥ १६ ॥

अथ वैश्वानरविद्यायां ११ वां प्रपाठकेषु २१ वां खंडः ॥

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्य
पानस्तृप्यति १ अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्य
त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथि॰व्यां
तृप्यत्यां यत्किञ्च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्य
ति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा
ब्रह्मवर्चसे नेति ॥ २ ॥ ११ ॥

भावार्थ खण्ड दशवां मन्त्र १ ॥ २ ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति कहताहुआ हे ब्राह्मणो)
तिस प्रथम आहुतिके अनन्तर द्वितीयआहुति कोहवनकरे ॥ प्र०॥
कैसे आहुतिकरे ॥ उ० "व्यानायस्वाहा" इसमन्त्रसे आहुतिकरे
तिस आहुति से व्यान नाम प्राण तृप्त होताहै ॥ १ ॥ व्यान के
तृप्तहुए श्रोत्र तृप्तहोताहै, श्रोत्र के तृप्तहुए चन्द्रमा तृप्त होताहै,
चन्द्रमा के तृप्तहुए दिशायें तृप्तहोती हैं ॥:-अर्थात् व्यानके तृप्त
हुए श्रोत्र तृप्त होताहै श्रोत्रके तृप्तहुए तदभिमानी दिशायें तृप्त
होती हैं, दिशाओं के तृप्तहुए तत्सम्बन्धी चन्द्रमा तृप्तहोताहै-:॥
दिशाओं के तृप्तहोने से जो कुछ दिशाओं विषे अरु चन्द्रमा बिषे
उनके स्वामित्वभावसे (अरु प्रजा से) अधिष्ठित हैं तिनकी
तृप्ति होती है। तिनकी तृप्ति से (बाधितानुवृत्तिप्रमाण) उस
भोक्ता विद्वान् की तृप्ति होती है। प्रजा करके पशु करके अन्नादि
भोग्यपदार्थों करके, अरु शारीरिक तेज करके अरु अपने वेद
शाखा के स्वाध्यायनिमित्तिक बुद्धि के प्रकाश करके (उस
विद्वान्की तृप्ति होती है) ॥ २ ॥ इति वैश्वानरविद्यायां दशम
खण्डः १० । २० ॥

भावार्थ खण्ड एकादशवां मन्त्र ॥ १-२ ॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति प्राचीन शालादि ऋषि-

अथ वैश्वानरविद्यायां १२ वां प्रपाठकेषु २२ वां खंडः ॥

अथयां चतुर्थी जुहुयात्तां जुहुयात् समानायस्वाहेति समानस्तृप्यति १ समानेतृप्यतिमनस्तृप्यति, मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति, पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यतिवि द्युति तृप्यतां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृ प्यति तस्यानुतृप्तिंतृप्यति, प्रजयापशुभिरन्नाद्येनतेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २॥ इति द्वादशखण्डः १२॥ २२॥

यों प्रति कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) द्वितीय आहुति के अनन्तर, इस तृतीय आहुतिको हवनकरे॥ प्र०॥ किस प्रकार हवन करे॥ उ०। "अपानाय स्वाहा" इस मन्त्र करके आहुति करे, तिस आहुति से अपान नाम प्राण तृप्तहोताहै ॥ १ ॥ अपान के तृप्त हुए वाक् तृप्तहोतीहै, वाक् के तृप्तहुए अग्नि तृप्तहोताहै, अग्नि के तृप्तहुए पृथिवी तृप्तहोती है,। पृथिवी के तृप्तहुये जो कुछ पृथिवी अरु अग्नि बिषे अधिष्ठातादिरूप से अधिष्ठित है सो तृप्त होताहै। तिनके अनुतृप्त होने से (बाधितानुवृत्तिप्रमाण) वो भोक्ता विद्वान् तृप्त होताहै, प्रजाकरके पशुकरके अन्नादि भोग्य पदार्थों करके अरु शरीरक तेज करके अरु अपने वेदशाखा के स्वाध्यायनिमित्तिक विद्याके तेजकरके (वो विद्वान्) तृप्तहोता है २॥ इति ११ वां खंडः ११। २१॥

भावार्थ खंड १२ वां मन्त्र १-२॥

हे सौम्य (पुनः वो राजा अश्वपति प्राचीन शालादिऋषियों प्रति कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) तृतीय आहुति के अनन्तर इस चतुर्थ आहुतिको हवनकरे॥ प्र०॥ तिसको कैसे हवनकरे॥ उ० "समानाय स्वाहा" इस मन्त्रसे आहुति करे, तिस करके समान नामवाला प्राण तृप्तहोताहै॥ १॥ तिस समानके तृप्तहुए मन तृप्तहोताहै, मनके तृप्तहुये पर्जन्य तृप्तहोताहै, पर्जन्य के तृप्त

अथ वैश्वानरविद्यायां १३ वां प्रपाठकेषु २३ खंडः ॥

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्यु दानस्तृप्यति १ ॥ उदाने तृप्यति वायुस्तृप्यति, वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चा काशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्र जया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति २ ॥ इति १३ वां खण्डः १३ ॥

हुए विद्युत्तृप्तहोताहै,विद्युत्के तृप्तहुए जोकुछ पर्जन्य अरु विद्युत् बिषे स्वामित्व अरु प्रजाभावसे अधिष्ठितहै सोतृप्तहोताहै, तिनकी अनुतृप्तिसे वो भोक्ता विद्वान् तृप्तहोताहै, प्रजाकरके पशुकरके अन्नादिभोग्यपदार्थों करके अरु शारीरक तेज करके अरु अपने वेद शाखाके स्वाध्याय करनेके प्रभावसे तज्जन्य अर्थ प्रकाश करके (वो विद्वान् तृप्तहोताहै ॥ २ ॥ इति १२ वां खंडः ॥ १२ । २२॥

भावार्थ खंड १३ वें मन्त्र १—२ का ॥

हे सौम्य (उक्तप्रकार कहके पुनः वो राजा अश्वपति उन प्राचीन शालादिऋषियों से कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) चतुर्थी आहुति के अनन्तर पांचवीं आहुति को हवनकरे ॥ प्र० ॥ कैसे हवनकरे॥ उ० । " उदानाय स्वाहा " इस मन्त्र करके आहुति करे तिस आहुतिसे उदान तृप्त होताहै १ ॥ उदान के तृप्त हुए वायु तृप्त होताहै, वायु के तृप्तहुए आकाश तृप्त होताहै, आकाश के तृप्तहुए जो कुछ आकाश अरु वायु बिषे अधिष्ठाता अरु प्रजारूप से अधिष्ठित हैं सो सर्व तृप्तहोते हैं, अरु तिसकी अनुतृप्तिसे वो प्राणाग्निहोत्र का कर्त्ता सर्वत्र अन्नका भोक्ता विद्वान् तृप्त होताहै प्र० ॥ किसकरके तृप्तहोताहै ॥ उ० ॥ पुत्रादि प्रजाकरके, गौ आदि पशुओं करके अन्न अरु सुवर्णादि द्रव्य भोग्यपदार्थों करके अरु नीरोगतादिनिमित्तिक शारीरक तेजकरके अरु अपने वेदशाखा

सयइदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथांगारानपोह्यभ स्मनि जुहुयात्तादृक् तत्स्यात् ॥ १ ॥

के स्वाध्यायजन्य वैश्वानरादि विद्याके सम्यक् ज्ञान निमित्तिक बुद्धिके तेजकरके (वो उक्तप्रकार वैश्वानर आत्माके सम्यक्ज्ञान पूर्वक प्राणाग्निहोत्रका कर्त्ता विद्वान् तृप्तहोताहै २॥ इतिवैश्वानर विद्यायां त्रयोदशमःखण्डः १३॥ २३॥

अक्षरार्थ खण्ड १४ मन्त्र १ का ॥

सो जो इस वैश्वानर विद्या वा प्राणाग्निहोत्र को न जानने वाला अग्निहोत्र को करताहै सो जैसे आहुति करने के योग्य अंगार तिनको त्यागके राखमें आहुति करता होय तादृश तिस का होताहै ॥ १ ॥

भावार्थ खंड १४ वें मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, (पुनःवोवैश्वानर विद्याका सम्यक्ज्ञाता राजा अश्वपति उन प्राचीनशालादि ऋषि, जो वैश्वानर विद्याकी सत्य जिज्ञासा धारके उस राजा के समीप प्राप्तहुए, तिनके प्रति कहताहुआ कि हे ब्राह्मणो) सो जो कोई इस उक्त प्रकारकी वैश्वानर विद्याकी अभेद ज्ञात पूर्वक प्राणाग्निहोत्रको न जानता हुआ इस केवल कर्म्म रूप अग्निहोत्रको करता है, सो जैसे आहुति करने के योग्य प्रज्वलित अंगार तिनको त्याग के भस्म में आहुति करनेवत् उसका सो अग्निहोत्र होताहै ॥:—अर्थात् वैश्वानर विद्याके सम्यक् ज्ञान विनाका अरु उक्त प्रकारके प्राणाग्निहोत्रके किये विनाका जो केवल प्रसिद्ध अग्निहोत्रहै सो राख में आहुति करनेवत् निष्फल है अरु इस न्याय करके यह सिद्ध हुआ कि जो पुरुष इस प्रसिद्ध अग्निहोत्र को न करके वैश्वानर विद्याके ज्ञान पूर्वक प्राणाग्निहोत्र को उक्त प्रकार करता है तिसको प्रसिद्ध अग्निहोत्र 'कि जिसके न करने में प्रत्यवाय है, न करनेका प्रत्यवाय न होके फलकी प्राप्ति सिद्ध है—:॥ यहां जो

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्व्वे
षुलोकेषु सर्वेषुभूतेषु सर्व्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥ २ ॥
प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी निंदा कियाहै सो वैश्वानर विद्याके जानने
वाले विद्वान् के अग्निहोत्रकी अपेक्षासे है ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो उक्त प्रकारके अविद्वान् से इतर, इस उक्त प्रकार विद्वान् अग्निहोत्रको हवन करता है तिसका सर्वलोकविषे सर्वभूतों विषे सर्वआत्मोंविषे हवन किया होताहै ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार कह के पुनः राजा अश्वपति वैश्वानर विद्याके ज्ञाता विद्वान् के प्राणाग्निहोत्रकी प्रशंसा करताहै कि हे ब्राह्मणो, इस वैश्वानर विद्याके न जाननेवाले अविद्वान्से इतर जो उक्तप्रकार वैश्वानर विद्याके सम्यक्ज्ञानपूर्वक प्राणाग्निहोत्र के करनेवालेका सर्वलोकोंविषे सर्वभूतोंविषे सर्वआत्मोंविषे हवन किया होताहै ॥ :—अर्थात् उक्त प्रकार का जो वैश्वानर आत्मा का अभेद उपासक है सो सर्वात्मा होने से सत्यादि सर्व लोकों विषे ब्रह्मादि सर्व भूतोंविषे अर्थात् प्राणधारियों विषे अरु शरीर इन्द्रिय मन बुद्धयादि (अनात्मरूप) आत्मोंविषे। अर्थात् आधिदैव, अधिभूत,अध्यात्म तीनोंप्रकारका जगत् जहां पर्यन्त सूत्रात्माविषे प्रोतहै वा जिन जिनविषे प्राणरूप सूत्रात्माकी व्याप्तिहै, तिनतिन विषे वो सर्वत्र हवन करनेवाला होने से सर्वत्र उसही का किया हवन होता है ॥ :——अर्थात् यावत् नामरूप क्रियात्मक जगत् है सो सर्व प्राणरूप सूत्र आत्मामें मालाको मणियोंवत् परोयाहुआ है अरु तिस सूत्र विशिष्ट चैतन्य साक्षी आत्मा सर्व का भोक्ता वैश्वानर नामसे व्याप्तहै तिसका जो सम्यक् अभेद उपासक है तिसको सर्वात्मा होने से वो सर्वत्र प्राणाग्निहोत्रका कर्त्ता अरु सर्वत्र सर्व अन्न का भोक्ता होता है ॥ अरु इस वैश्वानर विद्या

तद्यथेषीका तूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवछं हास्य सर्व्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति३॥

को कृष्ण भगवान् ने भी प्रकाशित कियाहै, "अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रिता प्राणापानसमायुक्तो पचाम्यन्नं चतुर्विधम्" इसवाक्य से। अरु राजा युधिष्ठिर के वनवास में साठ हजार ऋषियों सहित दुर्वासा के भोजनार्थ आगमन समय श्रीकृष्ण ने शाक का एकपत्र भोजनकर उक्त सर्व ऋषियों को पूर्णता से तृप्तकिये, सो अपना ईश्वरपना औ प्राणाग्निहोत्रकी महिमा देखाया है॥ २॥

अक्षरार्थ॥

सो जैसे इषीका (सेठ) रुई अग्नि के डालने से अति शीघ्र भस्महोती है तैसेही जो विद्वान् इस उक्त प्रकार अग्निहोत्रको करता है तिसके सर्व पाप अतिशीघ्र भस्महोते हैं॥ ३॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का॥

हे सौम्य (उक्तप्रकार वैश्वानर विद्याके सम्यक् ज्ञाताविद्वान् के प्राणाग्निहोत्रकी प्रशंसा स्तुति कह पुनः वो राजा कहताहुआ कि हे ब्राह्मणो) सो जैसे इषीका कहिये, सिरकी वा सेंठा वा सरकंडा, नामक तृणविशेषकी रुई (अर्थात् सिरकी नाम तृणविशेष शरदृतु में जब फूलताहै सो उसका पुष्प रुई के सदृशहोता है) तिसविषे जब अग्नि लगावते हैं तब वो अतिही शीघ्र भस्म होजाताहै। तैसेही इस सर्वात्मभावको प्राप्तहुए उक्तप्रकार वैश्वानर आत्मा के सम्यक् उपासक विद्वान्के 'जो उक्तप्रकार के प्राणाग्निहोत्र का कर्त्ता सर्वत्र सर्व अन्नका भोक्ताहै तिसके अनेक जन्मों के संचित धर्म्माधर्म्म लक्षणरूप निर्विशेष पाप, अरु पुनः इसजन्म में ज्ञानोत्पत्ति से पूर्व इस शरीर से किये जे धर्म्माधर्म्म लक्षण रूप कर्म्म, अरु पुनः ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् ज्ञानके सहित होनेवाले कर्म्म, सो सर्व कथित दृष्टान्त प्रमाण

तस्माद् हैवंविद्यपि चाण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदा त्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतछंस्यादिति तदेश इलोकः ४॥

वैश्वानर आत्मा के सम्यक् ज्ञानहोने मात्रसेही अतिशीघ्र भस्म होजाते हैं "ज्ञानाग्नि दग्ध कर्म्माणि भस्मसात्कुरुते तथा"। परन्तु जिन कर्मोंने इस वर्त्तमान शरीरका आरंभ कियाहै अरु जिन कर्म्मों ने इस वर्त्तमान शरीर से अपना फल भोग देनाहै सो कर्म्म भस्महोते नहीं, वो अपना फल देके निवृत्त होते हैं ॥:- अर्थात् उक्तप्रकार सम्यक् सर्वात्म भावको प्राप्तहुए ज्ञानी के अनेक जन्मोंकेकिये अरु ज्ञानोत्पत्तिसे पूर्व इस जन्म के किये सर्व संचित कर्म्मोंका नाश उक्त ज्ञान उत्पन्न होने मात्रसेही नष्ट होते हैं। अरु सम्यक् ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् कर्त्तव्य अवशेष रहे नहीं, अरु यावत् शरीर तावत् जे ज्ञानोत्पत्ति के उत्तर कर्म होते हैं सो अभिमान से अरु फलकी इच्छा से रहित होनेसे वो कर्म न हुएवत् होते हैं। अरु विद्वान् के प्रारब्ध कर्म्म अपना फल भोगाय समाप्तहोते हैं। अतएव ज्ञानी के जन्मारंभक संचितादि सर्व कर्मों के भस्महुए वो पुनः जन्म पावता नहीं-:॥ ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसकारणसेही प्रसिद्ध इसप्रकारका विद्वान् यद्यपि (नहीं है उच्छिष्ट देने के योग्य चाण्डाल) तिस चाण्डाल को उच्छिष्ट देताहै सो प्रसिद्धही इसका आत्मा वैश्वानरविषे हवन किया होताहै इति तहां यह श्लोक, मंत्र, प्रमाण है ॥ ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य, (वो राजाअश्वपति उक्तप्रकार सर्व कहके पुनः उक्तप्रकार के विद्वान् के उस उक्त अग्निहोत्र का असाधारण माहात्म्य कहताहुआ) हे ब्राह्मणो जो इसकथितप्रकार वैश्वानर विद्याका ज्ञाता विद्वान् उक्तप्रकार प्राणाग्निहोत्र करता है, अर्थात् उक्तप्रकार अन्नको भोक्ता है, सो जो कदापि चाण्डालको

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्य्युपासते एवछंसर्व्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥ ५ ॥

इति वैश्वानर विद्यायां चतुर्दशमःखंडः ॥ १४ ॥ प्रपाठकेषु २४
इति छान्दोग्य उपनिषदि पंचम प्रपाठकः ॥ ५ ॥

'जो कि उसविद्वान्के उच्छिष्टका अधिकारी नहीं, यदि तिसको भी वो विद्वान् अपना उच्छिष्ट देवे ,जो कि उस चाण्डाल को देना प्रतिषिद्ध है तो भी उस विद्वान् करकेदिया उच्छिष्ट अन्न सो प्रसिद्धही इस चाण्डाल देहस्थ आत्मा वैश्वानरविषे सो अन्न आहुति किया होता है, अधर्म का निमित्त होतानहीं ॥ः—अर्थात् कर्म्मिष्ठ ब्राह्मण का उच्छिष्ट अन्न चाण्डालको देना दोषहै परन्तु उक्त वैश्वानर विद्याका ज्ञाता प्राणाग्निहोत्र का कर्त्ता विद्वान् जो कदापि अपना उच्छिष्ट अन्न अनधिकारी चाण्डालको देवे तो वो उसका दिया अन्न अधर्म का निमित्त न होके चाण्डाल देहस्थ वैश्वानर विषे आहुति किया होताहै—ः ॥ यह श्रुति का कथन वैश्वानर विद्याकी स्तुतिके अर्थ है। अरु इसस्तुति वाक्य विषे अग्रिम कहनेका मन्त्र प्रमाणहै ॥ ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

जैसे इस लोक विषे क्षुधावन्त बालक अपनी माताको उपासते हैं। तैसेही इस प्रकार सर्व्वभूत (प्राण धारी) अग्निहोत्र को उपासते हैं ॥ यहां जो दोबार कथनहै सो विद्याकी वा प्रपाठक (अध्याय) की समाप्ति के अर्थ है ॥ ५ ॥ इति वैश्वानर विद्यायां चतुर्दशम प्रपाठकेषु चतुर्विंशतितमःखंडः १४। २४ इति

भावार्थ मन्त्रपाँचवेंका ॥

हे सौम्य (उक्तप्रकार राजा अश्वपति प्राचीन शालआदि छओं ऋषियों प्रति समस्त वैश्वानर विद्या ,कि जिसके ज्ञानार्थ उक्त

ऋषि उस राजाकेसमीप प्राप्तहुए, अरु प्राणाग्निहोत्र, किजिसके करने से समस्त जगत् की तृप्ति होती है, तिसकी स्तुति कहके पुनः कहता हुआ कि हे ब्राह्मणो) जैसे इस लोक विषे क्षुधित (भूखे) बालक अपनी माता की उपासना करते हैं कि कब हम सबकी माता हमको भोजनार्थ अन्न देवेगी । इसही प्रकार सर्व प्राणधारी, अपने को अन्नके देनेवाले उक्त प्रकार के विद्वान् के अग्निहोत्र को अर्थात् उक्त प्रकारके वैश्वानर के उपासक ज्ञान-वान् के प्राणाग्निहोत्र पूर्वक भोजन को, उपासते हैं कि किस समय वो विद्वान् भोजन करेगा कि जिसकरके हम तृप्त होवेंगे । अर्थ यहहै कि समस्त वैश्वानर आत्मा के ज्ञान पूर्वक अभेद उ-पासक के प्राणाग्निहोत्र पूर्वक भोजन से समस्त जगत् तृप्त होताहै ॥ अरु यहां जो द्विवार कथनहै सो विद्या अरु प्रपाठक की समाप्तिका बोधकहै ॥ ५ ॥ इति चतुर्दशमः खंडः ॥ प्रपाठक का २४ वां खंडः ॥ इति वैश्वानर विद्या समाप्ता ॥

इतिश्री छान्दोग्य उपनिषद्का पंचम, उत्तरार्द्ध का प्रथम प्रपाठक समाप्तम् । हरिः ॐ तत्सत् ॥

अथ छान्दोग्यउपनिषदिषष्ठ,उत्तरार्द्धेद्वितीय,प्रपाठकप्रारभ्यते॥

ॐ॥ श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्य्यं न वै सौम्याऽस्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिवभवतीति॥ १॥

अक्षरार्थ॥

श्वेतकेतु इस प्रसिद्ध नामवाला अरु आरुणिका पुत्र अरु अरुणका पौत्र ताते आरुणेय इस द्वितीय नामवाला होताभया। तिसके प्रति आरुणि पिता कहता हुआ, हे श्वेतकेतो यज्ञोपवीत धारण कर ब्रह्मचर्य्यधार विद्या अध्ययनको नहीं गया, हे सौम्य निश्चयकरके हमारे कुलमें 'अननूच्य, विद्या अध्ययन न करने वाला कोई भी हुआनहीं क्योंकि जो विद्याऽध्ययन नहीं करता सो ब्राह्मणों में नीचवत् होताहै॥ १॥

भावार्थ खंड १ मन्त्र १ का॥

श्रीगुरुरुवाच॥ हे शिष्य इस छान्दोग्यउपनिषद् के पंचम अरु उत्तरार्द्ध के प्रथम प्रपाठक के श्रवण करने के अनन्तर अब उक्त उपनिषद् के षष्ठ अरु उत्तरार्द्ध के द्वितीय प्रपाठक को श्रवणकरो॥ हे शिष्य पूर्व इस उपनिषद्के पूर्वार्द्ध तृतीय प्रपाठक के चतुर्दशवें खंडके प्रथम मन्त्रकरके कहाहै कि "सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति" यह सर्व निश्चयकरके ब्रह्मही है, क्योंकि ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है अरु ब्रह्ममेंही लय होताहै ताते। अरु इसही उपनिषद्के पंचम प्रपाठक की वैश्वानर विद्या विषे ऐसा कहाहै कि वैश्वानर विद्या के जाननेवाले एक विद्वान्के प्राणाग्निहोत्र पूर्वक भोजन करने से समस्त जगत् तृप्त होताहै, सो ऐसा कहने से सर्व भूतों विषे सत् आत्मा एकही उपपद्य होता है, क्योंकि आत्मा के भेद होनेसे एकके भोजन से सर्वकी तृप्ति बने नहीं ताते सो सत आत्मा एकही है। परन्तु इन सर्वकापूर्व

सम्यक् प्रकार निर्णय हुआनहीं। अतएव उक्तदोनों श्रुति वाक्यों के सम्यक् निर्णयार्थ इस षष्ठ प्रपाठक (अध्याय) का आरंभ करते हैं॥ अरु इस षष्ठ अध्यायमें जो पितापुत्रके संवादरूप आख्यायिकाहै सो विद्याकी सर्वोत्तमताके प्रदर्शनार्थ है॥ इति प्रस्तावना॥

हे सौम्य पूर्व एकअरुण नाम ऋषीश्वरका पुत्र आरुणि तिस का प्रसिद्धनाम उद्दालकथा तिस उद्दालक ऋषिकापुत्र अरुअरुण का पौत्र आरुणेय सो श्वेतकेतु इसप्रसिद्ध नामवाला होताहुआ, सो अपनीबाल्यावस्थामें सुन्दर अरु चंचल स्वभाव होनेके कारण अपने माता पिताको अति प्याराथा, अरु उस श्वेतकेतुमें उसके माता पिताका स्नेह अधिकहोनेसे वो अशिक्षितरहा। अर्थात् उस के माता पिता उसबालक श्वेतकेतुके मोह वशहुए उसको शिक्षा कुछ भी न करते थे। इसप्रकार वो अशिक्षित श्वेतकेतु द्वादशवर्ष की अवस्था को प्राप्तहुआ तब उसके पिताने उसका यज्ञोपवीत धारण पूर्वक विद्याऽध्ययन करने का कालव्यतीतहोता देख एक दिवस उसका पिता उद्दालक कहताहुआ कि हे श्वेतकेतु तू अपने अनुरूप (तुल्य) गुरुके गृहको विद्या अध्ययनार्थ नहीं गया [यहां जो गुरुकुलको अनुरूप विशेषण कहाहै सो श्रेष्ठ कुलके विद्वान् पुरुषकोही गुरुपनाहै, अधम कुलके पुरुषको नहीं, इस वार्त्ता के लखावने के अर्थहै] अब तू यज्ञोपवीतधार ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्या अध्ययनकर। हे सौम्य हमारे कुलमें उत्पन्नहोय ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्याका अध्ययन न करना योग्य नहीं, क्योंकि जो पुरुष ब्रह्म॰ चर्य्य पूर्वक विद्याऽध्ययन नहीं करता सो ब्रह्मबन्धुवत् होताहै। अर्थात् विना विधिवत् विद्या के अध्ययनकिये किसी अनाचारी निकृष्ट ब्राह्मणवत् तू मेरे कुलविषे अनउत्पन्नहुएवत् प्रतीतहोता है। हे श्वेतकेतु पूर्व हमारे कुलविषे ऐसाकोई भी नहीं हुआ कि जिसने ब्रह्मचर्य्य पूर्वक विद्या अध्ययन न किया होय, हमारे कुल के सर्वही पुरुष विद्या अध्ययनकर ब्राह्मणभावको प्राप्तहुएहैं। अत

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विꣳशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामनाऽनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳ ह पितोवाच ॥ २ ॥

एव हे पुत्र अब तू किसी कुलवान् आचार्य्य के गृहजाय ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या अध्ययनकर अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठोंवत् ब्राह्मणभाव को प्राप्तहोवो । हमारे कुलमें उत्पन्नहोय विद्या न अध्ययन करके उक्तप्रकार के ब्रह्म बन्धुवत् होना योग्य नहीं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो प्रसिद्ध श्वेतकेतु द्वादशवर्ष की अवस्था होने के उपरान्त आचार्य्य के गृह जाय यावत् चौबीस वर्ष की अवस्थाको प्राप्त हुआ तावत् सर्व वेदोंको अध्ययनकर महाअहंकारी अपने को अनुच्य (सर्व से अधिक विद्वान्) मान स्तब्ध (अप्रणत स्वभाव हो पिताके गृह आवता हुआ तिसको पिता कहता हुआ २॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार वो उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहके तिसके अनन्तर उसका प्रवास होना (आचार्य्य के गृह जाना) अनुमान करता हुआ वा निश्चयकरता हुआ ॥ प्रश्न ॥ हे गुरो वो उद्दालक आप सर्वविद्यासम्पन्न परमगुणवान्होय के भी जो उसने अपने पुत्रको आप विद्या न अध्ययनकराय के अन्य आचार्य्य के यहां विद्या अध्ययनार्थ क्यों भेजा ॥ उत्तर ॥ :-हे सौम्य उस उद्दालक ऋषिका अपने पुत्र श्वेतकेतुके साथ स्नेह अधिक था अरु जिसपर स्नेह अधिक होताहै तिसको ताडना कीजाती नहीं अरु बालकको स्नेहवान् माता पिताका भय होता नहीं । ऐसा विचार उस उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु को अन्य आचार्य्य के पास जाय विद्या अध्ययनकरने की आज्ञा किया-:॥ तब वो प्रसिद्ध श्वेतकेतु अपनी द्वादशवर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत धारणकर किसी उत्तम कुलमें विद्वान् आचार्य्य

के गृह जाय ब्रह्मचर्य्य धारणकर यथाविधि विद्या अध्ययन करने लगा सो जबतक चौबीस वर्ष की अवस्थाको प्राप्तहुआ तब तक चारोंवेद अरु तिनके छओं अंग । अर्थात् 'ऋग्, यजु, साम, अथर्वण, यह चार वेद अरु शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, यह छः वेद के अंग । इन सर्व को अध्ययनकर तिन के अर्थ को सम्यक् प्रकार जान महामना होता हुआ 'अर्थात् महत् गम्भीर है मन जिसका सो कहिये "। महामना "। अथवा अन्यों से अपने को श्रेष्ठ मानने के स्वभाववाला है मन जिसका सो कहिये "। महामना "। "। अनूचानमानी "। अपने आपको अनूच्य (सर्वविद्यासम्पन्न) स्वभाव होवे जिसका तिसको कहिये अनूचानमानी । अर्थात् वो श्वेतकेतु आचार्य्य से वेद वेदांग को पढ़ तिसके अर्थ को सम्यक् प्रकार जानके महामना हुआ अपने को सर्वविद्यासम्पन्न अद्वितीय मान अरु अपनी अपेक्षा अन्योंको तुच्छ अल्पविद्वान् जान बड़ा अहंकारी, स्तब्ध, अप्रणतस्वभाव होय ॥ः-सर्व दिशा देश देशान्तर में भ्रमण करता अन्य ब्राह्मणों से विवाद शास्त्रार्थपूर्वक सर्व को जय करता-ः। अपने गृहको आवता हुआ । अरु अपने को विद्यामें सर्व से श्रेष्ठ मान महाअहंकारी होने से अपने पिताको भी प्रणाम न करके सूखे काष्ठवत् स्तब्ध हुआ खड़ा विचारने लगा ॥ः-पिता मुझसे अधिक विद्वान् नहीं क्योंकि जो यह पिता आप सम्यक् विद्वान् होता तो मुझको अन्य आचार्य्य के यहां विद्या अध्ययन करने को न भेजता । अरु ब्राह्मणों में सोई वृद्ध होता है जो विद्यामें अधिक होता है, सो मैं उक्त हेतु करके पिता से अधिक विद्वान्हूं । अरु जो कदापि कोई ऐसा कहे कि पिता से पुत्र अधिक विद्वान् होवे नहीं सो नियम नहीं क्योंकि देवगुरु बृहस्पति का अज वा शंयु नाम पुत्र अपने पिता से अधिक विद्वान् हुआ है, यह वार्त्ता यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण अरु मनुस्मृतिमें विख्यात है । ऐसी ऐसी तर्कों को विचार वो-

श्वेतकेतो यन्नु सौम्येदं महामनाऽअनूचानमानीस्त
ब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यम
तं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथंनु भगवः स आदेशो
भवतीति ३॥

महामना अनूचानमानी अप्रणतस्वभाव महाअहंकारी श्वेतकेतु अपने पिता को, जो "। पितृदेवो भव"। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से देवतावत् माननीय पूजनीयहैं, प्रणाम दण्डवत् न करके उनके आगे सूखे काष्ठवत् खड़ा रहा—:॥ तिस अपने पुत्र श्वेतकेतुको द्वादश वर्ष उपरान्त गुरुके गृहसे विद्या अध्ययन कर महाअहंकारी अप्रणतस्वभाव हुआ आया अपने सम्मुख खड़ादेख॥:—वो उद्दालक प्रथम अपने चित्तमेंखेदितहो विचारता हुआ कि यह श्वेतकेतु विद्या अध्ययन कर ऐसा अहंकारी हुआ है कि अपने पूज्य ज्येष्ठों के आगे भी नम्रभाव से प्रणाम करता नहीं, अरु ऐसे अहंकारी पुरुषका हमारे कुल में होना श्रेष्ठ नहीं, यह एक प्रकारका अपने कुलको कलंक है, अतएव इसके अहंकार से अपने कुल में होता जो कलंक अब तिसको निवृत्त करनाही उचितहै ऐसा विचार निश्चयकर उसकी परीक्षा अरु अहंकारकी निवृत्ति के अर्थ—॥वो पिता उद्दालक कहताहुआ ॥ २ ॥

अक्षरार्थ

हे श्वेतकेतु हे प्रियदर्शन जिसकरके तू इसप्रकार अपने को महामना अनूचानमानी (सर्वविद्यासम्पन्न) मानके सूखे काष्ठवत् अप्रणतस्वभावहुआ है सो उस विद्याको भी आचार्य्य से पूछाहै वा नहीं कि जिसके श्रवणसे अश्रुतभी श्रुतहोताहै अमनन किया भी मननकिया होताहै अरु जिसके जानने से अजान्याभी जान्याहोताहै। हे भगवन् सो आदेश कैसे होता है इति ३॥

भावार्थ मन्त्रतीसरेका ॥

उद्दालक उवाच ॥ हे श्वेतकेतु हे प्रियदर्शन तू जो इस प्र-

कारका महामनाहुआ अपने को अनूचान, (सर्व विद्यासम्पन्न) मान महाअहंकारी अप्रणत स्वभावहुआ किसी के भी आगे नम्र होय नमस्कार करता नहीं, इसप्रकारका महा अहंकारी हुआहै सो तैंने अपने आचार्य्यसे अपने बिषे क्या अतिशय प्राप्तकियाहै। हे पुत्र तैंनेअपने आचार्य्य से सो आदेश 'अर्थात् जिस उपदेश से सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म साक्षात् जानाजाय सो कहिये आदेश, (विद्या) तैंने प्रश्नकिया है वा उस तेरे आचार्य ने तुझसे कहाहै कि जिस आदेशके श्रवणकरने से अश्रुत पदार्थभी श्रवणकिया होता है, अरु जिस आदेशके मननकरनेसे अमननकियाभी मननकियाहोताहै अरु जिस आदेश के जानने से अविज्ञात वस्तुभी विज्ञातहोता है, अर्थात् जो वस्तु निश्चयनहीं कीजाती है सो भी उस आदेशके जानने से निश्चित किया होताहै ॥:-हे सौम्य जिन विद्याओं करके श्रोत्रादि बुद्धिपर्यन्त सर्वकरणों का अविषय अरु सर्व में अनुगत विद्यमान जो परमात्मा सो नहीं जानाजाता तिनहीं विद्याओं को तू पढ़ाहै वा जिस विद्याके श्रवण मनन आदि करने से सर्वकरणों का अविषय जे परमात्मा सो भी श्रवण मननादि किया होताहै-: ॥ सो आदेश तूने अपने आचार्य्य से प्रश्नकिया वा उसने तुझको कहा है या नहीं। हे पुत्र जो तू उक्तप्रकार के आदेश (विद्या) के जाने विनाही अपनेबिषे विद्वान्पने का अहंकार करता है तो व्यर्थही करताहै। देखो जिस असत्य विद्या को पढ़के तूने इतना अहंकार कियाहै, कि ज्येष्ठ श्रेष्ठों के आगे नमता भी नहीं, सो विद्या तो तेरा गुरु आचार्य्य भी पढ़ाहै अरु मैं भी पढ़ाहौं अरु अन्य ब्राह्मण भी पढ़े हैं परन्तु तेरे ऐसा अभिमान तो किसीने भी किया नहीं। हे पुत्र जिस विद्याके जानेविना ही तू अपनेबिषे विद्वत्पनेका इतना अभिमान करताहै सो विद्या तबही प्राप्तहोती है जब सर्व अहंकार का अभाव होताहै "विद्यागताहंकृतिनः प्रसिद्ध्यति" अतएव जो तू उस विद्याके जाने विना ही अपनेबिषे विद्वान्पनेका अहंकारधारताहै सोव्यर्थहै। हे सौम्य

यह तेरा असत्य अहंकारही लखावताहै जो तू उस विद्यासे अज्ञात मूर्ख है क्योंकि वो विद्या अहंकारियों को प्राप्तहोती नहीं। अरु जिन पुरुषों को वो विद्या प्राप्तहोती है तिनका अहंकार रहता नहीं, अतएव हम जानते हैं जो उस विद्याके अज्ञानवशहुआही तू यह असत्य अहंकारकरता है। हे पुत्र इस हमारे निष्कलंक कुल में असत्य अभिमानी होय कलंक रूपहोना तुझकोयोग्यनहीं, तातें अपने इसनिर्दोष निष्कलंकरूपकुलको विचार इस अपनेअसत्य अहंकाररूप कलंकका त्यागकरो –ः ॥ हे सौम्य यहाँ भाष्यकार स्वामी प्रकटकरते हैं कि जो कदापि सर्ववेद अरु वेदांगको अध्ययन कर पुनः तिसकरके अन्य सर्व जानने योग्यजान्याभी परन्तु यह मुझ करके प्रश्नकी आत्मविद्या अरु तिसकरके जानने योग्य आत्मतत्त्व कि जिसके जाननेसे सर्व जानाजाता है, न जान्या तो उस पुरुषने कुछ भी न जान्या। अर्थात् जो पुरुष यावत् पर्यन्त आत्मतत्त्व को सम्यक् प्रकार जानता नहीं तावत् पर्यन्त सो कृतार्थ भी होतानहीं। एतदर्थ आत्मतत्त्व के ज्ञानार्थ यह श्रुति आख्यायिकाका आरंभ करेहै॥ हे सौम्य, इसप्रकार जब उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतुके असत्य अभिमानके निवारणार्थ प्रश्न किया तब सो इस अद्भुतवाक्य को श्रवणकर विचारने लगा कि यह जो पिता कहता है कि अन्य एकके विज्ञानसे अन्य सर्व अप्रसिद्धोंका विज्ञान होताहै सो कैसे होताहै इसको सम्यक् प्रकार जानना चाहिये, क्योंकि यह विद्या तो आचार्य्य नेभी मुझसे कही नहीं। इसप्रकार अपने चित्तमें विचार वो श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक से प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् हे सर्व करके नमस्कार करने योग्य निश्चयकरके वो आदेश क्याहै। कि जिस एकके श्रवण मनन निश्चित होनेकरके अन्य भी सर्व श्रवण मनन निश्चित किया होताहै सो आप कृपाकरके कहिये ३॥

यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्व्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम्॥४॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे एक मृत्पिण्डके जानने से उस मृत्पिण्ड से हुए जे घट शरावादि सर्व कार्य्य जानाजाताहै जो मृत्तिकासे उत्पन्नहुआ जे घट शरावादि कार्य्यरूप विकार सो वाणी से आरंभ किया कहने मात्रही है किन्तु उन घट शरावादिकों बिषे एक मृत्तिकाही सत्यहै ॥ ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब उद्दालक ऋषिने अपने श्वेतकेतुनाम अहंकारी पुत्रके असत्य अहंकाररूप कलंकको ' जो उस श्वेतकेतु को अश्वेतकेतुकरनेवालाथा, दूरकरनेके अर्थ प्रश्न किया कि हे प्रियदर्शन तू सर्वविद्या तो पढाहै परन्तु वो विद्याभी जानताहै या नहीं कि जिस एकके श्रवण करने से अश्रुत भी श्रुत होताहै, अरु जिस एकके मनन करने से सर्व का मनन किया होताहै, अरु जिस एकके निश्चयसे सर्व का निश्चय होताहै । अरु जो तिस विद्याके जाने विनाही तू अपनेको अन्य विद्याओंके आश्रय विद्वान्मानके अहंकार करता है तो केवल अविद्याकाही अभिमान करताहै । इसप्रकार जब उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से प्रश्न किया तब तिसको श्रवणकरके वो श्वेतकेतु अपने पिता करके प्रश्नकरी हुई विद्याका अपनेबिषे अभाव देख तिसकी जिज्ञासाधार पितासे प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् जिस विद्या विषयक आप मुझसे प्रश्न करते हौ तिस विद्याको मैं जानता नहीं अतएव उस विद्याको आप कृपाकर कहिये ॥:—हे शिष्य यह आत्मवेत्ता महात्माओं के वाक्य का प्रभाव है कि जिसके श्रोत्रद्वारा हृद्गत होते हैं तिसके अहंकारादि दोषों का अभावकरतेहैं, देखो पूर्व श्वेतकेतुके अन्तःकरणमें इतना बडा अहंकार

था कि उसने अपने पिताको भी नमस्कार न किया, अरु उस श्वेतकेतुके श्रोत्रद्वारसे उसके पिताके उपदेशात्मक प्रश्नरूप वाक्यों ने जब प्रवेशकिया तब उस वाक्यके प्रभावसे उसके अन्तःकरण से अहंकार दूर हुआ, तबही उसने अपने उसही पिताको (कि जिसको अविद्वान्मान के नमस्कार भी न कियाथा) भगवन्, पूजाकरनेके योग्य, इस विशेषणपूर्वक प्रश्नकिया। अतएव अभिप्राय यह है कि आत्मवेत्ता सन्त महात्मा पुरुषों के वाक्य श्रवण करनेसे अहंकारादि सर्वदोषोंकी निवृत्ति होती है—:॥ हे सौम्य उक्तप्रकार जब श्वेतकेतु ने अपने असत्य अभिमानको त्याग, भगवन्, इस विशेषणपूर्वक अपने पितासे प्रश्न किया तब वो उद्दालक ऋषि कहताहुआ कि हे पुत्र जिसप्रकार वो आदेश होता है तिसको दृष्टांतपूर्वक श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन जैसे लोकबिषे घट शरावादि कार्य्योंके कारणभूत एक मृत्पिण्ड के जानने से तिस मृत्पिण्डसे उत्पन्न हुआ घट शरावादि मृण्मय विकार जाना जाता है, अरु जैसे कारणरूप मृत्पिण्डके जानने से तिसका घटादि सर्वकार्य्य जाना जाता है, तैसेही अन्य कारण के जानने से तिससे उत्पन्न हुआ कार्य्यरूप विकार भी जाना जाता है जो यह अपने कारण से पृथक् नहीं॥ प्रश्न॥ एक कारण रूप मृत्पिण्डके जानने से अन्य कार्य्यभूत कैसे जाना जाता है॥ उत्तर॥ यह दोष नहीं, क्योंकि कारण से कार्यकी पृथक् सत्ताका अभाव है ताते॥ प्रश्न॥ हे भगवन् लोक बिषे ऐसा प्रसिद्धहै कि अन्य के जाननेसे अन्य नहीं जाना जाता, तब एकके जानने से सर्व जाना जाता है, यह कहना कैसे बनेगा॥ उत्तर॥ हे प्रियदर्शन यह जो तूने कहा सो सत्यही है क्योंकि अन्य कारण के जानने से अन्य का कार्य्य जाना जाता नहीं। जैसे कारणरूप मृत्तिका के जानने से सुवर्ण का कार्य्य कटक कुंडलादि जाना जावे नहीं। परन्तु यहां तो कारणसे कार्य्य पृथक् नहीं। जैसे मृत्पिण्डरूप कारण से (तिसका घटादि

कार्य्य पृथक् नहीं तैसे ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जब ऐसा ही है तब लोकबिषे यह कैसे प्रसिद्ध है जो यह कारण है यह कार्य है, ऐसा भेद न होना चाहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य अब इसको भी श्रवण करो 'लोक बिषे जो यह कारण है यह कार्य्य है ऐसा भेद भाव कथनहै सो केवल वाचारंभण मात्रही है। अर्थात् वाणीसे आरंभ (उच्चार) किया वाचालंभणमात्रही होता है ॥ प्रश्न ॥ ऐसा वाचारंभणमात्र विकार क्याहै ॥ उत्तर ॥ नामही वाणीसे आरंभ किया विकारहै (जैसे मृत्तिका बिषे घटसो मृत्तिका से इतर करके केवल कहने मात्रही है, उसघट बिषे मृत्तिकासे इतर घट सत्ता रंचक मात्रभी नहीं) अन्य कुछ भी नहीं क्योंकि कारण से कार्य्य की पृथक् सत्ता का अभावहोताहै ताते। एतदर्थ नाम ही वाणीसे आरंभ किया विकार केवल कहने मात्रही है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् घटादि कार्य्यों बिषे कार्य्य तो घटादि विकार नाममात्रही है तब परमार्थ से सत्य क्या है ॥ उत्तर ॥ हे प्रियदर्शन उनघट शरावादि कार्य्यों बिषे परमार्थ से एक कारण रूप मृत्तिकाही सत्यहै ॥:—हे गुरो इस श्रुतिमें पूर्व तो यह कहाहै कि एक मृत्पिण्डके जाननेसे सर्वमृण्मय जानाजाताहै अरुअंतमें कहा कि मृत्तिकाही सत्यहै, सो इन आदि अन्तके वाक्यों में सविकारता अरु निर्विकारता होने से उपक्रम उपसंहार में विरुद्ध होताहै सो न होनाचाहिये, ताते इस मेरे संशयको आप कृपा करके निवारण करिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जो कार्य्यारंभके अन्त में कार्य्यबिषे अनुगत पाइये सो उपादान कारण सत्य जानिये, ताते श्रुति ने कहाहै कि घटादि कार्य्यों विषे मृत्तिकाही सत्यहै। हे सौम्य मृत्तिकाका चूर्णत्वभाव, जल, दंड, चक्र, कुलालका संकल्प, अरु हस्त पादादि अवयव, इत्यादि सर्व घटकी उत्पत्ति में निमित्तकारणहै ताते मृच्चूर्णादि वा मृत्पिंडादि घटादिरूप कार्य्य में अनुगत नहीं, क्योंकि मृत्पिंड परिणामहोके घटादि कार्य्यरूप होताहै, अरु शुद्ध जो मृत्तिकाहै सो चूर्णत्व भावसे लेके

घटादि कार्य्य भाव पर्य्यन्त अपरिणामी सर्व कार्यकारण भावमें अनुगत एक सत्यरूपहै। ताते मृत्तिका का चूर्णभाव वा मृत्पिंड ये घटादि कार्य्योंमें अनुगत न होयके एक शुद्ध मृत्तिकाही अनुगत है ताते सोई सत्यरूपहै, एतदर्थ इस श्रुतिके आदि अन्त वाक्यों में यदि कुछ अन्तर प्रतीत भी होताहै तथापि उभय स्थानमें एक शुद्ध मृत्तिका कोही सत्यरूप निश्चयकर उपक्रम उपसंहार में भासमान जे अन्तर तिसनिमित्तके संशयको त्यागकरो ॥ ४ ॥

हे सौम्य, उक्त श्रुत्यर्थको अन्यप्रकारसे भी श्रवणकरो क्योंकि दृष्टान्त का सम्यक् प्रकार निर्णय होनेसे दार्ष्टान्त भूत वस्तुका अति सुगमतासे निर्णय होताहै॥ हे सौम्य अरुणका पुत्र उद्दालक अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति, सर्व ठिकाने कारणसे भिन्नरूप करके जो कार्य्यका असत्यपना सोई तिसकारण के अद्वैतपनेका साधकहै। अर्थात् कारणसे जो कार्य्य की पृथक् सत्ताका अभाव सोई कारणके अद्वैतपने को सिद्ध करताहै इस तात्पर्य्य के स्पष्टकरने के अर्थ अग्रिम कहने की युक्तिको, कहता हुआ कि हे प्रियदर्शन यह घट शरावादिक कार्य्य केवल वाणी (कहने) मात्रकरके ही प्रतीतहोताहै कहनेविना वास्तव वा स्वरूपसेही प्रतीतहोवे नहीं। एतदर्थ सो घट शरावादि कार्य्य 'यह घट, यह शरावा, इसप्रकार नाम मात्रही हैं। तिनघट शराव आदि नामोंसे भिन्न उनघट शरावादि कार्य्योंका वास्तव स्वरूप कुछभी है नहीं, अरु सो घट शरावादिक मृत्तिका मात्रही एतदर्थ तिस मृत्तिका ने इन घट शरावादिकोंका आरंभकियाहै इस प्रकारका कथनभी बने नहीं क्योंकि मृत्तिका मृत्तिकाका आरंभ करे नहीं; आरंभजो होताहै सो कार्य्य कारण के भेदको अंगीकार करके ही होताहै। अरु एक मृत्तिका में कार्य्य कारण का भेद होता नहीं। जैसे नैयायिक कपालरूप कारण से भिन्न उन कपालोंकरके आरब्ध वा आरम्भकिया घट को अंगीकार करते हैं। अर्थ यहहै कि घट शरावादिक कार्य्यों विषे मृत्तिकादिक कारणोंसे भेद प्रतीत होताहै सो वास्तवसे है

यथा सौम्यैकेन लोहमणिना सर्व्वं लोहमयं विज्ञातष्ठं स्याद्वाचारम्भणंविकारोनामधेयंलोहमित्येवसत्यम्॥५॥

नहीं, किन्तु घट शराव इत्यादि नाम विशिष्ट उन घटादि कार्य्यों विषे मृत्तिकाका भेद प्रतीत होताहै, अरु विशिष्टपदार्थों विषे प्रतीत हुआ जो धर्म सो जो कदापि विशेष्य पदार्थों विषे संभवतानहीं, तो सो धर्म केवल विशेषण विषेही प्राप्त होताहै, इस प्रकार का सर्व शास्त्रकारों का नियम है। तैसे यहां घट, शरावा, इत्यादि नामविशिष्ट घट शरावादिक कार्य्यों विषे प्रतीत हुआ जो मृत्तिकारूप कारण का भेद सो घट शरावादिक विशेष्य पदार्थों विषे तो संभवे नहीं। एतदर्थ परिशेष ते सो मृत्तिकाका भेद 'घट, शरावा, इत्यादि नामरूप विशेषणों विषेही प्राप्त होवेगा। हे सौम्य यह रीति सर्व कार्य्य कारण भाव विषे जानलेनी। हे प्रियदर्शन अब उक्त अर्थको दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं। हे सौम्य जैसे इस लोक विषे पट (वस्त्र) भावको प्राप्तहुए जे तन्तु तिन तन्तुओंको उस पटसे पृथक् करके पुनः उस पटरूप कार्य को कोई विवेकी पुरुष देखनेकी इच्छा करे तो वो किसी प्रकार भी देखने को समर्थ होवे नहीं। तैसेही 'घट, कुंडलादि भावको प्राप्त हुए जे मृत्तिका, सुवर्णादि रूप कारण तिन कारणों को उक्तकार्य से पृथक् करके पुनः उन घट कुण्डलादि कार्य्यों के देखने की यदि कोई इच्छाकरे तो वो उनको देखनेको किसीप्रकारभी समर्थ होवे नहीं। हे श्वेतकेतु एतदर्थही इसलोकविषे मृत्तिकादि कारण ही सत्यहैं, अरु घटादिक कार्य्य तो वाणी से आरम्भ किया विकार कहने मात्रही है, स्वरूप से तो नहीं॥ यह आत्मपुराण सम्बन्धी अर्थ है॥

अक्षरार्थ॥

हे सौम्य, जैसे एक सुवर्ण मणिके जानने से यावत् उसका कटक कुण्डलादि कार्य्य है सो सर्व जानाजाता है। अरु तिस

यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्व्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचारम्भणंविकारो नाम धेयं कार्ष्णायस मित्येवसत्यं, एवꣳ सौम्य स आदेशो भवतीति ॥ ६ ॥

सुवर्ण से उत्पन्नहुए कुंडलादि कार्य्य रूप विकारहैं सो वाणी से आरंभ किये नाममात्रही हैं उनसर्वविषे एक सुवर्णही सत्यहै ॥ ५॥

भावार्थ मन्त्र पांचवें का ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु से एक के जाननेसे सर्व जानाजाता है इस आदेशके कहने के पूर्व तिस विषयक एकमृत्पिंडका दृष्टान्त कहके अब द्वितीय सुवर्ण का दृष्टान्त कहताहै ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे प्रियदर्शन हे श्वेतकेतु, जैसे एक सुवर्ण के जानेहुए तिस सुवर्ण के यावत् किरीट कुंडल कटककुंडलादि कार्य्यहैं सो सर्व जानेजाते हैं जो यह कटक कुंडलादि सर्व सुवर्ण के हैं। अरु उसकारणरूप सुवर्णविषे कटक कुंडलादि कार्य्यों की पृथक् सत्ताके अभावसे वो कटक कुंडलादि वाणी से उच्चारकिया विकार केवल नाममात्र कहिये कहनेमात्रही है। अर्थात् उनसुवर्ण के कार्य्य कटक कुंडलादिकों से कारण रूप सुवर्ण को पृथक् करके देखिये तो वो कटक कंकणादिक रंचक मात्र भी नहीं, अतएव उनकारण भूत सुवर्णविषे कटक कुंडलादि केवल कल्पित होने से कहने मात्रही हैं। परमार्थ से उन वाचारंभण मात्र कटककुंडलादिकों विषे एक सुवर्ण ही सत्यहै ॥ घट शरावादिकों में मृत्तिकावत् ॥ ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, एक नखनिकृन्तन करके उपलक्षित लोह पिण्डके जानेहुए तिसका खड्गादि यावत् कार्य्य रूप विकारहै सो सर्व जानाजाताहै जो यह सर्व लोहके हैं। तिस कारण भूत लोहविषे खड्गादि विकार केवल कहने मात्रही हैं अरु उन नाममात्र विकारों विषे एक लोहही सत्यहै ॥ ६ ॥

भावार्थ मन्त्र षष्ठका ६ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार उद्दालक ऋषि उक्तआदेशके कहनेकेविषय में द्वितीय दृष्टान्त सुवर्ण का कहके अब तिसकी दृढ दृढताके अर्थ तृतीय लोहमणि का दृष्टान्त कहता है ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु और श्रवणकरो हे पुत्र जैसे एक नखनिकृन्तन (नख काटनेका नहनांनामक शस्त्रविशेष) उपलक्षणकरके लक्षित लोह पिण्डको जानना । तिस एककारण भूत लोह पिण्ड के जानेहुए तिसके खड्गादि यावत् कार्य्य हैं सो सर्व जानेजाते हैं जो यह सर्व लोहके हैं, अरु उस कारण भूत लोहविषे जो खड्गादिक कार्य्य रूप विकारहैं तिनकी कारणरूप लोहसे पृथक् सत्ताके अभावसे सो सर्व वाणी से उच्चार किया विकार नाममात्र कहिये कहने मात्रही है, अरु उन नाममात्र खड्गादि कार्य्यरूप विकारों विषे परमार्थ से एक कारण भूत लोहही सत्यहै ॥ हे प्रिय दर्शन इन उक्त तीनों दृष्टान्तों से एक उपादान कारण सत्यके जानने से तिसका सर्व कार्य्य जानाजाता है, अरु यह जो तुझको तीन दृष्टान्त कहे हैं सो दार्ष्टान्त विषे तेरी दृढ प्रतीतके होने के अर्थ कहे हैं । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त कहेहैं तैसेही सो आदेश (जो मैंने तेरे प्रतिकहाहै कि जिस एकके जानने से सर्व जाना जाताहै तिस आदेशको तू जानताहै या नहीं) होताहै ॥ ६ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार उद्दालक ऋषिने एकके जानने से सर्व जाना जाताहै, इस आदेशके कहने के पूर्व तिसके समझने अरु दृढताके अर्थ तीन दृष्टान्तकहे तब तिसकोश्रवणकर तिसके यथार्थ निश्चयके अर्थ सो श्वेतकेतु अन्य वादियोंके मतको आश्रयकर विकल्प करत सन्ते कहता हुआ ॥ हे भगवन् आपने आज्ञाकिया कि"येन अविज्ञातं विज्ञातं भवति"जिस एकके जाननेसे अविज्ञात भी सर्व विज्ञात होता है । इसप्रकार कहनेवाली श्रुतिके अर्थविषे वैशेषकादि भेदवादी पुरुषस्थाली पुलाकन्यायको अंगीकारकरके उस श्रुति विषे गौणता मानते हैं ॥ अर्थात् जिस पात्र विशेष में

चावल रांधते (पकावते) हैं तिसका नाम स्थालीहै अरु तिस विषे रँधते चावलका नाम पुलाकहै । तहां अग्निके ऊपर जल युक्त स्थालीमें पकते जे चावल सो सब पकने पर आवते हैं तब उनको पचावने वाला पाचक पुरुष उस पात्रमेंसे एकदाना चावलका निकालके देखताहै तहां जो वो उस एक दाने को रँधा देखताहै तो अन्य सर्वको रँधगये जानताहै अरु जो वो एक दाना काचा देखताहै तो अन्य सर्व चावलों को काचा जानता है। इसप्रकार तंदुलोंके काचे पाकेकी परीक्षाका नाम स्थाली पुलाकन्याय कहते हैं हे भगवन् इस प्रकार स्थाली पुलाक न्याय को अंगीकार करके वो भेदवादी पुरुष एक आत्माके ज्ञान से सर्वका ज्ञान कहते मानते हैं ॥ इसप्रकार जब उसश्वेत-केतु ने भेदवादियों के न्यायको लेके विकल्प किया तब वो उ-द्दालक पिता कहता हुआ ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे प्रियदर्शन उन भेदवादियों का कथन समीचीन नहीं, क्योंकि वो एक दाना चावलका,कि जिसको वो पाचक देखताहै सो, अन्य सर्व चा-वलों का कारण नहीं, अरु जो उस तंदुल के एकदानेका काचा पाकापना है सो भी अन्य तंदुलोंके काचे पाकेपने का कारण नहीं। अरु श्रुति का कहना एक कारणके जाननेसे सर्वका कार्य जाना जाताहै उक्त दृष्टान्तोंवत्, ताते जो उन भेदवादियों का उक्त न्याय प्रमाण का कथन जो केवल स्वबुद्धिकी कल्पना के आश्रयहै सो समीचीन नहीं, श्रुतिबाह्य होनेसे ॥ हे सौम्य उन श्रुतिबाह्य कहनेवाले भेदवादियोंसे श्रुति प्रमाण अद्वैतवादियों को इसप्रकार प्रश्न करना चाहिये कि हे भेदवादियो "येन अवि-ज्ञातं विज्ञातं भवति" इसप्रकार कहनेवाली इस एक सत्परमा-त्मा के जानने से सर्व जगत् जाना जाताहै, श्रुति के अर्थ विषे तुमने जो स्थालीपुलाकन्याय प्रमाणकी कल्पनाकियाहै सो केवल अपनी बुद्धि करकेही कियाहै,किंवा श्रुतिप्रमाण जन्य बुद्धिकरके कियाहै, अथवा ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुरुषों की परम्परा रूप सम्प्रदायले-

के किया है ॥ हे सौम्य इस प्रकार प्रश्न करने से जो कदापि वादी कहे कि उस श्रुत्यर्थ विषे हमने अपनी बुद्धिसे उक्त न्याय की कल्पना प्रमाण से कहा है,तो उसके प्रति कहना चाहिये कि यह तेरा प्रथम पक्ष असंभव है क्योंकि श्रुतिप्रमाण से रहित जो केवल पुरुषकी बुद्धिहै सो बहुत से स्थलों विषे अपने अर्थ से व्यभिचारको देखती है,अर्थात् अन्य वस्तु विषे अन्यकी कल्पना करती है, जैसे रज्जुविषे सर्प बुद्धि वा सीपी विषे रजत बुद्धि, इस प्रकार आप करके कल्पित सर्प रजत रूप अर्थ विषे व्यभिचारकोही देखती है । अर्थात् जो प्रमाण से रहित केवल पुरुष बुद्धि है सो रज्जु सीपी विषे अपनी कल्पना से सर्प रजत अर्थ को करती है परन्तु परिणाम में जब प्रमाणवती होती है तब अपने कल्पित अर्थ विषे व्यभिचारको ही देखती है। एतदर्थ वेदवेत्ता पुरुष केवल पुरुष बुद्धिको किसी भी अर्थ की सिद्धि विषे प्रमाण रूपता करके मानते नहीं ॥ हे सौम्य सर्व भेदवादी तार्किकों विषे, कपिल, बौद्ध, कणाद, गौतम, इत्यादि महान् पुरुष हुए हैं, सो भी श्रुति प्रमाण से रहित जिस जिस केवल अपनी बुद्धि करके जिस जिस अर्थकी सिद्धि करते हैं सो सो उनकीबुद्धियां अपने कल्पित अर्थ सहित अप्रमाणताको ही प्राप्तहोतीहैं। तिसविषे हेतु यहहै कि वो कपिलादिक भेदवादी श्रुति वाक्य प्रमाणसे विरुद्ध केवल स्वबुद्धि की कल्पनासे ही जगत् के कारण को तथा आत्माके स्वरूपको तथा बन्ध मोक्षको भिन्न भिन्नरीति से कथन करते हैं । अर्थात् कपिलादिक भेदवादी श्रुति प्रमाणसे बाह्य स्वबुद्धिकी कल्पनासे जो जो कुछ कहतेहैं सो सो परस्पर में विरुद्ध पृथक् २ ही कहते हैं,अतएव उन पुरुषों की युक्तियां परस्परमें खंडनको पावती हैं।हे सौम्य जब कि कपिल कणाद आदिक महत् बुद्धिमान् पुरुषोंकी बुद्धियों के विषे भी स्वतन्त्र प्रमाणपना सिद्ध नहीं तब इतर अल्प पुरुषोंकी बुद्धियों विषे स्वतन्त्र प्रमाणपना न होवे तिसमें क्या आश्चर्य है किन्तु कुछभी नहीं। एतदर्थ

श्रुतिवाक्य प्रमाण से रहित केवल पुरुषकी बुद्धि विषे प्रमाणत्व-पना संभवे नहीं। हे सौम्य इस प्रकार भेदवादियोंका प्रथम पक्ष जो उक्त श्रुति के अर्थ विषे 'स्थाली पुलाकन्याय प्रमाण हमस्व-बुद्धिकी कल्पना से अर्थ सिद्धकरते हैं, तिसका निराकरण हुआ जानना॥ हे सौम्य जो कदापि वो भेदवादी ऐसा कहै कि उक्त श्रुतिके अर्थ विषे हम श्रुति प्रमाण जन्य बुद्धिके बलसे स्थाली पुलाकन्यायकी कल्पना करते हैं। इस प्रकार जो वो भेदवादी इस द्वितीय पक्षको अंगीकार करे तो ऐसा कहना कि तुम्हारा यहभी पक्षबने नहीं' क्योंकि श्रुति वाक्य प्रमाण विषे अबिश्वासके करनेवाले जे तुम भेदवादी हौ तिन तुमको तिस श्रुति प्रमाण जन्य बुद्धि करके तुम्हारे तिस वांछित अर्थकी सिद्धि होनी अतिदुर्घट है, ताते तुमवादियों का द्वितीय पक्षभी संभवे नहीं हे सौम्य जो कदापि वो वादी ऐसा कहे कि हम तिस उक्त श्रुति के अर्थ विषे ज्येष्ठ श्रेष्ठों की सम्प्रदायरूप बलकरके तिस स्थालीपुलाकन्यायकी कल्पना करते हैं। इसप्रकार यह तीसरा पक्षवादी अंगीकार करे तो सो भी संभवे नहीं, तहां इसप्रकार विचार है कि उन 'कपिल, बौध, कणाद, आदिक भेदवादी महान् पुरुषोंके शिष्योंने अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठ आचार्योंकी सम्प्रदायको अंगीकार करके भी श्रुत्यर्थ के निर्णय विषे किसी भी निश्चयको पायानहीं। इस हेतु करके यह सिद्ध होताहै कि अपने श्रेष्ठ वृद्धोंकी सम्प्रदाय के अंगीकार करने से भी केवल पुरुष की बुद्धिही अंगीकार होती है तिस पुरुषकी बुद्धिसे इतर कोई भी श्रुतिका प्रमाण अंगीकार होता नहीं, क्योंकि वो कपिलादिक सम्प्रदायी पुरुष जो कदाचित् तिस श्रुति के अर्थ विषे, अर्थात् उक्त श्रुति के स्वकल्पित अर्थ विषे उपयोगी अन्यश्रुति के प्रमाण को प्राप्त होते तो उस श्रुत्यर्थ विषे परस्पर विवाद न करते 'क्योंकि श्रुति प्रमाण अर्थ विषे विवाद होवे नहीं, अरु श्रुति के अर्थ विषे उन्होंका परस्परमें विवाद प्रत्यक्ष देखने

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुयद्धेतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवाꣳस्त्वेवमेतद्ब्रवीत्विति तथा सौम्येति होवाच ७॥ इतिषष्ठ प्रथमःखंडः ॥ १ ॥

विषे आवता है, क्योंकि वो सर्व भेदवादी परस्पर में एककी युक्तिको दूसरा, दूसरे की युक्तिको तीसरा, तीसरे की युक्तिको चौथा, इसप्रकार परस्पर की युक्तियों को परस्पर में खंडन करते हैं। अरु केवल ज्येष्ठ श्रेष्ठों की सम्प्रदाय के अंगीकार करने से भी केवल पुरुषकी बुद्धिही अंगीकार होती हैं॥ हे सौम्य एतदर्थ कल्पितादिक भेदवादी जे उक्त श्रुतिका अर्थ स्थाली पुलाकन्याय प्रमाण सिद्ध करते हैं सो श्रुति प्रमाणसे रहित होने से अप्रमाणही है। अरु तिसही कारण से सम्प्रदायिकों का मत श्रुतिबाह्यहोने से प्रमाण करने को योग्य नहीं। अरु उन भेद-वादियों करके उक्त श्रुतिका अर्थ स्थालीपुलाकन्याय प्रमाण करने से वो अपना २ मत इसप्रकार सिद्ध करते हैं कि जैसे वो तंदुल का पचावने वाला पाचक उस पात्रमें से तंदुल का एक दाना निकाल तिसको काचा पाकादेख अन्योंको भी काचापाका जान लेताहै, इस न्यायप्रमाण जब एक ब्रह्मको सत्य जानलिया तब प्रकृति को, वा मायाको, वा द्रव्यादि परमाणुओं को आदि लेके (कि जिस जिस मतवादियों ने जगत्की उत्पत्ति में ब्रह्मके सहकारी माने हैं) तिनको भी सो सत्य मानते हैं। इसप्रकार वो सर्व भेदवादी अद्वैत प्रतिपादक उक्तश्रुति आदिक श्रुतियोंका अर्थ उक्त न्याय प्रमाण स्वबुद्धिकी कल्पना से कर अपने मतको सिद्ध करते हैं। परन्तु उनके कल्पित अर्थ विषे कोई भी श्रुति प्रमाण न होनेसे उनकरके कल्पित अर्थ मानने योग्य नहीं॥६॥

अक्षरार्थ॥

हे भगवन् निश्चय करके जो मेरा गुरुहै सो, यह जो आपने आदेश कहा सो जानता नहीं, यदि इस आदेशको जानताहोता

तो क्यों न कहता, हे भगवन् आपही मुझको सो आदेश कहिये, इसप्रकार जब पुत्रने कहा तब पिता कहताहुआ हे सौम्य तथास्तु मैं हीं कहताहौं ७॥ इति षष्ठ प्रपाठके प्रथमखंडः १॥

भावार्थ मन्त्र सातवें का॥

हे सौम्य उक्त प्रकार उद्दालकऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति ,एकके जानने से सर्व जाना जाताहै, इस आदेशके सम्यक् प्रकार समझावने के अर्थ मृत्तिकादि उपादान के जानने से घटादि कार्य्य सर्व मृत्तिकादि रूपही जानाजाता है, इसप्रकार के तीन दृष्टान्त कहे, अरु उक्त श्रुतिके अर्थ बिषे भेद बादियोंका पक्ष निराकरण किया। तब तिसको श्रवण करके वो श्वेतकेतु कहता हुआ कि। हे भगवन् निश्चय करके जो मेरा गुरुहै, कि जिससे मैंने विद्याध्ययन किया है, सो यह जो आपने कहा कि जिस एकके जानने से सर्व जाना जाता है तिसको तू जानता है या नहीं, तिस वस्तुको जानता नहीं यह मुझको निश्चयहुआ है, क्योंकि यदि वो उस वस्तुको जानता होता तो वो मुझ गुरु-भक्त गुणवान् शिष्यको क्यों न कहता जो वो जानता होता तो अवश्य कहता ॥:—हे भगवन् विद्याध्ययनकी समाप्ति समावर्तन कालमें मुझ से यह कहा कि जेतनी विद्या मैं जानताहौं सो सर्व मैंने तुझको अध्ययन कराया अब तेरे अध्ययन करने योग्य अन्य अवशेष विद्या कोई नहीं, अतएव भी निश्चय होताहै वो मेरा गुरु आप करके लखाये आदेश को जानता नहीं—:॥ इस प्रकार जब श्वेतकेतुने अपने गुरुकी अज्ञता निश्चय कर कहा तब वो उद्दालक पुनः कहता हुआ कि हे पुत्र जो कदापि तेरे गुरुने तुझको मुझ करके कही विद्या नहीं कही, तदापि गुरु के बिषे अज्ञता का भावल्याय उसकी निंदा न करनी गुरुकी निंदा करने से पाप होताहै ॥:—इस प्रकार जब उद्दालक ने कहा तब पुनः श्वेतकेतु कहता हुआ कि हे भगवन् मैंने सत्य कहा है, ताते मुझको पाप न होगा क्योंकि सत्य कहने से पाप होता

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके द्वितीयखंडः प्रारभ्यते ॥

सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाऽद्वितीयम् तद्धैक आहुरस देवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत १ ॥

नहीं, तब पुनः उद्दालकने कहा कि हे पुत्र सत्य भाषण से पाप नहीं सो सत्य परन्तु निंदात्मक सत्य भाषणसे गुरु निंदाकापाप बलवान् है ताते यदि गुरु कोई एक विद्याको न भी जानताहोय तथापि उसको अज्ञ कहना नहीं, अरु गुरु तेरा इस विद्याको जानताहै परन्तु तुझको अहंकारी देख उस विद्याका अनधिकारी जान उसने कहा नहीं—:॥ इसप्रकार जब उद्दालकने कहा तब वो श्वेतकेतु पुनः अपनेको मतकही पिता गुरुके गृह भेजे,इस भयसे पितासे कहताहुआ कि हे भगवन् वो वस्तु कि जिस एकके जानने से सर्वज्ञता प्राप्तहोती है (अरु जिस विषयमें आपने तीन दृष्टान्त कहे हैं) तिस वस्तुको मेरे प्रति आप कृपाकर कहिये। इसप्रकार जब सत्य जिज्ञासा पूर्वक श्वेतकेतु ने अपने पिता से विनय पूर्वक कहा तब वो पिता उद्दालक कहताहुआ कि हे सौम्य तैसेही हो उस वस्तुको मैं तेरे प्रति कहता हों सावधानहोके श्रवणकर ७ ॥ इति प्रथमखंडः १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य यह ' जगत् ,पूर्व एक अद्वितीय सत्ही था। तहां प्रसिद्ध कोई एक (वैनाशिक मतवादी) कहते हैं कि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व असत् ही था सो एक अद्वैत ही था तिस असत्से सत् होता हुआ १ ॥

अथ द्वितीयखंडे प्रथममन्त्रः १ ॥

हे सौम्य,उक्तप्रकार अपने पुत्र श्वेतकेतु से कह उसकी उस वस्तुके 'कि जिस एकके जानने से सर्व जानाजाता है, जानने

विषयक दृढ जिज्ञासा देख वो उद्दालक ऋषि पुनः कहताहुआ, हे प्रियदर्शन जो केवल अस्तिमात्र अतिसूक्ष्म निर्विशेष सर्वगत एक निरंजन निरवयव निराकार विज्ञान घन जो वेदान्त (उपनिषदों) के महा वाक्यार्थ के ज्ञानसे साक्षात् अनुभव कियाजाताहै ऐसा जो सत् शब्दका सामान्य विषय तिसको सत्, कहते हैं [अर्थात् सत् शब्दका सामान्य विषय अस्तिमात्र सत्तासमान वस्तुको पृथिव्यादि अग्नि पर्यंत मूर्त्त भूतों से विशेष देखावनेके अर्थ ' सूक्ष्म, इस विशेषणसे कहा है। अरु वायु आकाश इन दोनों अमूर्त्त भूतों से विशेष देखावने के अर्थ ' निर्विशेष, कहा है। अरु अन्य विशेषकी व्यावृत्तिके अर्थ उसको ,सर्वगत, इस विशेषणसे कहाहै। अरु तिसकी तटस्थताकी व्यावृत्ति के अर्थ इस विशेषण से कहा है, अरु तिसको प्रत्यग् से अभिन्न होने से उसका संसारित्वपना निवारण करने के अर्थ उसको ,निरंजन, इस विशेषण से कहा है। अरु वो निष्क्रियत्व से कूटस्थ है ऐसा लखावने के अर्थ,निरवयव,इस विशेषणसे कहाहै। अरु यथोक्त वस्तुके ,अवश्य होनेके विषयमें, अवगम्यत, जाना जाताहै इस विशेषण से कहाहै] अरु निश्चय आत्मक जो एव शब्दहै सो उसके ,अवधारणार्थ है, अर्थात् वोही है, इसप्रकारके निश्चयके धारणार्थहै ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इस आपके कहने से क्या जानना चाहिये, जहां इसप्रकार का प्रश्नहै तहां कहते हैं उत्तर॥ हे सौम्य यह जानो जो यह नामरूप क्रियात्मक कार्य्य रूप जगत् जो तुम्हारे देखने सुनने बिषे आवता है सो सर्वसत् ही है (क्योंकि वो सत्ही अपनी इच्छासे यह नानानाम रूपात्मक जगत्रूप से सुशोभित हुआ है, इसप्रकार आसीत् शब्द करके सम्बन्ध होता है॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह जगत् कब सत् था, तहां कहते हैं ॥ उत्तर ॥ यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व एक सतही था ॥

हे सौम्य अब विशेषणके अनुसार शंका करते हैं॥ शंका ॥ हे

भगवन् आपने आज्ञाकिया कि यह नामरूपात्मक जगत् उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय महासूक्ष्म निर्विशेष सत्ही था, हे भगवन् सो क्या इस वर्त्तमान दशा बिषे असत् हुआ जगत् नहीं है जो ,अग्रे, इस शब्दार्थ से विशेषणदिया है, वा विशेष किया है ॥ समाधान॥ हे सौम्य शंका करके कहा कि जो यह उत्पत्ति से पूर्व सत्ही था तो क्या वर्त्तमान दशा बिषे नहीं है जो जिस करके आगे सत्था । हे सौम्य तब सो क्या इस वर्त्तमान दशा बिषे विशेषण सामर्थ्य होनेसे जगत्को असत् कहतेहो वा विशेष्य का अर्थवत्वत्व पूछतेहो । तहां जो प्रथम पक्षकहो कि विशेषणके सामर्थ्य से असत् है (अर्थात् इस जगत् को । "सदेवेदमग्र आसीत्" आगे सत् था इस प्रकार ,अग्रे, इस विशेषण युक्त कहाहै, परन्तु यह जगत् वर्तमान दशा बिषे सत्ही है ऐसा विशेषण नहीं, अतएव 'अग्रे, इस विशेषण के होने के सामर्थ्य से यह जगत् वर्त्तमान में असत् है, तो सो बने नहीं क्योंकि यह वर्त्तमान दशाबिषेभी यह जगत् सत्ही है, जो इस वर्त्तमान दशा बिषे जगत्को असत् कहोगे तो प्रत्यक्ष विरोध होवेगा, जो वस्तु प्रत्यक्ष होवे सो असत् कैसे होवेगा । एतदर्थ जो कदापि वर्त्तमान काल में यह जगत् एकसत्ही है ऐसा विशेषण नहीं तथापि वर्त्तमानदशा बिषे भी प्रत्यक्ष प्रमाण के बलसे सत्य हीहै । किन्तु नामरूप विशेषणवत् इदं शब्द अरु इदं बुद्धिकाविषय होने से 'इदं, ऐसा विशेषण होता है । हे सौम्य इस विचारसे जगत्त्व की असिद्धिही हुई ॥ अरु द्वितीय पक्ष जो विशेषणका अर्थवत्वत्वपना पूछतेहो तो श्रवण करो, तहां कहते हैं । हे सौम्य (यह नामरूपात्मक जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व इदं प्रत्ययका विषय होवे नहीं, हे सौम्य जो यह नामरूपात्मक जगत् देखते हो सो इदं शब्द अरु इदं बुद्धिका विषय भाव से स्थितहुआ वर्त्तमान में 'इदं, ऐसे व्यवहारको प्राप्तहुआ है । सोई जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व केवल सत्शब्द अरु सत्बुद्धिमात्र

ही होता है ताते "। सदेवेदमग्रआसीत्"। इसप्रकार अवधारणकरते हैं। क्योंकि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व नामरूपवान् (जैसाकि वर्त्तमान में है) इदं प्रत्ययका विषयवत् ग्रहण करने को शक्य नहीं। सुषुप्तिकालवत् [अर्थात् जैसे सुषुप्ति काल में सत् शब्दका वाच्य आत्म वस्तु निर्विशेष होनेसे इदं शब्द अरु इदं बुद्धिका विषय होवे नहीं तैसेही उत्पत्ति से पूर्व सत्रूप हुआ जगत् निर्विशेषहोनेसे नामरूपवान्हुआ इदंप्रत्ययका अरु इदं बुद्धि का विषयहुआ श्रवण कथन के व्यापार में आवे नहीं, क्योंकि सुषुप्तिमें अरु जगदुत्पत्तिके पूर्व बुद्ध्यादि करणों की उपसंहारता तुल्यही है] ताते यह जगत् जैसे पूर्व सत्था तैसाही वर्त्तमान में भी सत्ही है। परन्तु पूर्व नामरूपकी विशेषता से रहित होने से इदं शब्दका विषय न था, अरु वर्त्तमान में नामरूपात्मकहुआ इदं प्रत्ययका विषयहै ताते वर्त्तमानमें इस इदं शब्दके विषयको पूर्व सत् था ऐसा कहा है। ताते जैसा यह पूर्व सत् था तैसाही वर्त्तमान में भी सत्ही है, परन्तु वर्त्तमान में इसको नामरूप की विशेषता होने से इदं प्रत्यय से ग्रहणकरके कहाहै कि यह जगत् उत्पत्तिसे पूर्व एक सत्ही था परन्तु वास्तवकरके सर्वकाल सत्ही है॥ प्रश्न ॥

हे भगवन् यह नामरूप क्रियात्मक सर्व जगत् उस एक अद्वितीय सत्से कैसेहुआहै॥ उत्तर॥ हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त कहते हैं सो श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन जैसे लोकबिषे कोई एक पुरुष प्रातःकालको अपने ग्रामसे ग्रामान्तरको जातारहा तिसने ग्रामकेनिकट द्वारपर घटशरावादिक रचनेकी इच्छावालेकुलाल ने एक मृत्तिका का पिण्ड रचाथा, तिसको देखताहुआ वो पुरुष ग्रामान्तरको जाताहुआ, तिसके गये पश्चात् उस कुलालने उस मृत्पिण्डके अनेक घट शरावादि कार्य्यकोरचके फैलायदिया, अरु वो ग्रामान्तर को गया पुरुष सायंकालको जब अपने ग्रामके द्वार पर आया तब उसही कुलालके द्वारपर अनेक घट शरावादि भिन्न

भिन्न नाना नाम रूपवाले कार्य्यों को देख आश्चर्यको प्राप्तहुआ तब उससे कुलालने कहा कि हे भाई तुम इन सर्वको क्या देखते हौ यह सर्व भिन्न भिन्न नाम रूपात्मक कार्य्य अपनी उत्पत्तिसे पूर्व केवल एक मृत्पिण्डही रहा, सोई यह सर्वहुआ है। हे सौम्य इस दृष्टान्त प्रमाणही यहां कहाहै कि " सदेवेदमग्रआसीदिति " यह सर्व नाना नामरूपात्मक जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व एक सत्ही था सो एकही था ' सो कुलालवत् दंड चक्रादि सामग्री सहित एक न था, किन्तु दंड चक्रादिवत् अन्य निमित्त सामग्री के अशेष अभाव से एक अद्वितीयथा अर्थात् जैसे मृत्तिका को घटादि आकारसे परिणामहोनेमें मृत्तिका से भिन्न कुलाल दंड चक्रादि निमित्त सामग्री देखते हैं, तैसे एक सत्से व्यतिरिक्त (भिन्न) करके उस सत्का सहकारी अन्य द्वितीय निमित्त कारणकी प्राप्ति के निषेधार्थ उस सत्को अद्वितीय विशेषण से कहा है। अर्थात् जिससे अन्य कोई भी वस्तु विद्यमान न होवे सो कहिये अद्वितीय॥ः–" आत्मा वा इदमेव एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चित्" इति श्रुत्यन्तरे॥ अथवा हे सौम्य वो सत् कैसाएकहै कि एक संख्यातीतहै अर्थात् दो संख्या की आपेक्षक जो एक संख्या तिस आपेक्षिक एकसंख्या से रहित संख्यातीतहै, अर्थात् उस वचनातीतसत्विषे एक कहनाभी वास्तवसे बनेनहीं क्योंकि संख्यादि सर्व विशेषता से रहित निर्विशेष है वा संख्याबद्ध नहीं ताते। तिस निर्विशेष अस्तिमात्र वस्तुका जिज्ञासुप्रति उपदेश रूप व्यवहार साधने के अर्थ सत् शब्द अरु एकसंख्या करके कहा है, अरु तिससे इतर वस्तुका अत्यन्ताभाव लखावने के अर्थ उसको अद्वितीय विशेषण से कहाहै, न तु वास्तव से उसवचनातीत केवल अस्तिमात्र सत्तासमानविषे ,सत् असत्, एक, दो, इत्यादि कुछ भी कहना बने नहीं। हे सौम्य सोई सत् ईक्षण पूर्वक यह इदं प्रत्ययका विषय नामरूप क्रियात्मक जगदाकार से आपही सुशोभित है–ः ॥

शंका॥ ननु, हे भगवन् वैशेषिक मतवादियोंके पक्षकरके भी सत् को सर्वका सामानाधिकरण करके प्रतिपादन कियाहै"सद् द्रव्यं,सन्गुणः सत्कर्मेति"इत्यादि देखनेसे॥ समाधान॥ हे सौम्य इसवर्तमान कालविषे (अर्थात् जगदुत्पत्तिके पश्चात्) जैसा वो कहतेहैं सो सत्यहीहै,परंतु जगत्की उत्पत्तिसे पूर्व इस कार्य्यको सत् रूपही है ऐसा ग्रहण करते वा होतानहीं, क्योंकि जगदुत्पत्ति से पूर्व नामरूप कुछ भी न था अरु द्रव्य गुण कर्म्मादिक सर्व नाम रूपात्मकहै ताते)अरु वैशेषिक मतवादियों करके उत्पत्ति से पूर्व कार्यका असत्पना अंगीकार किया नहीं (क्योंकि वैशे-षिक मतवादी आठ किंवा नव द्रव्यों को नित्य मानते हैं ताते) अरु पुनः जगत् की उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय सत्को इच्छते नहीं। एतदर्थ हे सौम्य वैशेषिक मतवादियों करके परिकल्पित जे द्रव्यादिक सत् तिनसे यह श्रुति प्रतिपादित जगत् का कारण सत् अन्यही है॥ :– हे सौम्य वैशेषिकादि परमाणुवादि आठ वा नव द्रव्योंको परमाणुरूप से नित्य मानते हैं अरु परमाणु का लक्षणइसप्रकारकरते हैं कि झरोखादि रंध्रकेमार्गसे सूर्यकाप्रकाश जब ग्रहादिकोंमेंआवताहै तब तिसप्रकाशमें बहुतसेरजकण उड़ते भासते हैं तिन प्रत्येकका नाम त्रसरेणुहै तिस एक त्रसरेणुके षष्ठ भागको परमाणु मानते कहते हैं अरु ऐसे अनन्त परमाणुरूपसे सर्व द्रव्य नित्य रहते हैं तिस परमाणुओं से ईश्वरकी इच्छानु-सार यह पृथिव्यादि कार्य्यरूप जगत् होताहै। हे सौम्य अब उन परमाणुवादियों करके परिकल्पित परमाणुओं का विचार श्रवण करो, हे सौम्य परमाणु अतिसूक्ष्म होने से नेत्र का विषय नहीं परन्तु एक साकार वस्तुका भाग (खंड) होनेसे वो भी साकार है अरु यावत् वो परमाणु निराकार स्थितिको प्राप्त होवे नहीं तावत् उसका साकारत्वपना दूरहोवे नहीं अरु यावत् उसका साकारत्वपना मिटे नहीं तावत् उसका भी खण्ड होना मिटेनहीं यदि वो परमाणु सूक्ष्म अरु नेत्रका अविषय होनेसे उसका बाह्य

खड्गादि करणों से उसका विभाग होना असंभव है तथापि उस को बुद्धि का विषय होने से बुद्धिरूप करण से उसका खंडहोना संभव है आकारवान् होनेसे, अरु जो वस्तु आकारवान् होती है सो आकृति परिमेयता नाम अरु रूप इन चार धर्म्म, लक्षण करके युक्तही होती है अरु यही चार कार्य्य के धर्म्म लक्षण हैं अरु साकार त्रसरेणुका षष्ठ भाग परमाणुओं के मानने वाले परमाणु में से उक्त चार गुण जो कार्य्य के साधारण गुण हैं, दूर करने को कदापि समर्थ होवें नहीं। ताते हे सौम्य परमाणु वादी कहते हैं कि परमाणु नित्य अरु कारणही है कार्य्य किसी का भी नहीं सो उनका कथन अयुक्त है अरु उनके कथनमें कोई भी श्रुति का प्रमाण नहीं ताते अप्रमाणहै हे सौम्य वो परमाणु सूक्ष्म होनेसे यदि पृथिव्यादि स्थूल कार्य्यों का कारण हो तो अस्तु परन्तु वो कारणही हैं वो कार्य्य किसी का भी नहीं सो कहना बने नहीं क्योंकि परमाणुओं को कार्य्य के उक्तचार लक्षण वा गुण वा धर्म्म करके युक्त होनेसे ॥ ताते परमाणुवादियों का कथन युक्त नहीं, अरु उनके स्वबुद्धि कल्पितमतमें कोई भी श्रुति प्रमाण नहीं ताते उनका मत आदर करने के योग्य भी नहीं, हे सौम्य उक्त हेतुओं करके वैशेषिकादि परमाणुवादियों करके परिकल्पित सत् से इतरही यह श्रुति प्रतिपादित सर्व जगत् का कारण महासूक्ष्म एक अद्वैत द्रव्यके धर्मोंसे रहित निर्विशेष अस्तिमात्र सत्है ॥

शंका ॥ ननु, हे भगवन् मृदादि दृष्टांतोंसे वैशेषिक मतवादियों का पक्ष असंभव होनेसे भी, तहां इस जगत्की उत्पत्तिसे पूर्ववस्तु निरूपण करने के विषयमें कोई एक वैनाशिक मतवादी वस्तु निरूपण करत सन्ते ऐसा कहते हैं कि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व अभाव मात्रही एक अद्वैतथा, तिस असत् से सत् उत्पन्न होता हुआ ॥ अरु बौद्ध मतवादी सत् शब्द से भाव मात्रको ही अंगीकारकरके कहते हैं कि यह जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व

भावमात्रही तत्त्वथा, ऐसी कल्पना करते हैं वो सत् शब्द करके सत् प्रति इन्द्रिवस्त्वन्तरको इच्छते नहीं ॥:—हे भगवन् इत्यादि प्रकार अनेकमतवादी अपनी कल्पना से कहते हैं सो उनके कहने को कैसा जानना चाहिये॥ हे सौम्य वो सर्ववेद से बाह्य स्वबुद्धिकी कल्पना से कहते हैं क्योंकि उनके वाक्यों में कोई भी श्रुतिका प्रमाण नहीं, अरु वो सर्ववादी परस्पर में एक दूसरे के मतको खंडन करते हैं ताते भी उनके वाक्य आस्था करने योग्य नहीं ॥ हे सौम्य वैनाशिकमतवादी इस जगत्को उत्पत्ति से पूर्व अभावमात्र ही मानते हैं, तब यह उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वैत असत् ही रहा ऐसा कथन बने नहीं, क्योंकि अभाव असत् का अस्तित्व अरु काल से औ संख्या से सम्बन्ध अरु अद्वितीयत्व उन असत्वादियों करके कहना बने नहीं, क्योंकि जो केवल अभावही है तिसको, एक अद्वितीय, आगेरहा ऐसा कथन असंगत है। अरु पुनः कहते हैं कि तिस असत् से सत् होता हुआ सो अत्यन्त ही विरुद्ध असंभव अप्रमाण है। हे सौम्य जैसे शशेके शृंग अद्यावधि सिद्ध हुए नहीं क्योंकि वो अभावरूप हैं तिस अभावरूप शशशृंग से भावरूप धनुष कैसे सिद्धहोगा किन्तु कदापि न होगा, क्योंकि वो अभाव आप असत्रूप है तिस असत्रूप अभाव से सत्रूप भाव कदापि सिद्ध होना नहीं, ताते उन अभाववादी वैनाशिकों का वाक्य अत्यन्तविनाशकारी असंगत अप्रमाण होने से किसी भी प्रकार से मन्तव्य नहीं॥ हे सौम्य केवल भावमात्र से ही जगदुत्पत्ति के माननेवाले जे बौद्ध सो ऐसा कहते हैं कि जैसे कोई पुरुष जैसा पदार्थ देखताहै तैसी ही तिसकी प्रतिमा (नकल) उतार लेता है तैसेही परम्पराभावद्वारा सृष्टि चली आवती है। हे सौम्य सो यह बौद्ध का कहना भी समीचीन नहीं क्योंकि जो भावरूप वस्तु है सो एकरोज अभाव भी होती है अरु जो अभाव होती है सो वस्तु सत् न होके असत् होती है। ताते बौद्धों करके परिकल्पित

जे भाव सो असत् अभावरूप सिद्ध होताहै, अतएव तिस भावना-मक असत् अभावसे सत्रूप भावका होना असंभवहै। ताते भाववादी आचार्य्योंका कहना भी अप्रमाण होनेसे मन्तव्य नहीं॥

हे सौम्य अब श्रुतिप्रमाण से रहित बोलनेवाले जे भाववादी तथा अभाववादी आदिक भेदवादी हैं तिनके मतका निराकरण सम्यक् प्रकार सविस्तर श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन अभावादिक कारणों के अभाव से यह संसार बंध्यासुतवत् तुच्छ (कहनेमात्र) ही है यह वेदान्त उपनिषद् श्रुतिका सिद्धान्तहै। ताते सम्यक् प्रकार सावधान होय श्रवणकर अपने चित्तमें निश्चय धारणकरो। हे सौम्य यह जगत् अकारणीक है वा सकारणीकहै, इसका विचार करना मुख्यहै, तहां कारण विनाही जिसकी उत्पत्ति होवे सो कहिये अकारणीक, अरु कारण से जिसकी उत्पत्ति होवे सो कहिये सकारणीक। हे प्रियदर्शन अब इसका विचार सावधान होके श्रवण करो) हे सौम्य उक्त दोनों पक्षों में प्रथम पक्ष जो , अकारणीक संसारहै सो बने नहीं, क्योंकि तन्तु आदिक कारणों विना पटादि कार्य्योत्पत्ति के असंभववत् कारण विना संसाररूप कार्य्यका होना भी संभवे नहीं ताते। अरु तैसेही कारण विना कार्य्य होवे नहीं, इस न्यायसे भी विरोध होनेसे प्रथम पक्ष समीचीन नहीं॥ अरु द्वितीय , सकारणीक संसार, पक्ष है, तिसमें भी विचार कर्तव्य है कि अभावकारणीक संसार है वा भावकारणीक संसार है। हे सौम्य तहां जो वैनाशिकमतवादी तुमसे कहते हैं कि (" असदेवेदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतःसज्जायेत ") अभावकारणीक संसार है, तहां उनसे प्रश्न करना चाहिये कि, हे वादी तुम जो अभावकारणीक संसार कहते हो तो, क्या , प्रागभावकारणीक संसार है, १। वा प्रध्वंसाभावकारणीक संसार है २। वा अत्यन्ताभावकारणीक संसार है ३। वा अन्योन्याभावकारणीक संसार है ४। (इन अभावचतुष्टयमें से किस अभावको तुम जगत्का कारण

मानते हो। तहां जो कदापि वादी कहे कि हम प्रथम पक्ष प्रागभावकारणीक संसार को मानते हैं, तो तहां भी उससे प्रष्टव्य है कि, कारण का प्रागभाव जगत् का कारण है, वा कार्य्य का प्रागभाव जगत् का कारण है, वा उभय का प्रागभाव जगत्का कारणहै (हे सौम्य इस प्रागभावान्तर तीनोंपक्षोंमेंसे यदि वादी कहे कि) कारण का प्रागभाव संसार का कारण है, तहां उससे पुनःप्रष्टव्य है कि कारण का प्रागभाव विनाशी है वा अविनाशी है, तहां जो वादी कहै कि कारण का प्रागभाव विनाशी है, तो पुनः उससे प्रष्टव्य है कि कार्य्योत्पत्ति के पूर्वही प्रागभाव नाश होवे है वा कार्य्योत्पत्तिके अन्तर तिसका नाशहोवे है। तहां जो कदापि वादी प्रथमपक्ष कहै कि कार्य्योत्पत्ति के पूर्वही कारण के प्रागभाव का नाशहोवे है, तो अकारणीक संसार पक्षमें कहे जे दोष तिन दोषों का इसमें सद्भाव होने से समीचीन नहीं। अरु जो कदापि वादी द्वितियपक्ष कहै कि कार्य्योत्पत्ति के अनन्तर कारण के प्रागभाव का नाशहोवे है, तो तिस पक्षमें भी प्रष्टव्य है कि कारण का प्रागभाव एक है वा नानाहै, तहां जो वादी कहे कि कारण का प्रागभाव एकहै, तो इस पक्षमें भी पुनः प्रष्टव्य है कि अब कारणके प्रागभावका नाशहुआ है या नहीं,। हे सौम्य तहां नाश पक्ष तो नष्ट तन्तुआदिक कारणों से पटादिक कार्य्य की उत्पत्तिवत् नष्ट प्रागभावरूप कारण से जगत्रूप कार्यकी उत्पत्ति का असंभवहोने से सो बने नहीं। अरु नाशाभाव द्वितीय पक्षमें भी पुनः प्रष्टव्यहै कि जब प्रागभाव का नाशहोगा तिसके अनन्तर कार्य्य होगा वा नहीं, तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहै कि प्रागभाव के नाशके अनन्तर कार्य्य होवेगा। तो तिस पक्षमें भी अकारण जगत् वाद की प्राप्ति होने से अयुक्तहै। अरु जो द्वितीय पक्ष कहै कि प्रागभाव के नाश होनेके अनन्तर कार्य्योत्पत्तिहोवे नहीं, तो इसपक्षकरके सर्वजीवोंको अनायासते मोक्षप्राप्ति का संभवहोने से बने नहीं, क्योंकि रागद्वेषादिक संसारही बंधहै अरु

प्रागभावरूप कारण का अभाव होने से कारण विना रागद्वेषआदिक संसार की अनुत्पत्ति के हुए जीवोंको संसारका अभावरूप मोक्ष अतिही स्पष्टहै। हे सौम्य इसरीतिसे कारण का प्रागभाव विनाशी अरु एकहै इसपक्षका खंडनहुआ॥–॥ हे सौम्य अबकारण का प्रागभाव विनाशी अरु नानाहै, इसपक्षमेंभी वादीसे प्रष्टव्यहै कि प्रागभावों का स्वरूप स्वरूपसेही भेदहै वा प्रतियोगी के भेद से भेद है तहां जो कदापि वादी ऐसा कहै कि उन विनाशी नाना प्रागभावों का स्वरूप स्वरूपसेही भेदहै, तो सो पक्ष सम्भवे नहीं, क्योंकि घटपटादिकनको प्रतियोगी निरपेक्ष होनेसे तिनका परस्पर स्वरूप से भेदहै, तैसे प्रागभावभी प्रतियोगी निरपेक्ष होवे तो तिनका स्वरूपसे भेद सम्भवे, परन्तु प्रतियोगी निरपेक्ष प्रागभावहै नहीं ताते स्वरूपसेही तिनका भेद संभवे नहीं, अरु स्वरूपसे प्रागभावों का भेद किसी ग्रन्थकारने माना भी नहीं॥ हे सौम्य जो कदापि वादी कहे कि प्रागभावों का प्रतियोगी भेद से भेदहै, तो इस द्वितीयपक्षमें भी वादी से प्रष्टव्य है कि प्रागभावत्वरूप से प्रागभाव संसारका कारण है वा स्ववृत्तिप्रतियोगिता निरूपकतासम्बन्धद्वारा प्रतियोगी विशिष्टरूप से प्रागभाव संसारका कारण है, तहां वादी प्रथमपक्ष कहे तो तन्तुओं में घट की औ कपाल में पटकी उत्पत्ति के असम्भव से अनादरणीयहै। अरु जो कदापि वादी द्वितीयपक्ष कहै तो तहां भी यह प्रष्टव्य है कि असिद्धप्रतियोगी विशेषण है वा सिद्धप्रतियोगी विशेषणहै तहां जो वादी प्रथमपक्ष कहै तो असिद्धदण्डविशिष्ट कुलाल में घटकारणताके असंभववत् असिद्ध प्रतियोगीविशिष्ट प्रागभाव में संसारकी कारणताका असंभव होनेसे संभवे नहीं, अरु जो कदापि वादी सिद्धप्रतियोगी विशेषण है यह द्वितीयपक्ष कहै तो भी प्रतियोगीकी सत्ताकालमें प्रागभावका अरु प्रागभावकालमें प्रतियोगीकी सत्ताका अभाव होने से प्रतियोगी विशिष्टप्रागभाव के असम्भवसे समीचीन नहीं। हे सौम्य इसरीतिसे कारणका प्राग-

भाव विनाशी अरु नानाहै यह पक्षभी वादी का असंगतहै ॥ हे सौम्य अब द्वितीयपक्ष कारणका प्रागभाव अविनाशी अरुसंसार का कारणहै,यह पक्ष तो प्रागभावके असम्भवसे तथाप्रध्वंसाभावादिकरूपकी प्राप्तिसे संभवे नहीं॥ अर्थात् अनादिशान्त जो अभाव सो कहिये प्रागभाव यह प्रागभावका लक्षणहै॥ ताते प्रागभावको अविनाशीमाने तो लक्षणको लक्षणमात्रमें वृत्तित्वाभावरूपअसंभव दोषयुक्तहोने से प्रागभावकी साधकता तिसमें संभवे नहीं, अरु प्रागभावके लक्षणान्तरका संभव नहीं, कि जिससे प्रागभाव सिद्धहोवे। अरु प्रागभावको सादि अनन्तमाने तो प्रध्वंसाभावका नामान्तर प्रागभाव होवेगा, अरु जो प्रागभाव को अनादि अनन्त माने तो अत्यन्ताभाव तथा अन्योऽन्याभावके रूपमें प्रागभावका अन्तरभावहोनेसे तिनसे भिन्नप्रागभाव अलोकहोवेगा। हे सौम्य इसरीतिसेकारणका प्रागभावअविनाशी अरुसंसारका कारण है, यहपक्षभीसमीचीननहीं ॥ हे प्रियदर्शनकारणका प्रागभावकार्य्यकाजनकहै, वा कारणकाजनकहै यह वादीसे प्रष्टव्यहै तहां जो वादी प्रथमपक्ष कहै कि कारणका प्रागभाव कार्य्यका जनकहै तो सो संभवे नहीं क्योंकि कार्य्यका प्रागभाव कार्य्यका जनकहै अरु कारण का प्रागभाव कारण का जनकहै, यह नियम है, ताते कारण के प्रागभाव को कार्य्य का जनकमाने तो कारण के प्रागभावसे संसाररूप कार्य्य की उत्पत्तिवत् कपालवृत्ति घटकेप्रागभाव से पटकी अरु तन्तुवृत्ति पटके प्रागभावसे घटकी उत्पत्ति होनीचाहिये सो होवे नहीं॥:—अथवा कारणके प्रागभाव को कार्य्य का जनकमाने तो कारण के प्रागभाव से संसाररूप कार्य्य की उत्पत्तिवत् कपालवृत्ति के प्रागभावसे घटकी अरु तन्तुवृत्तिपट के प्रागभाव से पटकी उत्पत्तिहोनीचाहिये सो होवेनहीं —:॥ताते कारणका प्रागभाव कार्य्यका हेतु नहीं। अरु जो कदापि वादी द्वितीयपक्ष कहे कि कारणका प्रागभाव कारणका जनकहै, तो इस द्वितीयपक्षमें भी प्रष्टव्यहै कि हे वादी तेरे यहां कारण

पदसे ब्रह्मका ग्रहणहै वा अज्ञान का ग्रहणहै वा संसार का ग्रहण है, तहां जो कदापि वादी प्रथम अरु द्वितीय दोनों पक्ष कहै तो अनादि परमाणु आदिकों के प्रागभाव के असंभववत् अनादि स्वभाव ब्रह्म अरु अज्ञान के प्रागभाव के असंभवहोने से मानने योग्य नहीं, क्योंकि ब्रह्म अरु अज्ञान की श्रुति स्मृति तथा युक्तियों से प्रसिद्ध तहां "अजामेकाम्" "अजोह्येकः" यह श्रुति अरु "प्रकृतिं पुरुषंचैव विद्ध्यनादीउभावपि" यह स्मृति, अरु युक्ति आगे कहैंगे ॥ हे सौम्य तैसेही कारणपद से संसार कारण ग्रहणरूप तृतीयपक्ष वादी कहै तो सो भी कार्य्यरूप संसार में कारण पदप्रयोग के असंभव से तथा कारण का प्रागभाव कार्य्य का हेतु है इस प्रतिज्ञाकी हानि से भी बने नहीं। हे सौम्य इसरीति से कारण का प्रागभाव कार्य्य का जनक है इस पक्ष का खंडन हुआ ॥–॥ हे सौम्य तैसे कार्य का प्रागभाव कार्यका हेतु है, यह प्रागभावकारणीक संसार पक्षान्तर द्वितीयपक्ष है, तिसमें भी वादी से यह प्रष्टव्य अरु विचारणीय है कि कार्य का प्रागभाव कार्य का उपादानकारणहै वा निमित्तकारणहै, तहां जो वादी कार्य के प्रागभावको कार्य का उपादानकारण कहै तो यह प्रथम पक्षभी संभवे नहीं, क्योंकि जिसके स्वरूपमें कार्यकी स्थिति होवे तिसको उपादानकारण कहते हैं, अरु कार्य के प्रागभाव में कार्य्यकी स्थितिके असंभव से अरु कार्य्य में सद्बुद्धिते कार्य में उपादानताकी उक्ति अयुक्त है । अरु कार्य्य का प्रागभाव कार्य का निमित्तकारणहै, यह द्वितीयपक्ष जो वादी कहै तो तिस बिषेभी उसे प्रष्टव्यहै कि कार्यका प्रागभाव सादि है वा अनादि है, । तहां जो कदापि वादी प्रथमपक्ष कहे कि कार्य का प्रागभाव सादि है तो तहांभी पुनः प्रष्टव्यहै कि कार्य के प्रागभावका कारण प्रागभावहै वा प्रतियोगी है। तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहै तो सो आत्माश्रयदोषते संभवे नहीं, अरु द्वितीयपक्ष भी कार्य्य के प्रागभाव अरु प्रतियोगी को परस्पर सापेक्षरूप

होनेसे अन्योऽन्याश्रयदोषते संभवे नहीं, अरु प्रागभावके लक्षण का असंभव होने से समीचीन नहीं। अरु जो कदापि वादी द्वितीय पक्ष कहै कि कार्य्य का प्रागभाव अनादि है, तो इस पक्षमें भी प्रष्टव्य है कि (कार्यका प्रागभाव जो अनादि है) सो निराश्रय है वा साश्रयहै,। तहां जो कदापि वादी कार्यका प्रागभाव अनादि निराश्रयहै यह प्रथमपक्ष है, तो सो धर्मी निरपेक्ष प्रागभाव के स्वरूपकी असिद्धि होनेसे संभवे नहीं, अरु जो कदापि वादी कहे कि कार्य का प्रागभाव अनादि साश्रय है तो इस द्वितीयपक्षमें भी प्रष्टव्य है कि कार्य के प्रागभाव अनादि साश्रयका अधिकरण प्रतियोगी है १। वा ब्रह्म है २ ।वा अज्ञानहै ३। तहां जो वादी प्रथम पक्षको अंगीकार करे तो सो बने नहीं, क्योंकि परस्पर में विरोधी प्रकाश अरु तमका आधाराधेयभाव के असंभववत् विरोधी प्रतियोगी में प्रागभाव की अधिकरणता का अभाव होने से असंगत है। अरु द्वितीयपक्ष भी असंगस्वभाव ब्रह्म अधिकरणिक प्रागभाव के असंभव से समीचीन नहीं। अरु जो कदापि वादी तृतीयपक्ष कहे तो यद्यपि अज्ञान अधिकरणिक प्रागभाव संभवे है तथापि अज्ञान को अचिन्त्यशक्तिरूप होने से अरु दुर्घट कार्य्यकारित्व स्वभाव से तिसमें कार्य्यनिर्वाहार्थ प्रागभाव की अधिकरणता की कल्पना व्यर्थ है अरु अन्य कोई पदार्थ कार्य्यमात्र प्रतियोगिक प्रागभाव का आश्रय संभवे नहीं। इसरीति से आश्रय पक्षको असंगत होनेसे कार्य्य का प्रागभाव कार्यका हेतु है यह पक्षभी अयुक्तहै। अरु कार्य कारण उभय के प्रागभाव को संसारकाकारण पक्ष जो उभयपक्षगत उक्तदोषनके सद्भावसे बने नहीं। हे सौम्य इस प्रकार प्रागभावकारणीक संसार है, वादी के इस प्रथम पक्षका खंडनहुआ जानना॥ १॥

हे सौम्य, अब अभाववादीका द्वितीयपक्ष जो प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है तिसका विचार श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन उस वादीसे पूछना चाहिये कि हे वादी तेरा प्रथमपक्ष 'प्रागभाव

कारणीक संसार है, सो तो उक्तप्रकार बनेनहीं । अरु जो तू अपना द्वितीयपक्ष कहै कि प्रध्वंसाभावकारणीक संसार है , तहां हम तुमसे यह पूछते हैं कि कारणका प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है वा कार्य्य का प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है, वा उभयका प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है ॥ तहां जो कदापि प्रथम पक्ष कहै कि कारण का प्रध्वंसाभाव संसार का कारण है, तो सो नष्टकपाल कुलालादिकन से घटरूप कार्य की उत्पत्ति के असंभववत् नष्टहुए कारण से संसाररूप कार्य की उत्पत्ति का असंभव होने से अयुक्त है (हे सौम्य सूक्ष्मविचारसे तो कारण का प्रध्वंसाभावही अलीक है) हे वादी तूने जो कारण का प्रध्वंसाभाव संसार का कारण कहा तहां कारण शब्दकरके अज्ञानका ग्रहण है वा ब्रह्मका ग्रहण है। हे सौम्य इसप्रकार प्रश्न करने से वादी (अज्ञान का ग्रहणरूप) प्रथमपक्ष कहै, तो तहां यह प्रष्टव्य है कि ध्वंसाभावका अपर पर्याय जो अज्ञान का नाश सो अधिष्ठान के ज्ञानसे होवे है १ वा क्रिया से होवे है २ वा कारण के नाश से होवे है ३ वा कार्य्य के नाशसे होवेहै ४ वा आश्रय के नाशसेहोवे है ५ । तहां इन पांचों पक्षों में प्रथम पक्ष कहै कि अधिष्ठान के ज्ञानसे कारण का नाशहोवे है, तो जैसे अध्यस्त सर्पकी अधिष्ठान रज्जुके साक्षात्कारकेहुए बाधात्मक-निवृत्ति विना ध्वंसरूपनिवृत्ति संभवे नहीं, तैसेही अध्यस्त अ-ज्ञानकी अधिष्ठान ब्रह्मके साक्षात्कार से बाधात्मकनिवृत्ति विना ध्वंसरूपनिवृत्ति के असंभव से संभवे नहीं १ अरु जो द्वितीयपक्ष कहै कि क्रिया से अज्ञानरूप कारण का नाशहोवे है, तो सो भी दंडादिकनकी घातरूपक्रिया से घटकी निवृत्तिवत् अध्यस्त सर्प की निवृत्ति नहीं (अर्थात् रज्जुबिषे अध्यस्तसर्पकी निवृत्ति अधि-ष्ठान रज्जुके ज्ञानविना दंडादिकन की घातजन्यक्रियासे कदापि संभवेनहीं) तैसेही शरीरादिकोंकी क्रियासे पुण्यकर्मजन्य पाप की निवृत्तिके सम अध्यस्त अज्ञानकी निवृत्ति का अभाव होने

से संभवे नहीं २। अरु जो तृतीय पक्षकहै कि कारण के नाशते अज्ञान कारणका नाशहोवे है, तो सो भी "अजामेकां" इस अज्ञान की अनादिता प्रतिपादक श्रुतिवाक्य से विरोध के कारण बने नहीं ३। अरु जो चतुर्थ पक्षकहै कि कार्यके नाशते कारण अज्ञान का नाशहोवे है तो सो भी बने नहीं क्योंकि जैसे घटरूप कार्य के नाशते घटके उपादान मृत्तिका का नाशहोवे नहीं, तैसेही संसार रूप कार्यके नाशसे जगत् के उपादान अज्ञानकानाश संभवे नहीं, अन्यथा (अर्थात् संसार रूप कार्य के नाशते कारण अज्ञान का नाशहोवेतो) उपादान कारण अज्ञातके अभावसे कल्पान्तरमेंसंसारकी उत्पत्ति न हुई चाहिये, अरु जो तथास्तु (अर्थात् ऐसाकहै कि कल्पांतरमें संसारकी उत्पत्तिमतहो) तो सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियोंसे विरोधहोवेगा। ताते चतुर्थ पक्ष भी संभवे नहीं ४। अरु जो कदापि पंचम पक्षकहै कि आश्रय के नाशते कारण अज्ञानका नाशहोवे है। तो तहां हम यह पूछते हैं कि अज्ञानका आश्रय, संसारहै, वा अज्ञान है, वा ब्रह्म है, तहां अज्ञानका आश्रय संसार है यहप्रथम पक्षतो, अज्ञानके अन्तर भावी संसारमें अज्ञानकी आश्रयताके असंभवते बने नहीं। अरु जो कदापि द्वितीय पक्षकहै कि अज्ञानका आश्रय अज्ञान है तोसो अनवस्थादि दोष करके युक्त होनेसे बने नहीं। अरु जो तृतीय पक्षकहे कि अज्ञानका आश्रय ब्रह्म है तिसके नाशते कारण अज्ञान का नाश होवेहै, तो अज्ञान के अधिष्ठान अविनाशीस्वरूप ब्रह्म के नाशका असंभव होनेसे अनादरणीयहै॥ (हे वादी तैंने कारण अज्ञान का ध्वंस जगत्‌काकारण कहा है तहांहम पूछते हैं कि) कार्यके आकार परिणत अज्ञानकी अवस्थाका नाम (अर्थात् कारण अज्ञानका कार्यरूप परिणाम होनेरूप अवस्थाकानाम) ध्वंस है, वा अज्ञान के अभावका नामध्वंस है, तहां जो प्रथम पक्षकहै तो कार्य्यात्मक अवस्था को कार्य की हेतुता होनेसे आत्माश्रय दोष होवेगा, अरु द्वितीय पक्षमें अज्ञान के नाशको अनादि माने तो प्राग-

भावादिकन के नामान्तर की प्राप्ति होवेगी, अरु जो अज्ञान के नाशको सादिमानके कार्य्यमात्रकी कारणता वांछित होवे तो कार्य मात्रके अन्तः पाति ध्वंसको अपने में अपनी कारणताहोने से आत्माश्रय दोष, तथा कार्यमें असद्‌बुद्धिकी प्राप्ति होवेगी, अरु कार्य्य विशेष में ध्वंसको कारण कहै तो कारणका ध्वंसभाव कार्यमात्रका हेतु है इस प्रतिज्ञाकी हानि होवेगी । इसरीति से अज्ञानके ध्वंसका असंभवहोनेसे कारण पदवाच्य अज्ञानका ध्वंस संसारका कारणहै यह पक्ष असंगतहै ॥ (हे सौम्य पूर्व प्रश्नके उत्तर में वादीने कहा कि कारण पदवाच्य अज्ञानका प्रध्वंसाभाव जगत् का कारणहै तिस पक्षका निराकरण हुआ) हे प्रियदर्शन (जो कदापि वादी ऐसा कहै कि कारणपद वाच्य ब्रह्म का प्रध्वंसाभाव जगत्‌का कारणहै, तो अज्ञानके प्रध्वंसाभाववत् ब्रह्म का प्रध्वंसाभावभी संभवे नहीं, क्योंकि जैसे व्यापक अरु निरवयव आकाशका दंडादिकनके घातरूप कर्म्मों से नाश संभवे नहीं तैसे ही "महतो महीयान्" "निष्कलं" इत्यादि श्रुति प्रमाण से (अरु यथार्थ अनुभव युक्ति से) व्यापक अरु निरवयव निराकार ब्रह्मका शस्त्रादिकन के घातरूप कर्म्म से नाशसंभवे नहीं, "नैनं छिन्दन्तिशस्त्राणि" किंच उपादान कारण के नाशते वा निमित्त कारण के नाशते कार्य्य द्रव्यका नाश होवे है । जैसे तंतु वा तंतु के संयोग के नाशते पटका नाश होवे है । अरु अनादि स्वभाव ब्रह्मका उभयप्रकार के कारण के असम्भव से, प्रध्वंसाभाव बने नहीं । हे सौम्य जो कदापि कोई वादी ब्रह्मको कार्य्य कहै तो तिससे यह प्रष्टव्य है कि ब्रह्मका कारण अज्ञान है वा ब्रह्म है, तहां जो वादी प्रथमपक्षकहै कि ब्रह्मका कारण अज्ञानहै, तो सर्प के अधिष्ठान रज्जुकी सर्पसे जनिता (उत्पत्ति) के असंभववत् अज्ञान के अधिष्ठान ब्रह्मकी अपने में अध्यस्त अज्ञानसे उत्पत्ति का अभाव होनेसे समीचीन नहीं ॥ किंच वादी से यहभी प्रष्टव्य है, कि अज्ञान स्वतन्त्र है वा परतन्त्रहै, तहां जो वादी प्रथमपक्ष

कहै कि अज्ञान स्वतन्त्र है, तो उससे पुनःप्रष्टव्यहै कि अज्ञान में स्वतन्त्रत्व आश्रय विषय निर्पेक्षस्वरूप है वा कार्य्यजन्य कर्तृत्वरूपहै, वा चेतन स्वरूप प्रकाशकत्वहै। तहां जो वादी प्रथमपक्ष कहै सो "कस्य कुत्राज्ञानं" किस पुरुषको किसविषयमें अज्ञानहै इसप्रतीति विरोध ते संभवे नहीं। अरु जो वादी द्वितीयपक्षकहै कार्यजन्य कर्तृत्वरूप स्वतन्त्रताहै, तो सो भी वक्ष्यमाण अज्ञान कारणीक संसारके निराकरणका साधक युक्तिसमुदायरूपदोषों ते संभवे नहीं। अरु कदापि वादी तृतीयपक्ष कहे, कि अज्ञान चेतनस्वरूप प्रकाशकस्वरूप स्वतन्त्र है, तो सो भी जड़स्वभाव अज्ञान में स्वप्रकाशयुक्तिके विरोध से बनेनहीं। अरु जो अज्ञान को चेतनमाने तो अज्ञान के स्वरूपकी क्षिती ते वा ब्रह्मरूप की प्राप्ति ते संभवेनहीं॥ अरु जो कदापिवादीअज्ञानको परतन्त्रमाने तो सो पक्ष भी ब्रह्मसत्ता के आधीन सत्ताके (सत्तावाले) ज्ञान में स्वसत्ता प्रदाता ब्रह्मकी जनकताका असंभवहोनेसे समीचीन नहीं॥ अरु ब्रह्मका कारण ब्रह्म है, ऐसा कहै तो इसपक्षविषेअन्योन्याश्रय दोष होने ते सो बने नहीं। हे सौम्य इस प्रकार ब्रह्मकी सामग्रीका अभाव होनेसे ब्रह्मप्रतियोगिक प्रध्वंसाभावबने नहीं। ताते कारण शब्दसे अज्ञान वा ब्रह्मके ग्रहणका अभाव होनेसे उभय प्रति योगिक ध्वंसाभाव अलीकहै। ताते कारणका प्रध्वंसाभाव कारणीकसंसारहै यह पक्ष असंगतहै॥ हे सौम्य प्रध्वंसाभाव कारणीक संसारहै इस प्रकारके वादीके पक्षके आवान्तर प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार द्वितीयपक्षहै तिसके अवान्तर तीन पक्षहैं तिन में प्रथम पक्ष कारणका प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है इस पक्षका निराकरण हुआ। अरु द्वितीय पक्ष जो कार्य का प्रध्वंसाभाव जगत् का कारणहै, सो इस पक्षका भी निराकरण श्रवणकरो। हे सौम्य जो कदापि वादी ऐसाकहै कि कार्य्यका प्रध्वंसाभाव जगत्का कारणहै तो सो अन्योन्याश्रय दोष युक्त होनेसे संभवे नहीं, अरु जो कदापि वादी तृतीय पक्षकहै कि कारण

अरु कार्य दोनोंका प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार है, तो इस पक्षविषे भी उभय पक्षोंगत दोषोंके सद्भाव से यह तृतीय पक्षभी बने नहीं ॥ अरु प्रागभाव पक्षविषे कहे जे शेष दोष सो तो इस प्रध्वंसाभाव पक्ष विषे भी अनुगत है ताते यहां लिखे नहीं ॥ हे सौम्य उक्त रीति प्रमाण से वादी के अभावकारणीक संसारपक्ष के आवान्तर प्रध्वंसाभाव कारणीक संसारहै, इस द्वितीयपक्षका भी खण्डनहुआ ॥ २ ॥

हे प्रियदर्शन अभाव वादी के अभावकारणीक संसारपक्ष के अन्तर्गत पूर्व चारपक्ष कहे हैं तिनमें से प्रागभाव कारणीक संसारपक्ष अरु प्रध्वंसाभाव कारणीक संसार पक्ष इन दोनों पक्षों का खण्डनहुआ । अब शेषरहे दोनों पक्षों में से अत्यंताभाव कारणीक संसार पक्षका खण्डन श्रवण करो हे सौम्य, हे प्रियदर्शन, अभाववादी अपने उक्त दोनों पक्षों के खण्डनको श्रवण यदि अपना तृतीय पक्ष कहै कि अत्यन्ताभाव कारणीक संसार है, तो तिसपक्ष विषे भी उससे पृष्टव्य है कि हे वादी कारणका अत्यन्ताभाव संसारका कारण है वा कार्य्य का अत्यन्ताभाव संसार का कारण है, वा उभयका अत्यन्ताभाव संसारका कारणहै, । अरु कारण पक्ष में भी पृष्टव्य है कि हे वादी कारण शब्द करके तेरे यहां ब्रह्मका ग्रहणहै वा अज्ञानका ग्रहण है तहां जो कदापि वादी प्रथम पक्षकहै कि कारण शब्दसे ब्रह्म का ग्रहणहै तो अबाध्यस्वभाव ब्रह्म प्रतिपादक "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतियों से विरोध होने से अथवा निरधिष्ठान संसार के अभाव से बनेनहीं । अरु जो कदापि वादी द्वितीयपक्ष कहै कारणपक्षसे अज्ञान का ग्रहण है तो कल्पित अज्ञान का ब्रह्मज्ञान से निवृत्ति रूप अत्यन्ताभाव को, कल्पित सर्प के अत्यन्ताभावको रज्जुरूप की प्राप्तिवत्; ब्रह्मरूप होने से ब्रह्मकारणीक संसार वादकी आपत्तिसे संभवे नहीं । हे सौम्य इसप्रकार वादी के कारण शब्द से ग्रहीत जे प्रथम ब्रह्मपक्ष अरु द्वितीय

अज्ञान पक्ष तिन दोनोंका निराकरण हुआ अरु तैसेही वादी के अत्यन्ताभाव कारणीक संसार पक्षके अवान्तर तीन पक्षहैं तहां प्रथम कारणका अत्यन्ताभाव संसारका कारण है, वा कार्य का अत्यन्ताभाव संसारका कारण है ' वा दोनों का अत्यन्ताभाव संसारका कारणहै, सो तीनोंपक्ष बनेनहीं, तहां आद्य द्वितीयपक्ष भी तन्तुवृत्ति घटके अत्यन्ताभाव में घट जनकताके असंभववत् ब्रह्मवृत्ति संसारके अत्यन्ताभाव में संसारकारणताके अभाव से असंगतहै। अरु उभय पक्षोंगत दोषोंके सद्भावसेही प्रथम द्वितीयपक्ष संभवेनहीं॥ किंच वादीसे यह पृष्टव्यहै कि 'अत्यन्ताभाव शक्ति सहित कारण है वा अशक्ति कारण है, तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहै तो शक्ति रहित वंध्यासुतकुलाल से घटोत्पत्ति के असंभववत् शक्ति शून्य अत्यन्ताभाव से संसारोत्पत्ति का अभाव होनेसे संभवे नहीं। अथवा अत्यन्ताभाव को केवलअन्वयि होनेसे सर्वत्र तिसका लाभ संभवे है, ताते कारण रूप अत्यन्ताभाव से भिन्न घट पटादिकों के अर्थ पुरुषोंका अकारण कपाल तन्तु आदिकों के ग्रहण में प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये सो होवेहै, एतदर्थ उन पुरुषोंकी घट पटादि कार्य्य के निमित्त कपाल तन्तु आदिक कारणके ग्रहणमें प्रवृत्तिहोती है सोई अत्यन्ताभाव में संसार कारणताके अभाव बोधनद्वारा भावकारणीक संसारको बोधन करे है। एतदर्थ शक्ति रहित अत्यन्ताभाव कारणीक संसार पक्ष असंगतहै॥ अरु जो कदापि वादी द्वितीय पक्ष शक्ति सहित अत्यन्ताभाव को जगत् का कारण अंगीकार करे तो तहां भी पृष्टव्य है कि सो शक्ति असत् है वा सत्है, तहां जो कदापि वादी प्रथम पक्षकहै कि शक्ति असत्है तो समान स्वभावउभय प्रकाशों का धर्म धर्मी भावके असंभववत् समान स्वभाव असत् शक्ति अरु अत्यन्ताभाव के धर्म धर्मी भाव के असंभव से बने नहीं, अरु जो कदापि वादी द्वितीय पक्षकहै कि शक्तिसत् है तो भी बने नहीं क्योंकि सत्य जे गंधादिक सो असत्य जो खपुष्प

तिनका धर्म्म होवे नहीं, तैसेही सत् शक्ति में अत्यन्ताभाव की धर्मताके अभावसे समीचीन नहीं ॥ अरु प्रागभाव अरु प्रध्वंसा भाव इन दोनों पक्षों में कहे जे शेष दोष सो इस अत्यन्ताभाव में भी व्यापक (अनुगत)है एतदर्थ यहां लिखे नहीं ॥ अरुइस अत्यन्ताभाव के खंडन का विस्तार आत्मपुराण के अष्टमाध्याय विषे प्रसिद्ध है, एतदर्थ यहां खंडन की रीति मात्रलखायी है॥ हेसौम्य उक्तप्रकार अभाव वादीके तृतीय अत्यन्ताभाव कारणीक संसार पक्षका खंडन हुआ जानना ३ ॥

हे सौम्य, अभाव वादी के अभाव कारणीक संसार पक्ष के अन्तर्गत प्रागभावादि चार अभाव पक्षहैं तिनमेंसे तीन पक्षों का अखंडन कहा। अब चतुर्थ अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्षके खंडन को श्रवण करो। हे सौम्य जो कदापि वादी अपने तीनों पक्षोंका खंडन श्रवणकर अपना चतुर्थ पक्षकहै कि हम अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्ष मानते कहते हैं, तो तिस पक्ष में भी पूर्ववत् उससे प्रष्टव्यहै कि हे वादी तू जो अन्योन्याभावकारणीक संसार मानताहै, तहां कारण का अन्योन्याभाव कारणीक संसार मानता है वा कार्य का अन्योन्याभाव कारणीक संसार मानताहै वा उभयका अन्योन्याभाव कारणीक संसार पक्षमानता है। अरु तिसके साथयह भी प्रष्टव्यहै कि कारण शब्दसे ब्रह्मका ग्रहणहै वा अज्ञान का ग्रहणहै ॥ हे सौम्य, इस प्रकार प्रश्न कियेजो कदापि वादीकहै कि कारण शब्दसे ब्रह्मका ग्रहण है, तो अधिष्ठान रूप ब्रह्मसे भिन्न असत्स्वभाव पदार्थों में ब्रह्म प्रतियोगिक भेद के अधिकरणता के असंभव से अरु निर्धमक भेद अलीक होने से ब्रह्म प्रतियोगिक भेद कारणीक संसार पक्ष संभवे नहीं। हे सौम्य तैसेही कारण शब्दसे अज्ञान के ग्रहण रूप द्वितीय पक्षमें भी पुनः वादी से प्रष्टव्य है कि अज्ञान प्रतियोगिक भेदका धर्म्मी ब्रह्म है वा अज्ञान है वा संसार है। तहां जो वादी प्रथम पक्ष कहै तो असंगरूप ब्रह्ममें अज्ञान

प्रतियोगिक भेद धर्म्मी ताके अभावसे समीचीन नहीं अन्यथा "असंगोह्ययं पुरुषः" इत्यादि, ब्रह्मकी असंगता प्रतिपादक श्रुतियों से विरोध होवेगा। अरु तैसेही द्वितीय पक्ष भी अभाव अरु प्रतियोगीका परस्पर विरोध होने से भेद अरु अज्ञान का धर्म धर्मी भावके अभाव से असंगत है, अन्यथा अभाव अरु प्रतियोगीका विरोध न होगा। अरु तृतीय पक्ष भी परिणामी उपादान कारण दुग्धसे भिन्न असत् दधिमें दुग्ध प्रतियोगिकभेदकी अधिकरणता जैसे संभवे नहीं, तैसे परिणामी उपादान कारण अज्ञान से भिन्न असत् संसार में अज्ञान प्रतियोगिक भेद अधिकरणता के असंभव से बने नहीं। तैसेही आद्य द्वितीय पक्षभी घटके भेद में घट जनकताके अभाववत् संसार के भेदमें संसारकी हेतुताका अभाव होने से अनादरणीय है॥ अरु वादी के अन्योन्याभाव कारणिक संसार पक्षके अन्तर कारण अरु कार्य इनदोनों का अन्योन्याभाव संसारका कारण है, यह तृतीय पक्ष है तिस तृतीय पक्षको जो कदापि वादी कहे तो उभयपक्ष गत उक्त प्रकार के दोषों के सद्भाव से सो भी अयुक्त है॥ किंच हे सौम्य जो कदापि अन्योन्याभावको संसार का कारण मानैं तो एक एक पदार्थ में समस्त पदार्थकी उत्पत्ति होनी चाहिये, क्योंकि भेद को ही अन्योन्याभाव कहतेहैं। हे प्रियदर्शन एक घट में अपने से भिन्न समस्त पदार्थों का भेद होने से घट से समस्त पदार्थों की उत्पत्तिहोनी चाहिये, अरु जो तथास्तु कहै तो समस्त लौकिक तथा वैदिक व्यवहार का अभाव होवेगा, क्योंकि अग्नि शीतकानिवारकहै जल शीतकानिवारक नहीं, तैसेही जलतापका निवारक है अग्नितापका निवारक नहीं। एतदर्थ शीतके नाशार्थ पुरुषकी अग्निके ग्रहण में प्रवृत्ति होवे है, जल के ग्रहणमें प्रवृत्ति नहीं, अरु तापके वा दाहके नाश निमित्त पुरुषकी जलके ग्रहण में प्रवृत्ति होवे, अग्निके ग्रहणमें प्रवृत्ति हो वे नहीं। यह लौकिक व्यवहार है, तिसका एक अग्निमें वा जलमें अपने से भिन्न

समस्त प्रतियोगिक अरु समस्त कार्य के जनक अन्योन्याभाव के सद्भाव से, अभाव होवेगा । हेसौम्य तैसेही स्वर्गसाधक यज्ञादि धर्म्म हिंसादि पाप नहीं, अरु नरक साधक हिंसादि पाप है यज्ञादिक धर्म्म नहीं, इस कारण से स्वर्गार्थी पुरुष यज्ञादिकधर्म करेहै हिंसादिक पापकरे नहीं, अरु अधर्म्मी पुरुष नरक का साधन हिंसादि पापकरे है यज्ञादिक धर्म्म करे नहीं, यह वैदिक व्यवहारहै, तिसका भी , एक धर्म्म में वा पापमें अपनेसे भिन्न समस्त प्रतियोगिक अरु समस्त कार्य्यका जनक अन्योन्याभाव के सद्भाव से, अभाव होवेगा । हे सौम्य इसरीति से लौकिक अरु वैदिक समस्त व्यवहार का विरोध एक पदार्थ में समस्त पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु जो अन्योन्याभाव कारणीक संसार वाद सो असंगत है ॥ अरु प्रागभावादि पक्षमें कहे जे शेषदोष सो इसपक्षमें भी अनुगत है अतएव यहां लिखे नहीं ॥ ४ ॥ हे प्रियदर्शन उक्त रीति से अभाव कारणीक संसारपक्ष के माननेवाले (अर्थात् आगे एक असत् था तिस असत्से यहसत्जगत् होता हुआ ऐसे माननेवाले) जे वैनाशिकादिक अभाव वादी तिनका मत चारों प्रकारके अभाववाद सहित खंडन हुआ ॥ हे सौम्य अब भाव से जगत्की उत्पत्ति माननेवाले जे भाववादी तिन भाववादियों ने परस्पर में खंडन किया है, तिसको भी सावधान होय संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥ इति अभावकारणीक संसारवाद खंडनम् ॥

अथ भाववाद कारणीक संसारपक्ष खंडनम् ॥

हेसौम्य,जैसे अभाव कारणीक संसारवाद पक्ष ,असंगत,असंभव, अप्रमाणहै, तैसेही भाववादकारणीक संसारपक्ष भी संभवे नहीं, क्योंकि इसभाववादमें नानामतहै । तहां कोई तो कालको संसारका कारणमानेहै, कोई स्वभावको संसारका कारणमाने है कोई नियतिकोसंसारका कारणमाने है, कोई इच्छाकोसंसारका कारण मानेहै, कोई पंचभूतों को संसारका कारण माने है, कोई

अज्ञानको संसारका कारण मानेहै, कोई ब्रह्मको संसारकाकारण मानेहै॥इसप्रकार भावकारणीक संसारपक्षमें अनेकवादहैं, तिन में प्रथम कालवादीका यह कथन है कि प्रथम स्त्रीके गर्भ स्थान में शुक्र शोणितका संयोग होताहै, तिसके अनन्तर कलिलादिक्रम से गर्भ पुष्ट होताहै, तिसके अनन्तर पुत्रादि उत्पन्न होते हैं,तिसके अनन्तर (पूर्वकृत) धर्म अधर्म के निमित्तसे होनेवाले सुख दुःख भोग पूर्वक बाल तरुण यौवन, आदि अवस्था कालके आधीन होती है। और विशेष क्या कहिये देखो समस्त संसार की उत्पत्ति तथा स्थित तथा विनाश, यह सर्व भूत, वर्त्तमान, अरु भविष्यत, कालमेंही होवे है अर्थात् कालसे बाह्य कुछभी होतानहीं, अतएव काल के आधीन संसार है ॥ १ ॥

हे सौम्य, इस कालवादीके मतमें स्वभाववादी दूषण कहे हैं, सो कालवादी से यह कहे है कि हे कालवादी तेराकाल 'स्वभाव निर्पेक्षहै वा स्वभाव सापेक्ष है, तहां जो प्रथम पक्ष कहै तो अनियत स्वभाव कालजन्य संसारको भी अनियत स्वभाव होनेसे 'वीर्यविनागर्भ, चक्षु विना रूप दर्शन, तथा वाणीविना भाषण, इत्यादि हुआ चाहिये, परन्तु वीर्यादिक विना गर्भादिक होते नहीं। अरु जो द्वितीय पक्षकहै तो दोष नहीं क्योंकि 'वीर्यका गर्भजनक, चक्षुका रूप दर्शन, वाणीका शब्दालाप, स्वभाव हैं। एतदर्थ अनियत स्वभाव संसार होवे नहीं ॥ इसरीति से काल के जनक स्वभावको संसारका कारण होनेसे कालकारणीक संसारपक्ष असंगत है ॥ इसप्रकार स्वभाववादी कालवादीके मत का खंडन करे है ॥ २ ॥

हे सौम्य, उक्त प्रकार के स्वभाववादीके मतविषे नियतीवादी दोषकहेहै, सो इसप्रकार कहेहै कि हे स्वभाववादी तेरास्वभाव नियती निर्पेक्षहै, वा नियती सापेक्षहै, तहां जो तू प्रथमपक्षकहै तो स्वभावको अदृष्ट निर्पेक्षहोनेसें पुण्यकरताकोदुःख अरु पापकारी को सुख हुआ चाहिये, सो होवे नहीं, किन्तु, पुण्यकारी पुरुष

को स्वर्गादि सुखलोक होवे है अरु पापकारी पुरुषको नरकादिक दुःखलोक होवे है । अरु जो कदापि द्वितीयपक्ष अंगीकारकरे कि स्वभाव नियती सापेक्षहै, तो पुण्यका फल सुख अरु पाप का फल दुःख होनेसे उक्त दोष नहीं । इसरीतिसे स्वभावकी जनक नियति को संसारका कारण होने से स्वभाव कारणीक संसार पक्ष असंगत है २ ॥

हे सौम्य अब उक्तप्रकार के नियतिवाद पक्षमें इच्छाकारणीक संसारपक्ष के माननेवाले, सो इसप्रकार कहे हैं कि हे नियतिवादी तेरी नियति इच्छा निर्पेक्ष है वा इच्छा सापेक्षहै, तहां जो प्रथमपक्ष कहे तो नियति व्यभिचारी होने से संभवे नहीं, तथाहि धर्म्मी पुरुषको दारिद्रता जन्य दुःख, अधर्म्मी पुरुषको सम्पदा जन्य सुख प्रतीति होवे है, तैसेही मुष्टिप्रहार रूप ताडना में दुःखकी जनकता लोक में प्रसिद्ध है, परन्तु मार्ग चलने के श्रमयुक्त पुरुषको वह मुष्टिप्रहाररूप ताडना सुखका साधन होवे है, इसरीति से व्यभिचारी नियति में संसार की कारणता संभवे नहीं । अरु जो द्वितीय इच्छासापेक्ष माने तो दोष नहीं, क्योंकि पूर्वजन्म में धर्म्माधर्म विषयिणी इच्छा हेतुक शुभाशुभ क्रिया से अदृष्ट अरु वासनारूप दो अंकुर उपजते हैं, अरु वर्त्तमान शरीरमें अधर्म्मी पुरुषको शुभक्रियाजन्य अदृष्टरूप अंकुर सम्पदा द्वारा सुखका हेतु होवे है, अरु अशुभक्रिया जन्य वासना रूप अंकुर अधर्म्म में प्रवृत्ति करावे है । तैसेही धर्म्मी पुरुषोंको वर्त्तमान शरीरमें अशुभ क्रिया जन्य अदृष्टरूप अंकुर दरिद्रतादि द्वारा दुःखका हेतु होवे है अरु शुभ क्रिया जन्य वासनारूप अंकुर धर्म्म में प्रवृत्ति करावे है । इसरीति से स्वजन्य शुभाशुभ क्रिया हेतुक धर्म्माधर्म वासनाद्वारा सुख दुःख प्रवृत्ति का हेतु इच्छा को होनेसे व्यभिचार नहीं । तैसेही मुष्टिप्रहाररूप ताडना यद्यपि दुःखका हेतुहै तथापि मार्गके चलने से परिश्रम युक्त पुरुषको तिसमें इच्छा होनेसे तिन पुरुषोंको वो ताडना दुःख

का हेतु नहीं किन्तु सुखका साधन है। इसरीत से नियती को इच्छासापेक्ष माने तो उक्त उदाहरणों में व्यभिचारका असंभव है अरु इच्छा निर्पेक्षमाने तो व्यभिचार का संभवहोने से नियतिजनक इच्छाही संसार का कारण है नियति नहीं, एतदर्थ नियति कारणीक संसार पक्ष भी असंगत है ४ ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार नियतिवादी के मतको खंडन कर्त्ता जे इच्छा वादी तिन के मतमें पंचभूत कारणीक संसारवादी दूषण कहताहै ॥ सो इस प्रकार कहताहै कि हे इच्छावादी तेरी इच्छा पंचभूत धर्मी निर्पेक्षहै वा सापेक्ष है, तहां जो प्रथमपक्ष कहै तो जैसे रूप आदिक धर्म घटादिक धर्मी निर्पेक्ष संभवे नहीं, तैसेही इच्छारूप धर्मको पंचभूतरूप धर्मी निर्पेक्षता का असंभवहोने से बने नहीं । अरु जो सापेक्षतारूप द्वितीय पक्षमाने तो इच्छा के जनक पंचभूतों कोही संसार जनकता के संभव से इच्छा कारणीक संसार पक्ष असंगतहै । अरु यद्यपि इच्छा अन्तःकरण का धर्म्म है पंचभूतों का धर्म नहीं,तथापि अन्तःकरण द्वारा पंचभूतों का धर्म्म संभवे है, क्योंकि घटका कारण साक्षात् मृत्तिका है अविद्या नहीं, तथापि मृत्तिका द्वारा अविद्याको कारण होनेसे " मृण्मयोघटः " इस व्यवहारवत् भौतिक इच्छा है यह व्यवहार भी होवे है (अर्थात् अपंचीकृतपंचमहाभूतों के सत्वगुण भाग का अन्तःकरण है तिस अन्तःकरण का धर्म्म इच्छा है, ताते इच्छा भौतिक है ऐसा व्यवहार बने है) इसरीति से इच्छा के जनक पंचभूतों को संसार का कारण होने से इच्छा कारणीक संसारपक्ष भी समीचीन नहीं ॥ इस प्रकार पंचभूतवादी इच्छा वाद का खंडन करे है ५ ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार पंचभूतवादियों ने इच्छावादी का खंडन किया,तब तिस पंचभूतवादी के मतमें अज्ञानवादी दूषण कहे है हे पंचभूतवादी तेरे पंचभूत अकार्य है वा कार्य है,तहां जो कदापि प्रथमपक्ष कहे तो पंचभूतों की उत्पत्तिका प्रतिपादक " एतस्मा-

द्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" यह श्रुतिवाक्य प्रमाणहै। तिस वाक्यसे विरोधहोवेगा ताते सो बनेनहीं॥ अर्थात् उक्त श्रुति का अर्थ इसप्रकारहै "एतस्मात्" कहिये ("ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" यहश्रुति "वा" सूत्र, करके प्रतिपाद्य ब्राह्मात्मा अरु पुनः "एतस्मात् आत्मनः" कहिये "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म" इस मन्त्र प्रतिपाद्य ब्रह्मात्मा, से "आकाशःसंभूतः" आकाशउपजताहै। यह श्रुत्यर्थ है॥ हे वादी जो तू द्वितीय पक्ष कहै कि पञ्चभूत कार्य हैं, तो तिस पक्षमेंभी कार्य रूप पञ्चभूतों में समस्त वस्तुकी जनकता का अभाव होने से, अरु भूतोंका जनक अज्ञानको होने से पंच-भूत का कारणीक संसार पक्ष भी असंगतहै॥ ६॥

हे सौम्य उक्त प्रकार अज्ञान वादीने पंचभूत वादी का मत खंडन किया, तब ब्रह्मवादी उसको यह कहता हुआ कि उक्त श्रुतितो उक्त अर्थ प्रमाण ब्रह्म आत्मा को पंचभूतों का कारण कहे है अज्ञान में पंचभूतनकी कारणता कहे नहीं, ताते अज्ञान कारणीक संसार पक्ष संभवे नहीं॥ हे सौम्य यद्यपि वेदान्त शा-स्त्रमें अज्ञान को जगत् का कारण मान्या है सो अज्ञात जिज्ञासु की दृष्टि से मान्या है वास्तव से नहीं। इसप्रकार ब्रह्म कार-णिक संसार वादी अज्ञानवादी का खंडनकरे है॥ ७॥

हे सौम्य इन कालादिक भाव वादियोंके पक्षमें ब्रह्म कार-णीक संसार वाद सप्तम पक्ष है सो सर्व श्रुतियों के प्रमाण से है। परन्तु उन सर्व श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टि के कहने का नहीं, किन्तु सर्व श्रुतियोंका अद्वैत पर तात्पर्य है, जो कदापि श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टिके कहने पर होता तो श्रुतियां भिन्न भिन्न रीति से न कहतीं, क्योंकि जो श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टि क्रममें होता तो सर्व की एक वाक्यता होती सो नहीं। देखो बृहदारण्यक उप-निषद् बिषे "अव्याकृत वा इदमग्र आसीत्" इस श्रुति करके अव्याकृत पद वाच्य ब्रह्म से, अरु छान्दोग्यउपनिषद् बिषे "सदेव सौम्येदमग्रआसीत्" इस श्रुति करके सत् पद वाच्य

ब्रह्म से। अरु तैतरेयउपनिषद् बिषे "एतस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" इस श्रुति करके आत्मपद वाची ब्रह्म से। अरु ऐतरेय उपनिषद् बिषे "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" इस श्रुति करके आत्म पद वाची ब्रह्म से अरु मुंडक उपनिषद् बिषे "तथाऽक्षरात् संभवतीह विश्वं" इसश्रुतिकरके अक्षरपदवाची ब्रह्म से अरु श्वेताश्वतर उपनिषद् बिषे इसश्रुति करके मायि पदवाच्य से, इत्यादि प्रकार अनेक उपनिषदोंकी श्रुतियोंने अनेकनामोंसे नामी एक ब्रह्मसेही जगदुत्पत्ति भिन्न भिन्न रीतिसे कहीहै। सो उन सर्व श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टि के कथनपर नहीं किन्तु नैयायिक आदि भेद वादियों करके परिकल्पित परमाणु प्रधानादिक कारण वादके निराकरण पूर्वक घटादि कार्य अरु मृत्तिकादि कारण के दृष्टान्त से ब्रह्म जगत् की अभेदता के लखावने में सर्व श्रुतियों का तात्पर्यहै, सृष्टिके कहने में तात्पर्य नहीं। अरु जो कदापि आग्रहसे उक्त श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टि के बोधन मेंही मानोगे तो "नेहनानास्ति किञ्चन" इत्यादिअद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों से विरोध आवेगा। अरु "सर्वंखल्विदंब्रह्म" इत्यादि एक ब्रह्म बोधक श्रुतियों से भी विरोध आवेगा एतदर्थ सर्व सृष्टि वाद की श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टि के कथन में न होके एक अद्वैत ब्रह्म आदिक पदवाच्य सत्तासमान के बोधन परत्वहै। अरु यही पक्ष निर्दोष समीचीनहै॥ अरु अन्य श्रुतियों ने ब्रह्म को जगत् कारणत्वका निषेधभी कियाहै, ताते ब्रह्म जगत् का उपादानकारण नहीं अरु निमित्तकारण भी नहीं। अरु जो मान्या है तो अधिष्ठानमान्या है सो भी सृष्टिभासके उत्तर जिज्ञासु की भ्रान्ति निवृत्तकरने पूर्वक एक अद्वैत सत्ता उपदेशकरने को अध्यारोपमात्रकहाहै। सृष्टि भासकेपूर्व, कल्पक कल्पनाकल्पित के अभाव से एक अद्वैत निराकार निर्विशेष परिपूर्ण शुद्ध बुद्ध सत्ता समान बिषे जगत् अध्यारोपमात्रभी नहीं, ताते भाव वादान्तर ब्रह्म कारणीक संसार पक्षभी समीचीन नहीं। हे सौम्य

उक्त प्रकार सिद्धान्त विचार से संसार का कारण न प्रागभावहै, न प्रध्वंसाभाव है, न अत्यन्ताभाव है न अन्योन्याभाव है । अर्थात् उन चारों पक्षों सहित अभाव कारणीक भी संसार नहीं। अरु भाववाद बिषे जगत् का कारण न कालहै, न स्वभावहै, न नियतिहै, न इच्छाहै, न पंचभूत हैं, न अज्ञानहै न ब्रह्म है। ताते कारण बिना का समस्तद्वैत प्रपंचवंध्याके सुतसामान केवल वाचारंभणमात्रहोनेसे अतिहीतुच्छहै ॥ हे सौम्य यह जो भाव वाद बिषे काल वादादिक कहे हैं सो यहां उन की रीति देखावने मात्र संक्षेप से कहाहै ॥

प्रकारान्तर अर्थ ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जबउद्दालकने अपनेपुत्रश्वेतकेतुप्रति इस समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत्का कारण एक अद्वैत सत्यरूप आत्मा कहा,तब तिसको श्रवणकर वो श्वेतकेतु कहताहुआ ॥ हे भगवन् सो कोई एक वैनाशिक असतुवादी ऐसा कहते हैं कि यह सर्व अपनी उत्पत्ति से पूर्व असत्ही था तिस असत् से सत् उत्पन्न होताहुआ ॥ ताते तिस सतरूप आत्मा बिषे कार्य्यपना है, इसप्रकार जब श्वेतकेतु ने अपने पिता उद्दालकसे असत् वादी का पक्षकहा तब वो उद्दालक कहताहुआ कि हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु ऐसा कहां प्रमाणहै अरु कौन दृष्टान्तहै जो इसप्रकार असत्से सत्की उत्पत्तिहोती है,हे सौम्य असत्से सत्की उत्पत्ति कैसे होवेगी किन्तु कदापि होवे नहीं, जैसे अभाव असत् रूप शशश्रृंग तिससे भावरूप सत् मनुष कैसे उत्पन्नहोवेगा किन्तु कदापि होवे नहीं ॥ हे सौम्य इसलोकबिषे सत्यरूपकरके प्रसिद्ध जे घट पटादि कार्य्य सो मृत्तिका तन्तु आदिक सत्यरूप कारणों सेही उत्पन्न होताहै, असत्से तो सत्की उत्पत्ति कहीं भी देखने बिषे आई नहीं, तिसबिषे दृष्टान्त भी कोई नहीं । अरु यह आत्मदेव सर्व लोकोंके अनुभव करके तथा श्रुति स्मृति आदिक शास्त्रकरके सत्यरूप करके ही प्रतीतहोवे है अतएव तिस सत्यरूप

आत्माकी असत्‌रूप कारणसे उत्पत्तिहोवे नहीं। अरु जो कदापि सत्‌रूप आत्माकी असत्यरूप कारणसे उत्पत्तिमाने तो सो आत्माभी करणवत् असत्‌ही होवेगा, सो आत्मा को असत् कहना श्रुति अरु विद्वानोंके अनुभवसे अत्यन्तही विरुद्धहै॥ अथवा॥ "इस आत्माका कारण असत्‌रूपहै" इस वाक्य बिषे स्थित जो असत् शब्दहै तिस शब्दका अर्थ सत् वस्तुका अभाव प्रतीत करावताहै, अरु इसलोकबिषे जो जो अभावहोताहै सो सो अपने ज्ञानबिषे प्रतियोगी की अपेक्षा अवश्य करता है क्योंकि प्रतियोगी ज्ञानसे विना अभावका ज्ञानहोवे नहीं। एतदर्थ तिस सत्‌का अभाव रूप असत्‌भी अपनी सिद्धिके अर्थ सत्‌रूप प्रतियोगी की अपेक्षा अवश्यही करेगा, एतदर्थ तिस सत् वस्तु बिषेही आत्मा की कारणता संभवहोने योग्यहै, तिस सत् वस्तुके अभावबिषे आत्माकी कारणता माननी असंभव अरु निष्फलहै॥ अथवा॥ इसलोक बिषे कोई भी अभाव किसी भी कार्य्य के प्रति कारण होनेको शक्य नहीं। ताते सत् आत्माका कारण असत् है यह कहना किसीप्रकार भी योग्य नहीं, क्योंकि इस विषय में कोई भी श्रुतिका प्रमाण नहीं अरु दृष्टांतभी नहीं॥ हे सौम्य हे प्रियदर्शन जो कोई वादी ऐसा कहै कि आत्मा का कारण असत् न होके तिस आत्माका कारण सत्यहै। तो तिस वादी से प्रष्टव्य है कि सो जो आत्माका सत्यरूप कारण है सो परिच्छिन्न है, वा अपरिच्छिन्नहै, तहां जो कदापि वादी प्रथमपक्ष को अंगीकार करके कहै कि सो आत्माका कारण परिच्छिन्न है सो सम्भवे नहीं, क्योंकि इसलोक बिषे जो जो पदार्थ परिच्छिन्न होता है सो सो पदार्थ जड़ही होताहै, अरु जो जो पदार्थ जड़ होताहै सो सो पदार्थ कार्य्य रूपही होता है, अरु जो पदार्थ कार्य्य रूप होता है सो पदार्थ अपनी उत्पत्ति बिषे अन्य कारण की अपेक्षावाला ही होता है। ताते सो आत्मा का सत्यरूप कारण भी परिच्छिन्न होने से जड़ रूप होवेगा, जैसे घटादिक पदार्थ परिच्छिन्न होने

से जड़रूप हैं, अरु जड़ होने से कार्य रूप हैं, अरु कार्य होने से
कारण की अपेक्षावाले हैं। तैसेही आत्मा का सत्रूप कारण
भी परिच्छिन्न होने से जड़रूप होगा अरु जड़रूप होने से कार्य्य
रूप भी होवेगा, अरु जब कार्य्य रूप होवेगा तो अपनी उत्पत्ति
के अर्थ अन्यकिसी कारण की अवश्य अपेक्षावाला होवेगा॥
अरु सो कारण भी अपनी उत्पत्ति बिषे अन्य किसी कारण की
अपेक्षावाला होवेगा, इस प्रकार कारणों की परम्परा मानने
बिषे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होवेगी, तब तिस अनवस्था दोषके
निवारणार्थ सो आत्मा का सत्यरूप कारण चैतन्य रूप तथाअ-
परिच्छिन्नहै यह द्वितीयपक्षही वादीने अंगीकार करना होगा।
अरु तिस द्वितीयपक्ष बिषे भी प्रष्टव्य है कि सो आत्मा का चै-
तन्य सत्तारूप अपरिच्छिन्न कारण आत्मा से भिन्न है वा अभिन्न
है। तहां जो वादी यदि प्रथमपक्ष कहै तो सो बने नहीं, क्योंकि
इसलोक बिषे जो जो पदार्थ आत्मा से भिन्न होता है सो सो
सर्व अनात्मा होने से जड़ही होता है, अरु जो जो पदार्थ जड़
होताहै सो सो अनात्मा जड़होने से कार्यरूप होता है, अरु
जो पदार्थ कार्य्य रूपहोता है सो किसी कारण करके जन्य हो-
ता है। अतएव सो आत्मा का कारण चैतन्य सत्ता आत्मा से
भिन्न होने करके पूर्वोक्त परम्परा से कार्य रूपभी अवश्य होवेगा
अरु कार्य्यरूप होने से किसी कारण करके जन्य भी अवश्य
होवेगा, अरु वो जिसकारण करके जन्य होगा सो कारण भी
किसी अन्य कारण करके जन्यहोगा। क्योंकि जो पदार्थ चैतन्य
आत्मासे भिन्नहोगा सो, अनात्मता, जड़ता, साकारता, परि-
च्छिन्नता, इत्यादि कार्य्यों के धर्म्म लक्षण करके युक्तहोने से सो
किसी कारण का कार्य्य अवश्यहोगा, कार्य्य के लक्षण युक्त
होनेसे। अरु जो कदापि वो नैयायिकों के मत प्रमाण परमाणु-
ओंवत् अन्यवस्तुका कारणभी होवेगा, जैसे परमाणु पृथिव्यादि-
कों के, तथापि वो कारण चैतन्य आत्मा से पृथक् हुआ अनात्म

तादि उक्त लक्षणों करके जो कार्य के हैं, युक्त होने से अपनीसिद्धिके अर्थ चैतन्यरूप कारणकी अपेक्षा अवश्यही करेगा। ताते चैतन्य आत्मासे भिन्न जो आत्माका कारण मान्याजायगा सो अनात्मा जड होनेसे उक्त कार्य के लक्षण करके युक्तहुआ किसी कारण करके जन्यही होगा। इसप्रकार कारणों की परम्परामानने बिषे पुनः पूर्ववत् अनवस्थादोष आवेगा, तिस अनवस्थादोषकी निवृत्ति के अर्थ तिस आत्माके सत्तारूप कारणको वादीने आत्म चैतन्य रूप करकेही मानना होगा॥, अर्थात् आत्मासे पृथक् आत्माका कारण जिस सत्ताको वादीने मान्या है सो सत्ता आत्मासे भिन्न अनात्मा होनेसे 'क्योंकि जो चैतन्य आत्मा से भिन्न होगा सो जड अनात्मा अवश्यही होगा, उक्त कार्यके लक्षण करके युक्तहुआ वो अपनी सिद्धि के अर्थ अपनेसे इतर किसी चैतन्य आत्मरूप कारण की अपेक्षावाला अवश्यही होवेगा॥ अरु जो अनात्मासे इतर चैतन्य आत्मा होगा सो अनात्माके ,जडत्व, साकारत्व, परिच्छिन्नत्वादि धर्मोंसे विपरीत ,चैतनत्व, निराकारत्व, अपरिच्छिन्नत्व आदि आत्माके लक्षण करके युक्त ही होगा, अरु जो आत्मा ,सत्यत्व, चैतन्यत्व, आनन्दत्व,अद्वितीयत्व, आदि स्वरूप लक्षणों करके युक्त होगा सो कारण से रहितही होवेगा, क्योंकि जो कारण की अपेक्षावाला होगा सो सत्य कदापि न होगा। ताते हे सौम्य वादीने जो आत्माकाकारण कोई सत्तामानी है सो तिस सत्ताको आत्मा से भिन्न अनात्मा होने से प्राप्त हुई जो जडतादि धर्मवान् कार्यता, अरु अनवस्थादि दोष तिसकी निवृत्तिके अर्थ उस सत्ताको चैतन्य आत्मरूपही माननाहोगा, आनन्दरूपमानना होगा, सर्व्व भेद भावसे रहित अपरिच्छिन्नही मानना होगा, अरु कारण से रहित अकारण माननाहोगा॥ हे सौम्य " सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म " इत्यादि श्रुति प्रमाण अरु उक्त युक्तियोंके प्रमाण से जबही उस वादी ने आत्मरूप सत्ताको आत्माका कारण मान्या तबही तिस

आत्मसत्ता रूप कारण से भिन्न किसी भी कार्य्य बिषे तो आत्म-
रूपता संभवे नहीं । एतदर्थ वादीने आत्माका कारण जिस सत्ता
रूपको अंगीकार किया है, तिस सत्तारूप कारणकोही हम वेद
सिद्धान्त के माननेवाले वेदान्ती आत्मरूपकरकेही मानते हैं ।
एतदर्थ यहां यह अर्थ सिद्धहुआ जो यह आत्मदेव सत् वा असत्,
भाव वा अभाव, किसी भी कारणकरके उत्पन्न होता नहीं, एत-
दर्थ ही कार्य्यभावको कदापि पावता नहीं, अरु जब ऐसाहै तब
ही वेद की श्रुतियां " अजोनित्यःशाश्वतोयंपुराणो " इत्यादि
वाक्यों से, अज अविनाशी नित्य शाश्वत एकरस, अग्निआदि
सर्व कारणों का अधिष्ठानरूप महाकारण सर्वका प्रकाशक ज्ञान-
स्वरूप सर्व भेदसे रहित एक अद्वितीय कहती है । अरु इस आत्म
देव को इस छान्दोग्यउपनिषद् की श्रुति " सदेव " सत्ही,
कहके प्रति पादन करे है । अतएव हे सौम्य हे प्रियदर्शन जो मत-
वादी कहतेहैं कि असत् से सत् उत्पन्नहोता है तिनको उक्त
प्रकार असत् वादीही जानने वो भाव अभाववादी वेद से बाह्य
स्वबुद्धि की कल्पना से कहते हैं, ताते उन सर्व असत् वादियों
के वाक्य तुमसारिखे वेद मतावलम्बियों को मानने योग्य नहीं ॥
इतिसिद्धम् ॥

इतिआत्मकार्यता निराकरणम् ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार कहने करके वेदसे बाह्य बोलनेवाले जे वै-
शेषिकादिपरमाणुवादीअरुवैनाशिकादि अभाववादी अरुकाला-
दिकोंकोकारण माननेवाले भाववादी, इत्यादि वादियों के मतका
निराकरणहुआ जानना, अरु उनके वाक्योंको न मानना ॥ हे
सौम्य वैनाशिक जे अभाव कारणीक संसार मानते हैं तिनसे प्र-
श्नयहै कि तुम जो कहतेहो कि असत्से सत्होताहै तिस तुम्हारे
कहने बिषे ऐसा कहां प्रमाणहै अरु कौन दृष्टान्तहै कि इस प्रमाण
से अरु इसप्रकार असत्से सत्उत्पन्न होताहै । अर्थात् उन असत्
वादियोंके वाक्यबिषे कोई भी श्रुतिकाप्रमाण वा दृष्टान्त नहीं ॥

श्वेतकेतुउवाच॥ हे भगवन् वो वादी अपने मतको प्रमाण होने के विषयमें बीजांकुर का दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे बीजके अभाव हुए अंकुर उपजता है तैसेही अभाव कारणसे भावरूप यह जगत् उपजता है॥उद्दालकउवाच॥हे सौम्य यह उनका दृष्टान्त कथन बने नहीं क्योंकि अंकुरकी उत्पत्तिमें बीजका कोई भी अवयव वा अंशका अभाव होता नहीं किन्तु बीजके सर्व अवयवों के होतेही अंकुर उपजता है, यह सर्वको प्रत्यक्ष है, अतएव उक्त दृष्टान्त भी अभाववादी के मतमें अयुक्तही है। अरु इन अभाववादी अरु भाववादियों के वाक्योंका निराकरण पूर्व सम्यक् प्रकार कहचुके हैं अतएव यहां विशेष कहानहीं। अरु बीजके अभावहुए अंकुर उपजता है सो उक्तप्रकार युक्तनहीं, अरु पूर्व जहां प्रध्वंसाभाव कारणिक संसारपक्षका खंडनहुआ है तिसके अन्तरगत इसका भी खंडनहुआ जानलेना॥ हे शिष्य उक्तप्रकार असत्वादी आदिक वेद बाह्य मतवादियों के मतका सम्यक् प्रकार निराकरण कर पुनः वो उद्दालकऋषि अपने पुत्रश्वेतकेतु से "सत्वेवसौम्येद मग्रआसीत् एकमेवाद्वितीयम्" हे सौम्य यह आगे एक अद्वितीय सत्ही था, यह कहके वेदपक्षही सिद्ध करताहुआ॥

शंका॥ श्वेतकेतुउवाच॥ हे भगवन् वादी कहता है कि जैसे असत्वादी के मतबिषे कोई दृष्टान्त नहीं, तैसे सत्वादी के पक्ष बिषे भी सत्से सत्की उत्पत्ति होती है ऐसा कोई भी दृष्टान्त है नहीं, क्योंकि घटसे घटान्तरकी उत्पत्ति देखतेनहीं॥ समाधान॥ हे सौम्य यह तू सत्यकहताहै सत्से सदन्तर 'अर्थात्एकसत्से दूसरा सत्, उत्पन्नहोता नहीं॥प्रश्न॥ तब क्याहै॥उत्तर॥ हेसौम्यसत्ही संस्थानान्तर से सुशोभित है। जैसे सर्प कुंडलीके आकार होताहै व वक्राकार होता है वा सरलाकार होता है, तहां जिस आकारसे होता है तिस आकार से एक सर्पही होता है, अर्थात् सर्प का जो कुण्डली के आकार से वक्राकार होना है सो कुछ उस वक्राकार से सर्प का उपजना नहीं, किन्तु जिस आकारसे

है एक सर्पही है । अथवा जैसे, चूर्ण, पिंड, कपाल, घट, शराव आदिक आकार भेद से एक मृत्तिकाहीहै ॥ शंका ॥ हे भगवन् यदि ऐसाही है कि एक सत्ही सर्व प्रकार से अवस्थित है, तो ऐसा क्यों कहाहै कि यह अपनी उत्पत्तिसे पूर्व सत्था ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य तुमने सुना नहीं यह जो कहाहै कि यह अपनी उत्पत्ति से पूर्व सत्ही था, सो इस इदंशब्दके वाच्य कार्य्यको (जो असत्वत् प्रतीत होता है) यह सत्ही है इस निश्चय के अर्थ कहा है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् तब यह कारणही है इदंशब्द का वाच कार्य्य नहीं, कार्य्य जो उत्पत्ति से पूर्व न था अब उत्पन्न हुआ कार्य्य असत् है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जो तुम कहतेहो सो नहीं यह जो इदंप्रत्यय का विषयनाम रूपात्मक जगत् है सो एक सत्ही इस प्रकार से सुशोभित है, जैसे एक मृत्तिकाही इदं शब्दका वाच्य पिंड घट शरावादि इदंबुद्धिका विषय होके सुशोभित है तैसे ॥

शंका ॥ हे भगवन् यद्यपि जैसे मृद्वस्तुही पिण्ड घटादि आकार है, तथापि सद्बुद्धि से विलक्षण बुद्धिका विषय होनेसे कार्य्यको कारण से भेद के साधक होनेमें सद्बुद्धि से विलक्षण जो कार्य्य को विषय करनेवाली बुद्धि सोई दृष्टान्त है । तैसेही सद्बुद्धिसे विलक्षण जेइदंबुद्धि तिस बुद्धिका विषय होनेसे इस इदं बुद्धिके विषय कार्य्यका सत्से अन्यवस्त्वन्तर है। इसप्रकार कार्य्यजातका सत्से भेद सिद्ध होता है, जैसे अश्व से गौका॥ समाधान॥ हे सौम्य जैसा तू कहताहै तैसा नहीं, पिंड घट शराव आदिकों का अन्योन्य व्यभिचार है । अर्थात् जो घट पिंड शब्द का विषय है सो घट शब्दका विषय नहीं अरु जो शब्दका विषय है सो शराव शब्दका विषय नहीं अरु जो शराव शब्दका विषय है सो घट शब्दका विषय नहीं अरु जो घट शब्दका विषय है सो पिण्ड शब्द का विषय नहीं । इस प्रकार पिण्ड घटादि कार्य्यों बिषे परस्पर में व्यभिचार है, तथापि उन घट शरावादि

तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज एक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत ॥ तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥

सर्व में मृत्तिका का अव्यभिचार होने से कारण रूप एक मृत्तिका बिषे उनका व्यभिचार नहीं क्योंकि उन सर्व का कारण अव्यभिचारी मृत्तिका एक है ताते। हे सौम्य यद्यपि, पिण्ड, घट, आदि नाम रूपका व्यभिचार है कि यह पिण्ड है यह घट है, परन्तु उन पिण्ड घटादिकों से मृत्तिका का व्यभिचार नहीं, ताते एक अव्यभिचारी मृत्तिका ही घट शरावादि व्यभिचारी रूप से सुशोभित है। अरु एक कारण रूप सत्य मृत्तिका बिषे पिण्ड घट शराव आदि व्यभिचार भासे है सो उन सर्व कीमृत्तिका से पृथक् सत्ताके अभावसे वो केवल वाचारंभण मात्रही है। ताते हे प्रियदर्शन घट शरावादि वा कटक कुंडलादि वा खड्गादि, सर्व मृत्तिका वा सुवर्ण वा लोहमात्रही है। तैसेही यह सर्व नाम रूप क्रियात्मक जगत् अपनी उत्पत्ति से पूर्व केवल सत् संस्थान मात्रही है। सोई "। सदेव इदमग्रआसीत् ।" यह श्रुतिका कथन है। अरु इस कार्य्यरूप विकार को वाचारंभणमात्र होने से इस वर्त्तमान कालमेंभी सत्‌ही है ॥:—हे प्रियदर्शन यहां पर्यन्त चतुर्थ प्रपाठक की "। सर्व्वंखल्विदंब्रह्म ।" इस श्रुतिका संक्षेप मात्र निर्णय हुआ जानना ॥

हे सौम्य अब आगे सृष्टि क्रम का अध्यारोप करके सत् के अन्वय द्वारा इस कार्य कारणात्मक समस्त प्रंपचको ब्रह्म रूपत्व लखावती श्रुति कहती है—:॥ २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो देखता (वा इच्छता) हुआ मैं बहुत रूपसे उत्पन्न होवों इसप्रकार इच्छाकरके प्रथम तेजको सृजताहुआ, पुनः सो तेज

देखता वा इच्छताहुआ जो मैं बहुतरूप होवों तिस इच्छासे जलको सृजताहुआ, तस्मात् यहां क्या शोचताहै जब पुरुष को उष्ण (गरमी) अधिक होतीहै तब तिस तेजसे स्वेदरूप जल प्रकट होताहै, तैसे तेजसे जल होताहै ॥ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य हे प्रिय दर्शन, " वाचारंभणंविकारोनामधेयंमृत्तिकेत्येवसत्यम् " घट शराव आदिक वाणी से कहा विकार (कार्य्य) केवल कहनेमात्रही है वास्तव से तो एक मृत्तिकाही सत्य है । इस दृष्टान्त प्रमाण " सदेव सत्यम् " यह नाम रूप क्रियात्मक जगत्‌रूप विकार (कार्य) उस सत् कारण अधिष्ठान बिषे केवल वाचारंभणमात्रही है, वास्तव से तो एक अद्वितीय सत्‌ही है ॥ हे सौम्य सो सत् देखता वा इच्छताहुआ अर्थात् देखता वा इच्छा करताहुआ । हे सौम्य इस ईक्षणकी श्रुति करके सांख्यवादियों करके परिकल्पित जे जगत्‌का कारण प्रधान तिस प्रधानवादका निराकरण हुआ जानना क्योंकि सांख्यवादियोंने जगत्‌के कारण प्रधानको अचेतन (जड) अंगीकार किया है ताते, अर्थात् सत् चेतनसे इतर प्रधानको जड होनेसे तिस बिषे "ईक्षण" देखना वा इच्छाकरना बने नहीं, अरु श्रुतिने " तदैक्षत " इसप्रकार ईक्षण पूर्वक सृष्टि कहीहै अतएव सांख्यमत श्रुति बाह्यहोनेसे समीचीन नहीं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् वो सत् चेतन क्या इच्छा करता हुआ ॥ उत्तर ॥ हेसौम्य वो सत्‌चेतन परमात्मा यह इच्छा करताहुआ कि मैं प्रकर्षकरके बहुत रूप होवों जैसे मृत्तिका घट शरावादि आकार से वा जैसे रज्जु सर्पके आकार से वा जैसे शुक्ति रजतके आकार से, प्रकट होते हैं तैसे प्रकट होवों । अर्थात् जैसे रज्जुआदिकों बिषे सर्पादिक केवल बुद्धि करके कल्पित हैं वास्तव से नहीं, तैसेही एक अद्वैत परिपूर्ण सत् परमात्मा बिषे यह नामरूप क्रियात्मक सर्व जगत् बुद्धिकरके परिकल्पितहै वास्तवसे नहीं ॥

शंका॥ हे भगवन् जो ऐसाही है तो जैसे सर्पादिकों के आकार से रज्जुआदिकों का ग्रहण असत् है तैसेही सत् चैतन्यदेव का नामरूपादि आकार से ग्रहण असत् हुआ अरु आपका कहना यह है कि यह नामरूप क्रियात्मक समस्त जगत् सर्वकाल सत्ही है, अब यहां क्या जानना चाहिये ॥ उत्तर॥ हे सौम्य मेरा कथन यथार्थही है। हे प्रियदर्शन अविद्या करके द्वैत भेद से अन्यथा ग्रहणहुए भी सत्ही है असत् तो कचित् कदाचित् भी है नहीं, जैसे भ्रान्तिकरके रज्जुको सर्परूप से ग्रहण किये सन्ते भी सर्प सत्ताके अभाव से केवल रज्जुकाही ग्रहण है इतरका ग्रहण तो कचित् कदाचित् भी होवे नहीं द्वैत के अभाव से॥

हे सौम्य जैसे नैयायिक सत् से इतर वस्त्वन्तर की कल्पना करके पुनः तिसहीको उत्पत्तिसे पूर्व पुनः प्रध्वंस से ऊर्ध्व (उपरान्त) असत् कहते हैं, तैसे हम वेद वादियोंकर करके कदाचित् कचित् भी सत् से इतर अभिधान अभिधेय वा वस्तु करके परिकल्पना करते नहीं, सत्ही तो सर्व अभिधान को कहते हैं। अरु जैसे लोकबिषे जो अन्यबुद्धि करके 'जैसे कि रज्जुही सर्प बुद्धि करके कि यह सर्प है ऐसा कहते हैं, अथवा जैसे, पिण्ड, घट, शराव, आदि बुद्धिकरके एक मृत्तिका कोही कहते हैं वा ग्रहण करते हैं कियह मृत्पिण्डहै यह घटहै यह शरावाहै। अर्थात् लोक बिषे रज्जु मृत्तिका के अविवेक से रज्जु मृत्तिकाकोही सर्प घटादि बुद्धिसे ग्रहण करके कहते हैं कि यह सर्प है यह घट है यह शराव है, सो केवल रज्जु मृत्तिकाकोही कहते हैं। अरु जैसे रज्जु मृत्तिकाकेविवेक दर्शीकोतो सर्पादि अभिधान(कथन) बुद्धिनिवृत्तहोती है पुनः मृत् विवेक बुद्धिवालेको घटादि शब्दके विषय करनेवाली बुद्धि निवृत्त होती है॥:— अर्थात् जिन पुरुषोंको रज्जु मृत्तिकाका यथार्थविवेक ज्ञानहोता है तिनकीघटसर्पादिक विषयक 'जोकेवल कहनेमात्रही हैं, सत्बुद्धिनिवृत्त होती है, अर्थात्उनविवेकीपुरुषों की, उस अज्ञात बुद्धिकरके कल्पित जे घटादिक तिनकी पृथक्

सत्तात्मक बुद्धि सो तिन सर्प घटादिकोंके अधिष्ठान रज्जुमृत्तिका के यथार्थ विवेकज्ञानसे, निवृत्तहोती है। तैसेही सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यके यथार्थ विवेक ज्ञानवान् पुरुषकी सत्से इतर यह नाम रूप क्रियात्मक जगत् कुछ है यह अबिबेकात्मक बुद्धि नित्यहोती है "। यतोवाचोनिवर्त्तन्तेऽप्राप्यमनसासह "। "। अनिरुक्तेऽनिलयन "। इत्यादि श्रुतियों करके –ः ॥ हे सौम्य इसप्रकार इच्छा करके सो सत् परमात्मा प्रथम तेजको सृजताहुआ ॥ः–॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इच्छाकरना तो अन्तःकरण वा मन आदिकोंका धर्म्म है सो अन्तःकरणादिक शुद्ध सत् चैतन्य देवबिषे है नहीं तब उस सत् चैतन्य देवने इच्छा कैसे किया सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य अब इसपर एकदृष्टान्त कहते हैं तिसको श्रवण करो हे सौम्यजैसे चिदाभास अंधकारको पायके सोवनेकी इच्छा करता है तब इस जाग्रत्के प्रपंचको त्यागसोयाहुआ स्वप्नमें देहादिकसे लेके सर्व प्रपंचको रचलेता है तिसबिषे मन बुद्धि इन्द्रियादिक सर्व रचलेता है सो किसी अन्यमनबुद्धि आदिकों करके नहीं रचता किंतु अपने चैतन्य स्वभाव करके रचता है क्योंकि स्वप्न सृष्टिके रचनेबिषे चिदाभास स्वतन्त्र है वहां किसी की भी सहायताके आश्रय रचता नहीं। हे सौम्य जैसे पृथिवी का स्वभाव कठोर है, जलका स्वभाव द्रवता है, अग्निका स्वभाव उष्णता है वायुका स्वभाव स्पंदता है, आकाशका स्वभाव अवकाशता है। तैसेही सत् परमात्माका चैतन्य स्वभाव है । हे प्रियदर्शन जैसे पृथिवी कठोर स्वभाव होके सर्वको धारती है तैसेही सत् परमात्मा चैतन्य स्वभाव करके इच्छा करताहुआ । हे सौम्य जैसे पृथिवी को सृष्टिके धारणेबिषे किसीकी भी सहायता चाहिये नहीं, अरु जो उसको जड़होने से सहायता आपेक्षिक है तो सो सर्व शक्तिमान् चैतन्यकीही है। परन्तु उस चैतन्यदेवको इच्छा के करने बिषे किसी की भी सहायता आपेक्षिक नहीं वो सर्व शक्तिमान् सदा स्वतन्त्रहै ॥ हे प्रियदर्शन तुमने कहा जो इच्छा

करना तो अन्तःकरण का धर्महै सो अस्तु परन्तु इच्छादिक करने में अन्तःकरण स्वतन्त्र नहीं क्योंकि अन्तःकरण अविद्याका कार्य जड़है, अरु जड़में ईक्षण बने नहीं। अरु इसही हेतुसे जड़ प्रधानमें ईक्षणके असंभवसे तिसबिषे ईक्षणके माननेवाले सांख्यमतका वेदवादी(वेदान्ती)खंडनकरतेहैं। हे सौम्य जिससत् चेतनके आभासकी चेतनतारूप सहायता पाय के अन्तःकरण वा मन बुद्धि आदिक चेतनवत् हुए अपनेअपने व्यापारमें प्रवृत्त होते हैं, तिस स्वयं सत् चैतन्यदेवको बुद्धि आदिक जड़ों की सहायता कैसे आपेक्षिक होवेगी किन्तु किसी प्रकार भी होवे नहीं। वो शुद्धसत् चैतन्यदेव अन्तःकरणादि सर्व उपाधि अरु तिनके धर्मरूप अंजन (श्यामता) से रहित निरंजनहै उसबिषे अन्तःकरणादि कुछ भी नहीं वो सर्व से विलक्षण चैतन्य स्वभाव होनेसे विनाही अन्तःकरणादि करणोंकी अपेक्षाके स्वतंत्र ईक्षण करता हुआ॥ प्रश्न॥ हे भगवन् जो कोई इच्छा करता है सो किसी न किसी कामना को धारकेही करताहै, ताते उस सत् चैतन्यदेव ने जो बहुत होनेकी इच्छा किया सो किस कामनाको लेके किया सो भी आप कृपा करके कहिये॥ उत्तर॥ हे प्रियदर्शन यह जो श्रुति ने कहाहै कि "तदैक्षत" वो सत् देखता वा विचारता वा इच्छता हुआ, सो इस कहने से मुमुक्षु को एक अद्वैत सत् आत्मदेव का सम्यक् अनुभव करावना है एतदर्थ सो अध्यारोपमात्रही कहाहै क्योंकि सर्व श्रुतियोंका तात्पर्य एक अद्वैत परिपूर्ण सत् विज्ञानघन के प्रतिपादन परत्व है, अरु जो कदापि आग्रह से श्रुतियोंका तात्पर्य सृष्टिके प्रतिपादन परत्वही मानोगे तो "नेति नेति" इत्यादिक निषेधप्रतिपादक श्रुतियां निरर्थक होवेंगी, सो पूर्व सम्यक् प्रकार कहआये हैं। हे सौम्य वास्तव करके तो सत् चैतन्यदेव ने भी ईक्षण किया नहीं क्योंकि "आप्तकामस्यकुतोस्पृहा" वो पूर्णकाम है उसको किसी प्रकारकी कोई भी कामना नहीं कामना जो

होती है सो अपने से इतर अप्राप्यवस्तुकी होती है अरु आत्म-देवको अपनेसे इतर वस्तुका अभावहै अरु उसको सर्व अपना आप होनेसे अप्राप्य वस्तु कोई नहीं, अतएव उस एक अद्वैत परिपूर्ण सर्वात्मा सत् चैतन्यदेवको कामनाके अभावसे वास्तव करके ईक्षणादिकों का करना सम्भवे नहीं। अरु अध्यारोपमात्र निष्प्रयोजन भी ईक्षण के कहने से श्रुतिने उसकी स्वतन्त्रता देखाईहै, अरु अब निष्प्रयोजनइच्छाके ऊपर एक दृष्टान्त कहता हौं तिसकोभी श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन कोई एक चक्रवर्ती राजा अपने स्वभाव करके मृगयाकी इच्छाकर वनमें प्रवेशकर नानाप्र-कारकी मृगयाकर तिसके निमित्तसे अपनी स्वभाव भूत सामान्य बलवत्ता, साहसता, लाघवता, आदि शक्तियों को विशेष प्रकट कर तिनको आपही अवलोकन अनुभव करताहै। तिस मृगया की प्रवृत्ति में उस राजाको मांसादिकों की कामना नहीं क्योंकि मांसतो राजाके भृत्योंको भी प्राप्तहोताहै, तब तिसकी कामना से उस राजाका मृगया में प्रवृत्त होना संभवे नहीं। हे सौम्य तैसेही शुद्ध चैतन्य परमात्मदेव ने भी अपनी स्वभाव भूत सामान्य सर्वशक्तिमत्ता को प्रकट देखने के अर्थ बहुत होने की इच्छाकर एक एक शक्तिको पृथक् २ प्रकट करने के ऊपर एक एक आकृति धार तिसद्वारा अपनी एक एक शक्तिको पृथक् २ प्रकटकर पुनः तिनबिषे आपही अंतर्यामी रूपसे प्रवेशकर उन अपनी प्रत्येक शक्तियों को आपही अनुभव करताहै। एतदर्थ उस सत् परमदेवको ईक्षण के करने बिषे कामना कोई नहीं। हे सौम्य वो सत् चैतन्यदेव स्वयं सदा स्वतन्त्रहै ताते उसकाईक्षण अहेतुकहै, अरु जिसका ईक्षण सहेतुक होताहै सो हेतुके परतन्त्र होताहै, जैसे सोपाधि चिदाभासकी ईक्षण सहेतुकहोताहै ताते सो परतन्त्रहै तैसे शुद्ध सत् चैतन्यदेव किसी हेतुके परतन्त्र नहीं वो सदा सर्वदा स्वतन्त्रहै, एतदर्थ उसका ईक्षण अहेतुक है किसी कामना को लेके नहीं॥ हे प्रियदर्शन तुमने जो उस

सत् चैतन्यदेवको प्राप्तहोनाहै सो इस शरीररूप वनबिषेही प्राप्त होनाहै क्योंकि इस बिषेही उसने प्रवेश कियाहै, अरु यह शरीरही उसकी प्राप्तिका स्थानहै जो कोई उस सत् चैतन्यदेवको प्राप्त हुआ है सो इसही स्थली बिषे हुआहै। हे सौम्य जो पुरुष उस सत् चैतन्यदेवको जानता वा पावता है सो इस सत् शब्द अरु सद्बुद्धि द्वाराही जानता पावताहै क्योंकि यह सत् शब्द अरु सद्बुद्धि उससत् चैतन्यदेवको लखावते हैं। हे सौम्य कोईदोपुरुष साथहीउठके किसी अन्य ग्रामान्तरकोचले तिनमें एकतो मार्गसे अरु ग्रामसे सज्ञातथा अरु दूसरा अज्ञातथा, तहां मार्ग चलते चलते अज्ञातने सज्ञातसे प्रश्न किया कि हे भाई मार्ग तो बहुत आये परन्तु अभी ग्राम दृष्टिआवता नहीं, तब उस सज्ञातने कहा कि हे भाई अब ग्राम निकट है देखो यह जो सर्ववृक्षोंके मध्य ऊँचा वृक्ष दृष्टिआवताहै सो उस ग्रामके मध्य तुम्हारे गृहके आगेका वृक्ष है उस वृक्षके निकटही तुम्हारागृह है॥ हे सौम्य तैसेही यह सत्बुद्धिरूप जो सर्व इदं बुद्धिरूप वृक्षोंसे ऊँचा वृक्ष है सो शुद्ध सत् चैतन्यदेवरूप धामके निकट काहै, यह सत् बुद्धि रूप बड़ा वृक्ष तटस्थलक्षणवत् दूरसेही 'ग्रामके ऊँचे वृक्षवत्, शुद्ध सत् चैतन्य रूप धामको लखावता है कि जिस धाम के गये मुमुक्षु पुनः इस इदं बुंद्धिके विषयरूप दुस्तर अरण्य में आवते नहीं अतएव हे सौम्य अब तुमको जो उस धामके प्राप्त होनेकी इच्छा है तो तुम अपनी सर्ववृत्तियों को निरोधकर किसी श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ आचार्य के समीपजाय उस सत् चैतन्यदेवकी प्राप्तिविषयक प्रश्नकरो तब वो आचार्य्य तुमको प्रथम सत् बुद्धिरूपी वृक्ष देखावेगा तब तुमको भी उसपर अपनी दृढ श्रद्धा करनी होगी तिस करके तुमभी अपने उस शुद्ध सत् चैतन्यरूप धाम को पायके पुनरावृत्तिसे रहित परमसुखमय होवोगे॥

हे सौम्य उक्त प्रकार सत् चैतन्य परमात्मा ईक्षणकर प्रथम तेज तत्त्वको सृजता हुआ॥ शंका॥ ननु हे भगवन् "। तस्माद्वाए-

तस्मादात्मनः आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्नेः" यह तैत्तरीयकी श्रुति, आत्मा से प्रथम आकाश उत्पन्न हुआ आकाश से वायु वायुसे तब सो तृतीय तेज उत्पन्न हुआ, ऐसा कहती है तब यहां कैसे कहाहै कि सो सत् प्रथमही तेजको सृजताहुआ, ऐसा कहने से उक्त श्रुतिसे विरोध आवताहै ॥ उत्तर ॥ हे सोम्य यहां भी उक्त तैत्तरीयकीश्रुति प्रमाणही आकाश वायुकी उत्पत्ति के पश्चात्ही "तत्तेजोऽसृजत" सो तेजको सृजता हुआ इस कल्पना की उपपत्ति (प्राप्ति) है । अथवा यह जो श्रुति है तिसका सृष्टिक्रम कहने का तात्पर्य नहीं किन्तु सर्वश्रुतियों का एक अद्वैत सत् चैतन्य परमात्माके कहनेपर तात्पर्यहै कि मृत्ति-का आदिकों के दृष्टान्त से यह नामरूप क्रियात्मक समस्त कार्य्य कारण रूप जगत् एक अद्वितीय सत्ही है सत्से इतर करके सर्व वाचारंभणमात्रहोनेसे अत्यन्त असत् है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "नेहनानास्ति किंचन" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे ॥ अथवा आगे इस श्रुति में त्रिवृत्त करण का कथनहै ताते, क्योंकि नाम रूप यह दोनों तीनतत्त्वों में ही घटेहै, आकाश अरु वायु यह दो अमूर्त्त सूक्ष्मतत्त्वहैं ताते इनबिषे नाम अरु रूप यह दोनों घटे नहीं, अरु लोक बिषे तेज जो है सो यह दाहक प्रकाशक लोहि-तादि गुणवान् अग्नि वा तेजहै इसप्रकार प्रसिद्धहै । ऐसा जो नामरूपादि गुणवान् तेज सो सत् चैतन्यदेव प्रथम सृजताहुआ । हे सौम्य उक्त प्रकार सत् चैतन्यदेवकरके सृज्यमान जो तेज सो तेज इच्छा करताहुआ जो मैं बहुत रूपसे प्रकटहोवों । तिस इच्छा द्वारा सो जलको सृजताहुआ ॥

हे सौम्य ॥:-उक्त प्रकार जब तेज तत्त्वसे ईक्षण द्वारा जल सत्की उत्पत्ति उद्दालक मुनि ने अपने पुत्रसे कहा तब तिसको श्रवणकर वो श्वेतकेतु शोचनेलगा कि जल तो तेजका विघातक है सो तेज (अग्नि) से कैसे उत्पन्नहुआ । इसप्रकार शोचता जो श्वेतकेतु तिसको किञ्चित् शोचवश जानके उद्दालकने पुनः

कहा कि-॥ हे प्रियदर्शन यहां क्या शोचताहै, जैसे कोई पुरुष किसी देशकालमें जब बड़ेवेगसे दौड़ताहै वा बड़े भारको उठावताहै तब तेजकी गरमी पायके उसके शरीर से स्वेद (पसीना) रूप जल स्रवताहै, तैसेही तेज सत्से ईक्षणद्वारा जल सत् होता हुआ। सो कैसाहै जल कि द्रवता अरु स्वच्छता जिसका धर्महै अरु श्वेतता जिसकागुण (रंग) है अरु नीचेको चलना जिसका स्वभावहै, ऐसा जो जलसत्है सो तेजसत्से प्रकट होता हुआ॥

प्रश्न॥ हे भगवन् सत् चैतन्य देवने ईक्षणकर तेजतत्त्वको उत्पन्न किया सो अस्तु परन्तु तेजतत्त्वतो जड़है जड़में ईक्षणबने नहीं तब तिसतेजतत्त्वने ईक्षणकर जलतत्त्वको कैसेसृजा। हे भगवन् सांख्यमतवादी जड़ प्रधान में ईक्षण के संभवके विषयमें उक्त श्रुतिका दृष्टान्त कहतेहैं जैसे जड़ तेजने ईक्षणकर जल तत्त्वको सृजा तैसेही जड प्रधानने भी ईक्षणपूर्वक महत्तत्त्वादि कार्यको सृजा। हे भगवन् उक्त श्रुतिके दृष्टान्त से देखिये तो सांख्यवादियोंका कथन असमीचीन नहीं। अब इस विषयक जैसा विचारहो तैसा कहिये॥ उत्तर॥ हे प्रियदर्शन तुम सम्यक् प्रकार समझे नहीं यहां जो कहाहै कि सो तेज ईक्षण करता हुआ सो तेज नामवाला सत्हीहै, सत्से इतर करके तो तेजादि सर्व वाचारंभणमात्रही है ताते तेजनाम रूपकरके एक सत्ही का ग्रहण होनेसे तेजद्वारा सत्ही ईक्षण करताहुआ। अरु सांख्यवादी वास्तव करके प्रधान को सत् चैतन्य से इतर जड़ मानके कहते हैं कि ईक्षणपूर्वक सृष्टिका कारण प्रधानहै, सो उनका कथन वेदबाह्य होनेसे समीचीन नहीं। अरु उनके मतको विचारके देखिये तो अज्ञानकारणीक संसार वादके अन्तर्गत उनका कथनहै, ताते भी सांख्यमत समीचीन नहीं। अरु यहांतो कहा है कि "तत्तेजऐक्षत" सो तेज नाम से सत्ही ईक्षण करताहुआ ऐसा ग्रहण है सत्से पृथक् करके तेजका ग्रहण नहीं। अथवा "जीवेनात्मनानुप्रविश्य" "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" इत्यादि

ताआप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्वच वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

श्रुतियोंके प्रमाण से सो सत् चैतन्य देव आप ईक्षणपूर्वक तेज तत्त्वको सृज पुनः उसमें आपही आभासरूपसे प्रवेशकर आगे ईक्षण करताहुआ। इत्यादि विचार प्रकारसे तेजतत्त्वद्वारा भी सत् चैतन्यदेवनेही ईक्षणपूर्वक जलतत्त्व को सृजा है, सत् चेतन से इतर सत्तावान् तेजादिक कुछ भी नहीं। अरु सांख्य-वादी सत्से इतर प्रधान सत्ता को जड़ अंगीकार कर तिससे ईक्षणपूर्वक सृष्टि कहते हैं सो सत् चैतन्य से इतर जड़में ईक्षण के असंभव से उनका कथन समीचीन नहीं ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जल ईक्षण (विचार) करता हुआ मैं बहुत प्रकार से उत्पन्न होवों तिस विचार से सर्व अन्नकी समष्टता पृथिवी लक्षण अन्न को सृजता हुआ, एतदर्थ जहां कहीं वर्षा होती है तहां बहुत अन्न उपजताहै ताते जिस जल सत्से अन्न सत् होता हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ मन्त्रचौथेका ॥

हे सौम्य, हे प्रियदर्शन, उक्तप्रकार सत् चैतन्य परमात्मा आप ईक्षणपूर्वक प्रथम अपने बिषे तेज तत्त्वकारूप धारताहुआ पुनः तिस अपने तेजरूपसे ईक्षणपूर्वक जल तत्त्वका रूप अपने बिषे धारता हुआ। पुनः तिस जलतत्त्व द्वारा सो सत् चैतन्य देव विचारता हुआ जो मैं बहुत रूप से प्रकट होवों वा उत्पन्न होवों, तब तिस ईक्षण द्वारा अपने बिषे सर्व अन्नकी समष्टता रूप पृथिवी लक्षण अन्नको सृजता हुआ, अन्न जो है सो पार्थिव (पृथिवी) रूप है। अरु जिस करके जलका कार्य्य अन्न है तिसही करके जिस किसी देश बिषे सम्यक् वर्षा होती है तहांही

अथ छान्दोग्यउपनिषत्सु षष्ठप्रपाठकेतृतीयखंडः ॥ ३ ॥

तेषां खल्वेषां भूतानांत्रीण्येव बीजानि भवत्याण्डजं जीवजमुद्भिजमिति १ ॥

अधिकतर अन्न उत्पन्न होता है। एतदर्थ ही कहा है जल से ही अन्न अधिक होता है॥ हे सौम्य पूर्व ऐसा कहाहै कि सो पृथिवी लक्षण अन्नको सृजता हुआ तहां, अद, धातु विशेषण करके जो भक्षण किया जाय तिसको अन्न कहते हैं ताते अन्न शब्द करके व्रीहि यवादिकों को कहते हैं ॥:- हे सौम्य व्रीहि यवादि सर्व अन्नकी समष्टता पृथिवी है, जब पृथिवीपर वर्षा अधिक होती है तब तृण वनस्पति ओषधि अन्नादिक सर्व पृथिवी से प्रकट होते हैं -:॥ सो पृथिवी रूप अन्न कैसा है, भारी है कठोर है, स्थिर है, अरु सर्वको धारण करे है,अरु अपने रूप करके कृष्णवर्ण प्रसिद्धहैं॥हे सौम्य यहांकी शंका अरु तिसका समाधान पूर्व कह आये हैं ॥ ४ ॥ इति षष्ठप्रपाठके द्वितीयखंडः॥ २ ॥

अक्षरार्थ॥

निश्चयकरके तिन इन चराचरभूतोंका (जीवों वा देहोंका) तीनही बीज (कारण)होताहुआ। तहां अंडज जेरज उद्भिज इन तीन जाति के जीव (शरीर) होतेहुए १ ॥

भावार्थ खंड तीसरे मन्त्र पहिलेका॥

हे सौम्य, हे प्रियदर्शन॥:- वो सत् चैतन्यदेव पुनः पृथिवी द्वारा होयके इच्छा करता हुआ जो मैं बहुतरूप होवों तब तिस इच्छासे अण्डज, जरायुज, अरु उद्भिज, यह तीनखानि के शरीररूप से प्रकट होताहुआ -:॥ हे प्रियदर्शन" तेषां " तिन्हों का [अर्थात् पूर्व पंचमप्रपाठक की पंचाग्निविद्या विषे जिन जीवोंके अर्थ वारंवार आवागमनरूप तृतीयस्थान कहाहै तिन्हों का] अरु निश्चय शब्द तिनके प्रसिद्ध द्योतनार्थहै, ॥:-अर्थात्

" तेषां " शब्द करके पंचम प्रपाठक बिषे कहे जे उत्तरायण दक्षिणायन उभयमार्गगति तिनसे भ्रष्ट जे वारंवार पशु आदि योनियों में आवागमन पावते हैं निश्चय करके प्रसिद्ध तिनको –॥ अरु " एषां " यह शब्द करके इन्हीं पशु पक्षी आदिक भूतों का तीनही बीज कहिये कारण हैं तिनसे अतिरिक्त नहीं॥ शंका॥ हे भगवन् भूत शब्द करके यहां पशु पक्षी आदिकों का ग्रहण है सो अस्तु, परन्तु भूतशब्द रूढ़िरीति से तेजादि तत्त्वप्रभृतियों बिषे भी ग्रहण होताहै सो यहां क्यों नहीं करते ॥ समाधान ॥ हे सौम्य तेजादि तत्त्वोंका आगे त्रिवृत्करण कहाहै अतएव यहां उन अत्रिवृत्कृततत्त्वविषयक भूत शब्दका अर्थ ग्रहण होवे नहीं क्योंकि यहां "एषां" इन्होंका, ऐसा शब्दहै सो प्रत्यक्षको विषय करताहै अरु उन अत्रिवृत्कृत तेजादिकोंको प्रत्यक्षपना है नहीं ताते । अथवा "इमास्तिस्रो देवता इति " तेजःप्रभृतियों को (तेजादि तत्त्वों को) देवता शब्दका प्रयोग होनेसे वा देवता शब्दकरके कहनेसे, उन बिषे प्रत्यक्षका बोधक " एषां " इस प्रत्यक्ष निर्देश की अनुपपत्ति (अप्राप्ति) है ताते उन बिषे "एषां भूतानां"ऐसा कथनबने नहीं । अतएव निश्चयकरके " तेषां " तिन्होंका, इस पदसे पंचम प्रपाठक में कहे तृतीय स्थानाधिकारी जीवोंका, अरु " एषां भूतानां " इनभूतों का, इस वाक्य वा पद करके पशु पक्षी स्थावरादिकों के तीनही बीज कहिये कारण होते हुए हैं, तिनसे इतर नहीं॥ प्रश्न॥ हे भगवन् सर्व चराचर भूतों (शरीरों) के वो बीज संज्ञक कारण कौन कौन हैं सो आप कृपाकरके कहिये॥ उत्तर॥ हे सौम्य ,एक जरायुज, दूसरा अण्डज, तीसरा उद्भिज, यह तीन बीज संज्ञक कारण हैं, तहां जेर (झिल्ली) से उत्पन्न होनेवाले जे 'मनुष्य, गौ, अश्वादिक, तिनको जरायुज कहते हैं'जेर से प्रकट होने से, अरु 'पक्षी, सर्प, मच्छादिक, तिनको अण्डज कहते हैं, क्योंकि उनको अण्डसे प्रकट होते देखते हैं ताते, अरु तिसकरके पक्षीही पक्षियोंका बीज है, सर्व

सर्पोंका बीज है, मच्छादिक मच्छादिकोंका बीज हैं, तैसेही अन्य भी जे अण्डे से उत्पन्न होते हैं सो तिन अण्डसे उपजनेवालोंके बीजहैं ॥:—हे सौम्य जिन जीवोंके कर्णगोलक प्रत्यक्ष नहीं भासते तिन सर्वको अण्डज जानने—:॥

शंका ॥ हे भगवन् जो अण्डसे उत्पन्नहोताहै तिसको अण्डज कहतेहैं, एतदर्थ अण्डजोंका बीज अण्डहै ऐसा कहना युक्त है, तब अण्डजोंका अण्डज बीजहै, ऐसा अयुक्त क्यों कहनाचाहिये ॥ [यहां इस शंकासे श्रुतिको पौरुषेय (मनुष्यकृत) पने की व्युत्पत्ति बाधित होती है तिसका परिहार (खंडन) करतसन्ते कहते हैं]॥ समाधान ॥ हे सौम्य तुम कहतेहो सो सत्य है परन्तु श्रुति जोहै सो उस सत् चैतन्य देवके स्वतन्त्रवाक्यहैं एतदर्थ श्रुति भी सत्वत् स्वतन्त्र है, अपौरुषेय होने से, एतदर्थ श्रुतिका ऐसाही कहना है कि अण्डजही अण्डजों का बीज है। हे सौम्य पुनः केवल श्रुतिकीही उक्त प्रकार की व्यवस्थाहै ताते ऐसा कहाहै सो नहीं किन्तु अण्डज के अभावसे तज्जातीय सन्ततिका भी अभाव प्रत्यक्ष देखते हैं, अण्ड के अभाव से तज्जातीय सन्ततिका अभाव नहीं। एतदर्थ अण्डज जाति जीवों का बीज अण्डजही है अण्ड नहीं ॥ हे प्रियदर्शन तैसेही जीवसे उत्पन्नहुआ जीव है, अर्थात् जरायुज जे मनुष्य तथा गऊ अश्वादिक जो जेर (झिल्ली) से वेष्टित वा जेरके साथ अर्थात् जिन जीवों के जन्मके साथही माताकी उदर से जेर निकलती है तिनको जरायुज कहते हैं तिन जरायुजों का बीज जरायुज है। अरु उद्भिज कहिये वृक्षादिक जो पृथिवी को फोड़के उपजते हैं तिन स्थावर वृक्षादिक उद्भिजों का बीज उद्भिज है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् ऐतरेय उपनिषद् के तृतीयाध्याय में " अण्डजानिच जारुजानिच स्वेदजानिचोद्भिज्जानि " इस प्रकार चार खानि के जीव कहे हैं अरु यहां आप तीन खानि के कहते हो, सो इसीका विचार जैसा होय तैसा

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेनजी
वेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥ २ ॥

आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य एतरेय उपनिषद् बिषे चतुर्थ खानि स्वेदजकी कही है तिसका यहां उद्भिज अण्डजमें अन्तर भाव जानना क्योंकि स्वेदज जुँआँ खटमल आदिकों की स्वेद (पसीना) मैलादिकों से उद्भिज अण्डजवत् उत्पत्ति होती है ताते ॥ इति सिद्धम् ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह सत् नामवाला चैतन्य देव विचारता हुआ जो मैं इन तेज, जल, पृथिवी, इन तीनों देवता बिषे जीव (आभास) रूपसे अपना प्रवेश कर नाम रूपको प्रकट करौं ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

हे सौम्य, हे प्रियदर्शन [जीव करके अविशिष्ट भूतों का सत् चैतन्य का कार्य्यपना प्रकरण प्रामाण्य होने से कहा। अब जीवोंका विशिष्ट रूपत्व करके ब्रह्मका कार्य्य होते संते भी उनको स्वरूप करके कार्यता नहीं किन्तु उपाधि विशिष्ट भी ब्रह्मही है। क्योंकि जीवका व्यवहारास्पद से अंगीकारहै ताते ॥:—अर्थात् जीवपना व्यावहारिक सत्तासे अंगीकार है नतु परमार्थ सत्ता से—:॥ तथाच " ब्रह्मणि विज्ञाते जीव विज्ञातं सेत्स्यति " ब्रह्म के जानने से जीवका जानना होता है। इस प्रमाण से ॥ अरु जो भूतोंका भौतिक कार्य है सो जीवोंके भोगका स्थान है, तिन भोगके आयतनों के नामरूपकी उत्पत्ति के कहने के अभिप्राय से उत्तर ग्रन्थ कहते हैं] हे सौम्य सो यह प्रकृति सत् नामवाला देव जिस प्रकार पूर्व " बहुस्यां प्रजायेयेति " मैं बहुतरूप से प्रकट होवौं, इस प्रकार विचार के तेज जल अन्न इन तीन कारण रूपसे आप बहुत रूपहुआ सो कहा। तैसेही पुनः बहुत होने का विचार करता हुआ ॥ शंका ॥ हे भगवन् पूर्व सत् चै-

तन्य देवने एक्षण (विचार) कर तेजादि रूप से बहुतहुआ सो अस्तु पुनः निष्प्रयोजन बहुत होने का विचार क्यों करताहुआ॥ उत्तर॥] हे सौम्य तिसका सो बहुत होने का प्रयोजन अद्यापि निवृत्त हुआ नहीं ॥ :–हे सौम्य अद्यावधि वो सत् चैतन्य देव अपने आभास (जीव) रूपसे सर्वत्र बहुत होनेकोही देखता विचारता इच्छताहै–:॥ एतदर्थ सो सत्नाम्नी चिन्मात्र सत्ता पुनः इच्छाकरती हुई ॥ प्रश्न ॥ सो सत्ता क्या विचारती हुई उत्तर॥ यह विचारती हुई कि मैं अब ,तेज, जल, पृथिवी, तीन (सूक्ष्मकारण) रूप देवता, कि जिनका रूप मैंने अपनेबिषे धारण किया है तिनबिषे इस जीवरूपसे प्रवेशकर । अर्थात् स्वबुद्धिस्थ पूर्वानुभूत सृष्टिको प्राणधारण करता आत्मा (अपने आभास वा प्रतिविम्ब जो अपनाही रूपहै) को स्मरणकर विचारताहुआ कि प्राणधारी जीवाख्य अपनेरूपसे "।प्राणधारणकर्त्ता आत्मनेति "। इस वचन प्रमाणसे। अपने आपसे अपृथक् अविशिष्ट रूपसे प्रवेशकरों ऐसा विचारताहुआ ॥ :–अर्थात् हे सौम्य सत् चैतन्य देवने आभास वा प्रतिविम्बरूपसे प्रवेशकियाहै परन्तु विम्ब प्रति विम्ब दोनोंकी चैतन्य स्वरूपताबिषे समता होने से शुद्ध चैतन्य काही प्रवेश जानना। अरु विम्ब प्रतिविम्ब का जो परस्पर भेद भासताहै सो उपाधिका कियाहै वास्तव से नहीं एतदर्थही आगे "।तत्त्वमसि"। इस वाक्यकरके दोनों की अभेद एकता कहेंगे–:॥

हे सौम्य [निर्विशेष निर्विकल्प चिन्मात्र सत्ता समानरूप देवता अपनी इच्छारूपा मायासे मिल तेजादि वा आकाशादि महाभूतों को सृज पुनः विचारताहुआ जो जब मैं इन सृजेहुए महाभूत देवताओं में प्रवेशकर तिन आरंभकिये भूतों से 'सूत्र हिरण्यगर्भ विराट् समष्टि व्यष्टि देहोंबिषे प्रवेशकरके तिन तिन देहाभिमानीरूप से देवदत्तादि नाम अरु शुक्ल कृष्णादि रूपको मिश्रितकर पिंडको प्रकटकरो, ऐसा विचारताहुआ यह कहते हैं] हे सौम्य, सो सत् चैतन्य देव विचारताहुआ कि इन तेजादि

(अतृवृत्कृत सूक्ष्म) महाभूतों के सूक्ष्म कार्य लिंग में प्रवेशकर तिसके संसर्ग से विशेष विज्ञान पाय पुनः नाम अरु रूप को प्रकट करों । अर्थात् लिंगमें प्रवेशकर पश्चात् देवदत्तादि नाम अरु रक्त शुक्ल कृष्णादिरूपको स्पष्टकरके, कि यह नामहै यहरूप इसप्रकार नामरूपको प्रकट करों ॥ :-हे सौम्य पूर्व वेदने कहाहै कि एक अद्वितीय सत् चैतन्य देवहै, अरु तिस सत्ने यह भी कहा था कि यह जीव मेरा आत्मा (अपना आपस्वरूप) है । हे सौम्य इसही हेतुसे पूर्व उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति यही प्रश्न किया था कि हे पुत्र जिस एकके जानने से सर्व जाना जाताहै तिसको तू जानताहै या नहीं । सो यही एक शुद्ध चैतन्य देवहै, इसही एक सत् चैतन्यके जानने से सर्व नाना जीवाख्य चैतन्य जाने जाते हैं, क्योंकि सत् चैतन्य रूप बिम्ब सर्व जीवों (आभासो वा प्रतिबिम्बों का एक है । सो उसही सत् चैतन्य देवने यह इच्छा किया कि इन तेजादिकों बिषे हम प्रवेशकरके नाम रूपको प्रकट करे, क्योंकि जब हम इनबिषे प्रवेश करेंगे तब यह सर्व ठाठ राशि आवेगा अरु लीला भी तबही बनेगी । हे सौम्य जैसे कुलाल प्रथम मृत्पिण्डको रचिके पश्चात् घटादि अनेक कार्य्य रचता है उन घटादिकों बिषे यावत् अग्नि प्रवेश करता नहीं तावत् वो काम के होते नहीं ॥ हे सौम्य इसका विचार इस प्रकार है कि तीनि तत्वों की रीति से अग्निका कार्य्य जल अरु जलका कार्य्य पृथिवी है तहां पृथिवी कहिये मृत्तिका अरु जल यह दोनों मिल मृत्पिण्ड होय घटादि कार्य होते हैं, परन्तु सर्वके पूर्वका शुद्ध अग्नि यावत् उन घटादिकों बिषे प्रवेश नहीं करता तावत् वो किसी भी काममें आवते नहीं । तैसेही परमात्माकी इच्छारूपा माया ने अपने बिषे सत् चैतन्य देवकी सत्ताको पाय अनेक प्रकार के ब्रह्मांडों को खड़ा किया परन्तु उनसे कार्यकी सिद्धि न हुई, तब तिसको अवलोकन कर उससत् चैतन्य देवने विचार किया कि यावत् हम इनमें

प्रवेश न करेंगे तावत् ये किसी भी काम आवने के नहीं क्योंकि यह इच्छा आदि सर्व स्वरूप करके जड़हैं अरु इनको स्वसत्ता के अभाव से पराधीनताहै, अतएव हम इनबिषे प्रवेशकर इन सर्व के नाम रूपको पृथक् २ प्रकट करें, और किसी का काम नहीं क्योंकि ये सर्व जड़हैं अरु चैतन्यके प्रवेश विना नामरूपकी पृथक् २ स्पष्ट प्रकटता होवे नहीं, अरु मुझसे इतर अन्य कोई चैतन्य नहीं, एतदर्थ इन बिषे हमाराही प्रवेश बनताहै ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् उससत् चैतन्य देवका जो प्रवेश होताहै सो लिंगादि बिषे होताहै सो लिंगादिक अभिहुए नहीं तब उसने प्रवेश किस बिषे किया सो आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार उस सत् चैतन्य देवने अपने बिषे विचार कियाहै जो इन तेजादि कारण भूतों बिषे प्रवेश करके सर्व के नामरूपों को पृथक् २ प्रकट करें, ऐसा विचार कियाहै अभी प्रवेश किया नहीं ॥ हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त कहते हैं तिसको श्रवण करो। हे सौम्य जैसे कोई एक बणिक पुरुष जो ओषधी आदिक बहुत पदार्थोंकी दूकान करताहै सो सायंकाल के समय अपनी दूकान बन्दकर गृहजाय सुख से शयन करता है जब प्रातःकालको जागताहै तब अपनी दूकान खोलने की चिंतवनाकर विचारताहै कि अब हम अपनी दूकान परजाय उसमें धरे पदार्थों को प्रकटकर बाहर फैलायदेवें। हे सौम्य इस प्रकार वो वणिक प्रथम विचार के पश्चात् दूकान पर आय उसमें के पदार्थों को प्रकट करताहै॥ हे सौम्य तैसेही सत् चैतन्यदेव अपनी पूर्वकी सृष्टिको इच्छारूप मायारूपा दूकानमें रख पुनः उसको अपने अधिष्ठानत्वपने में लयकर आप निर्विकल्पता रूप शयन करता है। अरु जब अपनी स्वतन्त्रता सर्वज्ञता रूप जाग्रत् में आय सविकल्प विशेष होताहै तब अपनी इच्छारूप दूकान में रक्खी जे पूर्वानुभूत सृष्टि के नामरूपात्मक संस्कार रूप सामग्री तिसको पूर्ववत् प्रकट करने की चिंतवनाकर पश्चात् उसको

प्रकट करता है। अतएव अबही उस सत् चैतन्य देवने प्रवेश न करके प्रवेश करने की चिंतवना किया है—: ॥ शंका ॥ ननु, हे भगवन् जो सर्व संसार अरु तिसके धर्म्मादिकों से रहित असंसारी सर्वज्ञ सत् चैतन्यदेव तिसका बुद्धि पूर्वक (जान बूझके) अनेक शत सहस्र अनर्थों का आश्रय जो देह तिसबिषे प्रवेश करके मैं दुःखको अनुभव करों ऐसा संकल्प, अरु सर्वज्ञ स्वतन्त्र होय के प्रवेश करना युक्त नहीं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य जो तू कहताहै सो सत्यही है, यदि वो सत् चैतन्य सर्वज्ञ देव अपने अविकृतरूप से परमदुःखास्पद देहादिकोंबिषे प्रवेश करके दुःखों का अनुभवकरे यह युक्त नहीं परन्तु तैसा किया नहीं ॥ शंका ॥ हे भगवन् उसने कैसे नहीं प्रवेश किया स्वयं श्रुति कहतीहै कि "। अनेनजीवेनात्मनानुप्रविश्येति"। इसजीवरूपसे आत्मानेप्रवेश कियाहै ॥ समाधान ॥ हे सौम्य उक्तश्रुति ने जीवरूपसे उस सत् चैतन्य देवका प्रवेश कहाहै उसका साक्षात् प्रवेशकहा नहीं, अरु जीवनाम आभास वा प्रतिविम्बकाहै "।जीवाभासेनकरोति"। इत्यादि अन्यश्रुतियों के प्रमाणसे ॥ः-हे सौम्य तुमने कहा कि उस सत् चैतन्य सर्वज्ञदेवका जानबूझ के परम दुःखास्पद अनेक दुःखों का आश्रय जे देह वा संसार तिसबिषे प्रवेश करके दुःखका अनुभव करना युक्त नहीं, सो सत्यही है, परन्तु वो अपने स्वरूप करके शुद्ध केवल ज्ञप्तिमात्र आनन्द घनहै तिस अपने स्वाभाविक सामान्य स्वरूपानन्दको विशेषतासे अनुभव करनेकी इच्छा से उस सर्वज्ञ स्वतन्त्र देवने नामरूपात्मक दुःखास्पद द्वंदको खड़ाकर तिस बिषे अपने आभास वा प्रतिविम्बरूप से ,जो कि वास्तव करके उससे अपृथक् है, प्रवेशकर दुःखके अनुभवके निमित्तसे आप अपने आनन्दरूपत्व को अनुभव करता है ॥ हे सौम्य जो कदापि तू ऐसाकहै कि वो सत् देव तो सर्वज्ञ चैतन्य ज्ञानस्वरूप है तब वो द्वंद्व दुःखकी विशेषता के निमित्त विनाही अपने आप आनन्दरूपत्वको क्यों अनुभवकरता नहीं उसको

उक्त विशेषताके अभाव से अपने आनन्दस्वरूपताका अनुभव करना चाहिये, सो बने नहीं क्योंकि जो वस्तुजानी जाती है वा अनुभव की जाती है सो जड होतीहै अरु जाननेवाला चैतन्य होता है अरु ज्ञेय अरु ज्ञाता परस्पर में जड चैतन्य होने से विरुद्ध धर्म्माहोते हैं सो उभय विरुद्ध धर्म्मा एकही वस्तुको आश्रय करे नहीं, अरु वो शुद्ध चैतन्य ज्ञानस्वरूप है ताते उसको एक अद्वितीय होनेसे उसमें सर्व, इस शब्दके अर्थका अभाव है, अरु उसको ज्ञानस्वरूप होनेसे उस बिषे ज्ञेयत्वपनेका अभाव है, ताते उस सत् चैतन्य देवकी आनन्दरूपता उसका ज्ञेय होवेनहीं। अतएव हे सौम्य उस सत्चैतन्य देवने अपने आनन्दस्वरूप को विशेष अनुभव करने के अर्थ दुःखास्पद द्वंद्वको खडाकर अपने स्वरूपानन्दको अनुभव करता है। हे सौम्य कोई एक बुद्धिमान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि वो चैतन्य देव ज्ञानस्वरूप होनेसे अपने आपको ज्ञेयरूपकरके जानता नहीं ताते वो अज्ञानी है अज्ञान का आश्रय होनेसे अपने आपको जानता नहीं, सो उनका कथन अनुभवसे रहित अविचारितहै, क्योंकि जो वो अज्ञानके आश्रय हुआ अपने आपको नहीं जानता तो कदापि अज्ञान की निवृत्ति बने नहीं, अरु वो उक्त प्रकार होने से परतन्त्रतादि दोष करके युक्त होता है तिसकी भी निवृत्ति बने नहीं क्योंकि ब्रह्मके दोषों का निवर्त्तक अन्य कोई भी है नहीं, अन्यों को अब्रह्मता होने से॥ हे सौम्य उक्त सत् चैतन्य ज्ञानस्वरूप देवको अपने आपके न जानने बिषे अज्ञान हेतु नहीं किन्तु उस बिषे ज्ञेयत्वादिपने का अभाव हेतु है। ताते वो सत् चैतन्यदेव अपने आनन्द स्वरूपता को विशेषता से अनुभव करने की इच्छा से दुःखास्पदद्वंद्वको खडाकर तिसबिषे अपने आभास रूपसे प्रवेशकर दुःखानुभव के निमित्त से अपने आप स्वरूपानन्दको साक्षात् यथार्थ अनुभव करता है॥ अरु बुद्धि आदि उपाधि अरु तिनके कर्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्म अरु तद्विशिष्ट अपने आभास रूप जीव

को साक्षी हुआ प्रकाशता है अरु आप अपने स्वरूप करके उन सर्व से पृथक् सदा निर्विकार शुद्ध ज्योंका त्यों है, अतएव उस सत् चैतन्य देवने अपने स्वरूप भूत सामान्य आनन्द को विशेषता से अनुभव करने की इच्छा से इस वाचारंभणमात्र नाम रूपात्मक द्वंद्वको खड़ाकर तिस बिषे अपने आभास आत्मरूप से प्रवेश किया है। क्योंकि दुःख रूप द्वंद्वविना अपने आप अद्वैत सुख रूपता का विशेष अनुभव होवे नहीं॥ हे सौम्य इस पर एक दृष्टान्त कहते हैं तिस को सम्यक् श्रवण करो, हे प्रियदर्शन कोई एक चक्रवर्ती राजाका बालक पुत्र था उसको बाल्यपन से पिताके अभाव से चक्रवर्ती राज्यका सर्व सुख प्राप्त था अतएव उसको दुःखका अनुभव कुछ भी न था, अरु तिस के अभाव से अपने चक्रवर्तित्व राज्य पद के सामान्य सुख का भी विशेष अनुभव न था, अरु उस राजकुमार की अन्य प्रजा दुःखादि करके युक्त थी सो अपने दुःखकी निवृत्ति पूर्वक सुखकी प्राप्तिको इच्छती सती कहतीथी कि हमको सुख कब प्राप्तहोगा। इस प्रकारके अपनी प्रजाके वाक्य श्रवणकर वो राजकुमार अपने बुद्धिमान् मंत्रीसे प्रश्न करताहुआ कि हे मंत्री यह सर्वप्रजा जो रात्रि दिन २ अपने को सुखीहोना इच्छतीहै सो वो सुखक्या वस्तु अरु कैसा होताहै, हे सौम्य इसप्रकार के उस राजकुमार के वचन को श्रवणकर उस मंत्रीने विचारकिया कि यह राजकुमार अपने को दुःखकी प्राप्तिके अभावसे अपने चक्रवर्तित्वपने के सुख से भ्रमाहुआहै इसको अपने राजकीय सामान्य स्वाभाविक सुखका अनुभव नहीं, परंतु अब इसको सुखके जानने की जिज्ञासाहुई है अतएव अब इसको अपने सुखका अनुभवकराय इसके प्रश्नका उत्तर देना चाहिये परंतु समयपायके। ऐसा विचार उस मंत्रीने कहा कि हे राजन् इसका उत्तर फेर देवेंगे। हे सौम्य तिसके कोईकाल उपरान्त उसराजकुमारने अकस्मात् एक दिन मृगयाकी इच्छाकर उस मंत्री से कहा कि हम मृगया

को जावेंगे तब उसमंत्रीने तथास्तुकहके विचारकिया कि अब इस राजकुमार को मृगया के निमित्त से दुःखका स्वरूपदेखाय सुख का अनुभव करावना चाहियें जिसकरके यह अपने प्रश्नका उत्तर आपही समझलेवे। हे सौम्य इसप्रकार विचार के उस बुद्धिमान् मन्त्रीने अन्य सेनापति आदिकों को आज्ञा किया कि यह राजकुमार महाराज मृगया की इच्छा करते हैं, अतएव मृगया की सर्व सामग्री तैयार करो, परन्तु खान पानकी सामग्री कुछ भी साथ न लेनी क्योंकि महाराज बहुत शीघ्रही लौटके यहां गृहको आवेंगे। इसप्रकार जब मन्त्रीने कहा तब तिसकी आज्ञा श्रवण कर सेनापति ने सैना, अन्य भृत्यादिकों ने गज अश्व श्वान वाज शस्त्र आदिक मृगयामें उपयोगी सर्व सामग्री तैयार कर मन्त्रीसे निवेदन किया कि हे राजन् आपकी आज्ञानुसार सर्व सामग्री तैयारहै, तब मन्त्रीने राजकुमारसे कहा कि हे महाराज आपकी इच्छानुसार मृगया की सर्व सामग्री सिद्धहै, तब वो राजकुमार तिसको श्रवण कर मन्त्री आदिकों को साथले अश्वारूढ़ होय मृगया को जाता हुआ, जब अरण्य में प्राप्त हुआ तब उस राजकुमार ने सर्वको आज्ञा किया कि जिसकी दृष्टिके आगे मृग आवे सोई उस मृगके पीछे जाय। हे सौम्य इतनेही में अकस्मात् काकतालीयन्यायवत् उस राजकुमार कीही दृष्टिके आगे मृग आवता हुआ 'अर्थात् उस राजकुमार कीही दृष्टिगोचर मृग होता हुआ, तब उस राजकुमार ने अपना अश्व उस मृगके पीछे डाला अरु अरण्यमें चला, अरु उसकी आज्ञानुसार सेना आदि कोई भी उसके पीछे न गया परन्तु एक मन्त्री जो राजा का रक्षक है सो अपने अश्वारूढहोय उस राजकुमार के पीछे दूरदूर जाताहुआ। अरु जब वो राजकुमार उस मृगके पीछे अरण्यमें प्रवेश करगया तब वो मृग उसकोदेखके पलायमानहोता अन्तर्द्धान होगया, अरु वो राजकुमार अतिगह्वर जल फलादिकों से रहित करींजुआके वनवत् कंटकमय महाअरण्य में

जाय प्राप्त हुआ, अरु उस मृगके पीछे दौड़ने के औ तापवातादिकों के अतिश्रम खेदकरके अरु क्षुधा पिपासा करके व्याकुल होय अश्वसे उतर अश्वकी डोर हाथ में ग्रहणकर उस अरण्य में अकेला धीरे धीरे विचरने लगा अरु अपने श्रमकी निवृत्तिके अर्थ अनेक प्रकार के उपायों को शोचने लगा । हे सौम्य इतनेही में वो बुद्धिमान् मन्त्री भी उस राजकुमारके समीप जाय प्राप्त हुआ, तब उसको देख राजकुमार ने कहा कि हे मन्त्रिन् मैं इस अरण्य में भ्रमण के श्रम अरु क्षुधा पिपासा के खेद करके अतिव्याकुल हुआहौं, अरु यहां जलफलादि सुखका सामान कुछ भी दृष्ट आवता नहीं, ताते अब तुम मुझको जल फलादि प्राप्तकरके मेरे इस श्रमको निवृत्त करो । हे सौम्य उक्त प्रकार के राजकुमार के वचनोंको श्रवणकर उसके क्लेशकी निवृत्ति के अर्थ वो मन्त्री जल फलादिकों के अन्वेषणार्थ गया अरु बहुत अन्वेषण करते २ किसी एक गर्त्त में अतिअल्प मलीन मृगों के मूत्रों करके युक्त जल अरु पक्षियों के कुछ भक्षण किये पृथिवी पर गिरे कच्चे पक्के फलोंको देख विचारने लगा जो अपने उस राजकुमार को उसके स्वभाव भूत राजसुखका 'कि जिससे वो भूलेहुएवत् है, साक्षात् अनुभव करावना है अतएव इन जल फलादिकों को उसके पास न लेचलके उसको यहां लेआय प्रथम यह जल फलादिक देखावना चाहिये जब वो इनको देखके अपने प्राणकी रक्षाके अर्थ इनका खान पान करेगा अरु श्रमकी निवृत्तिके अर्थ इस कंटकमय पृथिवीपर विश्राम करेगा तब उसको अपने चक्रवर्त्ती राज्यपदके भोग्य सामग्री जन्य सुख का अनुभव होवेगा । हे सौम्य इस प्रकार विचार उस मन्त्री ने जल फल आदिकों को न लेके आप उस राजकुमारके पास आय उन जल फलका सर्व वृत्तान्त कह कहताहुआ कि हे महाराज आप चलके उन जल फलादिकों को देखिये पश्चात् आपकी इच्छा होय तो उनको खान पान करना वो यहां

लेआवने योग्य नहीं। हे सौम्य उस मन्त्रीने इतना कह उस राजकुमारको अपने साथले उस स्थानपर प्राप्तकर उसको वो जल फलादिक देखाय पुनः कहा कि हे महाराज इन जल फलादिकों को सम्यक् प्रकार अवलोकन कीजिये, तब उस राजकुमारने उन जल फल स्थानको देखके कहा कि हे मन्त्रिन् यह जल मलीन अरु शूकरादि मृगोंकरके आवृत होने से पानकरने के योग्य नहीं अरु यह बदरीआदि फल पक्षियों के उच्छिष्टहोने से भक्षण करने के योग्य नहीं, अरु यह पृथिवी कंटकादिकों करके युक्त होनेसे विश्रामके योग्य नहीं, अब क्या करिये। हे सौम्य इस प्रकार जब उन जल फलादिकों को अवलोकनकर उस राजकुमारने अपने मन्त्री से कहा तब तिसको श्रवण कर वो मन्त्री हँसताहुआ कहने लगा कि हे महाराज यहां तो यही जल फलादिक हैं जो आपको अपने प्राणकी रक्षा करनी है तो इनको खान पानकर प्राणको राखिये आगे जो आपकी इच्छा हे सौम्य इस प्रकार जब उस विवेकवान् मन्त्रीने उस राजकुमारसे कहा तब वो क्षुधा तृषाकरके अतिव्याकुल राजकुमार उस महामलीन जलको अरु पक्षियों के उच्छिष्ट फलको खान पान करत सन्ते अपने चक्रवर्ती राजापने के खान पानके स्वाद सुख का अनुभव कर आपही आप कहने लगा कि देखो कहां यह मृगों के मूत्रादि करके मिश्रित महामलीन जल अरु कहां वो सुवर्ण के पात्रमें भरे सुगंध करके मिश्रित मधुर शीतल गंगाजल अरु कहां यह पक्षियों के काटे उच्छिष्ट कच्चे खट्टे फल अरु कहां वो मधुर २ आम्रादि फल अरु सुन्दर घृत मिश्री करके बनाये दिव्य पकवान, अरु कहां इस कंकर कंटकमय पृथिवी ऊपर का विश्राम अरु कहां उस सुन्दर सुवर्ण के रत्नजटित शय्या सिंहासनके अतिकोमल चिक्कण पाटमय बिछौनोंपर का विश्राम, अरु कहां यह कंटकमय महाभयंकर अरण्यमें प्रवेश करने जन्य क्लेश अरु कहां वो अपने गृह राज्य पदपर शान्तता से विश्राम

करने जन्य सुख। हे सौम्य इस प्रकार वो राजकुमार उक्तप्रकार के अरण्यके जल फलादिकोंको अपने प्राणकी रक्षाके अर्थ अनिच्छता से खानपानके निमित्त से अपने गृहके उत्तम खानपानके स्वाद सुखका अरु वनमें प्रवेशकर दुःख भोगके निमित्तसे अपने गृहनिवास राज्यसुखका अनुभवकर उस मन्त्री से कहनेलगा कि हे मन्त्रिन् आजपर्यंत मुझको अपने स्वाभाविक राजपदका सुख स्वभाव भूतहोनेसे विशेष करके अनुभव नथा कि राजपद सुख ऐसा होताहै परन्तु अब इस अरण्यमें प्रवेश करने से दुःख पाया तब उस अपने स्वाभाविक राजसुख का सम्यक् प्रकार अनुभव हुआहै। तब मन्त्री ने कहा कि हे महाराज पूर्व आप ने मुझसे प्रश्न किया था कि यह सर्व प्रजा जिस सुखको इच्छतीहै सो सुख क्या वस्तु है, हे महाराज तिस सुखके प्रत्यक्ष आपको अनुभव करावने के अर्थ मैं इस अरण्य में आवने के समय आपके अर्थ खानपान की सामग्री गृह से कुछ भी न लाया तिस कारण से आपने इन जल फलादिकों के खानपान करने से खेद पाया ताते मुझकृत अपराध को आप क्षमाकरिये॥ हे सौम्य इस उदाहरण कहने का अभिप्राय यह है कि यह जीव यावत् दुःखको जानता नहीं तावत् उसको सुखका यथार्थ अनुभव होता नहीं यह नीति है, ताते वो सत् चैतन्य देव अपने स्वरूप भूत स्वाभाविक सामान्य आनन्दको विशेषतासे अनुभवकरने की इच्छा से अपने बिषे नामरूपकी विशेषतारूप द्वंद्वको (जो कि वाचारंभणमात्रहै) खड़ाकर पुनःतिस बिषे आप अपने आभासरूप से प्रवेशकर तिसबिषे दुःख भोग के हुए निमित्त से अपने स्वरूप भूत सामान्य आनन्दको विशेषतासे यथार्थ साक्षात् अनुभव करता है। अतएव उस सत् चैतन्य सर्वज्ञ देव ने अपने स्वरूपानन्द को विशेषता से अनुभव करने के अर्थ जानबूझके इस दुःखास्पद प्रपंच में प्रवेश करने की इच्छा किया है-॥ हे सौम्य इस चिदाभास जीवको जो

कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि है सो तेजादि महाभूतोंके सूक्ष्म कार्य बुद्धि आदिको संसर्ग जनित है, जैसे आदर्शबिषे पुरुषका अरु जलादि बिषे सूर्य्य का प्रतिबिम्ब होता है तिनबिषे जो मलिनत्व वक्रत्व कम्पत्व आदि धर्म क्रिया भासते हैं सो दर्पण जलादिकों के संसर्ग से भासते हैं स्वरूप से नहीं, अरु उस सत् चैतन्यका आभास (चिदाभास) बुद्धि आदि को साथ मिलने करके अपने वास्तविक बिम्बरूप सत्यस्वरूपके अविवेकरूप निमित्तसे अपने बिषे जीवकी वाच्यताको पायके मैं सुखी दुःखी कर्त्ता भोक्ता पापी पुण्यी स्वर्गी नारकी मूढ़ पंडित, इत्यादि प्रकार मानके अहंकार करताहै। अथवा उक्त निमित्तसे अपने वास्तविक स्वरूपके यथार्थ ज्ञानविषयक अविवेकता करके यह सत् चैतन्यदेवका आभास जहां जिस उपाधि साथ मिलाहै तहां तिस उपाधि के धर्म कर्म अपनेबिषे मानके सोई सो अहंकार करता है अर्थात् ईश्वरकी उपाधि साथमिलके ईश्वरका अहंकार करता है, हिरण्यगर्भकी उपाधि साथमिलके हिरण्यगर्भका विराट्की उपाधि साथमिलके विराट्का अहंकार करताहै, अरु तैसेही विश्व तैजस प्राज्ञकी उपाधि साथ मिलके विश्व तैजस प्राज्ञका अहंकार करताहै। अरु तैसेही पशु पक्षी सिंह सर्प श्वान शूकर शृगाल वृक चूहा चेंटी चाण्डाल मशक कीट पतंग वृक्ष पाषाण आदि स्थावर जंगम जिसजिस उपाधि साथ चिदाभासमिला तिस तिसके धर्म कर्म अपने बिषे मान तिसका अहंकार करताहुआ कि यह मैं हों यह मेरा धर्म कर्म है। इसप्रकार उस सत् चैतन्यदेवका प्रतिबिम्ब चिदाभास प्रपंच साथ मिलके अपने बिषे अनेक प्रकारके अहंकार को धारताहै ॥ सो भी केवल छायामात्र जीवरूपसे प्रवेश करने से है नतु उस सत् चैतन्यदेवको स्वरूपसे, वास्तवकरके तो उस सत् चैतन्यदेवको देहादिक अरु तिनके धर्म कर्मादिक तिन सर्व के संसर्ग सम्बन्ध रंचकमात्रभी नहीं। वो तो सदा सर्वदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्व से असंग नित्य निर्विकारही

है। जैसे पुरुष सूर्य्यादि दर्पण जलादि विषे अपनी छायामात्रसे प्रवेशपावने करके दर्पण, जलादिकों के मलिनत्व कम्पत्वादि विकारों से संसर्ग सम्बन्धको पावते नहीं। तैसेही सत् चैतन्य देवभी अपनी छायामात्रसे बुद्ध्यादि उपाधियों बिषे प्रवेश करने से आप उनके धर्म कर्मादिकों से रंचकमात्र भी संसर्ग सम्बन्धको पावता नहीं॥ तथाच। "सूर्य्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यतेचाक्षुषैर्बाह्यदोषैरेकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोक दुःखेन बाह्य"। "आकाशवत् सर्व गतश्च नित्य, इति काठके"। "ध्यायतीवलेलायतीव"। इत्यादि वाजसनेयके॥:- हे सौम्य अब इसको और प्रकारसे भी श्रवणकरो। उस सत् चैतन्यदेवने अपने स्वाभाविक सामान्य स्वरूपानन्दको विशेषतासे अनुभव करनेकी कामनारूप हेतुसे अपने बहुत होनेकी इच्छाकर इस दुःखास्पद नामरूपात्मक द्वंद्व को जो केवल वाचारंभणमात्रही है, रचके तिसबिषे अपने आभास आत्मारूप से प्रवेश करता हुआ क्योंकि दुःख के अनुभवरूप निमित्त विना सुखका यथार्थ अनुभव होवे नहीं। अरु प्रवेश करके शरीर प्राण इन्द्रिय बुद्ध्यादिरूप वस्त्र भूषण पहिर अर्थात् तिन करके आवृतहोय जीवका वाच्यरूप स्वांग धारणकर जीवस्वरूपा विद्या के अनुसार 'धन पुत्र स्त्री जीवन कर्म उपासना ज्ञानलोक परलोक पाप पुण्य स्वर्ग नरक सुख दुःख क्षुधा पिपासा राग द्वेष मान अपमान हर्ष शोक आदिकोंकी चिंतवनाकर तिनकी दृढ इच्छा वा कामनासे इस संसाररूप मंडप बिषे नृत्य करनेलगा, अरु उक्त मंडप बिषे नृत्यकरते करते थकके जब दुःखितहुआ अरु वारंवारके गर्भवास जन्म जरा मरणके अचिंत्य अपार दुःखोंका भानहुआ तब तिस दुःखकी अशेष निवृत्ति पूर्वक सुख प्राप्तकी इच्छाधार अज्ञानी बहिर्मुख पुरुषोंके वाक्य प्रमाण किसी जगह अग्निहोत्रादि कर्मकरनेलगा किसीस्थानमें उपासना करनेलगा कहीं समाधि करके सुख माननेलगा, कहीं वेदाध्ययन से सुख

माननेलगा, किसी जगह तीर्थयात्रा वा तीर्थ में निवासकर सुख माननेलगा, कहीं देवी देवताके जप पाठ पूजनादि करनेसे सुख मानने लगा, कहीं तन्त्रोक्त उपासना मद्यपानादि करके सुख माननेलगा, कहीं भूत प्रेतादिकोंकी उपासनाकर सुख मानने लगा, कहीं वर्णाश्रमकी धर्म्ममर्य्यादा पालनेकरके सुख मानने लगा, कहीं तिसके त्यागने से सुख माननेलगा। हे सौम्य इत्यादि प्रकार सत् चैतन्यदेवका आभासरूप जीव बुद्धयादि उपाधियों के संसर्गजनित अपने स्वरूपानन्द सम्बन्धी अविवेकता करके दुःखितहोय दुःखकी निवृत्ति अरु सुखकी प्राप्ति के अर्थ कर्मपने आदिक अनेक स्वांगोंकोधार कर्मादि अनेक उपायों के करने रूप नृत्य करताहुआ परन्तु दुःखकी निवृत्ति पूर्वक इच्छित सुख प्राप्त न हुआ क्योंकि उक्त सर्व उपाय अविद्या के कार्य बहिर्मुख कर्तव्यतारूपहोने से संसार प्रापकही हैं ताते॥ हे सौम्य समूल दुःख की निवृत्ति पूर्वक परमानन्द की प्राप्ति केवल एक स्वस्वरूप के यथार्थ अनुभव ज्ञानसेही होती है अन्य कोई प्रकार से भी नहीं अरु तिसका परम उपाय ,तत्त्वमस्यादि, महावाक्योंका यथार्थ ज्ञानहीहै।"नान्यःपन्थाअयनाय"।"नान्यः पन्था विमुक्तये।"॥ शंका ॥ हे भगवन् पूर्व आपने कर्तृत्व भोक्तृत्वादि सर्व चिदाभास बिषे कहे हैं, अरु उसके बिम्बरूप सत् चैतन्यदेव को कर्तृत्व भोक्तृत्वादिकोंसे रहित सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव कहाहै, परंतु हे भगवन् जैसे प्रतिबिम्ब की क्रिया पुरुष बिषे जाती है तैसेही चिदाभास की क्रिया भी उस सत् चैतन्य देवबिषे जाती होवेगी क्योंकि इस जाग्रत् के शरीर की छाया जो स्वप्न शरीर तिसको स्वप्नबिषे जब सिंह सर्पादिकों का भयहोता है तब उस शरीर में भयजनित कम्पत्वादिकों के तीव्र संवेग होने से इस जाग्रत् के शरीरबिषे भी कम्पत्वादि होते देखते हैं। तैसेही चिदाभासबिषे हुए जे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि सो भी उससत् चैतन्यदेवबिषे अवश्य जाते होवेंगे ॥ समाधान ॥ हे सौम्य स्वप्न

शरीर है सो इस शरीर की छायाहोवे ऐसा प्रमाण अरु नियम नहीं क्योंकि स्वप्न में यह पुरुष कभी आपको मनुष्य कभी पशु कभी पक्षी इत्यादि देखताहै ताते, अरु स्वप्न शरीर वासना के अनुसार होता है ताते भी इसकी छाया नहीं । हे सौम्य स्वप्न शरीर का विशेष विचार तहां होगा जहां कहीं स्वप्नका निर्णय होवेगा क्योंकि यहां प्रसंग दूसरा है ॥ हे सौम्य अब सावधान होके श्रवण करो । हे प्रियदर्शन तुम जिस चिदाभासकी क्रिया सत् चैतन्यदेव बिषे प्राप्तहोती मानते हौ सो चिदाभासभी अक्रिय सत् चैतन्यदेवका प्रतिबिम्ब होनेसे स्वरूप करके बिम्बवत् अक्रिय निर्विकारही है क्योंकि वास्तव करके प्रतिबिम्ब बिम्ब के धर्मवालाही होता है ताते अरु जो अन्यथा भासताहै सो उपाधि के संसर्ग सम्बन्ध से भासताहै । हे सौम्य जैसे कड़ाह में भरेहुए अग्नि करके तपायमान अतिउष्ण तेल बिषे पुरुष का प्रतिबिम्ब पड़ता है, परन्तु तहां भी विचार करके देखिये तो वास्तव करके उस तेलके जलने घटने से प्रतिबिम्ब जलता घटता नहीं क्योंकि तेल तो जलने से घटता है परन्तु तिसके साथ प्रतिबिम्ब का कोई भी अवयव वा अंश घटता नहीं किन्तु आदि से अन्तपर्यन्त ज्यों का त्यों एकरसही रहताहै । अरु जो कदापि उस तेलके जलनेके साथ वो प्रतिबिम्बभी जलता होवे तो तेलके अंश घटनेवत् प्रतिबिम्बके अंश भी घटने चाहिये परंतु सो घटता नहीं एतदर्थ वो जलता भी नहीं अरु जिस करके वो तेलके जलने घटने के साथ जलता घटता नहीं तिसही करके तेलके संसर्ग सम्बन्धवाला भी नहीं, हे सौम्य जब वो प्रतिबिम्बही अपनी उपाधि अरु तिनके धर्म्म से सम्बन्धवाला नहीं, अर्थात् जब उपाधि के धर्म्म क्रिया उपाधि विशिष्ट प्रतिबिम्ब बिषेही वास्तव करके जाती नहीं तब तिसका बिम्ब बिषे जाना तो किसी प्रकारसे भी संभवे नहीं।हे सौम्य उक्त दृष्टान्त प्रमाणही बुद्ध्यादि उपाधि विशिष्ट जो सत् चैतन्यका प्रतिबिम्ब

चिदाभास तिसबिषे बुद्धयादिकों के जे कर्तृत्व भोक्तृत्व पाप पुण्य राग द्वेष सुख दुःख शोक मोह क्षुधा पिपासा जन्म मरण आदि धर्म्म सो वास्तव करके जाते नहीं गयेवत् भासते हैं सो भ्रांतिहै, क्योंकि सो चिदाभासतो सत्यत्व चैतन्यत्व आनन्दत्व अक्रियत्व अविकारित्वआदि बिम्बधर्माहै ताते। हे सौम्य उक्तविचार प्रमाण जब उपाधि विशिष्ट चिदाभासही अपनी उपाधि के धर्म्म कर्म संसर्ग सम्बन्ध से असंगहै अरु "असंगोह्ययंपुरुषः" "नलिप्यते कर्मणापापकेनेति" "नैनंछिंदंति शस्त्राणि" इत्यादि श्रुति स्मृति भी तैसाही कहती है, तब उपाधि से पृथक् अविशिष्ट बिम्बरूप शुद्ध सत् चैतन्य अक्रिय देवबिषे उपाधिके धर्म कर्मादिकों के संसर्ग सम्बन्धादिकों की प्राप्ति माननी अरु कहनी केवल अविचारितही है। हे सौम्य जो कदापि सत् चैतन्यदेवका आभास जीव वास्तवकरके विकारीहोता तो उसकी सत्चैतन्यदेवके साथ अभेद एकता श्रुति कदापि न कहती सो तो आगेश्रुतिने "तत्त्वमसि" वाक्य करके आभासरूप जीवकी अरु बिम्बरूप सत् चैतन्यदेवकी एकता कही है एतदर्थ भी वास्तव करके यह चिदाभास निर्विकारही है॥ शंका॥ हे भगवन् आप जिस सत्चैतन्यदेवको निर्विकार अक्रिय कहते हौ तिस बिषे भी हमको क्रिया दृष्ट आवती है क्योंकि अहंकार विना क्रिया होती नहीं अरु अहंकार चैतन्य बिना होता नहीं अरु सत्चैतन्यदेवसे इतर चैतन्य कोई है नहीं, अतएव समस्त ब्रह्मांडकी पाप पुण्यादि रूप क्रिया उस सत्चैतन्यदेव बिषेही प्राप्त होती है, अरु जीवतो क्रिया का स्वरूपही है। ताते आप उस सत् चैतन्यदेव अरु तिसके आभास को अक्रिय निर्विकार कैसे कहते हौ सो कृपाकरके फेर कहौ॥ समाधान॥ हे सौम्य वो सत् चैतन्यदेव सदा निर्विकार अक्रिय ही है वो न कुछ आप करता है न उस बिषे किसी की क्रिया जाती है। हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त और कहते हैं तिसको भी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन जैसे कोई एक पुरुष अपने भोज-

नार्थ बटलोई आदि पात्रमें जलभर तंदुल आदि अन्न डाल अ-ग्नि पर चढ़ाय उसको पचावता वा राँधता है तहां जब वो अन्न अतिउष्ण होय उबलता है तिस समय जो वो पुरुष उसको केवल अपने हाथही करके हिलावे तो उसका हाथ जले अरु न हिलावे तो पाक सिद्ध न होय अरु अब ऐसा होय तब वो पुरुष भूखा ही रहै । अतएव उस पुरुषने प्रथम विचार के अपने हाथ के बचावने अरु पाक क्रिया के सिद्ध होने के अर्थ मध्यमें एक कड़छुल (चम्मच) को रक्खा तब तिसके होने से उस पुरुषका हाथ भी न जला अरु क्रिया भी सर्व सिद्धहुई । हे सौम्य तैसेही उस सत् चैतन्यदेवने अपने महत्त्व स्वरूपानन्द के विशेष अनु-भव करने की इच्छा किया तब प्रथम अपनी इच्छा रूपा माया साथ मिल विचार किया कि सृष्टि की रचनादिक क्रिया मुझ निर्विकार अक्रिय स्वभाव बिषेतो बनती नहीं अरु न केवल इस इच्छारूपा माया बिषे बनतीहै क्योंकि यह जड पराधीन है, औ संकल्प हमारा अपने महत्त्व स्वरूपानन्दको विशेषता से अनुभव करने का है सो नामरूप क्रियात्मक द्वंद्वरूप प्रपंच के खड़े किये विना होवे नहीं क्योंकि प्रतियोगी द्वंद्वरूप विशेषता के निमित्त विना निर्विशेष वस्तुका विशेषता से अनुभव होवे नहीं । अतएव अब ऐसा करना चाहिये कि जिसकरके अपना संकल्प भी सिद्धहोवे अरु लीला भी देखी जावे अरु अपने ज्योंके त्यों निर्विकारभी रहैं । हे सौम्य इसप्रकार विचारके उस चैतन्यदेवने क्रियाकी सिद्धिवास्ते अपने अरु मायाके मध्य कड़छुलवत् चिदा-भास संज्ञक अपने आभास को खड़ाकर पुनः उसको अपनी इच्छारूपा माया बिषे डाल उस माया से नामरूप क्रियात्मक सर्व प्रपंच खड़ाकराया अरु तिसकी विचित्र लीला को आप साक्षीवत् देखता हुआ, अरु आप उस सर्वसे पृथक् निर्विकार अक्रिय भी रहा, अरु तिस वाचारंभणमात्र अतितुच्छ नामरूप क्रियात्मक अति दुःखास्पद द्वंद्वरूप प्रपंचकी निमित्तता से चिदा-

भासद्वाराही तिस द्वंद्वप्रपंच से विपरीत अपने अद्वय सत् चैतन्य आनन्दघन निर्विशेष स्वरूपको अहं ब्रह्मास्मि भावरूप विशेषता से अनुभव कर अपने आप अलौकिक सर्वसे विलक्षण महत्त्वको देखता (अनुभव कर्ता) हुआ ॥ हे सौम्य वो सत् चैतन्यदेव सदा निर्विकार अक्रियही है वो क्रियावान् विकारी कदापि होता नहीं। अरु अहंकारादि अन्तःकरणके धर्म्म हैं शुद्ध आत्मा के नहीं अरु अन्तःकरण अविद्या का कार्य होनेसे स्वरूप करके जड़ है जब उसबिषे चैतन्य आत्माका आभासप्रवेशकरताहै,तब साभास हुआ अन्तःकरण अहंकारादि वृत्ति पूर्वक इन्द्रियों साथ मिल कर्तृत्व भोक्तृत्वादि क्रिया बिषे प्रवृत्तहोता है, तिन सर्वको अन्तः-करण विशिष्ट चेतन (चिदाभास) अपने बिषे मानता है ताते शुद्ध सत् चैतन्यदेव अपने स्वरूप करके अहंकारादि विकार उपाधि से रहित सदा शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव आनन्द घनही है॥ शंका॥ हे भगवन् जैसे जब बालक फेरी (चक्कर) देके भ्रमता है तब उसको गृहादि सर्वही भ्रमता भासता है, अरु कहता है कि यह सर्व भ्रमता है, परन्तु भ्रमता तो वो आप है अरु जिसको वो भ्रमता मानता है सो नहीं भ्रमता। हे प्रभो तैसेही सत् चैतन्यदेव सर्व क्रिया बिषे आपही है तब आप उसको अक्रिय निर्विकार कैसे कहते हो सो कृपा करके पुनः कहिये ॥ समाधान॥ हे सौम्य अब इसको भी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन उस बालक के भ्रमने से उसका अन्तःकरण वा चक्षु भ्रमता है अरु जब वो बालक भ्रमने से रहित होता है तब तिसके सम कालही उसके अन्तःकरण वा दृष्टिके स्थिर न होने से उसको सर्व भ्रमताहै भासता परन्तु उस कालमैंभी जो अन्तःकरण वा दृष्टिके भ्रमणका प्रकाशक साक्षी आत्माहै सो भ्रमता नहीं क्योंकि जो वो भी भ्रमता होय तो अन्तःकरण वा चक्षुके भ्रमणको अरु तिसके निमित्तसे भ्रमते भासमान जे अन्य गृहादिक तिस के भ्रमण को साक्षी होय के प्रकाशे कौन क्योंकि जो भ्रमण-

दिक क्रियावान् होगा तिसको साक्षित्व बने नहीं । ताते हे सौम्य बालक के भ्रमण कालमें भी उसके अन्तःकरण चक्षुरादिकों के भ्रमण अरु अभ्रमण (स्थिरता) का जो साक्षी आत्मा है सो कदापि भ्रमता नहीं "। अचलोयं सनातनः"। उस विषे जो भ्रमण भासता है सो भ्रम करके भासता है, तैसेही सर्वके प्रकाशक निर्विकार अक्रिय आत्मा विषे जो अहंकारादि क्रिया भासती है सो भ्रम करके भासती है वास्तव से वो अक्रिय ही है :—: ॥ शंका ॥ हे भगवन् जैसे वाचारंभणमात्रत्व करके जीवको असत्यता की प्राप्ति है, तब तैसेही यह लोक परलोकादिक सर्वही मिथ्या हुआ, तब श्रुति शास्त्र ऐसा क्यों कहते हैं कि इस जीवको इस कर्म से स्वर्गलोक की अरु इस कर्म से नरक लोक की अरु अमुक कर्म्म से इस लोक की प्राप्ति होती है ॥ समाधान ॥ हे सौम्य यह दोष नहीं क्योंकि सत्चैतन्य सर्वाधिष्ठान आत्माकी सत्यताका अंगीकार है ताते । हे सौम्य सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यदेवकी सत्यता से तिस विषे अध्यस्त समस्त नामरूप क्रियात्मक यह लोक परलोक जीवादि सर्व सत्यही है, अरु उन अध्यस्थोंकी पृथक् सत्ताके अभावसे आभासादि सर्व विकार प्रपंच "वाचारंभणं विकारो नामधेयं"। इसश्रुतिवाक्य करके असतही है ॥ अर्थात् अधिष्ठानकी सत्यतासे सर्व अध्यस्त प्रपंच सत्यहै तो आभास भी सत्यहै, अरु जो अध्यस्त प्रपंचकी पृथक् सत्ताके अभाव से सर्व प्रपंच वाचारंभणमात्रही है तो आभास (जीव) भी वाचारंभणमात्रही है ॥:— हे भगवन् कोई एक आचार्य इस जीवको लोक परलोक के आश्रय कहते हैं अरु लोक परलोकको जीव के आश्रय कहते हैं, अर्थात् लोक परलोक को अरु जीवको अन्योन्य आश्रय कहते हैं, अरु आपजीव को सत् चैतन्य के आश्रय कहते हो, अरु आपने सत् चैतन्य अरु तिसका आभास जीव इन दोनों को वास्तव करके निर्विकार ही कहाहै । हे प्रभो जब यह ऐसेही हैं तब यह लोक परलोक

वेदशास्त्र आचार्य जीव ईश्वर गुरु शिष्य कर्म्म उपासना पाप पुण्य स्वर्ग नरक आदि सर्वही मिथ्याहुए,॥समाधान॥ हे सौम्य जिस समय यह पुरुष श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से तत्त्वमस्यादि महावाक्योंको क्यों श्रवणकर अपने वास्तविक सच्चिदानन्द अद्वयस्वरूपको यथार्थ अनुभव दृष्टिसे देखताहै तिस समय अपने वास्तविक सत् चैतन्य सर्वाधिष्ठान स्वरूप बिषे अध्यस्त जे आभासत्वादि लोक परलोक वेदशास्त्र जीव ईश्वर गुरु शिष्य कर्म उपासना पाप पुण्य आदि सर्व असत्ही होताहै । तथाच "अत्र पिताऽपिताभवति माताऽमाता लोकाऽलोका देवाऽदेवा वेदाऽवेदाः। इत्यादि" अन्य श्रुतियोंके प्रमाणसे। अरु जब यहजीव अपने जीवत्व भाव से प्रपंचकी ओर दृष्टि करताहै तब तिस समय इसको लोक परलोक वेद शास्त्रजीव ईश्वरगुरु शिष्यकर्म्म उपासना आदि पृथक् २ नाना प्रपंच सत्य है। हे सौम्य जैसे यावत् यह पुरुष स्वप्न में होताहै तावत् उसको स्वप्नका शुभाशुभ सर्व प्रपंच सत्यही होताहै तिस अवस्था में यह नहीं जानता जो मैं यह स्वप्न देखताहौं यह सर्व असत्य है, अरु जब जाग्रदवस्थाको प्राप्त होता है तब अपने स्वप्नके देह सहित स्वप्नके सर्व प्रपंचको मिथ्या देखत सन्ते एक अपने आपको स्वप्नादिकों का साक्षी सत्यरूप देखता है। हे सौम्य तैसेही यह जीव यावत् अपने वास्तविक सत् चैतन्य स्वरूप बिषे यथार्थ अनुभव रूपसे जागता नहीं तावत् अविद्या दोषकरके उसको लोक परलोकादि सर्वप्रपंच सत्यहीहै। अरु जब स्वरूपकी ओर आचार्य द्वारा वेद वाक्यों का जगाया जागताहै, तब लोक परलोकादि सर्व नामरूप क्रियात्मक प्रपंच स्वप्नवत् मिथ्याही देखताहै। हे सौम्य यहसर्व इसकीवृत्तिके आश्रयहै जहां जैसी वृत्तिसे देखताहै तहां तैसाही भासताहै। अरु जब अपनी सर्ववृत्तिको आपबिषेलय करता है तब सत् असत् जड़ चैतन्य भाव अभाव इत्यादि सर्वके अभावसे अस्तिमात्र अनिर्वाच्य अपना आप ज्योंका त्यों है-:२॥

तासां त्रिवृतंत्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयंदेवते मास्तिस्त्रोदेवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ३॥

अक्षरार्थ॥

तिन तीनों देवताओं (तत्त्वों) के तीन तीन विभाग करके एक एक का त्रिवृतकरण करना चाहिये। इसप्रकार विचारके सो सत् चैतन्य देव इनतीनों देवताबिषे यथोक्त जीवरूपसे आप प्रवेशकर नामरूपको प्रकट करताहुआ ३॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका॥

हे सौम्य, तिसके अनन्तर शब्दात्मक सर्वव्यवहार विकारोंका सत् चैतन्य सर्व्वाधिष्ठान के सत्यत्व से सत्यपना, अरु सत्य अधिष्ठान से इतर अध्यस्तपने करके मिथ्यापना युक्तही है, इस में कोई भी दोष नहीं। यहां तार्किकलोग कुछ भी कहने को शक्य नहीं। हे सौम्य [यह जो तार्किक कहतेहैं कि (हे वेदान्तिन् जो तुम) प्रपंच को मिथ्या मानोगे तो तुम्हारी सौगत मतमें अनुमति होवेगी अरु जो तुम प्रपंच को सत्यमानोगे तो तुम्हारे अद्वैतमतकी हानिहोवेगी। सो उक्तप्रकार के न्यायकरके उनका कथन मिथ्याही है]क्योंकि उनका जो कथनहै सो श्रुति प्रमाण से रहित स्वबुद्धि की कल्पना का है, अतएव हम उनको अतत्त्वनिष्ठ कहने को शक्य हैं॥ हे सौम्य सो चैतन्यदेव उक्तप्रकार विचार करके पुनः विचार करताहुआ कि तिन तीनों देवताओंका एक एक का त्रिवृत त्रिवृत (तीन तीन विभागकरके) त्रिवृत करणकरो, क्योंकि इनके अत्रिवृत करणबिषे सर्व नामरूप छिपे हुए हैं सो त्रिवृत करण होनेसे पृथक् २ प्रकट होवेंगे,अरु इन तीनों देवताओंका अमिश्रित पृथक् २ त्रिवृत करण होनेसे रज्जुवत् एक सम त्रिवृत करण होवेगा, अर्थात् रज्जुबिषे एक मुंज नामक वस्तुकाही त्रिवृत करण त्रिबली है, तैसे होनेसे एक एक

वस्तुबिषे तीनों तत्त्वोंका पृथक् २ नामरूप प्रकट न होवेगा, ताते प्रथम तीनों तत्त्वोंका तीन तीन विभाग करके पश्चात् तिनका मिश्रित त्रिवृत करण करना चाहिये ॥ :-अर्थात् एक तत्त्वका मुख्य भागलेके तिसमें अन्य दो तत्त्वोंका थोड़ा थोड़ा भाग मिलाय तीनोंका पृथक् २ त्रिवृत करण होनेसे सर्व के नामरूप पृथक् २ प्रकट होवेंगे कि यह मुख्य तेजतत्त्व के त्रिवृत करणका नामरूप कार्य्यहै, यह मुख्य जल तत्त्वके त्रिवृत करण का नाम रूप कार्य है, यह अन्न (पृथिवी) तत्त्व के त्रिवृत करण का नाम रूप कार्य है, अरु ऐसा होने से एक एक वस्तुबिषे तीनों तत्त्वोंका नामरूप प्रकट होवेगा-: ॥ हे सौम्य इसप्रकार वो सत् चैतन्य देव विचार के इन तेज जल अन्न (पृथिवी) तिन देवता बिषे इस ही अपने आभास जीवरूपसे सूर्य के प्रतिबिम्बवत् अन्तः प्रवेश करके प्रथम विराट् सम्बन्धी देवता पिण्डबिषे (अर्थात् विराट् देहके अवयवरूप प्रकाशवान् देवताबिषे) प्रवेश करके जैसा अपना पूर्वका संकल्पहै कि मैं सर्व के नामरूपको पृथक् २ प्रकट करों तैसाही करताहुआ॥:-हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार इच्छाकरके पुनः वो सत् चैतन्यदेव विचारताहुआ कि अब इन तीनों तत्त्व रूप देवताओं को प्रथम पृथक् २ त्रिधाकरना चाहिये पश्चात् इन तीनों का त्रिवृत करण करना चाहिये क्योंकि इन तीनों तत्त्वोंके अत्रिवृत करण बिषे सर्व के नामरूप छिपेहुए हैं जब इन तीनों का पृथक् २ त्रिवृत करण होवेगा तब सर्व के नामरूप पृथक् २ प्रकट होवेंगे। जैसे बटके महासूक्ष्म बीजबिषे वृक्षका नामरूप छिपाहोताहै तैसेही इन सूक्ष्म भूतों के अत्रिवृतकरण बिषे सर्व ब्रह्माण्डका नामरूप छिपाहुआहै। अतएव इन तीनों के त्रिवृत करण (मिश्रित) हुये विना सर्व ब्रह्माण्डका नामरूप पृथक् २ प्रकट होनेका नहीं। इस प्रकार विचारके वो सत् चैतन्य देव अपने आप आभास रूपसे उक्त तीनों देवताओं बिषे प्रवेश करताहुआ -:॥ ३ ॥

तासां त्रिवितं त्रिवितमेकैकामकरोद्यथा तु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मेविजानीहीति ४ इतितृतीयखण्डः ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिन देवताओं का त्रिवृत त्रिवृत (तीन तीन विभाग) एकएकका करताहुआ। हे सौम्य जैसे तो निश्चय करके तीनों देवता का एक एक त्रिवृत त्रिवृत हुएहैं तिनको मेरेकहे प्रमाण विदृष्ट जानो ४ ॥ इति तृतीयखण्डः ३ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य, वो सत् चैतन्यदेव उक्तप्रकार विचार पश्चात् तेज जल पृथिवी इन तीनों अत्रिवृत कृत देवता बिषे प्रवेश करता हुआ। पश्चात् उन तीनों तत्त्वोंके तीनतीन विभाग करता हुआ तहां प्रथम एक एक तत्त्वके दो दो विभाग किये, तदनन्तर उन दो दो भागोंमें से एक एक भागको जुदारख एक एक के दो दो भाग करता हुआ। अर्थात् प्रथम तेज तत्त्व के दो विभाग किये तिनमें से एक अर्द्ध भागको पृथक् रख दूसरे अर्द्ध भाग के पुनः दो विभाग किये। तैसेही जल तत्त्व के प्रथम दो विभाग किये तिनमें से एक अर्द्ध भागको जुदारख दूसरे अर्द्ध भाग के पुनः दोविभाग किये। तैसेही पृथवी तत्त्व के प्रथम दो विभाग किये तिनमें से एकको पृथक् रख दूसरे अर्द्ध भाग के पुनः दो विभाग किये। इस प्रकार सत् चैतन्यदेवने तेजादि तीनोंतत्त्वों विषे अपने आभास रूपसे प्रवेश कर अपनी इच्छानुसार उन तीनों तत्त्वोंके उक्त प्रकार तीनतीन विभागकिये, तिसके पश्चात् उनका त्रिवृत करण करता हुआ, तहां तेज तत्त्व का जो अर्द्ध भाग है तिसमें जल तत्त्व अरु पृथिवी तत्त्व के अर्द्धभाग के दो दो भागों में से एक एक भाग मिलावता हुआ। पश्चात् जल तत्त्व के अर्द्ध भाग को मुख्यकर तिसमें तेज तत्त्व के अरु पृथिवी

अथ षष्ठप्रपाठके चतुर्थ खंडः॥

यदग्ने रोहितछं रूपंतेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां य
त्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्ने अग्नित्वं वाचारम्भणं विका
रोनामधेयं त्रीणिरूपाणीतिसत्यम्॥ १॥ यदादित्यस्य
रोहितछंरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्न
स्यापागादादित्यादित्यसादित्यत्वं वाचारम्भणंविकारो
नामधेयं त्रीणिरूपाणीति सत्यम्॥ २॥ यच्चन्द्रमसोरो
हितछंरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्न
स्यापागाच्चन्द्राच्चंद्रत्वंवाचारम्भणंविकारोनामधेयंत्रीणि
रूपाणीति सत्यम्॥३॥ यद्विद्युतोरोहितछंरूपंतेजसस्त
द्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो वि
द्युत्वं वाचारम्भणंविकारो नामधेयं त्रीणिरूपाणीति स
त्यम्॥ ४॥

तत्त्व के अर्द्धभाग के दोदो भागोंमें से एक एक भाग मिलावता हुआ पश्चात् पृथिवीतत्त्व के अर्द्धभागको मुख्यकर तिसमें तेज तत्त्व अरु जलतत्त्व के अर्द्ध अर्द्ध भागों के दोदो भागों मेंसे एक एक भाग मिलावता हुआ॥ हे सौम्य इस प्रकार सत् चैतन्य परादेव अपनी इच्छानुसार सर्व नाम रूपको पृथक् २ प्रकट करने के अर्थ उक्त तीनों तत्त्वों का पृथक् पृथक् त्रिवृत करण करता हुआ, देवतादि पिण्डों का नाम रूपकरके व्याकृतों का (प्रकट हुओंका) तेज जल पृथिवीमयत्व करके त्रिधात्व जिस प्रकार तो निश्चय करके इस शरीर से बाह्य तीनों तत्त्व एक एकका त्रिवृत २ करण जिस प्रकार हुआ हैं तिसको मेरे कहे प्रमाण (कि जैसे मैं अग्रिम कहता हौं) उदाहरण से विस्पष्ट जानलेवो वा जानोगे॥ ४॥ इतितृतीयखंडः॥ ३॥

अक्षारार्थ ॥

जोअग्नि बिषे रोहित (रक्त वा लाल) रूप (रंग) है सो तेजका रूपहै, जो शुक्ल (श्वेत) ताहै सो जलका रूपहै, जो कृष्ण (श्याम) ताहै सो अन्न (पृथिवी) का रूप है । इन तीनों को पृथक् करने से अग्निबिषे अग्नित्व वाचा से आरम्भकिया विकार कहनेमात्रही है (अर्थात् उक्त तीनों रूपोंको , जो क्रमशः तीनों तत्त्वोंके हैं, पृथक् करने से अग्नि बिषे अग्नित्व विकार केवल कहनेमात्रही है । अरु उक्त तीनोंरूपहैं सोई सत्यहैं (सत् चैतन्यदेवका कार्य होनेसे) । इस प्रकारही , आदित्य, चन्द्रमा, अरु विद्युत्, इन तीनों बिषे भी, अरु अन्य सर्व नामरूपात्मक कार्य बिषे भी, जानलेना १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ भावार्थ खंड चौथेके मन्त्र चारका ॥

हे सौम्य, तहां यह कहते हैं । हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु जो इस लोक प्रसिद्ध अग्निबिषे अरुणतारूप (रूप उसको कहते हैं जो केवल चक्षु इन्द्रियों का विषयहोय,रंग) है सो अत्रिवृत्कृत तेज का रूपहै, ऐसाजानो । अरु तैसे पुनः उक्त अग्निबिषे जो श्वेततारूप है सो अत्रिवृत्कृत जलका रूपहै, ऐसाजानो । अरु जो उक्त अग्निबिषे कृष्णतारूपहै सो अत्रिवृत्कृत अन्न (पृथिवी) का रूपहै, ऐसाजानो । हे सौम्य जब ऐसाहै तब अग्नि से तीनों रूपोंको पृथक् होने करके उक्त तीनोंरूपों से व्यतिरेक (जुदा) करके जिस अग्निको तू मानताहै तिस अग्निका अग्नित्व जाता रहता है । अर्थात् उक्त रूपत्रयके विवेक होने से पूर्व जो तेज बिषे अग्नि बुद्धिरही सो रूपत्रयके विवेकहोने पश्चात् अभाव होजाती है । जैसे रक्त उपधान वा लालरंग करके युक्त दृश्यमान स्फटिकमणि यह पद्मराग (माणिकनामवाला रत्न) है इस शब्द बुद्धिकरके ग्रहण होताहै, सो लालरंगके उपधान (अर्थात् उपधान नाम बिछौनेकाहै परंतु यहां उपधान शब्दकरके उस रक्तवर्ण के डंकका ग्रहणहै कि जिसके श्वेतरंग के नगीने

के नीचे लगाने से श्वेतनगीना रक्तवर्ण का प्रतीत होता है) अरु स्फटिकमणिके यथार्थ विवेकहोने से पूर्व होताहै। अरु रक्त उपधान अरु शुद्ध स्फटिकमणि के यथार्थ विवेक होनेसे तो, यह पद्मरागहै, यह शब्द (कहना) अरु बुद्धि (जानना) निवृत्तहोता है। अर्थात् रक्त उपधान अरु स्फटिकमणि के सम्यक् विवेक होने से, यह पद्मराग है, ऐसा जो अविवेक जन्य कहना अरु मानना सो निवृत्तहोजाताहै। तैसेही अग्निविषे प्रत्यक्षभासमान रूपत्रय तिनके अविवेक से, यह अग्निहै, ऐसा जो कहना अरु मानना सो रूपत्रयकेयथार्थविवेककेहुए निवृत्तहोजाताहै॥शंका॥ ननु,यहां जो बुद्धिशब्दकी कल्पनाकरतेहौसोतिसकरकेक्याकरता है, ऐसा क्योंनहीं कहते कि रूपत्रयकेविवेकहोनेसे पूर्व अग्निहीहै तिस अग्निका अग्नित्व लोपितादि रूपत्रय के विवेक होने से निवृत्त होजाताहै,अर्थात् अग्निसे रूपत्रयके पृथक् होनेसे अग्नि के अग्नित्वका अभाव होजाता है जैसे पट से तन्तुओंके पृथक् करने से पटका अभाव होजाता है तैसे। इसप्रकार कहना युक्त है॥ समाधान॥ ऐसा नहीं किंतु बुद्धि शब्दमात्रही अग्नि है (अर्थात् रूपत्रय के अविवेक से ही अग्नि कहने जाननेमात्रहै) ऐसा श्रुतिका कहना है सो कहते हैं। अग्नि नामवाला जो विकार है सो विकार वाणीसे आरम्भ किया कहनेमात्रही है वास्तव से नहीं, अतएव अग्नि बुद्धि भी मिथ्याही है॥ प्रश्न॥ हे भगवन् जब अग्निविषे अग्नित्व केवल वाचारम्भणमात्रही है तब तहां सत्य क्याहै॥ उत्तर॥ हे सौम्य तहां रक्तादि तीनों रूपहीसत्यहैं (सत् चैतन्यका अन्वयकार्य होनेसे) उक्ततीनोंरूपों से पृथक् करके एक अणुमात्र भी सत्य नहीं,केवल वाचारंभण मात्रही होनेसे, ऐसा निश्चय धारनेके अर्थ मूलसे इति,शब्दहै॥ हे सौम्य जैसे यह अग्नि के अग्निपनेका विचार कहाहै तैसाही 'आदित्यके आदित्यत्वका,चन्द्रमाके चन्द्रत्वका,विद्युत्के विद्युत्त्व का, विचार जानलेना क्योंकि अग्नि आदि चारोंके बिषे श्रुति

का कहना समानही है ॥ शंका ॥ हे भगवन् " यथानुखलु सौम्ये मास्तिस्रो देवतात्रिवृत् त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति "। आपने, जैसे तो निश्चय करके तीनों देवता एक एकका त्रिवृत हुआ है तिसको मेरे कहे प्रमाण जानों, ऐसा कहाहै । परन्तु उक्त अग्नि आदिकोंके चारों उदाहरणों करके जो आपने त्रिवृत करण देखाया तिसमें एक तेजहीके रूप विषयको देखाया अथवा उक्त तीनोंका त्रिवृत करण केवल तेजोमयमें ही नहीं देखाया परन्तु जल पृथिवी का जो ,रस, गंध, विषय है सो आपने उक्त त्रिवृत करण बिषे वा उक्त प्रकार त्रिवृत करण जल अन्न बिषे नहीं देखाये ॥ समाधान ॥ [जो वापी कूपादि बिषे अरुणता है सो तेजकी है जो शुक्लताहै सो जलकी है, जो कृष्णता है सो अन्न (पृथिवी) की है। तैसेही ब्रीहि यवादिकों बिषे जो रक्तता है सो तेजकी है, अरु जो श्वेतताहै सो जल की है, अरु जो कृष्णता है सो पृथिवी की है इत्यादि उदाहरणोंका संभव होने से उक्त उदाहरणों बिषे कुछ भी न्यूनता नहीं, इस प्रकार वादी की शंका का परिहार करते हैं] हे वादिन यह दोष नहीं हे सौम्य (तेज तत्त्वके गुण रूपके साथ) जल अरु अन्नके गुणों का भी उदाहरण हुआ ऐसाही जानना चाहिये, इसप्रकार श्रुति मानती (कहती है) अरु अग्नि आदिक तेजवानों का जो उदाहरण कहा है सो उपलक्षणमात्र है परन्तु सर्वत्र जानना चाहिये । अरु तेजतत्त्वका गुण (तन्मात्रा) जो रूप तिसका स्पष्ट ग्रहण होता है, नेत्रका विषय होने से, अतएव अग्न्यादिकों के उदाहरणों बिषे तीनों तत्त्वोंके एक रूपके उदाहरण होने से एक तेज तत्त्व के गुण वा विषय का ही उदाहरण स्पष्ट है, गंध, रसका अन्न उदाहरण है, तीनों के उदाहरण के असंभव से । क्योंकि तेजके गुण, रस, गंध, होते नहीं ॥ः—अर्थात् तेज तत्त्व का गुण रूप है,रस, गंध, नहीं,अरु तेजतत्त्व का कार्य्य जल है तिसमें शुक्लतारूप कारण तेज का है अरु रस स्वयं जल

का गुण है। अरु जल पृथिवी का कारण है तिसं बिषे अपने कार्य का गुण गंध नहीं, अरु जलके कार्य्य पृथिवी बिषे रस गुण अपने कारण जल का है अरु गंध गुण स्वयं पृथिवी का है सो उसके कारण जलमें नहीं। अर्थात् जो कारण का गुण होता है सो उसके कार्यबिषे भी होता है, अरु जो स्वयं कार्यका गुण होता है सो कारण बिषे होवे नहीं॥ अरु जो तेज तत्त्वका गुण रूप है सो नेत्रों का विषय होने से स्पष्ट भान होता है, तैसे जल पृथिवी के जे विशेष गुण, रस, गंध, सो नेत्रों के विषय न होने से स्पष्ट इदं करके भान होवे नहीं, परन्तु उनके कारण तेजतत्त्वके गुण रूप के ग्रहणके साथ उन कार्यों के स्पष्ट गुणों का भी ग्रहण होता है (हे सौम्य यहां जो, रस, गंध की स्पष्टता कही है सो केवल उनको नेत्रों का विषयत्व न होनेमात्र जाननी नतु रसना घ्राणकरके तो सोभी स्पष्टही है) हे सौम्य अभिप्राय यहहै कि अग्नि आदि तेजवानों बिषे तीनों तत्त्वों के रूपों काही स्पष्ट उदाहरण होने से एक तेज तत्त्वकेही गुणका उदाहरण हुआ स्पष्ट भासे है, परन्तु श्रुतिने श्वेतता जलकी अरु कृष्णता पृथिवी की कही है, ताते जल पृथिवी की श्वेतता श्यामताके (जो कि उनके कारण तेजके गुणहैं) ग्रहण के साथही उनके स्वयं रस गंध गुणोंका भी ग्रहण होताहै, मंचाकर्षति न्यायवत्, ताते उक्त उदाहरणों बिषे जल पृथिवी के रूपके कथनके साथ उनके रस गंध गुणोंका भी कथनहुआ जानना—॥ हे प्रियदर्शन उक्त अग्नि आदिकों बिषे, शब्द, स्पर्श, जो आकाश अरु वायुके गुणहैं, तिनका भी अन उदाहरणही है, क्योंकि उन बिषे रूपके अभावहैं, यह शब्दकारूपहै, यह स्पर्शकारूपहै, इसप्रकारके बिभागको देखावने की अशक्यता है ताते॥—अर्थात् त्रिवृत्कृत अग्नि आदिकोंबिषे तेज जल पृथिवीके, रक्त, श्वेत, श्याम यह तीन रूप उदाहृत हैं, तैसे आकाश वायुके रूप उदाहृत नहीं, उनको अरूप होनेसे। परन्तु त्रिवृत्कृत जे अग्नि आदिकहैं सो शब्द स्पर्श

करके युक्तहैं, अतएव उन अग्नि आदिकों बिषे एक रूपगुणके उदाहरण रूप उपलक्षण करके पाँचों तत्त्वोंके गुणोंका उदाहरण हुआ जानना। अरु अग्नि आदिक तेजवानों बिषे जो एक रूप गुणकाही उदाहरण है सो उस रूप गुणको चक्षुका विषयत्व होने से स्पष्टताहै एतदर्थ उस स्पष्ट गुणको उपलक्षणमात्रसे विशेष ग्रहणकरके सर्व तत्त्वोंका अरु तत्त्वों के गुणोंका उदाहरण हुआ जानना ॥—: ॥

शंका ॥ हे भगवन् जैसे अग्नि आदि त्रिवृत्कृत हैं, तैसे सर्व जगत् त्रिवृत्कृत है, अरु जैसे अग्निसे तीनों रूपों को पृथक् करने से अग्नि के अग्नित्व के अभाववत् समस्त जगत् से उक्त तीनों रूपों (तत्त्वों) के पृथक् करने से जगत् के जगत्त्व का अभावहोता है, सो अस्तु, परन्तु तीनों रूपतो सत्यहैं। तब कैसे अणुमात्र भी अवशेष नहीं॥ समाधान ॥ हे सौम्य जैसे तीनों रूपों का कार्य जे नाम रूपात्मक जगत् तिससे जब कारण भूत तीनों तत्त्वों को पृथक् करिये तब कार्य की पृथक् सत्ता के अभाव से जगत् के जगत्त्व के अभाव होनेवत्, अन्न को भी जलका अंकुर (कार्य) होने से (अर्थात् प्रसंग रूपों का चलाहै ताते अन्न शब्द करके तिसके कृष्ण रूपको जल के शुक्ल रूपका अंकुर (कार्य) होनेसे शुक्लपनाही सत्य है, कृष्ण रूप का कृष्णत्व वाचारंभणमात्रही है) अन्न का अन्नत्व वाचारंभण मात्रहोने से जलही सत्यहै। तैसेही जलको भी तेजका अंकुर (कार्य) होनेसे जल के जलत्वको वाचारंभणमात्रपने के हुए तहां तेजही सत्य है (अर्थात् जल शब्द करके जल के शुक्लरूप को तेजके रक्त रूपका कार्य होने से शुक्लता को वाचारंभण मात्रता के हुए रक्त रूपही सत्य है) तैसेही तेजको भी सत् चैतन्य का अंकुर (कार्य) होने से उसको वाचारंभणमात्रता के हुए तहां एक सत् चैतन्यही सत्य है (अर्थात् तेज शब्द करके लक्षित रक्त रूपको सत् चैतन्य का अंकुर (कार्य) होनेसे अरु

कारण से कार्य्य की पृथक् सत्ताको अभाव रूपता नियमित निश्चय के हुए उस रक्तरूप वा तिस करके लक्षित तेजतत्त्वको केवल वाचारंभणमात्रता के हुए एक सर्व का परा कारण सत् चैतन्यही सत्यहै। इस प्रकार यह श्रुत्यर्थ विवक्षितहै॥ हे सौम्य उक्तप्रकार होने से सत् चैतन्य से भिन्न करके एक अणुमात्र भी सत्य नहीं "नात्र काचन भिदास्ति" इस प्रकार के निश्चय को धारण करो॥

प्रश्न॥ हे भगवन् अन्य श्रुत्याचार्य्योंने इसब्रह्मांडकी उत्पत्ति पांच तत्त्वों के पंचीकरण से कही है अरु आप इसको तीन तत्त्वों के त्रिवृत करण से कहते हो। हे भगवन् पूर्व आपने मृत्तिका सुवर्ण अरु लोह, इन तीनों के दृष्टान्तसे यह प्रतिज्ञा कहाहै कि एकके जानने से सर्व जानाजाताहै। परन्तु त्रिवृतकरणकी रीतिसे अरु अग्नि आदिकों के उदाहण से एक सत् के जानने से तीन तत्त्व अरु तिनका सर्व कार्य्य जानाजाताहै सो अस्तु परन्तु जिन आकाश वायुका त्रिवृत करण कहा नहीं अरु अग्नि आदिकोंके उदाहरण बिषे जिनका रूप देखाया नहीं अरु जिनको सत्यकरके कहा नहीं तिन आकाश वायुका जानना तो अवशेषरहा तब उक्त प्रतिज्ञा कैसे बनेगी कि एकके जानने से सर्व जानाजाताहै। अतएव हे भगवन् यहां जैसा जाननाचाहिये तैसा आप कृपाकरके कहिये॥ उत्तर॥ हे सौम्य तैत्तरेय अरु ऐतरेय उपनिषदों बिषे सत् चैतन्य आत्मासे आकाशादि पांचों तत्त्वों की क्रमशः उत्पत्ति कहीहै पश्चात् उन पांचोंतत्त्वोंके पंचीकरणसे समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् की उत्पत्ति कही है। अरु भगवान् व्यासदेवजी ने भी अपने ब्रह्मसूत्र (वेदान्त शास्त्र) बिषे जहां सृष्टिक्रम कहाहै तहां तैत्तरेय उपनिषद् प्रमाण पंचभूतों से ही कहाहै। अरु यह जो श्रुतिने तीनतत्त्वों के त्रिधा करण वा त्रिवृत्करण द्वारा नामरूपकी उत्पत्ति कही है। अतएव सृष्टिक्रम में परस्पर भेद होने से यह प्रतीत होताहै कि इन सर्व

श्रुतियों का तात्पर्य सृष्टिक्रमके कहनेपर न होके एक अद्वैत के कहनेपरहै, क्योंकि जहां जिस श्रुतिने सृष्टि कही है तहां तिसने , सत्, आत्मा, अक्षर, इत्यादि नाम भेदसे एकही कारण से कही है अरु तिस कहने से सर्व ने एक अद्वैतही लक्ष कराया है क्योंकि सर्व के अद्वैत बोधकत्व में भेद नहीं ताते त्रिधाकरण वा पंचीकरण के कथनपर श्रुतिका तात्पर्य नहीं किन्तु सर्व श्रुतियों का जो एक अद्वैत के लक्षण करावने पर तात्पर्य है तिस विषय में रंचकमात्र भी विरुद्ध नहीं। हे सौम्य यहां जो श्रुतिने त्रिधाकरण कहाहै सो सत् चैतन्यदेवका संकल्प जो नाम रूप दोनों के प्रकट करने का है तिसके अनुसार कहाहै क्योंकि नाम अरु रूप यह दोनों , तेज , जल, पृथिवी, इनतीनों तत्त्वों मेंही घटित है। अरु , आकाश , वायु, इन दोनों तत्त्वों बिषे रूपके असंभवसे नाम अरु रूप दोनों संभवे नहीं। अरु बृहदारण्यक उपनिषद् बिषे आकाश अरु वायु इन दोनों तत्त्वोंको अमूर्त्त कहाहै, अरु जो अमूर्त्त होताहै सो अरूप भी होताहै, एतदर्थ भी उन आकाश वायु दोनों बिषे रूप संभवे नहीं क्योंकि रूपका आश्रय मूर्त्त द्रव्यहीहै, जैसे नील पीतादि रूपोंका आश्रय घट, अरु ,तेज, जल, पृथिवी, इन तीनों तत्त्वोंको मूर्त्त करके कहाहै ताते इन मूर्त्त तत्त्वों बिषे नाम अरु रूप दोनोंका संभवहै। अतएव तात्पर्य यह है जो इस श्रुति से नामरूप दोनों देखावना है एतदर्थ तीनों तत्त्वोंके त्रिवृतकरण से सर्व जगत्के नामरूप की सिद्धि देखाईहै॥ हे सौम्य जैसे त्रिवृतकरण की रीति से तीनों तत्त्वोंके पृथक् हुए समस्त जगत् वाचारंभणमात्रही होता है, अरु तीनों तत्त्व सत् चैतन्यका कार्य होनेसे सत्यरूपहै परन्तु उनकी भी सत् चैतन्य से पृथक् सत्ताके अभाव से सत् चैतन्य से पृथक् करकेसोभी वाचारंभणमात्रही है, ताते सर्वका पराकरण सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यही सत्यहै अरु तिस सर्वाधिष्ठान की सत्यताके आश्रय अध्यस्त जगत् भी सत्यहै। हे सौम्य तैसेही

पंचीकरण की रीति प्रमाण पंच तत्त्वात्मक जगत् से पांचों तत्त्वों के पृथक् हुए जगत् केवल कहनेमात्रही है वो पांचों तत्त्व ही सत्यहैं, परन्तु तिनकी भी सत् कारण से पृथक् सत्ताके अभाव से उनको भी वाचारंभणमात्रताके हुए एक सत् चैतन्यही सत्यहै, तिस एक सत् के जानने से तदाश्रितकार्य सर्वसत् जाना जाताहै। जैसे एक मृत्तिका के जाननेसे घटादिक सर्व जानेजाते हैं तैसे। अतएव त्रिवृत्करण की रीतिसे वा पंचीकरणकी रीति से कार्य्य कारणात्मक सर्व नामरूप प्रपंच वाचारंभणमात्रहुआ एक सत्चैतन्य सर्वाधिष्ठान देवही सत्यहै "। इति सिद्धमेवभवति"। हे सौम्य वेद भगवान्ने जिज्ञासियों को अद्वैत 'जो अभयत्व प्राप्तिका परमहेतु है, निश्चयकरावना है, अतएव वेद जिस क्रमसे जिज्ञासुओंको अद्वैत निष्ठामें प्राप्तहोते जाते हैं तिसही क्रमसे ब्रह्मवित् आचार्य्य द्वारा होके साक्षात् वेद वा ब्रह्म अद्वैत तत्त्वका निश्चय करावेहै, क्योंकि "। ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति"। इत्यादि प्रमाण से ब्रह्मवेत्ताही ब्रह्महै—:॥

हे सौम्य, पूर्व हमारे कुल बिषे जो सर्वज्ञ हुए हैं सो उक्त प्रकार विचार के एक सर्व कारणों के महाकारण सत् चैतन्य को सम्यक् प्रकार जानके हुए हैं। इन मूर्खोंवत् हमारे कुल बिषे सर्वज्ञ नहींहुए, ताते तुमने इन अज्ञानी मूर्ख सर्वज्ञोंका संगकरके इनवत् नहीं होना ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् ऐसे वो मूर्ख सर्वज्ञ कौनहैं कि जिनके संगसे अन्य भी तद्वत् होते हैं ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जैसे तूने पूर्व एक सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यके जाने विना सर्वज्ञपनेका अहंकार कियाथा तब तू मूर्खथा, तैसेही जो पुरुष उस सर्वाधिष्ठान सत् कारण को यथार्थ जाने विना आप को तत्त्ववेत्ता सर्वज्ञ मानते हैं सो मूर्खहैं उनहींके संगसे अन्यभी मूर्ख होतेहैं। हे सौम्य जो यह सिद्धियों के लालच से योगके करनेवाले हैं सो अतिअल्प दूरदर्शन दूरश्रवणादि तुच्छ सिद्धि पाय दूरदेशके पदार्थोंको देखते शब्द (वार्त्ता) को सुनते अन्यों

को कहते हैं मेरु आदि अतिदूरके स्थानों बिषे अमुक २ देवता वा ऋषि बैठे परस्परमें संवाद कररहे हैं, इन सिद्धियों के आश्रय अपनेको सर्वज्ञ सिद्ध मानते हैं तिनको भी मूर्ख सर्वज्ञों बिषे जानने। हे सौम्य सर्वज्ञ सिद्ध सोई है जो सदा सिद्ध सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यदेवको यथार्थ जानके तदाश्रित अध्यस्त सर्व प्रपंचको जैसे का तैसा जानता है। हे सौम्य कोई पुरुष प्रेतादिकों की उपासनाके बलसे ऐसा कहते हैं कि हम सर्व के मनकी औ गृहकी वार्त्ता वस्तु सर्व जानते हैं, विनाही प्रश्न कर्त्ता के प्रश्न किये उसके प्रश्न अरु तिसके उत्तर को जो आगे भविष्यत्है ज्योंका त्यों कहते हैं ताते हम सर्वज्ञ हैं हम से किसी का कुछ भी छिपा नहीं । हे सौम्य इसप्रकार अपने को सर्वज्ञ मानने कहनेवालों को तुमने महामूर्ख अल्पज्ञ जानने, ये सर्व अल्प अल्प पदार्थों को जानके सर्वज्ञताका अहंकार करते हैं सो महामूर्ख अल्पज्ञहैं, ऐसे मूर्खोंका संग तुमको कदापि करना नहीं। हे सौम्य जो संसार के नामरूपात्मक पदार्थोंको जो केवल कहनेमात्रही हैं, सत्यमानके तिनके जानने का अभिमान करते हैं औ कहते हैं कि हम संसार के सर्व पदार्थों को जानते हैं, सो संसारी अज्ञानी असत् पदार्थों को जाननेवाले सर्वज्ञों को महाअल्पज्ञ मूर्ख जानने। हे सौम्य जो पुरुष कारण माया अरु तिसके कार्य नामरूपात्मक जगत् इनदोनों के अधिष्ठान सत्ता सत् चैतन्यको जानके तिसके आश्रय कल्पक सुद्धा अध्यस्त कार्य्य कारणात्मक जगत् को तिनकी पृथक् सत्ताके अभाव से एक सत् अधिष्ठान रूपही जानता है सोई विद्वान् सर्वज्ञ है, ताते उन विद्वान् सर्वज्ञों के सत्संग से तुमको भी तैसाही सर्वज्ञहोना उचितहै। हे सौम्य अब जिसप्रकार के पूर्व हमारें कुलके विद्वान् हुए हैं तिनकी सर्वज्ञताको श्रवणकरो ४ ॥

एतद्धस्मवै तद्विद्वा छंस आहुः पूर्व्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चना श्रुत ममत्तम विज्ञात मुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः ॥ ५ ॥ यदुरोहित मिवाभूदिति तेजमस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः यदुशुक्लमिवाभूदित्यपाछं रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदुकृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः ॥ ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

पूर्व बड़े गृहवाले बड़े श्रोत्रिय उक्त सत्के जाननेवाले हमारे वृद्ध पुरुष स्पष्ट निर्णय करने के अर्थ कोई एक असुनी अमनन करी अविज्ञात वस्तुको अपने मध्यरख कहते हुए कि जो कोई इस वस्तुको जानता होय सो कहै यह क्याहै ॥ ५॥ जो इसबिषे अरुणता ऐसी है सो तेजका रूप है ऐसा जानो, जो इस बिषे शुक्ल ऐसा है सो जलका रूप है ऐसा मानो, अरु जो इस बिषे कृष्ण ऐसा है सो अन्न का रूप है ऐसा जानो, इस प्रकार तिस त्रिवृत्कृत सत्के जाननेवाले विचार के कहते हुए ॥ ६ ॥

भावार्थ मंत्र पंचम षष्ठका ॥

हे सौम्य, एक के जानने से सर्व जानाजाताहै, ऐसा पूर्व कहा है सो त्रिवृत्कृतके होते भी एकके जानने से सर्व जानाजाता है इस बात के दृढ़ करने के अर्थ सत् चैतन्य के ज्ञातपूर्वक त्रिवृत्कृत के ज्ञाता ज्येष्ठ श्रेष्ठ वृद्ध विद्वानों का एक उदाहरण श्रुति पुनः प्रारंभकरे हैं ॥ हे सौम्य हे श्वेतकेतु पूर्व बड़े गृहवाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हमारे कुलके वृद्ध (गौतमगोत्रि) एक समय एकस्थानमें एकत्रहोय निश्चयकर कहतेहुए ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् पूर्व वो ज्येष्ठ श्रेष्ठ विद्वान् क्या कहते हुए ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य पूर्व वो वृद्ध सत्यके स्पष्ट निर्णय के अर्थ कोई एक असुनी अदेखी अविचारी ऐसी दुर्लक्ष्य वस्तु अपने सर्व के मध्य

यद्विज्ञातमिवाभूदित्ये तास्रामेव देवतानाछंसमास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा नुखलु सौम्येमास्तिस्त्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ७॥ इति चतुर्थखण्डः ४॥

स्व के परस्परमें प्रश्न करते हुए कि अपने सर्व के मध्य जो सर्वज्ञ होय सो इस वस्तुका रूप कहै यह क्या है ॥ ५ ॥ हे सौम्य उक्त प्रकार हमारे कुलके विद्वान् वृद्धोंने स्पस्ट निर्णय के अर्थ अपने सर्व के मध्य अतिदुर्लक्ष्य दुर्विज्ञेय वस्तु कि जिसको पूर्व देखी सुनी जानी नहीं, स्वके परस्परमें प्रश्न करते हुए कि हे भाई अपने सर्वके मध्य सर्वज्ञ तत्त्ववेत्ता होय सो इस वस्तु का स्वरूप कहै जो यह क्या वस्तुहै ॥ हे सौम्य तब उन सर्व त्रिवृत्कृत के ज्ञाताओं में से एक किसीने वा सर्व ने मिलके एक एकने कहा कि हे भाई इस वस्तु बिषे जो अरुणता ऐसी है, सो तेज का रूप है ऐसा जानो, अरु इस वस्तुमें जो श्वेतता ऐसा है सो जलका रूप है ऐसा जानो, अरु इस बिषे जो कृष्णता ऐसाहै सो पृथिवी का रूपहै ऐसा जानो ॥:– अरु उक्ततीनों रूपों को इस वस्तुमें से पृथक् करिये तो यहवस्तु केवल कहनेमात्रही है। अरु उक्त तीनोंवर्णात्मक तत्त्व सत् चैतन्यका कार्य होनेसे सत्यरूप हैं ऐसा जानो, उक्त तीनों तत्त्वों से बाह्य एक अणुमात्र भी नहीं, ताते वास्तवकरके सर्वरूपसे एक सत्चैतन्य देवही सुशोभितहै ऐसा जानो–: ॥ ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

जो अविज्ञात ऐसा होवे तो सोभी उन तीन तत्त्वरूप देवताओं का समुदाय (मिश्रित) है ऐसा जानो इस प्रकार वो तत्त्ववेत्ता वृद्ध कहते हुए। हे सौम्य जिसप्रकार तो निश्चयकरके तीनों देवता पुरुष (शरीर) को पाय एक एक त्रिवृत् त्रिवृत्होते हैं तिसको मेरे कहे प्रमाण जानो ७ ॥ ४ ॥

अथ षष्ठप्रपाठके पञ्चमखण्डः ५ ॥

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातुस्तत् पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माछं संयोऽणिष्ठस्तन्मनः १ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार कहके वो वृद्ध पुनः कहते हुए कि हे भाई जोवस्तु अत्यन्त दुर्विज्ञेय होवे अरु जिसको कभी देखी सुनी जानी भी होवे सो यदि आय प्राप्त होवे तो तिसको भी तेज जल अन्न इन तीनों देवताओं का समास कहिये समुदाय ,अर्थात् त्रिवृत्कृत भूतोंका कार्य्य, हैं ऐसा निश्चय करिये ॥:– हे सौम्य रक्तादि तीनों रूपों के पृथक् २ अनुभव विचार से वस्तुके अभाव हुए तीनों तत्त्वों को ही सत्य जानिये औ तद्व्यतिरेक वस्तु को केवल वाचारम्भणमात्रही जानिये क्योंकि तेजादिक तीनों देवता सत् चैतन्य का कार्य्य होने से सोई रूप हैं, इसप्रकार निश्चय कर सर्वको एक सत् चेतन सत्ता समान रूपही अनुभव निश्चय करिये ॥ हे सौम्य यह तुमको उभय उपाख्यान करके बाह्यका त्रिवृत्कृत निश्चय कराया है। अब जिस प्रकार अन्तर का त्रिधाकरण हुआ है तिसको भी श्रवण करो । हे प्रियदर्शन जैसे तो निश्चय करके 'तेज, जल, अन्न, यह तीनों तत्त्वरूप देवता कारण कार्य के संघात शिर हस्त पादादि लक्षणवान् पुरुष नामक शरीर को पाय (शरीरके अन्तरजाय) एक एक तत्त्वका त्रिवृत् त्रिवृत् (स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, तीन तीन विभाग) होता है तिसको भी मेरे ,अग्रिमकहे प्रमाण, श्रवण करके स्पष्ट जानो (निश्चय अनुभव करो) ७॥ इति चतुर्थ खंडः ॥ ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

अन्न भोजन किया तीन प्रकार विभाग को पावता है तहां

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठोधातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः २ ॥

जो उसका स्थूलभाग है सो विष्ठा होताहै, जो मध्यम भाग है सो मांस होताहै, जो सूक्ष्म भाग है तिसका मन होता है १ ॥

भावार्थ खंडपञ्चम मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार बाह्यका त्रिवृत्कृत सर्व नामरूप तुम को श्रवण मनन कराया, अब इस शरीर के अन्तर का त्रिधाकरण श्रवण करो । हे सौम्य हे श्वेतकेतु जब यह अन्न भोजन किया जाता है तब उदर बिषे जठराग्नि प्राणसाथ मिलके उस अन्न को पुनः पचावता (पकावता) है ॥ :–अर्थात् बाह्यका पाक हुआ अन्न कंठ के मार्ग से उदर बिषे सुख पूर्वक प्राप्त होता है, परन्तु उदरके भीतर उन अन्नको यावत् जठराग्नि पचावता नहीं तावत् वो किसी भी काम आवता नहीं, ताते वो उदरबिषे गया अन्न वहां पुनः पकताहै –:॥ हे सौम्य सो जठराग्नि करके उदरबिषे पाकहुए अन्न के वो अग्नि तीन विभाग करताहै, तहां तिस तीनविभागको प्राप्तहुए अन्नका जो अतिस्थूलतर भागहै सो पुरीष होताहै । अरु जो उस भोजन किये अन्नका मध्यम भाग होता है सो रसादि क्रमसे मांस होताहै, अरु उस अन्नका अतिसूक्ष्म धातु (रस वा अंश) होता है सो पाकाशय स्थान से ऊर्द्ध्व हृदय वा कंठ देशको प्राप्तहोय वहां अतिसूक्ष्महिता नाम्नी नाडी बिषे प्रविष्ट होय वागादि करण संघातों का प्रवर्तक मन होताहै ॥ हे सौम्य इस श्रुति प्रमाण से मनको अन्नका अतिसूक्ष्म परिणाम भावहोनेसे भौतिकपनाही सिद्धहै १ ॥

अक्षरार्थ ॥

जलपान कियाहुआ उदर बिषे तीन प्रकार का होताहै ति-

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठोधातु स्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योणिष्ठः सा वाक् ३ अन्नमयछं हि सौम्य मन आपोमयःप्राणस्ते जोमयी वागिति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ४ ॥ ५ ॥

सका जो स्थूल धातु (मोटा अंश) है सो मूत्र होताहै, अरु जो मध्यमांशहै सो रुधिर होताहै, अरु जो उसका सूक्ष्मांशहै सो प्राण होताहै २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य, जैसे भोजनकिया अन्न उदरबिषे जायके 'स्थूल, मध्यम, सूक्ष्म, तीन विभाग होय, पुरीष, मांस, मन, इनतीन भावको प्राप्तहोता है। तैसेही जल पान कियाहुआ उदर बिषे जायके जठराग्नि करके तीन प्रकारका होताहै, तहां जल का जो स्थूल भाग है सो मूत्र होता है, जो मध्यम भागहै सो रक्त (रुधिर) होताहै। अरु जलका जो सूक्ष्मांश भागहै सो प्राणहोताहै। सोई आगे कहाहै " ह्यापोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत इति " प्राण जलमयहै क्योंकि जल न पानकरनेसे प्राण रहता नहीं २ ॥

अक्षरार्थ ॥

तैसे, तेज (घृत तैल) भोजन किया उदरबिषे जाय त्रिधा होताहै, तहां तिसका जो स्थूल भागहै सो अस्थिहोताहै, मध्यम भाग मज्जा होताहै, अरु जो सूक्ष्मभागहै सो वाणीहोतीहै ३ हे सौम्य अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राणहै, अरु तेजोमयही वाक्है, ऐसाजानो। हे भगवन् पुनःही मुझको विज्ञापन करिये, हे सौम्य तथास्तु ऐसे पिता कहता हुआ ४ इति षष्ठप्रपाठके पंचम खंडः ५॥

भावार्थ मंत्र तीसरे चौथे का ॥

हे सौम्य तैसेही तैल घृतादि भोजन कियाहुआ उदरबिषे जाय जठराग्नि के संयोगसे तीन विभागको पावताहै तहां जो उस तेजका स्थूलांशहै सो अस्थिहोताहै, अरु जो उसका मध्यमांशहै सो मज्जा होता है, अरु उस तेजके सूक्ष्मांशकी वाणी होती है ॥ क्योंकि तैल घृतादिकोंके भक्षणसेही वाणी भाषण करनेमें समर्थ होती है यह लोकमें प्रसिद्धहै ३ हे सौम्य उक्तप्रकार होनेसे अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राणहै, अरु तेज (तैल घृतादि)मयही वाक्है । ऐसा निश्चयकरो ॥ शंका॥ हे भगवन् जब उक्त प्रकार ही है तब केवल अन्नमात्रके ही भक्षणकर्त्ता जे मूषक (चूहा) प्रभृतिकादिक तिन बिषे वाणी अरु प्राण न होना चाहिये एक मनही होना चाहिये, परन्तु उनबिषे वाणी, प्राण भी प्रत्यक्ष देखते हैं । अरु तैसेही जे केवल जलमात्र के ही भक्षण करने वाले समुद्रादिकों के मीनादि जन्तु तिन बिषे केवल प्राणही होना चाहिये, मन वाणी न होना चाहिये परन्तु उनबिषे मन वाणी भी देखते हैं । अरु तैसेही जो घृत तैलादिकों के भक्षण करनेवाले जीवहोंगे तिन बिषे केवल वाणीमात्रही होनी चाहिये मन प्राण न होना चाहिये परन्तु उक्त मूषक मीनादिकों के लिंग अनुमान से उनबिषे मन प्राण भी अवश्य होंगे। अतएव केवल अन्नमयही मन है, जलमयही प्राण है, तेजमयही वाक् है ऐसा कैसे बनेगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य तुमने कहा सो दोष नहीं क्योंकि सर्व को त्रिवृत्कृत होने से सर्वत्र सर्व की उपपत्ति (प्राप्ति) है, कोई भी अत्रिवृत्कृत अन्न खाता नहीं, अत्रिवृत्कृत जल पान करता नहीं, अत्रिवृत्कृत घृतादि कोई भी भक्षण करता नहीं । अतएव केवल अन्नकेहा भक्षण करनेवाले मूषकादिकों बिषे ,तेज ,जल, अन्न, तीनोंका कार्य , वाक्,प्राण, मन, पाये जाते हैं ॥ः–हे सौम्य अन्नके त्रिवृत्कृत कार्य देहों में वा जीवोंमें मनकी विशेषता, अरु जलके त्रिवृत्कृत कार्य्य जीवों

अथ षष्ठप्रपाठके षष्ठखंडः प्रारभ्यते ॥

दध्नःसौम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्द्ध्वःसमुदीषति तत्सर्पिर्भवति १ ॥ एवमेव खलु सौम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्द्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥ २ ॥

में प्राण की आधिक्यता, अरु तेज के त्रिवृत्कृत जीवोंमें वाणी की विशेषता, इस प्रकार जानना, परन्तु अन्नादि सर्व को त्रिवृत्कृत होने से सर्व शरीरों बिषे मन प्राण वाणी जान लेना —:॥ ताते अन्नमय मन जलमय प्राण तेजोमय वाग् यह कथन अविरुद्ध ही है ॥ हे सौम्य इस प्रकार जब उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु की शंका का समाधान किया तब भी असन्तुष्टवान् हुआ श्वेतकेतु अपने पिता से कहता हुआ कि हे भगवन् आपने जो अन्नमय मन, जलमय प्राण, तेजमयी वाक् कहा तिसको अतिसूक्ष्म होने से मैं यथार्थ समझा नहीं अतएव आप तिसको दृष्टांतपूर्वक मुझको पुनः कृपाकरके कहिये, क्योंकि इस आप करके कहेहुए अर्थ बिषे मुझको सम्यक् प्रकार निश्चयहुआ नहीं। इस प्रकार जब श्वेतकेतु ने कहा तब तिस का पिता उद्दालक कहता हुआ, हे सौम्य जो तैंने पूछा है सो अब पुनः भी श्रवणकर मैं भी तुझको दृष्टान्तपूर्वक कहता हौं ४ ॥ इति षष्ठप्रपाठके पंचमखंडः ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य मन्थन कियेहुए दधिका जो सूक्ष्मांशहै सो ऊर्द्ध्व को जाताहै सो घृत होताहै १ ॥ हे सौम्य तैसेही निश्चयकरके भोजन कियेहुए अन्न का जो सूक्ष्म भाग है सो ऊर्द्ध्व जाताहै सो मन होताहै २ ॥

अपाꣳ सौम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वःसमुदीषति स प्राणोभवति ॥ ३ ॥ तेजसः सौम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीष्यति सा वाग्भवति ॥ ४ ॥ अन्नमयꣳ हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव माभगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ षष्ठप्रपाठके षष्ठखंडः १ । २ ॥

हे सौम्य जैसे दधिको मटकी बिषे डालके मथनियां (मंथन करने का कारण विशेष) साथ मन्थन करते हैं तब उस दधिका स्थूलांश होता है सो अधोको जाता है अरु जो उसका मध्यमांश होताहै मध्यमें रहताहै अरु जो उस दधिका सूक्ष्मांश होता है सो ऊद्ध्वको जाय घृतसंज्ञाको प्राप्त होताहै । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त है तैसेही निश्चय करके ओदनादि भोजन किये अन्नको उदरस्थ अग्नि वायु करके सहित हुआ उसको मन्थन करता है (पचावता है) तब उसका सूक्ष्मांश ऊपर को जाय के ,अर्थात् हितानाम्नी नाडी को प्राप्त होके, मन होताहै ॥:-हे सौम्य जैसे उक्त दृष्टान्त है तैसेही इस शरीर रूप मटकी बिषे जब बाह्यका पाक किया ओदनादि अन्नरूप दधि पडता है तब उसको उदर बिषे जठराग्नि रूप पुरुष प्राणरूप रयि (मन्थन करनेका कारण विशेष) करके मंथन करता है तब उस अन्नरूप दधिका जो सारभूत सूक्ष्मांश है सो प्राणवायु करके पाकाशय से ऊपर हृदय वा कंठदेश में प्राप्त होय मन संज्ञाको पावता है-:॥ १ । २ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य पान कियेहुए जलों का जो सूक्ष्मांश होताहै सो ऊर्ध्व को जाताहै सो प्राणहोताहै ॥ ३ ॥ हे सौम्य घृतादि भक्षण

कियेहुएका जो सूक्ष्मांश होता है सो ऊर्ध्व को जाताहै सो वाक् होती है ॥ ४ ॥ हे सौम्य अन्नमय ही मनहै जलमय प्राण है तेजमयी वाक् है ऐसा जानो। हे भगवन् पुनः मुझको कहिये, तब पिता हे सौम्य तथास्तु कहता हुआ ॥ ५ ॥ इति ॥ ६ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे चौथे पांचवें का ॥

हे सौम्य पान कियेहुए जलों का उदर बिषे अग्नि करके किये तीन विभाग होते हैं, तिनमें जो सूक्ष्मभाग है सो ऊपर को जाता है सो प्राणहोताहै (अरु मध्यमभागका रुधिर होता है अरु उस जल के स्थूलभाग का मूत्र होता है) ३॥ हे सौम्य तैसेही जल प्रमाण जे घृत तैलादि रूप तेज है सो भी भोजनकिया उदरबिषे जायके उक्त प्रकार के तीन विभागको पावता है, तहां उसके सूक्ष्म भागकी वाक् (वाणी) होती है, मध्यांशकी मज्जाहोती है, अरु उसके स्थूल भागका अस्थिहोताहै ४॥ ताते हे सौम्य अन्नमयही मनहै जलमय ही प्राणहै अरु तेजमयी ही वाक्है ॥ अभिप्राय यह है कि यावत् स्थूल सूक्ष्म शरीरादिसंघात है सो सर्व अन्न जल तेजमयीही विकारहै ॥:—सो विकार भी केवल कथनमात्रही है क्योंकि जो इस शरीर से अन्न जल तेज, के स्थूल मध्यम सूक्ष्म अंशों को पृथक् करिये तो शरीरादि सर्व विकार कहनेमात्रही होता है अरु अन्न जल तेज यह तीनों परम्परा करके सत् चैतन्य का कार्य्य होनेसे सत्ही है, ताते बाह्य अन्तर स्थूल सूक्ष्म सर्व ही सत् है —:॥ श्वेतकेतुरुवाच ॥ हे भगवन् आपने दृष्टांतपूर्वक मनको अन्नमयत्वपना कहा सो मुझको सम्यक् निश्चयहुआ नहीं, ताते आप उसको अन्य दृष्टान्त से अनुभव कराइये ॥ उद्दालक उवाच ॥ हे सौम्य अब तेरे निश्चयार्थ दृष्टान्तपूर्वक कहताहौं तिसको श्रवणकर ५ ॥

इति षष्ठखंडः ६ ॥

अथ षष्ठप्रपाठके सप्तमखंडः ७ ॥

षोडशकलः सौम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममपःपिबापोमयःप्राणोनापिबतोविच्छेत्स्यतइति १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य षोड़शकलावाला पुरुष मन है, जो इसको प्रत्यक्ष करने की कामना होय तो पन्द्रह दिवस भोजन मतकर जल पानकर जलमय प्राणहै जल न पीने से प्राण विच्छेत् होवेगा (न रहेगा) १ ॥

भावार्थ खंडसातवें मन्त्र १ का ॥

हे सौम्य, भोजन किये अन्नकी जो सूक्ष्म धातु होती है सो मनकी शक्ति है, अर्थात् एक दिवस भोजन किये अन्नका जो सूक्ष्मांश धातु होती है सो मनकी एक कला शक्ति होती है, तैसेही जब यह पुरुष षोड़श दिवस भोजन करता है तब तिसके सूक्ष्मांश धातु करके युक्त हुआ मन षोड़श कलावाला हुआ व्यापार बिषे पूर्णता से वर्त्तता है। अरु तिस षोडश दिवस भोजन किये अन्नके सूक्ष्मांश शक्ति करके युक्त द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञाता, इत्यादि सर्व क्रिया में समर्थ पुरुष होता है। अरु जब अन्नके सूक्ष्मांश की हानि होती है तब तिसके सामर्थ्य की भी हानि होती है । तहां कहते हैं " अन्नस्यापि दृष्टेत्यादि " सर्व कार्य्य कारणों के संघात शरीरका जो सामर्थ्य है सो सर्व मनका किया है। अरु लोक बिषे जो बलवान् दृष्ट आवते हैं सो सर्व मनके बल करके ही बली दृष्ट आवते हैं ॥:— अर्थात् कोई पुरुष शरीरसे पुष्ट बली दृष्ट आवते हैं औ मनमें उनके शूरत्व बल नहीं तो वो रण से पलायन होते हैं, अरु कोई एक पुरुष शरीर से कृश निर्बल दृष्ट आवते हैं औ मनमें उन के शूरत्व बल होता है तो वो रण सम्मुख निःशंक युद्ध करते हैं,

सहपंचदशाहानि नाशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृच सौम्य यजुष्षि सामानीति न वै मा प्रति भांति भो इति २॥

ताते जो जिस विषय का बली होताहै सो मनके बल से ही होताहै—:॥ हे सौम्य केचित् ऐसा कहते हैं कि ध्यानाहारादिक भी अन्नके सामर्थ्य से ही हैं क्योंकि देहादि मनपर्यन्त सर्व अन्न का परिणाम विकारहै ताते। अतएव मनका जो सामर्थ्य है सो अन्नका किया है॥ हे सौम्य जिस पुरुष की षोड़शकला होवें सो कहिये षोड़शकलः पुरुषः। हे सौम्य जो तू इस अन्नकी षोड़श कलात्मक (शक्तिवाले) मनको प्रत्यक्ष करने को इच्छता होवे तो पंचदश १५ दिवस पर्यन्त भोजन मत करे एक जलमात्रको पान करता रहे जो जल पान करेगा नहीं तो प्राण रहैगा नहीं इसही से मैंने पूर्व कहा है कि जल का विकार प्राण है। ताते जो तुझको मनका अन्नमयत्व प्रत्यक्ष करने की इच्छा होय तो पंद्रह दिवस कुछ भोजन मतकरे जलपान करता रहियो १॥

अक्षरार्थ॥

सो श्वेतकेतु स्पष्ट (पिताका वाक्य श्रवणकर) पंद्रह दिवस भोजन न करता हुआ, तदनन्तर पिताके समीप आय कहता हुआ हे पिताजी अब मैं क्या कहौं, पिताने कहा हे सौम्य तुझ को, ऋग्, यजु, साम, तीनों वेद कंठथे सो अब स्मृति में हैं वा नहीं, सो श्वेतकेतु कहताहुआ मुझको कुछ भी भासता नहीं मैं क्या कहौं २॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का॥

हे सौम्य उक्त प्रकार उद्दालकऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु से मनका अन्नमयत्वपना कहा, तब तिस बिषे निश्चय को न प्राप्त हुआ श्वेतकेतु मनका अन्नमयत्वपना प्रत्यक्ष करने की इच्छा से अपने आश्रय पर जाय पंद्रह दिवसपर्य्यन्त कुछ भी

तछं होवाच यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टःस्यात्तेनततोऽपि न बहु दहेदेव छंसौम्य ते षोडशानां कलानामेकाकलाऽतिशिष्टा स्यात्त यैतर्हिवेदान्नानुभवस्यशान ॥ ३ ॥

भोजन न करता हुआ, प्राणकी रक्षाके अर्थ केवल जलपानमात्र करता रहा ॥ :—हे सौम्य जिस श्वेतकेतु को चार वेद अरु छः तिनके अंग सहित अर्थों के कंठ था सो पंद्रह दिन भोजन न करने से मनसे सर्व विस्मरण होगया मानो कुछ पढ़ाही न था, केवल एक प्राणमात्र अवशेष रहा, अरु तिसहीकी ज्ञातमात्र रही जो अब मेरे प्राणमात्र अवशेष हैं, और सर्व अन्तके समयवत् होता हुआ—:॥ हे सौम्य वो श्वेतकेतु पंद्रह दिवस भोजन न करनेके पश्चात् अपने को अन्यों से खाट वा डोली पर उठवाय पिता के समीप आय कहताहुआ कि हे पिताजी मैं अब क्या कहौं मुझको ऋगादि वेदोंमेंसे कुछ भी भासता नहीं । इसप्रकार जब श्वेतकेतुने कहा तब उद्दालक ने कहा कि हे पुत्र अब मैं कहता हौं सो श्रवण कर ॥ २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो उद्दालक, स्पष्ट कहता हुआ हे सौम्य जैसे महत् इन्धन करके युक्त अग्निका अंगार एक खद्योत (चिनगारे) प्रमाण अवशेष रहताहै तब तिस अंगार करके बहुत दहन होता नहीं । तैसे हे सौम्य तेरी षोड़श कलाओंके मध्य एक कला अवशेषहै तिस करके तुझको वेदोंका अनुभव (स्मरण) होता नहीं, अब तू अन्न भोजनकर ॥ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य, (उक्त प्रकार जब श्वेतकेतुने पन्द्रह दिवस भोजनत्याग षोडशवें दिवस पुनः अपने पिताके पास आय कहा कि

अथमे विज्ञास्यसीति स हाशाथ हैनमुपससाद तछं ह यत्किञ्च पप्रच्छ सर्व छं ह प्रतिपेदे तछं होवाच ४ ॥

हे पिताजी अब मुझको कुछ भी स्मृति नहीं जो मैं चारों वेदादिक पढ़ारहा तिनमें से अब मुझको कुछ भी अपने विषे भासता नहीं, अब अन्तके समयवत् दशा होरहीहै एक प्राणमात्र अवशेष है । इसप्रकार जब श्वेतकेतु ने कहा तब उद्दालक कहता हुआ) हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु तुझको जो ऋगादि वेद नहीं भासते (स्मृति होते) तिसका कारण मैं दृष्टान्तपूर्वक कहताहौं तिसको तू श्रवणकर ॥ हे सौम्य जैसे लोक विषे बहुत से इन्धन करके युक्त प्रज्वलित अग्नि के इन्धन के समाप्त (दहन) हुए एक अंगार खद्योतमात्र (चिनगार प्रमाण) अवशेष रहताहै तब तिस चिनगारमात्र अग्नि करके उसको अग्नित्व होते सन्ते भी वो बहुत से इन्धनादिकों को दहन करने को समर्थ होता नहीं, हे सौम्य तैसेही तुझको पंद्रह दिवस अन्न (भोजन) के त्यागनेसे अब तेरा मन चिनगारवत् एक कलामात्र अवशेष रहाहै अतएव मनके अभावसे तुझको ऋगादि वेद कुछ भी भासते नहीं, ताते मेरा वाक्य श्रवण कर अब पंद्रह दिवस भोजन कर पश्चात् मेरे निकट आवना तब मैं कहोंगा ॥ :—हे सौम्य जैसे चिनगारमात्र अग्निपर प्रथम सूक्ष्म शुष्कतृण रखके उसको कुछ विशेष करते हैं पश्चात् उसमें कुछ पुष्ट इन्धन देके वर्द्धमान करते हैं तब वो महत् परिमाण इन्धन को दहन करने में समर्थ होताहै—: ॥ अतएव हे सौम्य अब तू अपने आश्रमपर जाय शनैःशनैः अन्न को भोजनकर जब पंद्रह दिवस भोजन करले तब षोडशवेंदिवस मेरे पास आवना तब जो कुछ कहना होगा सो मैं तुझको कहोंगा, अब तेरेमनकी एक कला अवशेष रहने से मन व्याकुल है ताते अब भोजन करने का शीघ्र यत्नकर ३ ॥

यथा सौम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्रज्वालयेत् । तेन ततोऽपि बहु दहेत् ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसके अनन्तर मैं तुझसे कहोंगा ॥ सो श्वेतकेतु पंद्रह दिवस भोजनकर पुनः पिताके समीप आवता हुआ, तब तिसको पिता वेदादि विषयक थोड़ासा प्रश्न करताहुआ, तब उसने सर्व पढ़ सुनाया, तब वो पिता पुनः कहताहुआ ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य तिसके अनन्तर मैं तुझसे कहोंगा (एतना पूर्व के तीसरे मन्त्रसे अन्वय सम्बन्धहै) सो (मनके अन्नमयत्व को प्रत्यक्ष करने की इच्छावाला) श्वेतकेतु पिताकी आज्ञा प्रमाण पन्द्रह दिवस भोजन करके सोलहवें दिवस पुनः पिताके समीप आय प्रणामकर स्थितहुआ, जब उसके पिता उद्दालकने उस अपने श्वेतकेतु नाम पुत्रको अपने निकट आया सावधान चित्त देखा तब उससे ऋगादि वेद सम्बन्धी किञ्चित् प्रश्न किया, जब पिताने प्रश्नकिया तब तिसको सुनते ही वो श्वेतकेतु ऋगादि वेद मन्त्र भाग अरु तिसका अर्थ वेद ब्राह्मण भाग, सर्व अपने पिताको श्रवण करावताहुआ । जब पुत्रके मुखसे ऋगादिवेदको यथार्थ श्रवणकिया तब वो पिता उद्दालक पुनःकहताहुआ४॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे बहुतसे इन्धन के शान्तहुए एक अंगार चिनगारमात्र अवशेष रहे है तिसको सूक्ष्म तृणके चूर्ण से विशेष प्रज्वलित करतेहैं तब तिस अग्निके वर्द्धमान होने के अनन्तर पुनः भी पूर्ववत् बहुतसे इन्धनको भस्म करताहै ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पांचवेंका ॥

हे सौम्य, उक्तप्रकार जब श्वेतकेतु अपनेपिताकी आज्ञानुसार

एवछं सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत्साऽन्नेनोप समाहिता प्राज्वालीत्तयैतर्हि, वेदाननुभवस्यमयछं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजिज्ञाविति विजिज्ञाविति६ ॥

इति सप्तमखंडः ७ ॥

पन्द्रह दिवस भोजनकर सोलहवें दिवस पिता के समीप आय प्रणाम कर सम्मुख निकट बैठा, तब उसको प्रसन्न सावधान चित्त देख पिताने वेदविद्या विषयक प्रश्न किया तब उस श्वेतकेतु ने अपने पिताको सहित अर्थ के ऋगादि सर्व वेद श्रवण कराया, तब प्रसन्न चित्त उद्दालक कहता हुआ, उद्दालक उवाच ॥ हे सौम्य हे प्रियदर्शन श्रवणकर, जैसे लोकबिषे महत् परिमाण इन्धनके भस्महुए एक खद्योत (चिनगार) मात्र अंगार अवशेष रहताहै तब उसको वर्द्धमान करने के अर्थ प्रथम सूक्ष्म अरु शुष्क तृण के चूर्णसे उस चिनगारमात्र अंगारको प्रज्वलित (वर्द्धमान) करते हैं वा होताहै तब तिस एक चिनगारमात्र अंगार से पुनः भी पूर्वपरिमाणसे भी अधिक दहन करता है ५ ॥ अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य ऐसेकहे दृष्टान्त प्रमाण तिसअन्नकी सोलह कलाओं के मध्य एक कला अवशेष रही सो अन्न के सूक्ष्मरसकरके समाहित हुई पुनः प्रज्वलित हुई तब तिसकरके तैंने वेदों का अनुभव किया। हे सौम्य अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राण है, तेजमयी ही वाक् है (इति सिद्धं) इसप्रकार पिता के कहने से वो श्वेतकेतु , मन, प्राण, वाक्, का , अन्न, जल, तेज मयत्वपना निश्चयकरके जानताहुआ ६ ॥ इति सप्तमखंडः ७ ॥

इति त्रिवृत्करणम् ॥

भावार्थ मंत्र षष्ठ का ॥

हे सौम्य, उक्त दृष्टान्त प्रमाणही अन्नकी सूक्ष्म सोलह-

ओं कलाओं के मध्य (जो मनका सामर्थ्यरूपाहै) एक कला तुझ को अवशेष रही, जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमा की एक एक कला घटते २ पन्द्रह दिवसमें एक कला अवशेष रहती है सो पुनः शुक्ल पक्ष को पाय एक एक दिवस में एक एक कला वर्द्धमानहोते होते पुनः षोडशकला सम्पन्न होता है, हे सौम्य तैसेही तेरे पन्द्रह दिवस पर्यन्त अन्नके त्यागने से एकएक दिवस प्रति एक एक कला घटते २ तेरा मनरूप चन्द्रमाहै सो क्षीणहो एक कलामात्र अवशेष रहा तब तुझको ऋगादि वेदों में से कुछ भी न भासा, अरु जब तूने पन्द्रह दिवस भोजन किया तब एक एक दिवस भोजन किये अन्नकी सूक्ष्मांशरूप कला वर्द्धमानहोते होते पन्द्रह दिवसमें पुनः मन पूर्ण होआया, तब तिस करकेही अब तुझको ऋगादिवेदवेदांग सर्व अर्थसहित भासिआये, अर्थात् स्फुरण हो आये॥ हे सौम्य इसप्रकार व्यावृत्तिकी अनुवृत्ति क-रके मनका अन्नमयत्वपना सिद्ध है, इसप्रकार उपसंहार करत संते कहते हैं। हे सौम्य अन्नमयही मनहै, जलमयही प्राण है, तेजमयीही वाक् है। अर्थात् हे सौम्य जैसे मनका अन्नमयत्व-पना अन्नके त्यागने से तुझको स्पष्ट अनुभव सिद्ध निश्चयहुआ है, तैसेही प्राणका जलमयत्वपना अरु वाक् का तेजमयत्व-पनाभी सिद्धहुआही जानना, इत्यभिप्रायः। हे सौम्य इसप्रकार जब उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को मनका अन्नमयत्वपना स्पष्ट अनुभव निश्चयकराया तब वो श्वेतकेतु पिता करके उपदेशकी विद्याको यथार्थ जानताहुआ, यहां जो मूल श्रुतिके अन्तमें "विजिज्ञाविति" यह दोबार कहाहै सो त्रिवृत्करणके प्रकरणकी, अरु इस षष्ठ परिपाठकके पूर्वार्द्धकी, समाप्ति के सूचनार्थ जानना॥ ६॥

इति छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके सप्तमखण्डः॥ ७॥

इति छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठ प्रपाठके
पूर्वार्द्ध समाप्तम्

अथ छान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके उत्तरार्द्ध अष्टम खण्डः ॥

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाचस्वप्नान्तं मे सौम्य बिजानीहीति यत्रैतत्पुरुष स्वपिति नाम सता सौम्य तदा सम्पन्नोभवति स्वमपीतोभवति तस्मादेनꣳ स्वपितीत्याचक्षतेस्वꣳह्यपीतोभवति १ ॥

अक्षरार्थ ॥

उद्दालक इस प्रसिद्ध नामवाला अरुणका पुत्र तातें आरुणि इस द्वितीय नामवाला, सो अपने श्वेतकेतु नाम पुत्रको कहता हुआ, हे सौम्य मेरे कहे प्रमाण स्वप्नके अन्त (सुषुप्ति) को जानो जिसकालमें इस पुरुषका सोवताहै ऐसा नाम होता है तिस काल में सत् सम्पन्न होता है, अपने आप बिषे गयाहोता है, एतदर्थ इसको सोयाहै ऐसा कहतेहैं, आप अपने अधिष्ठान आत्मा बिषे गया होता है १ ॥

भावार्थ खण्ड ८ मन्त्र प्रथम का ॥

॥ः—हे सौम्य उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतुको जिस एक अद्वैत अचेत्य चिन्मात्र सत् नाम्नी सत्ता समान के जानने से तिसका तिसबिषेही अध्यस्त कार्यता रूपही जानाजाता है, इस आदेश के स्पष्ट लखावने के अर्थ, मृत्तिका का, सुवर्ण का, अरु लोहका, यह तीन दृष्टान्त कहके कहा कि "स देव सौम्येद मग्र आसीदेकमेवा द्वितीयम्"। हे सौम्य यह समस्त नाम रूप क्रियात्मक जगत् अपनी उत्पत्तिसे पूर्व एक अद्वितीय सत्हीथा, सोसत् अपनी इच्छासे, तेज, जल, पृथिवी, इन तीन कारण तत्त्व होयके पश्चात् उन तीनों के त्रिवृत्करणद्वारा बाह्य भीतर का स्थूल सूक्ष्म समस्त जगत् रूप होता हुआ, सो सर्व सविस्तर तुम्हारे प्रति मैंने कहा। अब सो उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतुको समस्त जगत् का मूल सत्चैतन्य का दृढनिश्चय

करावता हुआ, तहां सुषुप्ति, क्षुधापिपासा, अरु मरण, इन तीन द्वार से सर्व जीवों को अपने आप बिम्ब रूप सत् चैतन्य स्वरूप की अभेद प्राप्ति देखाय पश्चात् उपदेश करता हुआ कि हे श्वेतकेतु सो महासूक्ष्म सत् आत्मा तुही है । तिस को भी मैं तेरे प्रति कहताहों तिसको सावधान होके श्रवण करो —:॥ उद्दालक उवाच, हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु जैसे आदर्श (दर्पण) बिषे पुरुष, अरु जलादिकों बिषे सूर्य्यादिक प्रतिबिम्ब रूपसे प्रवेश करते हैं, तैसेही जिस मनबिषे सत् चैतन्य परादेव ने (सर्व के नाम रूपको प्रकट करने के अर्थ) अपने आभास रूपसे प्रवेश कियाहै, सो मन अन्नमय, प्राण जलमय, वाणी तेजमय, (अर्थात् यहां मन, प्राण, वाणी, इन तीनों के मिश्रित होने को लिंगका रूप जानना, इन तीनों का जो निर्णय हुआहै सो लिंगका निर्णय जानना) इनके संसर्ग संगसे चिदाभास जीव संज्ञाको पाया है अरु जिस मन वा लिंगमें स्थितहो चिदाभास जीव दर्शन श्रवण मननादि व्यापार में प्रवृत्त हुआ भासता है॥:—अर्थात् स्थिरनिष्क्रिय आदि लक्षणवान् वस्तुकेप्रतिबिम्ब बिषे जो कम्पत्वादि क्रिया धर्म भासते हैं सो उपाधि के संसर्ग सम्बन्ध से भासे हैं, वास्तव से नहीं, प्रतिबिम्बको बिम्बके लक्षण धर्म्मवान् होने से। अथवा जैसे शुद्ध स्फटिकमणि रक्त पीतादि रंगवाले पदार्थों बिषे स्थित हुआ तिनके संसर्ग सम्बन्ध से तन्मय हुआ भासे है परन्तु स्वरूप करके तैसा होता नहीं तैसेही मन इन्द्रिय आदिकों बिषे आभासरूपसे प्रवेशपाया शुद्ध सत् चैतन्यदेव मन आदिकों के संसर्ग सम्बन्ध से तन्मयहुआ जीव संज्ञाको पाया सत्ता दर्शन श्रवण मनन आदि क्रिया का कर्त्ता कहाजाता है, परन्तु अपने स्वरूप करके किसी भी क्रिया का कर्त्ता नहीं—:॥ तिन मन आदिकों के उपशम हुए अपने आप सत् चैतन्यदेवरूप को प्राप्त होताहै । सो श्रुत्यन्तरमें कहा भी है। तथाच "ध्यायतीव लेलायतीव सुधीः स्वप्नोभूत्वेमं लोक-

मतिक्रामति स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमय इत्यादि । स्वप्नेन शारीरमित्यादि । प्राणन्नेव प्राणो नाम भवतीत्यादि "। अतएव तिस इस मनविशिष्ट चैतन्यका कि जो (स्फटिक मणि के उक्त दृष्टान्त प्रमाण) मनके साथ तन्मयता को पावने से मन संज्ञा को प्राप्त हुआ है, अरु मनके उपशम होने रूपद्वार से विषयों से इन्द्रियां जिसकी निवृत्त हुई हैं ॥ :–अर्थात् जिसका मन उपशम भावको (मनत्व के अभावको) प्राप्त होता है तिसकी इन्द्रियां विषयों से निवृत्त होती हैं । अरु तिस करके चिदाभास अपने बिम्ब सत्‌चैतन्यदेव बिषे आत्मभूत (अभेद एक) हुएका जो अवस्थान कहिये अधिष्ठान, तिस सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्यदेवका अपने पुत्र को साक्षात् यथार्थ अनुभव करावने की इच्छावाला उद्दालक ऋषि जो अरुण नाम ऋषिका पुत्र होने से ,आरुणि, इस नाम करके प्रसिद्ध कहाजाता है । सो निश्चय करके अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति कहताहुआ ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो (उस सर्वाधिष्ठान जगत् के मूल शुद्ध सत्‌चैतन्य निर्विशेष परादेव को) स्वप्नके अन्त सुषुप्ति को विस्पष्टजानो (यथार्थ सम्यक् अनुभवकरो) अर्थात् स्वप्नान्त कहिये स्वप्नका मध्य, अर्थात् यह स्वप्न है इसप्रकार स्वप्नदर्शन वृत्ति करके जो स्वप्नका कारण सुषुप्ति कि जहां कार्य्य रूप जाग्रत् स्वप्न दोनों नहीं, तिस कारण सुषुप्ति बिषे अपने आप सत् चैतन्यदेवको विस्पष्ट जानो ॥:–हे सौम्य यहां जो कहा है कि स्वप्नके अन्त सुषुप्तिको जानो तिसका तात्पर्य सुषुप्ति के जानने पर नहीं, किन्तु जो चैतन्यदेव सुषुप्ति के साथ तादात्म्य पाया सरीखा होने से सुषुप्ति नाम करके कहाजाता है, कि यह पुरुष सोया है, तिसको सुषुप्ति रूप निरुपाधि अवस्था बिषे सुषुप्ति से पृथक् सुषुप्ति के प्रकाशक सत् चैतन्य निर्विशेष अपने आप आत्मस्वरूप के यथार्थ अनुभव करने पर है–॥"स्वमपीतो भव-

ति" इस वचन प्रमाण से । अरु सुषुप्तिसे अन्यत्र जीवका अपने आप बिम्बरूप आत्मा बिषे तद्वत् अभेद होना ब्रह्मवेत्ता इच्छते नहीं, क्योंकि तिस सुषुप्ति बिषेही जैसे आदर्श (दर्पण) अभाव हुए पुरुषका जो दर्पणगत प्रतिबिम्बहै सो अपने पुरुषरूप बिम्ब बिषे अभेदतासे प्राप्त होताहै, तैसेही दर्पणस्थानीय मन आदिकों के अभाव हुए तद्गत चैतन्य ,कि जिसने नामरूप के प्रकट करने के अर्थ अपनी इच्छासे मन बिषे प्रतिबिम्बरूप से प्रवेश किया है, सो मन नामवाले अपने जीवपनेको त्यागके अपने आप बिम्बरूप सत् चैतन्य परादेव बिषे अभेदतासे प्राप्त होताहै । अतएव स्वप्नान्त शब्दका वाच्य सुषुप्तिही ग्रहण होताहै । अरु जहां तो सोया हुआ स्वप्नोंको देखताहै तिनको सुख दुःख करके संयुक्त होनेसे सो पुण्य पापका कार्य है (सुख दुःखको पुण्य पाप जन्य प्रसिद्ध होनेसे) । अरु पुण्य पाप दोनोंको अविद्या जन्य कामना के आश्रय होने से सुख दुःखमय स्वप्नका दर्शन पुण्य पापरूप कर्म्मोंकरके ही जनितहै, अर्थात् अविद्या जो संसारका हेतुहै तिस अविद्या के काम कर्म्मादिकों करके युक्तही स्वप्नहै, एतदर्थ अविद्या के काम कर्म्म अरु तज्जनित सुख दुःखमय स्वप्न में जीवका अपने सत् चैतन्यदेव रूप बिम्ब के साथ अभेदता से एक होना बने नहीं ॥ तथाच "अनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णोहि तदा सर्व्वाञ्छोकान् हृदयस्य भवति तद्वाऽस्यै तदतिच्छन्दा एष परम आनन्द" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से, यह चिदाभास (जीव) अपने जीवत्व भावको त्याग के अपने आप सत् चैतन्य देव रूपताको अभेदतासे प्राप्तहोताहै । इस सिद्धान्त वार्त्ता को उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को, अरु श्रीशङ्कराचार्य्य अपने शिष्य मुमुक्षुओं को स्पष्ट देखावते हैं ॥

हे सौम्य हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो मेरे कहे प्रमाण स्वप्न के अन्तको सम्यक् प्रकार जानो, अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करो ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् किस काल में स्वप्नका अन्त होता है

उत्तर॥ हे सौम्य जिस कालबिषे पुरुषका यह नाम लोक बिषे प्रसिद्धहोताहै कि यह पुरुष सोवताहै॥ शंका॥ हे भगवन् यह नाम तो गौणहै॥ समाधान॥:– हे सौम्य यहां केवल वस्तुमात्रको लखावना है एतदर्थ यहां मुख्य नामकाही प्रयोजन होवे ऐसा नियम नहीं, अरु जिसअवस्थामें वस्तु लखाईजाय तिसही अवस्थाके सम्बन्धी नामका उपयोगवस्तुके लखावनेबिषेहोता है–॥ हे प्रियदर्शन जिस कालमें सर्व कोई इसको कहते हैं कि यह पुरुष सोवताहै तिस कालमें सत् शब्दके वाच्य अपने आप बिस्वरूप सत् चैतन्य आत्माबिषे सम्पन्न (एकीभूत) होताहै। अर्थात् मनबिषे प्रवेशकरने से मनआदिकों के संसर्ग से चिदाभासको प्राप्तहुआ जो जीवपना तिसको परित्याग करके (अर्थात् सुषुप्ति अवस्थामें मन आदि उपाधिके अभावहोने से चिदाभासके जीवपने (आभासपने) का अभाव होताहै) आप चिदाभास अपने सत्रूपको जो परमार्थ से सत्रूपही है तिसबिषे प्राप्तहुआ होताहै, तिसकरके उस पुरुषको, सोवताहै, इस नामसेलौकिक पुरुष कहते हैं॥ शंका॥ हे भगवन् सोयेहुए पुरुषको यह स्वप्न देखताहै वा सुषुप्ति में है इसविषयक जाग्रत् पुरुषको एक निश्चयहोवेनहीं, तब ,सोवताहै, इसनामकरके सुषुप्ति कोही कैसे निश्चयकरिये॥समाधान॥ हेसौम्य तुम सत्यकहतेहो परन्तु जो जाग्रत् बिषेही जो कामना करके पुण्य पापरूप कर्मों के करने से अरु तिनके फल सुख दुःखादिकों के भोगने से अतिश्रमित होते हैं, तब उन श्रमितहुए पुरुषों के मन बुद्धि इन्द्रियादि सर्व अन्तर बाह्यके करण श्रमित होनेसे अपने २ व्यापार से उपराम होते हैं, तब स्वप्नको न प्राप्तहोके सुषुप्तिको ही प्राप्तहोते हैं। अरु इस वार्त्ताका लोकबिषे पुरुषों को प्रत्यक्ष अनुभव है, एतदर्थ ही लौकिक पुरुष सोवनेवाले को „ स्वपिति „ सोवताहै अर्थात् सुषुप्ति को प्राप्तहुआ इस नामसे कहते हैं। तथाच। "श्राम्यत्येव वाक् श्राम्यति चक्षुरिति" इत्यादि प्रमाण प्रकार से।"तथाच"।

गृहीत वाक् गृहीतश्चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मन "। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ॥ शंका ॥ हे भगवन् सुषुप्ति अवस्थाबिषे अन्तर बाह्यके करणों के अभाववत् प्राणका भी अभावहोता होगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य यह शंका करने योग्य नहीं, क्योंकि जो वहां प्राणका भी अभाव होताहोवे तो उस सुषुप्ति पुरुषबिषे लोकोंको मरण की भ्रान्तिहोवे, ताते प्राणकरके ग्रसित करणों के अभावहुए शरीररूपी स्थानबिषे (चौकीदारवत्) एक प्राण जागताहै, ताते तिस समय कि जिस समय अन्तर बाह्य के सर्व करण मिश्रित होय के अपने २ व्यापार से उपराम हो कारण अविद्यामें लय होते हैं, यह जीव कर्तृत्व भोक्तृत्वादि सर्व श्रम से रहित अपने आप सत्चैतन्यदेव आत्मा को अभेदता से प्राप्त होता है । सुषुप्ति से अन्यत्र इस जीवको श्रमके अभाव पूर्वक स्वस्वरूपावस्थान को प्राप्तहोने का स्थान नहीं । एतदर्थ लौकिक पुरुषों का जो प्रसिद्ध यह कथन है कि यह पुरुष सुषुप्ति बिषे अपने आप सत्य स्वरूप को प्राप्त होता है सो युक्तही है ॥ :—अर्थात् मन इंद्रियादि सर्व विशेष उपाधि का अभावही परमानन्द की प्राप्ति है, उपाधि के अभाव हुए पश्चात् परमानन्द की प्राप्तिके अर्थ कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं—: ॥ हे सौम्य जैसे लोकबिषे देखते हैं कि जो ज्वरादि रोगकरके ग्रस्त पुरुष है तिसको ज्वरादि रोग की निवृत्ति सेही शरीरकी स्वस्थता प्राप्त होती है, ज्वरादि रोगकी निवृत्तिके पश्चात् उस पुरुषको शरीर की स्वस्थता (नीरोगता) के अर्थ कुछभी उपाय कर्तव्य शेष रहता नहीं। तैसेही यहां भी मन आदि उपाधि के अभावहुए पश्चात् अपने आप परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति के अर्थ कुछ भी कर्तव्यशेष रहे नहीं, एतदर्थ पूर्व वृद्ध विद्वानों ने भी उपाधि के अभावसेही परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति कहीहै, अरु जो परमानन्दको प्राप्तहुए हैं सो भी सर्व उपाधि को त्यागकेही हुएहैं । अतएव हे शिष्य जो तुम परमानन्द स्वरूपकी प्राप्ति इच्छते हो तो सर्व उपाधि का

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पति
त्वाऽन्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवो, पश्रयत एवमेव
खलु सौम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्रायत
नमलब्ध्वा प्राणमेवो, पश्रयते प्राणबन्धन छं हि सौ
म्य इति २ ॥

अभाव करो क्योंकि सर्व उपाधि के अभाव से परमानन्द रूप तुमहीं हो ॥ तथाच ॥ तद्यथा श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्त इत्यादि श्रुतिः" १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जैसे शकुनि पक्षी सूत्रकरके बाँधा हुआ दिशा दिशा में गिरके अन्यत्र आयतन (आश्रय) न पायके बन्धनको ही आश्रय करता है। हे सौम्य ऐसेही निश्चय करके सो मन (मन विशिष्ट चैतन्य जाग्रत् स्वप्नरूप) दिशा दिशामें गिरके (सत् चैतन्य से) अन्यत्र आश्रयको न पायके प्राणोपलक्षित चैतन्यको ही आश्रय करता है ' अतएव हे सौम्य प्राणोपलक्षित चैतन्यही मनोपलक्षित जीवका बन्धनोपलक्षित आश्रय है २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

उद्दालक उवाच ॥ हे सौम्य हेप्रियदर्शन श्वेतकेतो जो अर्थ तुझ से कहा तिसपर एक दृष्टान्त श्रवण कर। हे सौम्य सो शकुनि नाम वाला पक्षी (जिसको लोक बिषे शिकरा वा बाज कहते हैं) अरु जिसको पक्षी की शिकार करने वाले पुरुष उसकी पेटीसे सूत्रबांधके अपने हाथपर बैठावते हैं, सो उस पक्षी घातक पुरुष के हस्तगत सूत्रमें प्रबद्ध हुआ अपने बन्धनसे छूटने की (वा पक्षियों के शिकार) की कामना से सर्व दिशाओं में उड़ता उछलता गिरता है, परन्तु विगत श्रम होने के अर्थ, उस बन्धनोपलक्षित हाथसे अन्यत्र आश्रय को पावता नहीं तब उस बन्धनोपलक्षित हस्तको ही आश्रय पायके बिश्रांत

(विगतश्रम) होता है। हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त है तैसेही सो मन जो पूर्व अन्नकी सूक्ष्म सोलह कला का निर्धारकियाहै, तिस मन विशिष्ट चैतन्य जो मन रूप उपाधि के सम्बन्ध से मन वा जीव संज्ञाको पायाहै। अर्थात् मनोपलक्षित चिदाभास जीव ,मञ्चाक्रोशति, इसन्याय प्रमाण। अर्थात् 'मञ्च पुकारता है, इस वाक्यकरके मञ्चस्थ पुरुष पुकारता है यह अर्थ ग्रहण होताहै तैसेही यहां मन शब्दसे मनोपलक्षित चिदाभास (जीव) का ग्रहण है, ताते सो मन नाम उपाधिवाला जीव सो अविद्या के काम कर्म्मकरके (मनरूप उपाधिके धर्मकरके) उपविष्टहुआ (विषयादि भोगों की वा बन्धन निवृत्तिकी कामना से) जाग्रत् स्वप्न रूप दिशा दिशा में गिरता है ॥:—अर्थात् यह मनविशिष्ट चैतन्य जीव अविद्या के काम कर्मों के , जो उपाधि के धर्म हैं, बश हुआ विषयों की कामना से जाग्रत् रूप दिशामें कामना के वश हुआ अनेक शुभाशुभ कर्मों को करता हुआ थकता है, तब वहां श्रमकी निवृत्ति के अर्थ आश्रम को अन्वेषण करताहै, परन्तु वहां शांति के अर्थ आश्रय को पावता नहीं तब तिसके अर्थ स्वप्न रूप दिशामें जाता है अरु वहां जाय के भी कामना केवश पुण्य पाप रूप क्रिया को करता हुआ श्रमित होता है—:॥ परन्तु सत् नाम वाले अपने आत्मा चैतन्य देव से अन्यत्र आयतन कहिये विश्राम को आश्रय सो पावता नहीं, तब सर्व कार्य्य कारणों का आश्रय जो प्राण शब्द करके उपलक्षित सत् चैतन्य परादेव, अर्थात् " प्राणस्य प्राणं, प्राणशरीरी भारूप " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से सत्चैतन्य परादेव को प्राण नाम से कहते हैं, अतएव यहां प्राण शब्द करके प्राणोपलक्षित सत्चैतन्य देव का ग्रहण है तिस प्राण शब्द के वाच्य सत् चैतन्य देव को सुषुप्ति में आश्रय कर (तद्गत एक होय) यह मन नाम वाला जीव विगत श्रम परमानन्दित होता है। अतएव हे सौम्य मन शब्द का वाच्य मनोपलक्षित चिदाभास जीवका परम

आश्रय (परमानन्दका स्थान) प्राण शब्द का वाच्य प्राणोपलक्षित सत्चैतन्य परादेवही है अन्य नहीं ।:– हे सौम्य जब यह जीव पुण्य पापके कार्य्य सुख दुःखादिमय जाग्रत् स्वप्नमें खेदित (श्रमित) होय मन आदि रूप उपाधिको त्याग सुषुप्ति में जाय अपने बिम्बरूप सत्चैतन्य परादेवको अभेदतासे पाय परम आनन्दित होताहै अन्यत्र नहीं। एतदर्थही कहा है कि सर्व जीव सुषुप्तिमें जायके अपने आप सत्चैतन्य देवको अभेदता से समान प्राप्तहोते हैं॥ शिष्यउवाच॥ हे भगवन् श्रुतिने अरु आपने आज्ञा किया कि सुषुप्ति में सर्व जीव अपने सत् चैतन्य आत्मरूपको समान प्राप्तहोते हैं। सो अस्तु परन्तु सत् आत्माको प्राप्तहोके भी पुनःवहांसेनिकस आवतेहैं तिसकाहेतु क्याहै सोभी आपकृपाकरके कहिये॥ गुरुरुवाच॥ हे सौम्य यह सर्व जीव सुषुप्ति अवस्था में मन इन्द्रिय आदिकों के संघातरूप लिंगको अविद्यामें त्यागके। अर्थात् सुषुप्ति अवस्थामें कारण अविद्याविषे लिंगके लय होनेसे लिंगविशिष्ट चिदाभास (जीव) ' दर्पणके अभावसे प्रतिबिम्बवत्, अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य परादेवविषे एकताको पावता है, परन्तु अविद्या करके कामकर्मादिकों के संस्कार अपने साथ लेजाते हैं सोई कामकर्मादिकों के संस्कार सत् चैतन्य देवको प्राप्तहुए भी जीवोंको वहां से निकास लिंग साथ मिलाय जाग्रत् स्वप्नमें डालदेते हैं। अरु जो यहां जाग्रत्विषे ही आचार्य्य द्वारा वेदके महावाक्यार्थ का ज्ञानपाय सर्व काम कर्म्मों के संस्कारों को त्याग अपने आप सत् चैतन्य आत्मदेव प्राप्त होते हैं सो एक बार सत् विषे गयेहुए पुनः जीव भाव विषे आवते नहीं॥ हे सौम्य इसपर एक दृष्टान्त श्रवणकरो। हे प्रियदर्शन जैसे जलसे भरे हुए काचके शीशे को धूपविषे रखने से वो शीशा तपजाता है अरु तिसके सम्बन्धसे शीशेका जल भी तप जाता है। अरु जब उस तपेहुए शीशेको जल विषे डुबोइये तब वो शीशे का जल शीतलहोता है, पुनः बाहर निकलने से तप्त

अरु जलमें जाने से शीतल होता रहताहै । हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्तहै तैसेही यहां अविद्याके काम कर्मों के संस्काररूपी शीशाहै तिसविषे जीवरूप जलहै अरु जाग्रत् स्वप्न रूप सूर्य का पाप पुण्य सुख दुःख रागद्वेषादि रूप धूपहै तिस धूपविषे रहा वो शीशेका जल सो त्रिविध तापों करके तपता ही रहताहै। अरु जब वो शीशेके जलवत् सुषुप्तिरूप नदीविषे जाताहै तब सत् चैतन्य देवरूप जलविषे गया परमानन्दरूप शीतलताको पाय परम शीतल शान्त सुखी होताहै । परन्तु जैसे शीशे के जलको नदी के जलसे बाह्य आवने का हेतु शीशाहै, तैसे ही सुषुप्तिविषे सत् चैतन्य आत्मदेवको प्राप्तहुए जीवोंको भी वहां से निकलने का हेतु अविद्या काम कर्मों के संस्कारही है । अतएव हे सौम्य तिस चैतन्य देवकी प्राप्तिविषे चिदाभासको मनआदिक उपाधियोंका अभाव कारणहै तैसेही अविद्या काम कर्म्मोंके संस्कारों का भी अभाव कारणहै । अतएव जिस पुरुषको पुनरावृत्ति से रहित सत् चैतन्य अपने आप आत्मदेवकी प्राप्ति इच्छितहै तिस पुरुषने श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल महावाक्यार्थ का सम्यक् ज्ञानपाय अविद्या काम कर्म्मों के संस्कारों को जो पुनरावृत्ति होनेका हेतुहै, अभाव करताही उचितहै ॥ हे सौम्य यावत् वो काचका शीशा फूटता नहीं तावत् वो शीशा विशिष्ट जल नदी के जलविषे गयाहुआ भी पुनरावृत्ति से रहित नदी के जल साथ एक होता नहीं । तैसेही यावत् इन जीवोंकी मन आदिकों का संघात लिंग अरु तिनके धर्म कर्म्मादिकों के संस्कार रूप उपाधि अशेष अभाव होती नहीं तावत् इन जीवोंको पुनरावृत्ति से रहित सत् चैतन्य देवकी अभेद प्राप्ति होती नहीं। ताते मोक्षार्थियों को मोक्षके अर्थ उक्त उपाधि के अभावार्थ पुरुषार्थ करना योग्य है । वास्तव करके शीशे नदी के जल में भेद नहीं जलविषे दोनों की एकताही है, परन्तु शीशेरूप उपाधि के होते उपाधि की की हुई अल्पता परिच्छिन्नता के

अभाव पूर्वक वो शीशे का जल नदी के महान् गंभीर जल साथ अभेदतासे एक होता नहीं। ताते उक्त उपाधिके अभावार्थ श्रवण मननादि पुरुषार्थ की आवश्यकताहै ॥ हे सौम्य अब उक्तदृष्टान्त दार्ष्टान्त की समता को श्रवण करो, हे प्रियदर्शन जलरूप सत्का कार्य्यनामरूप पृथिवी है तिस पृथिवीका कार्य्य शुद्ध भाग काच है तिस काचका कार्य्य नामरूप शीशा है। इसप्रकार कार्य्य कारणकी परम्परा से शीशे पर्य्यन्त सर्व जलहै, तहां सर्वका पराकारण सत्जल अपनेही कार्य्यरूपी शीशे में प्रवेश पायके अल्पता परिच्छिन्नताको प्राप्त होता है अरु सूर्य्यके धूप करके अतितप्त होताहै अरु अपने वास्तविक नदी के महान्गंभीर परम शीतल जलमें जाय आपभी तद्वत् शीतल शांत होताहै। परन्तु अपनेही कार्य्य शीशेरूपी नामरूप उपाधि करके युक्तहुआ अपने परम शीतल महान् गम्भीर जलरूपी आत्मा विषे गया हुआ भी वहांसे निकल सूर्य्य के धूपमें अत्यन्तताप को प्राप्त होताहै। अरु जब वो शीशा अपने पराकारण जल विषे जाय के फूटजाता है तब वो शीशे का जल पुनरावृत्ति से रहित हुआ अपने महान् गंभीर परम शीतल जलरूप सत् आत्माके साथ अभेद एकहुआ न वहांसे बाह्य आवताहै न धूप करके तपायमान होताहै ॥ हे सौम्य इसदृष्टान्त प्रमाणही इन सर्व नामरूपात्मक जगत् के पूर्व सर्वका पराकारण एक अद्वैत सत्हीथा जिसको जलस्थानी जानो, अरु उस सत्की इच्छाकरके हुए जे, तेज, जल पृथिवी, इन तीनों तत्त्वोंको पृथिवी स्थानीजानो, अरु इन तीनों तत्त्वों के सूक्ष्म अंशों से हुए जे, मन, प्राण, वाणी, इन तीनों के संघातरूप लिंगको शीशेकेस्थानापन्न जानो, अरु तिस लिंगविशिष्ट चैतन्य(चिदाभासजीव) को शीशेकेजल स्थानापन्नजानो। हे प्रियदर्शन सर्वका पराकरण सर्वाधिष्ठान जो सत् चैतन्य परादेव सो अपने आभास रूप से लिंग विषे प्रवेश करने से परिच्छिन्न अल्पभावको प्राप्त हुआहै, अरु तिस करके अल्पज्ञ तुच्छ

अशनापिपासे मे सौम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषो ऽशिशिषति नामाय एवतदशितंनयते तद्यथा गोनायो ऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्ग मुत्पतितꣳ सौम्य विजानीहीति नेदममूलं भविष्यतीति ३ ॥

पापी अपराधी जीव कहा जाताहै, अरु जाग्रत् स्वप्नरूप सूर्यके पाप पुण्य सुख दुःख रागद्वेषादिरूप किरणोंके त्रिविधताप करके तप्त दुःखितही रहताहै, तिस दशामें जो कदापि दैववशात् सुषुप्तिको प्राप्त होताहै तब अपनी उक्त उपाधिको त्याग तिसके सूक्ष्म संस्कार साथले अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य देव बिषे प्राप्त हो कुछ शीतल सुखी आनन्दितहोताहै। परन्तु अपनेही वास्तविक सत् चैतन्य सर्वके पराकारण देव स्वरूप के कार्य लिंगरूप उपाधि के धर्म्म कर्मादिकों के संस्कार युक्तजाने से अपने वास्तविक परमार्थरूप सत् चैतन्य देव बिषे गयाहुआ भी पुनःनिकस आवता है। ताते उक्त उपाधियोंका त्यागनाही अनिवार्य्य परमानन्द अपने आपकी प्राप्तिका कारण है। हे सौम्य जो पुरुष वेदके महावाक्यार्थ का सम्यक् बोधरूप दंड लेके लिंगरूप शीशेको 'जो वाचारंभण मात्रही है, फोड कारण अविद्या रूपा पृथिवीमें मिलाय पुनः तिस अविद्याको अपने आप सर्वाधिष्ठान रूप सत् चैतन्य आत्मसत्ता विषे तिसकी पृथक् सत्ताके अभाव से अध्यस्त जान तिस अविद्याका बाधरूप अभाव निश्चयकर अपने यथार्थ साक्षात् अनुभवद्वारा अपने आप सत् चैतन्य सर्वाधिष्ठान सर्वात्मदेव भावको प्राप्तहुआ है सो पुरुष उस सत् चैतन्य देव बिषे गयाहुआ फेरके आवतानहीं, वो सत् बिषे गया हुआ सत्ही होताहै ॥ तथाच ॥ "यथानद्यस्पन्दमाना समुद्रे अस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्त परात्पर पुरुष मुपैति दिव्यम्'॥ इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे॥—:२॥

अक्षरार्थ॥

हे सौम्य मेरे कहे प्रमाण भोजनकी अरु जलपान की इच्छा के द्वारसे भी (उस जगत् के मूल सत्‌चैतन्य को सम्यक् प्रकार जानो जिस कालमें इस पुरुष का नाम भोजन की इच्छावाला होताहै, भोजनकिये अन्नको जल द्रवीभूत करताहै, जैसे गोपाल गौवों को अश्वपाल अश्वों को पुरुषपाल (राजा) पुरुषों को पालताहै, इसप्रकार जलको कहते हैं, भोजन की इच्छा से (अन्न रूप बीजसे) देहरूप अंकुर (कार्य्य) उपजताहै ऐसा जानो, ताते यह शरीर निर्मूल नहीं ३॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का॥

हे प्रियदर्शन „स्वपिति„ यह पुरुष सोवताहै इस नामद्वारा अर्थात् जिसप्रकार सुषुप्ति के द्वारा सर्व जीवों को जगत्‌के मूल सत्‌चैतन्यदेवकी प्राप्ति होती है, सो अपने पुत्र श्वेतकेतु को अनुभव कराय, पुनः उद्दालक पिता अन्नादि कार्य्यकारण की परम्परा से जगत् के मूल उस सत्‌चैतन्य के लखावने की इच्छा वाला अपने पुत्रको कहता हुआ॥ हे प्रियदर्शन श्वेतकेतु मेरे कहे प्रमाण क्षुधा पिपासा की इच्छाके द्वार से भी उस सत् चैतन्यदेवको विस्पष्ट जानो। अर्थात् भोजन की इच्छाको कहिये अशना (यहां, अशनाया, ऐसा पदहोना चाहिये परंतु यहां 'अशना, ऐसा पदहै सो छान्दस आर्ष प्रयोग है, अतएव यहां अशुद्धताकी भ्रान्ति करनी नहीं। अरु पिपासा कहिये जलपान की इच्छा, ताते, अशना, पिपासा, इनदोनों से सो तत्त्व जो जगत् का मूल है तिसको, विस्पष्ट जानो। जिस कालमें यह पुरुष अशन पिपासा की इच्छावाला होताहै॥ प्रश्न॥ हे भगवन् यह पुरुष भोजन जलपान की इच्छा क्यों करताहै, अरु तिस काल में किस निमित्त से तिस पुरुषका नाम होताहै॥ उत्तर॥ हे सौम्य उस पुरुष करके भोजनकिया अन्न उदरविषे जाय जठराग्नि करके पकायाहुआ कठिन पिंडवत् होताहै तब इस पुरुष

तस्यक्क मूल छं स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सौम्या न्नेन शुंगे नापो मूल मन्विच्छद्भिः सौम्य शुंगेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुंगेनसन्मूल मन्विच्छ स न्मूलाः सौम्येमाःसर्व्वाःप्रजाःसदायतनाःसत्प्रतिष्ठाः ४॥

को तृषा लगती है, तब तिस तृषा के समय जलपान करता है, जब जलपान करता है तब वो जल उदर में जाय उस अन्न के पिंडको द्रवीभूत करताहै, तब वो अन्न रसादि क्रमसे परिणाम को पावताहै, तब वो भोजनकिया अन्न जीर्ण भावको प्राप्त होता है (पचजाताहै) तब वो पुरुष पुनः भोजन की इच्छा करताहै, इस गुण सम्बन्धी गौण नाम से उस पुरुषका भोजन की इच्छा वाला नाम होताहै । हे सौम्य जैसे गौवोंको पालनेवाला गोपाल गौवोंकी, अरु अश्वोंको पालनेवाला अश्वपाल अश्वोंकी, अरु पुरुषों का पालनेवाला राजा वा सेनापति पुरुषोंकी पालना करते हैं । तैसेही जल उदरविषे जाय उस भोजनकिये अन्नको द्रवीभूत करता है तब अग्नि उस अन्नका अनेकप्रकार रसकरके सर्व नाड़ियों में पहुंचाय शरीर का पालन करता है । ताते यह शरीर अन्न रसकरके निष्पादित (रचित) है । जैसे बट के सूक्ष्म बीजसे अंकुरोत्पत्ति होतीहै, तैसेही अन्न के सूक्ष्म रसकी परम्परा से इस शरीर की उत्पत्तिहै, एतदर्थ शरीर की उत्पत्ति का मूल अन्नहै ऐसा विस्पष्ट जानो ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् शरीर का मूल अन्न है इसविषय में क्या जाननाहै ॥ उत्तर ॥ हे प्रियदर्शन श्रवणकरो यह शरीर अंकुरवत् कार्यहोनेसे मूल बिनाका होने को योग्य नहीं ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

श्वेतकेतु उवाच। तिसका क्या मूल हैं। उद्दालक उवाच। हे सौम्य अन्नसे इतर इसका मूल क्या है (अन्नही इसकामूलहै)

ऐसाही हे सौम्य अन्नरूप शुंगकरके तिसका मूल जलको निश्चय करो, हे सौम्य जलरूप अंकुर करके तिसका मूल तेजको जानो तेजरूप अंकुर करके हे सौम्य सत् चैतन्य रूप मूल को निश्चय करो, हे सौम्य यह सर्वप्रजा सन्मूलवाली है, सत् आयतनवाली है, अरु सत्प्रतिष्ठावाली है ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथेका ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब उद्दालक पिताने कहा कि यह शरीर मूल विनाका होनेको योग नहीं, तब श्वेतकेतु नाम पुत्र प्रश्न करता हुआ ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यदि आपके कहे प्रमाण यह शरीर अंकुरवत् समूलहै तो इसका मूल क्याहै सो आप कृपा करके कहिये। इसप्रकार जब पुत्रने प्रश्न किया तब उद्दालक पिता उत्तर कहता हुआ ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य तैंने प्रश्न किया कि तिस शरीरका (जो अंकुरवत् कार्य्य है) तिसका मूल क्या है सो अन्नसे इतर इसका क्या मूलहै, अर्थात् इसका मूल अन्नही है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इस शरीरका मूल अन्नकैसेहै सो आप कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जब यह पुरुष भोजन करता है तब उस भोजन किये अन्नको पिया हुआ जल उदरविषे द्रवीभूत (कोमल, ढीला) करता है, तब उदरबिषे जठराग्नि करके पचाया हुआ अन्न रसादि क्रम से परिणाम को पावता है। पुनः उस रससे रुधिर होताहै, रुधिर से मांस, मांससे मेद, मेद से अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासेशुक्र (वीर्य) होताहै। हे सौम्य इसप्रकार पुरुषके उदरबिषे अन्न रसादि क्रमसे परिणामको पावता है। अरु तैसेही स्त्री करके भोजन किया अन्न रसादि क्रमसे ही परिणाम पाय अन्त शोणित होताहै, तब उत्त अन्नके कार्य्य शुक्र शोणित एकत्र हुएका (गर्भबिषे) देह उत्पन्न होताहै, अरु अन्न रस करकेही वहां वर्द्धमान होताहै, अरु नित्य नित्य अन्न भोजन सेही शरीरकी स्थिति होती है । एतदर्थ उक्त प्रकार अन्न रसका परिणाम होनेसे इस देहरूप अंकुरका मूल अन्नही है॥:—

अर्थात् इस शरीरकी अन्न करके उत्पत्ति बृद्धि स्थिति अरु अन्न विना अभाव होना देखने से इसका मूल अन्नही निश्चय होता है॥ प्रश्न॥ हे भगवन् जो तो देहरूप अंकुरका मूल अन्न आपने निर्देश किया सो अस्तु, तथापि तिस अन्न को देहवत् उत्पत्ति बिनाशवान् होने से उसकी सत् चैतन्य मूलसे उत्पत्ति कैसे संभवेगी (अर्थात् अन्नको उत्पत्ति विनाशवान् होने से उसकी उत्पत्ति सत् चैतन्य मूलसे संभवे नहीं) तब सो शुंग (अंकुर) ही है ऐसा क्यों कहतेहो ॥ उत्तर॥ हे सौम्य जैसे देहरूप अंकुर का मूल अन्न है, तैसेही हे सौम्य अन्नरूप अंकुर (कार्य्य) करके अन्नरूप अंकुर का मूल जलको प्रतिपादन करते हैं, अरु अन्न वत् जल को भी उत्पत्ति विनाशवान्पना होने से अंकुरपना है, ताते हे सौम्य जलरूप अंकुर कहिये कार्य्य करके तिसका मूल (कारण) तेजको निश्चयकरो । अरु तैसेही तेजको भी उत्पत्ति विनाशवान् होने से अंकुरपना है, ताते तिस तेजरूप अंकुरका मूल सत् चैतन्यको जानो,कैसाहै वो सत् चैतन्य एकही अद्वितीय है (अरु वास्तवसे उत्पत्ति बिनाश रहित अज अविनाशी) सत् है, जिस बिषे यह सर्व तेजादि कार्य्य कारणात्मक स्थूल सूक्ष्म सर्व प्रपंच रूप विकार (कार्य्य) केवल नाम मात्रही है । हे सौम्य जैसे, रज्जुबिषे सर्प, शुक्ति बिषे रूपा, स्थाणु बिषे पुरुष, मरुस्थल बिषे जल, इत्यादि सर्व अध्यस्त होनेसे अपनी सत्ताके अभाव से कहने मात्रही हैं । तैसेही सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्य परादेव बिषे यह नाम रूपात्मक स्थूल सूक्ष्म सर्व जगत् अविद्या करके अध्यस्त होनेसे अपनी पृथक् सत्ताके अभाव करके केवल वाचारंभण (कहने मात्र) ही है । ताते सोई सर्वाधिष्ठान सत् चैतन्य इस समस्त नाम रूपात्मक जगत् का मूल है । अतएव हे सौम्य यह सर्व स्थावर जंगम लक्षण वाली प्रजा सत् चैतन्य मूल (कारण) वाली है । सो सत् चैतन्यसे उत्पन्नहोनेकरके केवल सत् मूल वाली ही है ऐसा नहीं किन्तु इस स्थिति काल बिषे

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एवतत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितछं सौम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ५ ॥

सत् चैतन्य के आश्रय होने से सत् आयतन (आश्रय) वाली है॥ सो भी एतना ही नहीं कि सत् मूल अरु सत् आयतन वालीही होवे किन्तु यह सर्व्व स्थावर जंगम नामरूप लक्षण वाली समस्त प्रजा अन्तमें सत् प्रतिष्ठावाली होती है। अर्थात् अन्त में सर्व्वाधिष्ठान सत् चैतन्य विषेही परिअवसान पावती है। अर्थात् जैसे मृत्तिका का कार्य्य घटादिक मृत्तिका से उपजते हैं, मृत्तिका के आश्रय वर्त्तते हैं, अरु परिणाम मृत्तिका बिषेही लय होते हैं ॥:—अर्थात् जो वस्तु जिसबिषे कल्पित होती है ,मृत्तिका बिषे घटादिवत् सो अपनी स्थितिकालमें उसहीके आश्रय वर्त्तती है, उसका उपादानसे इतर आश्रय कोईभी होवेनहीं , जैसे घटके नाम रूपका आश्रय मृत्तिकाहै तैसे, अरु वो वस्तु अन्तमें अपने उपादान मेंहीं परिअवसान (समाप्ति) पावे है, जैसे घटफूटके मृत्तिका बिषेही परिणाम पावे है, अथवा जैसे घटका नाम रूप कल्पित होनेसे सो घट बिषे मृत्तिका मेंहीं परिअवसान पावे है तैसे—:॥ अथवा जैसे रज्जु बिषे अध्यस्त सर्प रज्जु सेही उपजताहै रज्जुके आश्रय वर्त्तता है परिणाम रज्जु बिषेहीलय होताहै। ताते वो सर्प रज्जु रूप है इतर नहीं, तैसेही यह नाम रूपात्मक सर्व प्रजा चैतन्य देवरूप मूलवाली है, अरु तिसहीके आश्रय वर्त्तती है, अरु परिणाम विचारदशा बिषे रज्जु में सर्पवत् लय होती है। ताते यह सर्व प्रजा ,सत् मूला, सत् आयतना, सत् प्रतिष्ठा, वालीहै ॥:—इस उपनिषद् के तृतीय प्रपाठक केबिषे "सर्व्व खल्विदं ब्रह्म" ,निश्चय करके सर्व ब्रह्मही है, ऐसा

कहाहै तिसका सविस्तर निर्णय इस षष्ठ प्रपाठक में यहां पर्य्यंत हुआ जानना–॥ ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

अथ (अब जलरूप अंकुर के द्वार से सत्मूल को श्रवण करो जिस काल बिषे इस पुरुषका नाम यह जलपानकी इच्छा वाला होता है तिस समय पानकिये जलको तेजही पालन वा परिणाम को प्राप्त करता है जैसे गोपाल गोओंको अश्वपाल अश्वोंको पुरुषपाल पुरुषों को । तैसे तिस तेजको कहते हैं जो तेज उदकको यथा स्थान प्राप्त करता है, तहां यह शरीरही जल रूप मूलका अंकुर है हे सौम्य ऐसा जानो, यह शरीर निर्मूल होने को योग्य नहीं ५ ॥

भावार्थ मंत्र पांचवेंका ॥

हे सौम्य, अब जलरूप अंकुर के द्वार से सत्मूलका उद्दालक ऋषिने अपने पुत्रको लक्ष्य करायाहै सो भी श्रवण करो। उद्दालक उवाच ॥ हे श्वेतकेतु जिस कालमें इसपुरुषका नाम जलपान की इच्छावाला होता है, सो यह नाम भी भोजन की इच्छावाला, इस नामवत् गुण के सम्बन्ध से गौणहोता है। हे सौम्य भोजनकिये अन्नको पानकिया जल ढीला करता है, अरु तिस अन्नको ढीलाहोनेसे तिसका कार्य्य देहरूप अंकुर सो भी जलकी बाहुल्यता से शिथिल होजावे जो तेज करके वो जल शोषण न कियाजाय। ताते पानकिया जल निरन्तर तेज करके शोषण किया जल भी अन्नवत् देहभावरूप परिणाम को पावताहै। अतएव जब उदरबिषे जलको तेज शोषण करताहै, तब पुरुष को जलपान की इच्छा होती है, तब उस पुरुष का नाम जलपानकी इच्छा वाला होताहै (लोक कहते हैं) ताते सो तेजही पानकियेहुए जलादिकों को देहके अन्तर रुधिर प्राणादि भावसे परिणाम को प्राप्त करताहै ॥ :–अर्थात् पूर्वकहा हुआ है कि पानकियाहुआ जल उदरबिषे तीनप्रकार का होताहै, तह

उसके स्थूल भागका मूत्र, मध्यम भाग रुधिर अरु सूक्ष्म भाग का प्राण होताहै। इस प्रकार जो उदरबिषे तीन भावआदि परिणाम होते हैं सो तेजके किये होते हैं—:॥ अरु उस जलके परिणाम रुधिरादि रसको यथा स्थान यथायोग्य प्राप्त करता है। जैसे गौओं को गोपाल अरु अश्वों को अश्वपाल, अपने २ गौ अश्वोंको यथा स्थान प्राप्तकर यथायोग्य तृणादि देते हैं, अरु जैसे पुरुषपाल (राजा वा सेनापति) प्रजाको वा सेनाको यथायोग्य अधिकार प्रति स्थापनकर उनका पालन करता है। तैसेही तेज अपने जलरूप अंकुर (कार्य्य) को रुधिरादि भावसे परिणामकर शरीर के यथायोग्य स्थान (नाड़ियों) को प्राप्त करता है॥ ताते तिस तेजको लौकिक पुरुष कहते हैं कि उदकको तेज परिणाम को प्राप्त करता है। यहां मूल श्रुतिमें "। उदन्येति "। ऐसा पदहै सो छान्दस होनेसे अशुद्ध नहीं, परन्तु "।उदकंनयति"। ऐसा पद होताहै॥ तहां भी जैसे पूर्व अन्नका अंकुर देह कहाहै तैसेही जलकाभी यह शरीर नामवाला अंकुरहै अन्यका नहीं॥:— अर्थात् "। अयंपुरुषः अन्न रसमयः "। इस अन्य श्रुति के वाक्य प्रमाण भी यह शरीर रूप अंकुर अन्न जलरूप मूलवालाहै—:॥ अरु सामर्थ्य करके तेजका भी यहही शरीर नामवाला अंकुर है॥ अर्थात् यह स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणों का संघातरूप शरीर परम्परा करके तीन तत्त्वरूप मूलवाला है अरु तीन तत्त्व सत् चैतन्य मूलवाले हैं—:॥ अतएव जल के अंकुर देहकरके तिसका मूल जलही जाना जाताहै। अरु जलरूप अंकुर करके तिसका मूल तेज जानाजाताहै। अरु तेजरूप अंकुर करके तिसका मूल सत् चैतन्यदेव जाना जाताहै। पूर्ववत्। हे सौम्य उक्त प्रकारही तेज, जल, अन्न, मयशरीर रूप अंकुर जो केवल वाचारंभण मात्रही है तिसका अन्नआदि परम्परा करके परमार्थ से सत् चैतन्य मूलवाला होनेसे सो भी सत् मूलवाला सत्ही है अविद्यादि मूलवाला नहीं।: अरु जो इसको अविद्यादि मूलवाला

तस्य क्व मूलᳬस्यादन्यत्राद्भ्योऽभिः सौम्यशुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सौम्य शुङ्गेन सन्मूल मन्विच्छ सन्मूलाःसौम्येमाः सर्वाःप्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा तु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सौम्य पुरुषस्य प्रयतो वचन्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजःपरमा देवतायां स य एषोऽणिमा॥६॥

कहाहै सो इसके नामरूप को कल्पित होनेसे कहा है नतु वस्तु करके तो यह तेजादिकों की परम्परा से सत् चैतन्य मूलवाला ही—: ॥ हे सौम्य इस प्रकार उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को हे सौम्य सुखपूर्वक सत् नामवाले सर्व के मूलको जानो, ऐसा कहके ,भोजन की इच्छावाला, अरु जलपान की इच्छा वाला, इन दो प्रसिद्ध द्वारसे देहरूप अंकुर को अन्नादिकों की परम्परासे परमार्थ करके सत् चैतन्य मूलवाला लक्षकराय तिस के निमित्त से सर्वजगत् का पराकारण सत् चैतन्य आत्मदेव काही लक्षकराया ५ ॥

अक्षरार्थ ॥

श्वेतकेतुरुवाच ॥ तिसका क्या मूल है ॥ उद्दालकउवाच ॥ तिसका जल से इतर क्या मूलहै । अर्थात् जलही उसका मूल है । हे सौम्य जलरूप अंकुरकरके तिसके तेजरूप मूलकोजानो, अरु तेजरूप अंकुरकरके हे सौम्य तिसके सत् चैतन्य रूप मूलको देखो । हे सौम्य यह सर्वप्रजा सत्रूप मूलवाली है, अरु सत्रूप आयतन वाली है, अरु सत्रूप प्रतिष्ठावाली है ॥ हे सौम्य जैसे तो निश्चय करके यह ,तेज, जल, अन्न, । तीनों देवता पुरुष (चिदाभास) को पाय एक एक तीन तीन प्रकार होते हैं सो पूर्वही कहाहै, होते हैं (तहां भोजन किया अन्न तीन

प्रकारका होताहै) सो हे सौम्य इस पुरुष (जीव) के मरण समय बाणी मनबिषे जाती है, मन प्राण बिषे जाताहै, प्राणतेज बिषे जाताहै, अरु तेज सत् चैतन्य परम देवबिषे जाता है ॥ सो जो सत् नामवाला यहही महा सूक्ष्म (आत्मा) है ॥ ६ ॥

भावार्थ मन्त्र षष्ठ का ॥

हे सौम्य इस षष्ठ मन्त्र का भावार्थ इसके पूर्व के चतुर्थ मन्त्र की व्याख्या बिषे सविस्तर कहा है, अरु वह मन्त्रार्द्ध है, अतएव यहां अक्षरार्थ मात्रही लिखाहै॥ हे सौम्य॥:-अब ,अन्न जल, तेज, इन तीनों तत्त्वों के त्रिवृत्करण के कार्य देहके अभाव (मरण) समय जिस प्रकार यह पुरुष नामवाला चिदाभास मन आदिकोंकी लयकी परम्परासे अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य देवको प्राप्त होताहै तिसको भी श्रवण करो-:॥हे प्रिय दर्शन श्वेतकेतो जिसप्रकार यह ,तेज,जल,अन्न ,नामवाले तीनों देवता पुरुषको (सत् चैतन्यके आभास जीवको) प्राप्तहोके त्रिवृत्करण होय पुनः उनका उदर बिषेजाय एकएकका त्रिधात्रिधा भाग होताहै सो तुझने पूर्वही कहाहै। तहां ऐसे होताहै कि ॥ "अन्नमशितं त्रेधा विधीयत" इत्यादि। अरु तहांहीं यह कहा है कि भोजन किये अन्नादिकोंकी जो मध्यम धातुयें होती हैं, तहां सात धातुओं करके निष्पन्न यह शरीर होताहै (सात धातुओं करके रचित यह शरीर कहाहै) तहां मांस होताहै रुधिर होताहै मज्जाहोती है अस्थि होताहै। अरु जो उन अन्नादिकोंके उदर बिषे सूक्ष्म भाग होते हैं तिनके क्रमसे ,मन, प्राण, बाणी, इन तीनोंका संघात देहके अन्तर उत्पन्न होताहै। सो कहाभीहै "तन्मनो भवति" सो मन होताहै, "स प्राणो भवति" सो प्राण होताहै, "सावाग् भवति" सो बाणी होती है। अर्थात् अन्न के सूक्ष्मांशका मन होता है, जलके सूक्ष्मांशका प्राण होताहै, अरु तेज (घृततैलादि) के सूक्ष्मांशसे वाणी होती है, सो यह मन प्राण वाणी का संघात रूप लिंग ॥:-अर्थात् मन उपलक्षण

करके अन्तःकरण चतुष्टय जानना, अरु प्राण उपलक्षण करके प्राणादि पाँच प्राण जानने, अरु वाणी उपलक्षण करके वागादि पाँचज्ञानेन्द्रियां जाननी, अरु इन सर्वका संघात कहने से लिंग को जानना-:॥ सो इस स्थूल देहके विशीर्ण (अभाव) होनेसे जीवके आश्रय हुआ, अथवा जीव है अधिष्ठाता जिसका सो लिंग जिस प्रकार पूर्वदेह से (अर्थात् वर्त्तमान शरीर से) उठ (निकल) के देहान्तरको प्राप्त होता है, अरु तिस मरणके समय जिस प्रकार सर्व जीव सत्चैतन्य को समान प्राप्तहोते हैं-:॥ सो श्रवण करो। हे सौम्य श्वेतकेतु इस पुरुष के मरण के समय उसकी वाणी मन बिषे जाती है, क्योंकि मन पूर्वक ही वागादि इन्द्रियोंका व्यापार है ॥ तथाच "यद्धैमनसा ध्यायति तद्वाचा वदति, इति श्रुत्यन्तरे ॥ अर्थात् जो कहने को मन इच्छता है सो वाणी कहती है, ताते वागादि इन्द्रियोंका व्यापार मनके आधीन है, सो मन मरण समय अति व्याकुल होताहै तब वागादि इन्द्रियां अपने २ व्यापारको त्याग मनबिषे प्राप्तहोती हैं। तब उस पुरुष के निकटवर्ती सम्बन्धी वा ज्ञाति के लोक परस्परमें कहते हैं कि हे भाई अबतो यह बोलता नहीं॥:-अर्थात् जब इस पुरुष का मरण समय निकट आवता है तब रोगादिकों की वृद्धि से उसका अन्न छूटजाता तब अशक्तता के कारण उसकी वागादि इन्द्रियां मनबिषे जाय एकत्र होतीहैं (अरु उनके अधिष्ठाता देवांश अपने २ समष्टि देवता बिषे प्राप्त होतेहैं, तिस समय उस मुमुर्ष की बाणी बन्द होजाती है, तब तिस समय उसके निकटवर्ती सम्बन्धी वा ज्ञातिके लोक परस्पर में कहते हैं कि हे भाइयो अब इसकी माँदगी असाध्य है क्योंकि अब यह बोलावने से भी बोलता नहीं ताते अब इसका जीवना, कठिन है, ऐसा कहत सन्ते उसकी स्त्री आदिक रुदन करते हैं, तब वो सम्बन्धियों को रुदन करते देख अपने जीवने की आशा त्याग बोलने से रहितहुआ रोवताहै तब वो अरु उसके सम्बंधी

दोनों खेद पावते हैं। हे सौम्य इतनेही में रोग की आधिक्यता से उस मुमुर्षु पुरुषके चक्षुरादि करण भी मन बिषे जाय प्राप्तहोते हैं —:॥ तब वो केवल मनके मनन रूप व्यापार से ही वर्त्तता है, अरु शीत आदि रोगोंकी अधिक वृद्धि होती है तब वो मन भी अति व्याकुल होय प्राण बिषे प्राप्तहोताहै॥-: अर्थात् वागादि इन्द्रियां जब रोग करके व्याकुल हुई मनबिषे जाती हैं तब वो मन विचारता है कि बाह्य कोई महत् उपद्रव उठा है जो यह सर्व भागके यहां आवते हैं, अतएव अब अपने को भी यहां से पलायन होना योग्य है, ऐसा विचार अपनी सर्व वृत्तियां अरु इन्द्रियां रूप अपना कुटुम्ब साथले आप मन प्राण बिषे सम्पन्न होताहै (जाता है)—:॥ सुषुप्ति कालवत् ॥ तब उसके निकटवर्ती जे सम्बन्धी ज्ञातिके लोगहैं सो परस्परमें कहते हैं कि अब यह कुछ भी जानता नहीं हे सौम्य उक्त प्रकार जब मन व्याकुल होय के प्राण बिषे जाता है तब प्राण ऊर्ध्व श्वास हो के अति शीघ्र २ चलता है अरु वो मुमुर्षु प्राणान्त खेदको पाय हाथ पैर पटकताहै, उस समय की बेकली उसको कल लेने देती नहीं। तिस समय उस प्राणने भी अपने अपानादि कुटुम्बको अपने पास बोलाय उन सर्व सहित हुआ आप प्राण तेजबिषे जाता है, तब प्राणकरके त्यागेहुए सर्व अवयव शुष्ककाष्ठवत् जहांके तहां पड़े रहते हैं, तब तिसको देख ज्ञातिके लोक परस्परमें कहते हैं कि हे भाई अब इसकी नाड़ीभी चलतीनहीं, जाने यह मरा वा जीवता है, ऐसा कह उसकी विचिकित्सा करते उसके शरीरको जहां तहां स्पर्श करते उसके वक्षस्थलपर हाथ रख कहतेहैं कि हे भाई अभी इसकी छाती उष्णहै, अतएव अभी यह मरा नहीं जीवताहै, परन्तु अब इसका मरण अति निकटहै। अरु उस समय उसके वक्षस्थल की उष्णतारूप लिंग से तेज का अनुमान कर कहते हैं कि अभी इसका वक्षस्थल उष्ण होने से इसमें तेज है। हे सौम्य तदनन्तर वो तेज भी अपने मूल

कारण सत् चैतन्य बिषे सम्यक् प्रकार प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य उक्त प्रकारक्रम करके जब मनको परम्परा करके अपने मूलको प्राप्तहुए अर्थात् जब मन प्राणसाथ मिलके तेज बिषे अरु वो तेज अपने मूल कारण सत् चैतन्य परदेव बिषे प्राप्तहोता है, तब मन विशिष्ट चैतन्य (चिदाभास जीव) अपने बिषे आभास-पने की निमित्त उपाधि के उपसंहार हुए आपभी उपसंहार होताहै । अर्थात् मनआदि रूप उपाधि का अपने सत् मूल में उपसंहार हुए, मनस्थ चैतन्य (चिदाभास) सोभी अपनेबि-स्वरूप सत् चैतन्यबिषे एकताको पावेहै सुषुप्ति कालवत् । जैसे सूर्य्य अपनी किरणों से जलोत्पन्न कर तिस बिषे आपही प्रति-बिम्बित होता है, अरु आपही अपनी किरणों द्वारा जलको शो-षण करता है तब जलगत सूर्य्यका प्रतिबिम्ब भी अपनी उपाधि के अभाव से सूर्य्य साथ एक होता है, तैसे ॥ अरु तहां जा क-दापि आचार्य से महावाक्यार्थ का सम्यक् ज्ञानपाय अपने आप सत् चैतन्य सर्वात्म देवको यथार्थ साक्षात् अनुभव करके जो सत् बिषे जाताहै सो पुरुष सुषुप्ति से जाग्रत् में आवनेवत् देहान्तर में जाता नहीं वो सत् आत्मा बिषे गयाहुआ सत् सर्वा-त्माही होताहै । सोई यह महा सूक्ष्म आत्मा है कि जिस बिषे गयाहुआ ज्ञानवान् फेरके आवता नहीं अरु अज्ञानी जिस बिषे गये हुए ज्योंके त्यों निकस आवते हैं, ॥ :- प्रश्न ॥ हे भगवन् जो अज्ञानी पुरुष मरण के समय सत् बिषे जाते हैं सो पुनः वहां से निकस किस मार्ग से लोकान्तर, देहान्तर को प्राप्त होते हैं सो भी आप कृपा करके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य इन सर्व जीवों के मरणोत्तर शरीर से निकलने वा जानेके मार्गोंका नि-यम नहीं क्योंकि इनके रस्ते इनकी कर्म्म उपासनाके अनुसार हैं । हे सौम्य जो पुरुष प्रणव पंचाग्नि के उपासक हैं, नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं वानप्रस्थ हैं आत्म आनंदसे रहित संन्यासी हैं वा समाधि के करनेवाले योगी हैं, ये सर्व अपनी यथार्थ उपासना

अरु आश्रम धर्म्म के करनेवाले हैं, ये सर्व सुषुम्णा नाम्नी नाड़ी द्वारा मस्तकके ब्रह्मरंध्र के मार्ग से निकल ब्रह्मलोकमें जाय ब्रह्मा के साथ वा ब्रह्मा से सम्यक् आत्मज्ञान पाय ब्रह्मासे प्रथमही मोक्ष होते हैं। वो उत्तम उपासक "। न स पुनरावर्त्तन्ते "। पुनः जन्म मरण लक्षणवान् संसार बिषे आवते नहीं। अरु जो पुरुष यज्ञादि कर्म्मों को करते हैं वा विद्या से रहित केवल इष्टा पूर्त्तादि कर्म्मों को ही करते हैं सो स्वर्ग अरु पितृलोकमें प्राप्तहो वहां अपने कर्म्मों का फल भोग पुनः इसलोक में जन्म पावते हैं। अरु जे शिव विष्णु सूर्य्य देवी आदि देवतों की उपासना करते हैं सो अपनी उपासना के अनुसार उन देवताओंके लोक को प्राप्त होते हैं। अरु जो पुरुष सर्व प्रकार कर्म्म उपासना से भ्रष्ट हैं तिनको व्यावहारिक शुभाशुभ जैसे कर्म्मोंका अभ्यास अरु जिस बिषे चित्तकी आशक्तता होती है तिसके अनुसार मनुष्य पशु पक्षी कीट पतंगादि योनि को प्राप्त होते हैं॥ अतएव हे सौम्य इन जीवों को मरणोत्तर शरीर से निकलने के रास्तों का नियम नहीं अरु जिस पुरुष (जीव) ने अपने कर्म्म, उपासना, अभ्यास, आशक्ति, के निमित्त से मरणोत्तर जिस लोक वा शरीरको प्राप्तहोना होताहै सो तिस नाड़ी रूप द्वारसे निकसता है। अर्थात् जिसने कर्म उपासनाके अनुसार जिस लोक वा शरीरको प्राप्तहोना होताहै तिसलोककी प्रापक नाड़ी का द्वार उस समय खुल जाता है और सर्व नाड़ीरूप मार्ग बन्द होजाताहै, अरु उस खुलीहुई नाड़ीके द्वारपर उसके कर्म्म उपासना के संस्कार अपने अनुसार प्रकाश करते, हैं तब उस नाड़ीके मार्ग से निकल अपने शुभाशुभ कर्म्मों के प्रकाश के आश्रय जहां कर्म लेजाते हैं तहां ही प्राप्तहोताहै। अतएव हे सौम्य इन जीवों के शरीरसे निकलने के मार्ग अनेक होने से तिनका नियम नहीं तथाच। "। योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीर त्वाय देहिनः स्थाणु मन्येत संयन्ति यथा कर्म यथाश्रुतं "। "। तद्य इह

स य एषोऽणिमा ॥ ऐतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्य ꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ७ ॥ इति अष्टमखंडः ८ ॥

रमणीय चरणाअभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मण योनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनि मापद्येरन् श्वयोनिं वा शुकरयोनिं वा चण्डाल योनिं वा "। "। तेन प्रद्योततेन निष्क्रामति मूर्द्धो वा चक्षुषो वा अन्येभ्यःशरीर देशेभ्यो "। "। विद्यया देवलोकःकर्म्मणा पितृलोकः "।इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे ॥ हे सौम्य जो आत्मानुभवी ज्ञानवान् पुरुष हैं कि जिसने आचार्य से वेदके महावाक्यार्थका सम्यक् ज्ञानपाय अपने आप सत् चैतन्य आत्माका यथार्थ अनुभवकर तिसविषे अभ्यास द्वारा दृढ स्थिति पाय तादात्मताको प्राप्तहुआहै सो पुरुष अपने आप सत् स्वरूपविषे समुद्रमें नदीवत् गयाहै सो फेरके आवता नहीं । वो सर्व मार्गों से रहितहै उसका प्राण (जीवात्मा) शरीरसे न निकलके तहांही अपने बिम्बरूप सत् चैतन्य ब्रह्म में अभेदतासे प्राप्तहोताहै "। न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति "। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे—॥ ६ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, सो यह (सत् नामवाला) जिसको महासूक्ष्म कहाहै ॥ सो यह सदात्म्यहै जिन सर्वका सो सर्व इसका आत्मा (अपना आप) है। (अर्थात् जिस आत्मा करके यह सर्व जगत् आत्मवत् सत्यहै) सोई सत्य है हे श्वेतकेतो सो आत्मा तू है। इसप्रकार जब पिताने उपदेश किया तब श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाइये, इस प्रकार जब श्वेतकेतुने विनयकिया तब पिताने कहा हे सौम्य तथास्तु (कह-

ताहीं) ७॥ इतिछान्दोग्यउपनिषदि षष्ठप्रपाठके अष्टमखंडः ८ ॥

भावार्थ मन्त्र सातवेंका ॥

हे सौम्य, जैसे लोकबिषे सभय देशमें वर्त्तमान पुरुष जो कदापि अभयदेशको प्राप्तहोवे तो वो पुनः सभय देशको प्राप्त होनेकी इच्छा करता नहीं। हे सौम्य तैसेही जिसने श्रवणादि करके अभय देशरूप सत् चैतन्य आत्माको सम्यक् प्रकार जाना है अरु जानके उस बिषे सोहमस्मि, भाव से सम्यक् प्राप्तहुआ है, सो इस जन्म मरण लक्षणवान् संसाररूप सभय देशमें आवता नहीं। अरु आत्मज्ञानी से इतर अनात्मज्ञ पुरुष हैं सो उसही सर्व के मूल महा अभय देश सत् चैतन्य बिषे प्राप्तहोके भी, सुषुप्ति से जाग्रत् में आवनेवत् सत्से उत्थान हो मृत्युको पाय पुनः देह जालमें प्रवेश करताहै (जैसे पक्षी बधिक की जालमें तैसे) ॥ हे सौम्य जिस सत् नामवाले मूलसे उत्थान होय यह अज्ञानी जीव देहमें प्रवेश करताहै॥ सो यह सत् नाम वाला यह कहा जो महा सूक्ष्म जगत्का मूल सोई यह सदात्मा जिन सर्व्वोंका है सो यही आत्माहै, तिसका जो भाव सो कहिये, एतदात्म्यम्, (अर्थात् जिसबिषे प्राप्तहोके ज्ञानवान् फेरके नहीं आवते अरु अज्ञानी वहांसे ज्यों के त्यों निकल आवतेहैं। अरु जो नाम रूपात्मक समस्त जगत्का नामरूपसे रहित महा सूक्ष्म सत् मूल कहा है सोई सर्व्वाधिष्ठान होने से सर्व्व का आत्माहै, अरु इस तिस सदात्मा करके, यह सर्व वाचारम्भणमात्र जगत् आत्मवत् सत् होरहाहै। अर्थात् जो सर्वाधिष्ठान सदात्मा जगत्का मूलहै सोई अपनेबिषे अध्यस्त जगत् में अधिष्ठानरूपसे प्रवेशकर रहाहै। ताते सोई सर्व्वात्माहै। हे सौम्य इस सदात्मासे इतर संसारी आत्मा कोई नहीं तथाच ॥ "नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ", इत्यादि श्रुत्यन्तरे ॥ हे सौम्य जिस आत्मासे आत्मवत् यह सर्व जगत् है सोई सत् नामवाला जगत् का मूल (कारण) है ताते सत् मूलवाला

॥ अथ छान्दोग्य उपनिषदिषष्ठप्रपाठके नवमखंडः ॥

यथा सौम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्य यानां वृक्षाणाꣳरसान् समवहारमेकताꣳ रसं गम यन्ति १ ॥

होने से समस्त जगत् परमार्थ करके सत्ही है। ताते सोई आत्मा जगत्का प्रत्यक् स्वरूप सोई तत्त्व होने से वोही सर्वात्माहै। हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म आत्मा तूही है ॥ इस प्रकार जब उद्दालक पिताने (सर्वनाम रूपात्मक जगत् के मूल सत् चैतन्यको लक्ष्य कराय पुनः कहाकि सो सदात्मा तू है)। तब तिसको श्रवणकर श्वेतकेतु कहता हुआ कि हे भगवन् हे पिताजी पुनः भी आप मुझको समझाय के कहिये। आपने जो कहा सो संदिग्ध होनेसे तिस विषयक मुझको संशयहै, हेभगवन् आपने आज्ञा किया कि सुषुप्ति में जायके सर्वप्रजा सत्को समान प्राप्त होती है, सो अस्तु, परन्तु रोज रोज यह सर्व प्रजा सत्को प्राप्त होतीहै, परन्तु वहां यह कोईभी नहीं जानता जो हम अब सत्को प्राप्त हुएहैं। हे भगवन् जिस कारण से सत्को प्राप्तहोके भी नहीं जानते कि हम सत्को प्राप्तहुएहैं, सो आप मुझको दृष्टान्त पूर्वक समझायके कहिये। इसप्रकार जब श्वेतकेतु ने संशययुक्त प्रश्नकिया तब उद्दालक पिताने कहा कि हे सौम्य तथास्तु (जैसे तुमने प्रश्नकिया तैसेही मैं दृष्टान्तपूर्वक उत्तर कहताहौं सो तुम श्रवण करो ७ ॥

इति छान्दोग्यउपनिषदिषष्ठप्रपाठके अष्टमखंडः ८ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे लोकविषे मधुको मधुकर (सहतकी मक्खी) एकत्र करे है तहां नाना जातिके, देशान्तर के वृक्षों के रसों को हरण करके उन रसोंको एक मधुभावको प्राप्तकरे है १ ॥

ते तथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्यरसोऽस्मीत्येवमेव खलु सौम्येमाः सर्व्वाःप्रजाः सतिसम्पद्यन विदुः सति सम्पद्यामह इति ॥ २ ॥

भावार्थ खंडनवम मंत्र पहिले का ॥

हे सौम्य, हे श्वेतकेतो तूने जो प्रश्नकिया कि यहसर्व प्रजा नित्य नित्य सत्को प्राप्त होके भी नहीं जानती जो हम सत्को प्राप्त हुए हैं सो किस कारण से नहीं जानती । हे सौम्य इसके उत्तरमें प्रथम दृष्टान्तको श्रवणकर पश्चात् दार्ष्टान्तको श्रवणकरो हे सौम्य जैसे लोकबिषे मधुकृत ,अर्थात् जो मधुको सम्पादन करे सो कहिये मधुकृत ऐसी जे मधुकर मक्षिका (सहतकी मक्खी) सो मधुको निष्पादन करने में तत्पर रहती है ॥ प्रश्न ॥ कैसे मधुको निष्पादन करे है ॥ उत्तर ॥ नाना दिशाओंके नाना गति (जाति) के वृक्षों के रसों को सम्यक् प्रकार हरण करके उन सर्व्व एक मधुत्व भाव बिषे प्राप्त करती है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे (एकत्रहुएमनुष्य विवेकको पावतेहैं तैसे) मधुभाव बिषे विवेकको प्राप्तहोते नहीं कि हम अमुक वृक्षके ,हम अमुक वृक्षके रसहैं । हे सौम्य तैसेही निश्चय करके यह सर्व प्रजा सत्को प्राप्त होयके भी यह नहीं जानती जो हम सत् को प्राप्त हुए हैं ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य वो सर्व रस जो समान मधुत्व भावको प्राप्त हुएहैं सो अपने मधुत्व भाव बिषे विवेकको प्राप्तहोते नहीं ॥ प्रश्न ॥ उनको कैसा विवेक नहीं होता ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य मधुत्वको प्राप्त हुए रसोंको यह विवेक नहीं होता जो हम अमुक अमुक वृक्षके रस हैं ॥ हे सौम्य जैसे लोक बिषे बहुत से चेतनावान् प्राणी एक स्थान में एकट्ठे हुओंको विवेकका लाभ होताहै वा रहता है कि

हम अमुकके पुत्रहैं अमुक हमारा गोत्रहै अमुक हमारी जाति है अमुक हमारा नामहै अमुक स्थानमें हमारा गृहहै, हम सर्व यहां एकत्र होयके पंच संज्ञाको प्राप्तहुए हैं। हे सौम्य तैसे यहां उन रसोंको जो एक समान मधु भावको प्राप्त होते हैं तिनको यह विवेक होता नहीं जो हम अमुक वृक्षके रसहैं मधुरादि अमुक हमारा स्वादहै अमुक दिशा में हमारा स्थान है हमको मक्षिका ने यहां मधुभाव को प्राप्त किया है। हे सौम्य जैसे यह दृष्टान्त है तैसेही निश्चय करके (ईश्वरसे पिपीलिका मशकादि पर्यंत सर्व प्रजा (जीव) नित्य नित्य सुषुप्ति काल विषे, मरण काल बिषे, प्रलयकाल बिषे, सत्चैतन्य देवको प्राप्तहोके भी यह नहीं जानते जो अब हम सत् भावको प्राप्त हुए हैं (अर्थात् हे सौम्य यह सर्व प्राणधारी मात्र प्रजा, सुषुप्ति में, मरणकाल में, प्रलय काल में सत् चैतन्य विज्ञानघन भावको प्राप्त होती है। जैसे सर्व जातिके वृक्षों के पृथक् २ स्वाद युक्त रस मधुकर मक्षिका के उदरमें समान मधुभाव को प्राप्त होते हैं तैसे॥ हे सौम्य जिस कारण से यहां (जाग्रत्बिषे) अपने आप सत्रूप आत्मा को यथार्थ जाने बिनाही सत् बिषे प्राप्त हुए हैं। अरु इसलोक बिषे अपने पूर्व के जिन जिन कर्म्मों के निमित्त से जिस जिस जाति (योनि) को प्राप्त हुए हैं, अरु उन उन जातियोंके अहंकाररूप रंगों करके रंगेगये हैं, अरु उन रंगोंके आश्रय किसी ने अपने को व्याघ्र माना है, किसी ने अपने को सिंह माना है, किसी ने अपने को मूषक (चूहा) माना है। इसप्रकार सर्व प्राणी अपने २ पूर्व कर्म्मानुसार जिस जिस जातिको प्राप्त हुए हैं, अरु तिनके अहंकाररूप दृढ रंगोंसे रंग रहे हैं, अरु तिन तिन जाति के कर्म्म ज्ञान स्वभावादिकों की बासना करके अंकितहुए ही सर्व उक्त तीनों स्थानों बिषे सत् चैतन्य विज्ञान घनको प्राप्त होते हैं, परन्तु जिस जिस भावको अपने अपने बिषे लेके प्राप्त हुए हैं तिसही तिस अपने अपने अनात्मभाव करकेही जाने से

त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति ॥ ३ ॥

सत् चैतन्य बिषे प्राप्तहुएभी पुनः वहांसे निकल उसही उस अपने २ पूर्वके भावको प्राप्तहोते हैं २ ॥

अक्षरार्थ ॥

ते (पुनः सत्से) इसलोक (जाग्रत्) बिषे आयके अपनेको व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा डाँस वा मच्छर वा अन्य, इत्यादि प्रकार पूर्व अपने को जो जो मानके सत्बिषे जाते हैं सोई सो सत् से निकल के भी होते हैं॥ ३॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

हे सौम्य, जो जीव अज्ञान करके कर्म्मोंके निमित्त से प्राप्त हुए अनात्म देहादिक तिनके अहंकार अरु तिनके धर्म्म कर्म्मादिकों के संस्कार अरु विषयादिकोंकी वासना, इन करके अंकित हुए सन्ते सत् चैतन्य में प्रवेश पायके भी पुनः वहां सों निकल इस जाग्रत् में आय अपने पूर्व के अभ्यास वश अपने को व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा मच्छर वा अन्य। अथवा, कोई व्याघ्र, कोई सिंह, कोई वृक, कोई वराह, कोई कीट, कोई पतंग, कोई डांस, कोई मच्छर, ॥:—कोई मनुष्य ब्राह्मण वा क्षत्रिय, वा वैश्य, वा शूद्र, वा पण्डित, वा मूर्ख, —:॥ इत्यादि प्रकार जो जो जीव जिस जिस शरीर जाति वर्ण आश्रम नाम रूप आदिकों को अपना मान तिस बिषे दृढ अहंकार कर तिनकी दृढ वासना करके वासितहुए सत् बिषे जाते हैं सोई सो वासना संस्कार उनको सत् से निकाल लावे है तब वो सर्व जीव इस जाग्रत् जगत् में आये अपने पूर्व के अभ्यास संस्कारों के वशहुए अपने बिषे पूर्व भाव कोही मानते हैं (अर्थात् जिस भावके संस्कार अपने बिषे लेके

सत्को प्राप्तहोते हैं तिसही तिस भाव को सत् से निकल के भी अपने बिषे मान सोई सो होते हैं)॥:—हे सौम्य जैसे जो पुरुष जिस कार्य को करता हुआ सो जाता है सो पुरुष उस कार्य के अरु तिसके कर्त्तापने के संस्कार अपने बिषे लेके ही सोवता है अरु सोयाहुआ सुषुप्तिमें सत्चैतन्य विज्ञान घन आत्मामें अभेदतासे प्राप्तहोता है, अरु अपने पूर्वके काम कर्म्मादिकोंकेसंस्कारों केवशहुआ सत् से निकल जाग्रत्बिषे आवता है तब पुनः उसही कार्यको करता है कि जिसको पूर्व जाग्रत्बिषे करता हुआ सो जाताहै, अरु तिसही का कर्त्ता अपने को मानता है ॥ अरु जो पुरुष इस जाग्रत्बिषेही श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल श्रुति के महावाक्यार्थ के ज्ञानको पाय तिसका सम्यक् प्रकार मनन अभ्यासकर निःसंशयहोय अपने आप सत् चैतन्य आत्मस्वरूप को साक्षात्कार करताहै, अरु बुद्धि आदि उपाधि अरु तिनके धर्म्म कर्म्मादिकों से असंग सर्व का द्रष्टा साक्षी अपने आपको यथार्थ अनुभव करता है सो विद्वान् पुरुष एकबार सत् बिषे गये सत्यस्वरूपही होते हैं, वो पुनः इस जीव भावबिषे आवते नहीं क्योंकि जाग्रत् मेंही सत् चैतन्य अपने आप आत्माको सम्यक् प्रकार जानके तिसबिषे "सोहमस्मि" भावसे प्राप्त होते हैं। अतएव हे सौम्य जो तुमको पुनरावृत्ति से रहित अपने आप निरुपाधि निर्विशेष सत् चैतन्य विज्ञानघन आत्मदेवकी अभेद प्राप्ति इच्छितहोय तो तुम भी इस जाग्रत् बिषेही वैराग्यादि साधन सम्पन्नहोय किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल तिनसे तत्त्वमस्यादि महावाक्य श्रवणकर तिसका मनन अभ्यास कर सम्यक् ज्ञानपाय अपने आप वास्तविक सत् आत्मस्वरूप का साक्षात्कारकर सोई रूपहो वो आगे जो तुम्हारी इच्छा—:॥ हे सौम्य यावत् इन जीवोंको सम्यक् आत्मज्ञान होता नहीं तावत् सहस्रकोटि युगपर्य्यन्त भी पूर्वकी भावित वासना निवृत्त होती नहीं। "यथाप्रज्ञं हि संभवा, इतिश्रुत्यन्तरे "। अरु यावत्

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूयएव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ४ ॥ इति नवम खण्डः ६ ॥

वासना नाशहोती नहीं तावत् सत्को प्राप्त होनेसेभी पुनरावृत्ति निवृत्त होती नहीं ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सो यह सत् आत्माहै जिन सर्व्व का सो सर्व इसका अपना आपहै, सोई सत्यहै हे श्वेतकेतो सोई सत् आत्मा तूहै। इस प्रकार जब पिताने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा कि हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाय के कहिये, पिताने कहा तथास्तु (कहताहौं) ४ ॥ इति षष्ठप्रपाठके नवमखंडः ६ ॥

भावार्थ मंत्र चौथेका ॥

हे सौम्य, हे श्वेतकेतो उक्त प्रकारकी सो (अज्ञान युक्त) सर्व प्रजा जिसविषे प्रवेशपाय पुनः प्रकट होतीहै। अरु तिन प्रजासे अन्य ज्ञानवान् सत्याभिसन्ध (सत् आत्मामें अभिसन्धान करनेवाले) जिस महासूक्ष्म सत् चैतन्य विषे एकबार प्रवेशपायके सोई रूपहुए पुनः इस संसारी जीव भावविषे आवते नहीं, सोई यह महासूक्ष्म सर्वका आत्माहै, अरु जिसका यह नाम रूपात्मक सर्व्व जगत् अपना आप है ॥:—जैसे मृत्तिका घट शरावादिकों का आत्माहै अरु घट शरावादिक मृत्तिकाका अपना आपहै तैसे—:॥ सोई सत् आत्माहै। हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म सत् आत्मा तूही है। इसप्रकार जब उद्दालक पिता ने उपदेशकिया तब श्वेतकेतु पुत्र कहताहुआ कि हे भगवन् सोई सत् आत्मा मैंहौं सो अस्तु परंतु हे पिताजो जैसे लोकविषे अपने

गृहमें सोआहुआ पुरुष उठके ग्रामान्तरको जाताहै तहां वोपुरुष जानताहै जोमैं अपनेगृहसे उठके यहांआयाहौं। तैसेही इनजीवों को जोसत्‌मेंप्राप्तहोय पुनः वहांसे आवते हैं तब वो पुरुष अपनेको क्योंनहीं जानते जो हम सत्‌को प्राप्तहोके यहांआयेहैं। हे पिताजी आपने मधुका दृष्टान्त कहा सो अस्तु परन्तु वो सर्व वृक्षोंकेरस तो जडहैं उनको अपने रसपनेका ज्ञान नहीं जो हम अमुक वृक्षके रसहैं, अरु उनको अपने मधुभाव का भी ज्ञान नहीं जो अब हम मधुभाव को प्राप्तहुएहैं। हे पिताजी यह सर्व जीव तो चैतन्यहैं ताते इनको सत्‌की प्राप्तिमें ज्ञान होना चाहिये जो हम जाग्रत् बिषे अमुकथे अब सत्‌को प्राप्तहुएहैं, अरु सत् से आवने का भी ज्ञान होना चाहिये जो हम सत्‌से आयके अमुक भावको प्राप्तहुए हैं, परन्तु सो ज्ञान इन जीवोंको होता नहीं। ताते हे भगवन् इसको भी मुझे समझायके कहिये, इस प्रकार जब पुत्रने प्रश्न किया तब पिताने कहा तथास्तु (कहताहौं श्रवणकर) ४॥ इतिछान्दोग्यउपनिषदिषष्ठप्रपाठके नवमखंडः ॥ ६ ॥

अथ छान्दोग्यउपनिषदिषष्ठप्रपाठके दशमखंडः ॥

इमाः सौम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्पन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापि यन्ति समुद्रएव भवन्ति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे यह गंगाआदि नदियां प्रथम पूर्व दिशासों स्रव के पूर्वको जाती हैं, पश्चात् पश्चिमदिशा प्रति सिन्धुआदि नदियां जाती हैं, सो सर्व नदियां समुद्रसे मेघों द्वारा निकलती हैं, पुनः समुद्रको प्राप्तहोके समुद्रही होतीहैं, सो नदियां नहीं जानतीं जो हम प्रथम गंगा यमुनादि नामों से कही जातीथीं, अब समुद्र हुई हैं ॥ १ ॥

एवमेव खलु सौम्येमाः सर्व्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इतित इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतंगो वा दंशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति ॥ २ ॥

भावार्थ खंड दशम मन्त्र प्रथमका ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो अब अपने प्रश्नके उत्तर को दृष्टान्त पूर्वक श्रवण कर। हे सौम्य यह जो गंगा यमुना सिन्धु आदिनदियांहैं सो प्रथम समुद्रसे निकलीहैं, तहां प्रथम मेघ समुद्र से जलको आकर्षण करते हैं पश्चात् उस जलको पर्वतादि ऊपर वृष्टिद्वारा डालते हैं तब वो समुद्रकाजल स्रोतादि द्वारसे निकल पृथक् २ प्रवाहित हो पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण आदि दिशाओंमें धारावाहक भ्रमणकर कोई गंगा कोई यमुना कोई सरस्वती कोई नर्मदा कोई गोदावरी कोई कावेरी कोई व्यासा कोई शतद्रू कोई सिंधु आदि नामोंसे कही जातीहैं, अरु वो सर्व नदियां सर्व दिशाओं में घूमके अन्त समुद्रको प्राप्त होय समुद्रही होतीहैं। हे सौम्य उन नदियोंको नदीभाव बिषे यह ज्ञान नहीं होता जो हमारा वास्तव में महान् गंभीर अथाह समुद्ररूपहै हम तिस समुद्रसे निकसीहैं अब यहां अल्पभावको प्राप्त होय गंगा यमुना आदिनामोंसे कही जातीहैं, अरु जब वो नदियां सर्व दिशाओंमें भ्रमके समुद्रको प्राप्तहोय समुद्रही होतीहैं, तबभी वो सर्व नदियां यह नहीं जानतीं जो हम पूर्व नदी भावको प्राप्त होके गंगा यमुना सिन्धु आदि नामों से कहावती सर्व दिशा में भ्रमतीथीं अब हम अपने पूर्व के वास्तविक महान् गंभीर समुद्र को प्राप्त होय समुद्रही हुई हैं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य निश्चय करके उक्त दृष्टान्त प्रमाणही यह सर्व प्रजा सत् से आयके यह नहीं जानती जो हम सत् से आयेहैं, इसही

से सो सर्व इस लोकबिषे अपने को ,व्याघ्र, वा सिंह, वा वृक, वा वराह, वा कीट, वा पतंग, वा डांस, वा मच्छर, वा इत्यादि होते हैं (अर्थात् यह सर्व प्रजा अपने बिषे जिन जिन भावोंको लेके सत् बिषे प्राप्तहोती है सोई सो सत् से आय के भी होती है) ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो ऐसेही (कि जैसे दृष्टान्त कहाहै) यह सर्व प्राणधारी प्रजा जिसकारण से सत्को प्राप्तहोके नहीं जानती जो हम सत्को प्राप्तहुए हैं, तिसही कारणसे सत्से आय करके भी नहीं जानती जो हम सत्से आये हैं अरु हमारा सत्य स्वरूपहै, अरु तिसहीसे यहां जाग्रत् स्वप्नरूपी लोक बिषे सत्की प्राप्तिसे पूर्व जोजो भाव अपने बिषे मानती हैं सोई सो भाव सत् से आयकेभी मानती हैं, तहां कोई तो अपनेको व्याघ्र कोई सिंह कोई वृक कोई वराह कोई कीट कोई पतंग कोई दंश कोई मशक वा मनुष्यादि होते हैं ॥ः—हे सौम्य जैसे गंगा आदि नदियां समुद्र से आयके अपने समुद्र रूप को जानती नहीं, तैसेही यह सर्व प्रजा (जीव) सत्रूप समुद्र से बहिर्मुख निकल जाग्रत् स्वप्नरूपी देशमें आय अपने वास्तविक सत्चैतन्य स्वरूपके अज्ञान से वासना वश हुई नाना नामरूपों के अहंकार रूप रंगों करके रंगीगई हैं तिसही हेतु से यहां इस जाग्रत् रूप देश बिषे कोई तो अपने को ईश्वर कोई देवता कोई यक्ष गंधर्वादि कोई मनुष्य ब्राह्मणादि, अथवा कोई व्याघ्र वा सिंह वा वृक वा वराह वा कीट वा पतंग वा दंश वा मशक वा अन्य गो अश्व पिपीलिकादि जिन जिन नामरूप उपाधि के संस्कार अपने बिषे दृढ़ता से लेरही है सोई सो सत् से आयके भी होती है अतएव इन सर्व जीवों को यहां यह ज्ञान नहीं होता जो हमारा वास्तव में सत् स्वरूप है, अरु हम सत् से आयके शरीरादि नामरूप उपाधि साथ मिलके यहां ब्राह्मण क्षत्रियादि वा व्याघ्र सिंहादि क-

स य एषो ऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥ ३ ॥ १० ॥

हावते हैं ॥ अतएव हे सौम्य यह सर्व जीव परमार्थ विवेक से रहित होने करके मधु नदियोंवत् जड़ हैं, न तो इनको अपने सत्‌रूप समुद्र की ज्ञात है न अपने जीव भावकी खबर है जो हम कौन हैं अरु हमको क्या कर्त्तव्य है अरु हम क्या करते हैं । हे सौम्य यह सर्व अपने सत्यस्वरूप से बहिर्मुख होने का प्रभाव है ॥ २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहा है सो यह सत् आत्मा है जिन सर्वोंका सो सर्व इसका अपना आप है । सोई सत्य है हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म सत् आत्मा तू है । इस प्रकार जब पिता ने कहा तब पुत्रने कहा कि हे भगवन् पुनःभी मुझको समझाय के कहिये, पिता ने कहा तथास्तु ॥ ३ ॥ १० ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका

हे सौम्य, हे श्वेतकेतो (जैसे नदियां मेघों द्वारा समुद्र से निकल के अरु पुनः समुद्र को प्राप्तहोके भी यह नहीं जानतीं जो हम समुद्र से आई हैं अरु समुद्रको प्राप्तहुई हैं) तैसेही यह सर्व प्रजा मधुवत् सत्‌को प्राप्तहोके अरु नदियोंवत् सत् से निकल के भी यह नहीं जानतीं जो हम सत्‌को प्राप्तहुए हैं अरु सत् से आये हैं, सो जिस सत्‌को प्राप्तहोके अरु निकल के अपने सत्य स्वरूपको नहीं जानतीं सोई यह महासूक्ष्म सर्व का आत्मा है सोई सत् है, हे श्वेतकेतो सोई अणुवत् महा सूक्ष्म सर्व का सत् आत्मा तूही है । इस प्रकार पिता उद्दालक ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्मोपदेश किया तब श्वेतकेतु ने संशययुक्त होय कहा कि हे भगवन् मुझको फेरही

समझाय के कहिये, तब पिता ने कहा तथास्तु (कहता हौं) ॥ ३ ॥ :-प्रश्न हे भगवन् आपने मुझको सत् चैतन्य स्वरूप कहा सो अस्तु, परन्तु हे भगवन् जब यह जीव सत्चैतन्य हीहै तब यह सुषुप्ति में अपने सत्यस्वरूपको प्राप्त होके भी यह नहीं जानता जो हम पूर्व जाग्रत्बिषे देहादि उपाधि साथ मिल के अल्प जीव पापी अपराधी ब्राह्मण क्षत्रिय कहावते थे अरु अब यहां सुषुप्ति बिषे उन सर्व उपाधियों के अभाव से अपने आप सत्चैतन्यस्वरूप को प्राप्तहुआ हौं, सो क्यों नहीं जानता। अरु हे भगवन् जब यह जीव सत् से आवता है तब भी यह नहींजानता जो हम पूर्व सुषुप्तिमें सत् को प्राप्तहुए थे अब सत् से आयके इस जाग्रत् स्वप्नबिषे जीव पापी अपराधी अल्पज्ञ ब्राह्मण क्षत्रियादि कहावताहौं, सो क्यों नहीं जानता। हे भगवन् जिस करके यह जीव सत्को प्राप्त होके भी अरु सत्से आयके भी अपने आप वास्तविक सत्स्वरूप को नहीं जानते इसही करके प्रतीत होताहै जो यह जीव जड है क्योंकि दोनों ओर इसको ज्ञातका अभाव है ताते। अरु जो यह सत्चैतन्यही है तो इनको सर्वदा सर्व अवस्था में ज्ञान होना चाहिये। अरु आपके कहने से यह जानागया कि जब यह जीव सुषुप्ति बिषे जाता है तब अपने जाग्रत्के वर्णाश्रमादिकों को अरु सुषुप्तिमें सत्की प्राप्ति को नहीं जानता मधुवत् अरु जब सत्से जाग्रत् बिषे आवता है तब भी यह नहीं जानता जो हम सत्से आये हैं। नदियोंवत्। ताते हे भगवन् उभय प्रकार इसको अपने सत् चैतन्य स्वरूप की अज्ञात से यह जीव जड प्रतीत होताहै। हे भगवन् आपने जो मधु अरु नदियों का दृष्टान्त कहा सो अस्तु परन्तु वो तो जड है, जडों को ज्ञान होता नहीं, परन्तु इस जीव को तो आपने सत् चैतन्य कहाहै, तब यह अपने आप सत्य स्वरूप को प्राप्त होके अरु वहां से निकलके क्यों नहीं जानता जो हम सत्को प्राप्त हुए थे अब हम वहां से निकसके यहां

आये हैं। इसको भी आप कृपाकरके कहिये ॥ उद्दालकउवाच हे सौम्य पूर्व भी तुमने यही प्रश्न कियारहा अरु अब भी सोई प्रश्न किया अब इसका उत्तर सुनिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य यह सर्व जीव (जो सत् चैतन्यका आभास वा प्रतिबिम्बहै) सुषुप्ति मरण अरु प्रलय इनतीनों स्थानों बिषे सत् चैतन्य को समान प्राप्त होते हैं, सो अपनी मन आदि उपाधि के अरु काम कर्म्मों के संस्कारों को अपने बिषे लेके होते हैं ताते सो उपाधिकाम कर्म्मों के संस्कारही इन जीवों को सत्से निकाल उपाधिसाथ मिलाय काम कर्म्मों बिषे जोड़ देते हैं। ताते सत् चैतन्य को प्राप्त हुए जीवोंको भी वहां से निकलने का कारण जाग्रत् के काम कर्म्मों के संस्कारहीहैं ताते काम कर्म्मों के संस्कार सहित सत् में जानेसे सत्को प्राप्त हुए भी इस जाग्रत् स्वप्नरूप जगत्में पुनः आवते हैं, ताते काम कर्मों के संस्कार सहित सत्को प्राप्त होनाही पुनः सत्से निकल संसार प्राप्ति का हेतुहै ॥ अरु सत् को प्राप्त होके भी जो यह जीव नहीं जानते कि अब हम सत् कोप्राप्त हुए हैं, तिसका कारण यह है कि विशेष ज्ञातकी उपाधि जो बुद्धि है सो वहां निर्विशेष सत् चैतन्य बिषे है नहीं, अरु उस निर्विशेष सत् चैतन्य को ज्ञान स्वरूप होने से उस बिषे ज्ञेयत्व का अभावहै क्योंकि " यत्ज्ञेयंतज्जड़ं " इत्यादि न्याय प्रमाण जो वस्तुज्ञेय (जानने योग्य) होती है सो जड़ होती है अरु जो ज्ञान स्वरूप है सो चैतन्य है, ताते जड़ धर्म्माज्ञेयत्व अरु चेतन धर्म्माज्ञान स्वरूपता यह दोनों परस्पर विरोधी होने से एक वस्तुको आश्रय करें नहीं, ताते हे सौम्य जिस ज्ञानस्वरूप चैतन्य को यह जीव सुषुप्ति में प्राप्तहोते हैं तिसबिषे ज्ञेयपने का अरु ज्ञानरूप क्रियाके कर्तापनेका अरु ज्ञान के विषयपनेका अभाव होनेसे अरु वहां यह जीव उससे अपृथक् होनेसे अपने आपको जानते नहीं जो हम यहां सत्य स्वरूपहुए हैं, परन्तु तिस न जानने से जड़ नहीं किन्तु वास्तव में ज्ञान

क्रियासे रहित ज्ञान स्वरूप होनेसे सत् चैतन्यही है ॥ हे सौम्य यह सर्व जीव सत् को प्राप्तहोके ज्ञेयत्वके अभावसे केवल ज्ञान स्वरूप होने करके वहां अपने आपको विशेष करके जानते नहीं जो हम यहां सत्य स्वरूपहुएहैं, अरु जिन अविद्यात्मक काम कर्म्मों के सूक्ष्म संस्कारों को अपने बिषे लेके यह जीव सुषुप्ति बिषे सत् को प्राप्तहोते हैं सो संस्कारही इनको सत्से निकाल अपने वश सत्से बहिर्मुख कर पुनः अविद्यात्मक काम कर्म्मों बिषेही जोड़ते हैं, ताते यह जीव बासना वश सत् से बहिर्मुख होने के कारण सत् से निकलके भी अपने को नहीं जानते जो हम सत्से आये हैं। अतएव हे सौम्य उक्त हेतुओं करके यह जीव सत्को प्राप्तहोके अरु सत्से आयके अपने आपको नहीं जानते परन्तु सो न जानने से जड़ नहीं,क्योंकि आचार्य से महावाक्यार्थ का ज्ञान पाय यह अपने आप वास्तविक स्वरूप को जानते हैं ताते। अरु मधु अरु नदियों को जड़ तो हम भी जानतेहैं परन्तु मधु अरु नदियों का जो दृष्टांत कहाहै सो न जानने के अंशमें ग्रहण है जड़ता के अंशमें नहीं ॥ हे सौम्य जो जीव इस जाग्रत बिषे अपने आप सत्यस्वरूप को यथार्थ जाने विना मन आदि उपाधियों के काम कर्म्मों के संस्कार सहित होने से सुषुप्ति बिषे जिस सत्को प्राप्तहोके पुनः निकल आवते हैं, अरु जो जीव इस जाग्रत् बिषे आचार्य्य साथ मिलके श्रुति के महावाक्यार्थ का यथार्थ ज्ञानपाय मनआदि सर्व उपाधियों से पृथक् सर्व के धर्म कर्म्मादि अरु तिनके संस्कारों से असंग सर्व का प्रकाशक साक्षी सत् चैतन्य अपने आपको यथार्थ अनुभवकरके जाग्रत् बिषे ही निर्विकल्प समाधिरूप सुषुप्ति में एक बार अपने आप सत् चैतन्य स्वरूपको सम्यक् प्रकार प्राप्तहोय पुनः इन जाग्रदादि तीनों अवस्था जो बुद्धिकी हैं तिनके बर्त्तन्ते भी जिस अपने सत् चैतन्य स्वरूप से बहिर्मुख उत्थान नहीं पावते, सोई यह अणुवत् महासूक्ष्म सर्व्वात्मा है सोई सत

आत्मा हे श्वेतकेतु तू है। इसप्रकार जब उद्दालक पिताने अपने श्वेतकेतुनाम पुत्रको सम्यक्प्रकार सत् चैतन्य अपने आप आत्म स्वरूपका उपदेश किया, तब वो श्वेतकेतु पुनः संशयको लेके कहताहुआ -:॥ हे भगवन् जो नदियों का जल समुद्रबिषे जाताहै सोई पुनः नहीं आवता और नवा जल आवताहै। अरु हे भगवन् लोकबिषे देखने में आवताहै जो जलबिषे बीची तरंग फेन बुद्बुदादि उठके पुनः विनाशको पावते हैं, अरु यह जीव तो सुषुप्ति मरण अरु प्रलय इन तीनों स्थानों बिषे अपने कारण सत्भावको नित्य नित्य प्राप्तहोके विनाशको पावते नहीं ॥:— अर्थात् हे भगवन् जैसे जो जल नदियों का समुद्रबिषे जाताहै सोई वहांसे हटके आवता नहीं और नवा जल आवता है। अरु आपने पूर्व यह कहा है कि सुषुप्ति बिषे अरु मरणबिषे अरु ब्रह्मा की प्रलय बिषे इन तीनों स्थानों बिषे सर्व प्रजा सत्को प्राप्तहो सत्रूप होतीहै नदियोंवत्। अरु जो जीव सत्बिषे जाते हैं सोई पुनः आवते हैं, यह आपका कथन है, अरु आप सत्यवादीहो अतएव जो कहोगे सत्यही कहोगे॥ हे भगवन् कोई एक आ-चार्य्य ऐसा भी कहते हैं कि जो मृतकहुआ सोई मोक्षहुआ, जैसे जलबिषे लहर बुद्बुदादि जो उठते हैं सो उसही बिषे लय होते हैं वो पुनः उपजते नहीं और न वे लहर बुद्बुदादि उपजते हैं, तैसेही जो जीव मृतक होते हैं सो मोक्षहोते हैं वो पुनः आवते नहीं और न वे जीव आवते हैं॥ अरु आपका कहना ऐसा भी है जो एक बार सत्को प्राप्तहोते हैं सो पुनः आवते नहीं॥ हे भग-वन् अन्य शास्त्रवादी ऐसा भी कहते हैं जो अमुक शुभकर्म करोगे तो स्वर्गको प्राप्तहोवोगे अरु अमुक अशुभ कर्म करोगे तो नरकको प्राप्तहोवोगे, हे प्रभो अब हमारी दृष्टिबिषे भी ऐसाही आवताहै जो जैसा कोई कर्म्म करताहै सो तिसके अनुसार ही फल पावताहै। अतएव हे भगवन् हमारे इस संशयको भी आप निवारण करिये जो जीव सत्बिषे जाते हैं सोई फेरके

आवते हैं वा न वे आवते हैं ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य मैंने तुझको पूर्व यह कहाहै कि उक्त तीनों स्थानों बिषे जो जीव सत्रूप समुद्र को प्राप्तहोते हैं सो वहां सत्रूपही होते हैं नदी समुद्रवत्, परन्तु यह नहीं कहाहै कि जो जीव सत्बिषे जाते हैं सो फेरके नहीं आवते और नवे आवते हैं। अरु मैंने जो नदी समुद्रका दृष्टान्त कहा है सो सुषुप्ति बिषे सर्व जीवों को समान सत्की प्राप्तिहोती है अरु सत्को प्राप्तहोके भी वहां अपने आपको जानते नहीं जो हम सत्को प्राप्तहुए हैं, इसको लखावने के अर्थ कहाहै, अरु हे सौम्य दृष्टान्तका एक देश ग्रहण होताहै सर्व देश नहीं, ताते नदी समुद्र का दृष्टान्त उक्त अंश बिषे जानो। अरु जैसे नदियां समुद्र बिषे गईं फेरके आवती नहीं इस अंशबिषे उक्त दृष्टान्त सर्व जीवों के अर्थ नहीं ॥ हे सौम्य पूर्व हम तुम को यह कहआये हैं कि जो जीव अविद्या कामकर्मों के संस्कार रूपाउपाधिको अपने साथले वासना वशहुए उक्त तीनों स्थानोंमें सत्कोप्राप्तहोते हैं सोसत्बिषेगयेहुयेभीफेरआवते हैं उनको काम कर्म्मोंकेसंस्कारअरु बिषयादिकोंकी वासना(जिनको कि वो साथ लेजातेहैं) वो वहां ठहरने पाते नहीं। अरु जो जीव जाग्रत् बिषेही आचार्य्यसेमहावाक्यार्थकासम्यक्ज्ञानपाय अविद्याकाम कर्मोंके संस्कार अरु बिषयादिकोंकी वासना त्यागके निर्विकल्प समाधि रूप सज्ञात सुषुप्ति में सत्को प्राप्त होते हैं सो एकबार सत्बिषेगये हुए पुनरावृत्ति से रहित सत्रूपही होते हैं वो पुनः जीवभाव बिषे आवते नहीं ॥ हे सौम्य अब इसही प्रसंगको तेरी दृढताके अर्थ अन्यदृष्टान्त करके पुनः कहताहौं तिसको श्रवणकरो। हे सौम्य जैसे तेल बातिरूप उपाधि युक्त दीपकको सूर्य के स्पष्ट प्रकाश बिषे राखिये तो वो दीपक का प्रकाश सूर्य्य के प्रकाश से पृथक् होके प्रकाशता नहीं किन्तु सूर्य्यके प्रकाश साथ अभेद एक होता है क्योंकि निरुपाधि सामान्य प्रकाश की एकताहै ताते, परन्तु सूर्य्यके प्रकाश में जाने से उस दीपकके प्रकाशका अभाव नहीं

होता। अरु जब उस दीपकको सूर्य्य के प्रकाश से हटायके छाया में लेआइये तब वो दीपकका प्रकाश सूर्य्य के प्रकाश से भिन्न होके प्रकाशता है। हे सौम्य तैसेही यहां मनआदि वा तिनके संस्काररूप उपाधिरूप दीवला है प्रारब्धरूप तेलहै बासनारूपा बाती है अरु चिदाभास (जीव) रूप प्रकाशहै, ऐसा दीपक जब सुषुप्ति बिषे जाताहै तब सत्रूप प्रकाश साथ मिलके समान प्रकाशता है वहां सत्रूप प्रकाश से पृथक् रहतानहीं, परन्तुउस को वहां सत्रूप प्रकाश के साथ अभेद होनेसे भी उस सोपाधि जीव रूप प्रकाश का अभावहोता नहीं। अरु जब यह जीवरूप प्रकाश सोपाधि होनेसे पुनःजाग्रत्रूप छायापर आवताहै तब सत्के प्रकाश से पृथक् हुएवत् होके प्रकाशताहै, परन्तु उस अवस्था में भी विचार दृष्टि से देखिये तो जीव रूप प्रकाश सत् रूप प्रकाश से वास्तव करके पृथक् नहीं, उपाधि के अभाव से प्रकाश की एकता होने से॥ अतएव हे सौम्य जो उक्त उपाधि साथ मिलके सुषुप्ति आदि स्थानों में सत्को प्राप्तहोते हैं सो सत्बिषे गयेहुए भी फेर आवते हैं, सोपाधि दीपक के प्रकाशवत्, हे सौम्य इस जीवरूप प्रकाश का नाशहोता नहीं क्योंकि वास्तव में अविनाशी सत् चैतन्य का प्रकाशहै ताते। हे सौम्य अब जिसप्रकार सत्बिषे गयेहुए जीव फेरके नहीं आवते तिनको भी दीपक के दृष्टान्त द्वारा श्रवणकरो। हे सौम्य जैसे दीपकबिषे यावत् तेल बाती होताहै तावत् अग्नि उससाथ मिल के विशेष प्रकाशताहै, अरु जब वो तेल बाती समाप्तहोते हैं तब वो विशेष प्रकाश निर्वाणहो अग्नि के सामान्य प्रकाश साथएक होताहै। हे सौम्य तैसेही लिंग शरीररूप दीवलाहै तिसबिषेमन रूप बातीहै अरु प्रारब्धरूप तेलहै, तिस तेलकी पूर्त्ति क्रियमाण कर्म्महैं, क्योंकि यावत् क्रियमाण कर्म्महोताहै तावत् प्रारब्धरूप तेलकी पूर्त्तिहोतीही रहती है। अरु यावत् उक्त तेलकी पूर्त्ति होती रहती हैं तावत् न तो वो बाती समाप्त होती है न उस

दीपक का विशेष प्रकाश निर्वाणहोताहै ॥ हे सौम्य यह जो ज्ञान-वान् आत्मनिष्ठ पुरुषहैं सो प्रथम मुमुक्षु अवस्था बिषेही क्रिय-माणादि सर्व क्रियाको समाप्तकर केवल आत्मकामाहोय आ-चार्य के समीप जाताहै, अतएव ज्ञानीरूप दीपकबिषे प्रारब्ध रूप तेलकी पूर्त्ति करनेवाला क्रियमाण कर्म्म रहता नहीं, ताते ज्ञानी के शरीरका जितना प्रारब्धहै तितनाही है आगे को तिस की वृद्धि नहीं, अरु सो प्रारब्ध भी अपना भोग देके क्षीणहोता जाताहै, दीपकके तेलवत्, अतएव यावत् ज्ञानवान् के शरीरका प्रारब्ध शेषहै तावत् ज्ञानीरूप दीपक लिंगरूपा बातीपर चढ़के विशेष प्रकाशता है, अरु ज्ञानी के शरीरका प्रारब्ध अपना भोग देके, दीपकके तेलवत् नष्टहोताहै तब निदिध्यासनरूप पवनकी सहायता से लिंगरूप बातीको भस्मकर ज्ञानीरूप विशेषप्रकाश सत्रूप प्रकाश साथ अभेद एकहुआ फेरके आवतानहीं, क्योंकि प्रारब्धरूप तेल अरु लिंगरूपा बाती, जो उस निर्वाण हुए दीपक को पुनः जगावने की उपाधि है, तिनको प्रथमही भस्म करगया है। ताते हे सौम्य इस प्रकार ज्ञानीरूप दीपक सत्रूप प्रकाशमें निर्वाण हुआ सत् चैतन्य विज्ञान घन स्वयंज्योतिः ही होता है ॥ "ब्रह्म विद्ब्रह्मैव भवति, ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" ॥ सो फेरके आवता नहीं ॥ अरु अज्ञानी सत्बिषे गयेहुए फेरके आवते हैं, जैसे सूर्य्य के प्रकाशमें गया हुआ सोपाधि दीपक पुनः छायापर आवता है तैसे, क्योंकि उसको पुनः आवने की उपाधि अविद्या काम कर्म्मों के संस्कार अरु विषयादिकों की वासना विद्यमान है ताते, हे सौम्य जो जीव सुषुप्ति बिषे वा मरण समय वा प्रलय बिषे वासनादिरूपा उपाधिको अपने साथ लेके सत्बिषे जाते हैं सोई फेरके आवते हैं, नवे आवते नहीं। हे सौम्य इस जीव का नाश होता नहीं क्योंकि वास्तव करके यह जीव क्रिया से रहित अक्रिय अविनाशी एक रसज्ञान स्वरूप है ताते। अब जिसका नाश होता है तिसको भी एक

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके एकादशोखंडः ॥ ११ ॥

अस्य सौम्य महतो वृक्षस्ययो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो ऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ॥ १ ॥

दृष्टान्त द्वारा कहता हौं सावधान होके श्रवण करो—ः॥ इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके दशमखंडः १० ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस प्रसरित शाखावाले बड़े वृक्षके मूलमें जो कोई कुठार आदिकों का प्रहार करे तो एक प्रहार से शुष्क होता नहीं, वृक्षविशिष्ट जीव उस घावको रसश्रवके भरलेता है, तैसेही उस वृक्षके मध्यमें वा अग्रमें एक प्रहार करने से वो सूखता नहीं किन्तु वृक्षविशिष्ट जीव उस घावको भरलेता है, ताते यह वृक्ष जीव रूप आत्मा करके अनुव्याप्त है अतएव भूमि से जलपान करके आनन्दित रहता ॥ १ ॥

भावार्थ खंड ११ मन्त्र पहिले का ॥

हे सौम्य (जैसे यह जीव विनाश से रहित अविनाशी है तिसको भी) दृष्टान्त पूर्वक श्रवणकरो। हे सौम्य यह जो अपने आश्रम के अग्रभागमें अनेक शाखाओंके विस्तार युक्त बड़ा वृक्ष है तिसको प्रथम देखो, हे सौम्य जो कदापि कोई पुरुष इस वृक्षके मूल विषे वा मध्य विषे वा अग्र विषे जहां कहीं कुठार आदि शस्त्रों का प्रहार करे तो तिस घावको यह वृक्ष विशिष्ट जीव प्राणद्वारा रस पहुँचाय के भरलेता है, ताते सो यह वृक्ष जीवरूप आत्मा (सत् चैतन्य के आभास) करके अनुव्याप्त है, अरु भूमि से मूल द्वारा जलपान कर तिस जलको प्राणद्वारा

यस्य यदेकाꣳ शाखा जीवो जहत्यथ साशुष्यति द्वितीयां जहत्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहत्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वं शुष्यत्येवमेव खलु सौम्य विद्धीति होवाच २ ॥

स्कंध शाखा उपशाखा पत्र पुष्प फलादि पर्यन्त सर्वको पहुंचाय हर्ष को पाय तिष्ठित है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस वृक्षकी यदि एक शाखाको अथवा द्वितीय शाखाको अथवा तृतीय शाखाको अथवा सर्व्व वृक्षको यह जीव त्याग देवे तो सर्व शुष्क होजावे, ऐसेही हेसौम्य जानो ऐसे कहता हुआ २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य तिस वृक्षकी यदि एक शाखा जो रोग करके ग्रस्त वा टूटी हुई को त्यागदेवे (अर्थात् उस शाखा बिषे प्रसरित अपनी आत्मसत्ता वा प्राणको खींच लेवे) तब वो शाखा सूख जातीहै । अर्थात् वाक् मन प्राणादिक करण ग्राम करके अनुप्रविष्ट (प्रवेशपाया) ही जीव है ॥ः—अर्थात् सप्तदश तत्त्वात्मक साभास लिंगका नाम जीव है—ः॥ अरु प्राणादियुक्त जीवकरके भोजन पान किया रस भावको प्राप्त हुआ जीववत् शरीर वा वृक्ष वृद्धि को पावते हैं, ताते शरीर बिषे वा वृक्ष बिषे खान पान किया अन्न जल रसभावको प्राप्तहोय शरीर वृक्षादिकों की वृद्धि का हेतु होताहै। ताते जीवके सद्भाव अनुमान प्रमाण बिषे रसरूप से शरीर वृक्षादिकों की वृद्धिही लिंग है। हे सौम्य भोजन पान करनेसेही शरीर बिषे जीव रहता है, अरु ते भोजन पान जीवके कर्म्मानुसार हैं। अर्थात् शरीर के वा वृक्षके वैकल्य (विनाश) का निमित्त कर्म्मआय उपस्थित होताहै तब उस शाखाका रस जीव छेंकलेता है अथवा उसको

त्याग देता हैं (अर्थात् उस शाखा वा अंगसे अपने प्राणरूप अंश को खींचलेताहै) तब वो शाखा सूख जाती है। इसहीप्रकार जो यह जीव दूसरी शाखाको त्याग देवे तो सो सूखजावे अथवा तीसरी को त्याग देवे तो सो सूखजावे अथवा जो यह जीव सर्व वृक्षको त्याग देवे तो सर्व वृक्ष सूखजावे वा सूखजाताहै। अतएव हे सौम्य वृक्षका रस स्रवना अरु सूखना इन चिह्नों (लिंगों) से जीवत्वपना (जीव सहितपना) जाना जाता है, उक्त दृष्टान्त करके, अरु अन्य श्रुति भी प्रमाण है। तथाच "। चेतनावन्तःस्थावरा, इति श्रुत्यंतरे "। अरु बौद्ध कणादके मतमें स्थावरोंको अचेतन मानके उनका असारपना देखायाहै। तातें उक्त दृष्टान्त, श्रुतिके प्रमाण से श्रुतिवाह्य होनेसे बौद्ध कणादका मतही असार जानना॥ः—अर्थात् हे सौम्य इस वृक्षविशिष्ट वा शरीर विशिष्ट चैतन्य इस वृक्षके आदि मध्य अन्तके जिस अंगको त्यागदेताहै तब सो शाखादि अंग सूखजाता है, जो कदापि सर्व वृक्षको त्यागदेता है तो सर्व सूख जाता है, अरु यह जीव जिस अंगका भोग शेष देखताहै तब उसका त्यागन करके तिस बिषे प्राणद्वारा रस पहुंचाय उस अंगको जिवावता है तब वो जीवता है। अर्थात् जिस अंगका भोग होचुकताहै तिसहीका वो जीव त्याग करताहै, अरु तिसही का मरण होताहै। अरु जिस अंगका भोग शेष देखताहै तिसका त्याग नहीं करता तब उस अंगका जीवन होता है। हे सौम्य जिस समय इस वृक्षविशिष्ट जीवको पुराने पत्र त्यागने का समय आवताहै तब त्यागदेताहैं तब उन पुराने पत्रोंकामरण होता है, अरु जब नयेपत्र आवनेका समय आवताहै तब नयेपत्र और निकल आवते हैं तब उन पत्रोंका जन्म होताहै। हे सौम्य इस वृक्षके ग्रहणत्याग द्वारा यह जाना गया जो इस ब्रह्मांड रूप वृक्षका त्याग ग्रहण इस जीवके आश्रयहै। हे सौम्य इस वृक्षका कोई नायक (स्वामी) है कि जिसकी प्रेरणा से इतना ठाट चलताहै अरु जिसके त्यागनेसे यह सर्वठाट अभाव होजा-

ताहै, क्योंकि इन वृक्षोंका त्याग ग्रहण भी सर्व जीवोंको लखा-
वताहै ॥ हे सौम्य इस वृक्षके दृष्टान्त प्रमाणही इस शरीररूप
वृक्ष बिषे भी जब खड्गादिकों के प्रहार से घाव होताहै तब यह
पुरुष भी घृत शर्करादि पदार्थ खाइके उस घावको भरलेता है,
अरु जिस इन्द्रियादि अंगोंका प्रारब्ध होचुकताहै तब यह जीव
उस अंगका रस प्राणद्वारा खींचलेता है तब उसका मरण होता
है, अरु जिस अंगका प्रारब्ध शेष देखता है तब प्राणद्वारा उस
बिषे रस पहुँचावताहै तब वो जीवता है। अरु जब सर्व अंगोंका
प्रारब्ध भोग होचुकताहै तब यह जीव देहको भी त्याग देता है
तब शरीरका मरण होता है। हे सौम्य यह जीव जिस समय,लोक
परलोक देवता पितृ मित्र शत्रु पाप पुण्य अरु अपने अंगादिप-
दार्थोंमें से किसी एकका वा सर्वका त्याग करताहै तब तिसही
समय उनका मरण होता है, अरु आप यह जीव विनाश से र-
हित अविनाशी है। अरु जिस वस्तु का यह जीव ग्रहण करताहै
तिसका जीवन होताहै क्योंकि स्थूल सूक्ष्म स्वर्ग नरक पाप पुण्य
आदि सर्व इस जीवके रचेहुए हैं। अरु पुनः यह जीव इन सर्व
को जानके जिन अंगोंका जैसा धर्म्म होता है तैसाही उनके प्रा-
रब्धके अनुसार दुःख सुखादि भोग भोगावत सन्ते आप उनसर्व
से जुदाहो सर्वका तमाशा देखता है। हे सौम्य जब इन्द्रिय श-
रीरादिकों का प्रारब्ध भोग होचुकताहै तब यह अपनी प्रारब्ध
भोग के चलेजाते हैं, अरु यह जीव आप इन सर्वसे असंगहुआ
इनके आने जाने का तमाशा देखताहै, आप न आवे है न जावे
है न करेहै न भोगे है क्योंकि वास्तव करके यह जीव सत्
चैतन्य विज्ञानघन परमानन्द स्वरूप है ताते ॥ प्रश्न ॥ हे
भगवन् कोई एक कणाद बौद्ध मतवादी आचार्य ऐसाभी कहते
हैं कि इन वृक्ष पाषाणादि स्थावरों बिषे जीव नहीं, अरु आप
इस जीवको सर्व बिषे एकरस समान कहते हो, अब हम इस
को कैसा जानें, ताते इसको आप मेरे अर्थ पुनः कहिये ॥ उत्तर ॥

हे सौम्य इन वृक्ष पाषाण रत्नादिकों से लेके सर्व बिषे जीव है, जो कदापि इन बिषे जीव न होवे तो इन वृक्षों की टांसों बिषे रस कौन पहुंचावे, जो मूल बिषे दियाहुआ जल उपर के फूल फल पर्य्यन्त सर्व बिषे रस पहुँचता है सो जीव करके ही पहुंचता है। अरु शरदकाल के सूखे वृक्षको बसन्तऋतु में अरु बसन्तकालके सूखे वृक्षको शरदऋतुमें हरे कौन करताहै। अरु जब इन वृक्षों को लगावते हैं तब सूक्ष्म बीज होताहै तिस बीजसेही अंकुर पत्र स्कंध शाखा उपशाखा टांस फूल फल आदि निकलके अति विस्तारको पावते हैं सो किसकी सत्तासे होताहै अरु यह वृक्ष आधे सूखे आधे हरे होतेहैं सो किसकी सत्ता से होते हैं, चैतन्य जीवकी सत्तासे होतेहैं ॥ हे सौम्य यह पर्वत भी छोटे से बड़े होते हैं अरु पृथिवी के नीचेके जलको आकर्षणकरके अपने उपरके वृक्षोंके फूल फल पर्यन्त उस रसको पहुंचावते हैं सो किसी चेतन की सत्ता पायकेही पहुंचावते हैं। हे सौम्य इन जड़ रत्नादिकों बिषे जो बहुमौल्यपनेकी शक्तिहै सो किसकी है उस शक्तिको उन जड़ों बिषे प्रकट कौन करताहै, जो इन जड़ों बिषे विचित्र २ शक्तिको जनावता है सोई सर्व जीवोंका जीवहै। हे सौम्य तैसेही इन शरीर प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि आदिकों का भी कोई द्रष्टाप्रेरक नायकहै जो इन सर्वको अपने २ धर्म्म व्यापारों बिषे जोड़ताहै अरु अपनी आज्ञाबिषे सर्वको चलावताहै सोई सर्व का सत् आत्मा जीवहै ॥ हे सौम्य जो कदापि इन वृक्ष पाषाणादिकों बिषे चैतन्यजीव कला न होती तो यह जड़ व्यापार कैसे सिद्ध होता किन्तु कदापि न होता। एतदर्थ हे सौम्य जो आचार्य तुमको ऐसा कहते हैं कि इन वृक्षादि जड़ों बिषे जीव नहीं उनको तुम असत्यवादी जानना अरु उनका संग त्याग करना—: ॥

जीवापेतं वावकिलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदᳪं सर्व्वं तत्सत्यᳪं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवन् विज्ञापयत्विितितथा सौम्येति होवाच ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य निश्चय स्पष्ट जीव करके त्याग किया यह शरीर मरता है जीव मरता नहीं। सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सो यह सर्व्व का आत्माहै, यह सर्व अपना आपहै सोई सत् आत्माहै हे श्वेतकेतु सोई सत्आत्मा तू है, इसप्रकार पिताने कहा, तब श्वेतकेतु ने कहा हेभगवन् पुनःभी मुझको समझायके कहिये, पिताने कहा तथास्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य ऐसेही निश्चय करके जानों इतना कह पिता पुनः कहता हुआ कि हे सौम्य निश्चय करके जीव करके विमुक्त (त्याग) हुआ यह शरीर मरता है जीव मरता नहीं ॥:– हे सौम्य पूर्व तुमने यह शंका कियारहा कि जो जीव सत् बिषे जाते हैं सो तो फेरके न आवते होंगे और नये जीव आवते होंगे। सो अब इसका भी उत्तर श्रवण करो–: ॥ हे सौम्य इस जाग्रत् बिषे पुरुष जिस कार्य्यको करताहै तिसको करते २ थकके सोजाता है तब सुषुप्तिमें सत्को प्राप्त होता है, अरु वो पुरुष जब पुनः जाग्रत् बिषे आवताहै तब उस कार्य्यको (जिस को कि पूर्व जाग्रत् बिषे करतारहा) देखके कहताहै कि मैं इस कार्य्यको समाप्त किये विनाही सो गया, इसप्रकार अपने पूर्व के जाग्रत्के असमाप्त किये कार्य्यको स्मरणकर पुनः उस कार्य को करता है, ताते हे सौम्य जो जीव सुषुप्ति बिषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई पुनः वहां से आवते हैं नये नहीं आवते, जो नये आवते होवें तो उनको दूसरे के जाग्रत् के व्यापार की स्मृति न

होनी चाहिये, सो तो होती है ताते जो जीव सत् बिषे जाते हैं सोई पुनः आवते हैं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जो जीव सुषुप्ति बिषे सत्को प्राप्त होतेहैं सोई पुनःआवते हैं यह सत्य है क्योंकि यह व्यापारका अनुभव सर्वको प्रकटहै। परन्तु हे पिताजी जो जीव मरण कालमें सत्बिषे जाते हैं सो तो फेरके न आवते होंगे और नयेही आवते होवेंगे ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य जो कि नये जीव उ-त्पन्न होतेहोवें ॥ तो उनको जन्ममात्र होने से ही उसही काल स्तनपान मलत्याग रुदनादि व्यापारमें प्रवृत्ति न होनी चाहिये क्योंकि उसको पूर्वका अभ्यास अनुभव है नहीं अरु यहां किसी ने सिखाया नहीं। अरु यहां जन्म पावतेही जीवों की स्तनपान रुदनादि व्यापार में स्मृतिपूर्वक प्रवृत्ति देखते हैं, अरु सो प्र-वृत्तिही उनके पूर्वके स्तनपानादिकों के अभ्यास को अरु दुः-खादिकोंके अनुभवको प्रकट निश्चय करावेहै, एतदर्थ जो जीव अपने मरण काल बिषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई फेरके आवते हैं, नये आवते नहीं। अरु जो कदापि मरण कालबिषे सत्को प्राप्त हुए फेरके न आवते होवें वा सत्से उत्थान न होते होवें, तो वेद करके प्रतिपाद्य जे अग्निहोत्रादि कर्म्म तिनको अर्थवाद की प्राप्ति होवेगी, एतदर्थ भी जो कर्मी उपासक आदि जीव अ-पने मरण कालबिषे सत्को प्राप्तहोते हैं सोई अपने कर्म्म उपा-सना के अनुसार पुनःआवते हैं "। यथा कर्म्म यथा श्रुतम् ।" नये आवते नहीं। अतएव हे सौम्य जीव मरता नहीं (अर्थात् सत् को प्राप्तहोके जीवका नाशहोता नहीं ॥ :—प्रश्न। हे भगवन् आपने आज्ञा किया कि जो जीव सुषुप्ति में अरु मरणकालमें सत्बिषे जातेहैं सोई फेरके आवते हैं सो अस्तु, परंतु हे भगवन् ब्रह्माकी प्रलयबिषे सर्वजीव सत्बिषे जायके अभाव होतेहोंगे, तिसके पश्चात् पुनःसृष्टि कालबिषे तो सर्व जीव नये ही आवते होंगे ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ब्रह्माकी प्रलयके उपरान्त जो सर्व जीव नयेही आवतेहोवें तो इन आकाशादि पंचभूतों का अरु सूर्य

चन्द्रादिकों का जो पृथक् २ व्यापार प्रवृत्तहोरहा है सो न होना चाहिये क्योंकि नये जीवोंको अभावहुए प्राचीन जीवों के कार्य्य में विना पूर्वाभ्यासके प्रवृत्तहोना बने नहीं, अरु जो ऐसा कहो कि उस सत् चैतन्यकी आज्ञासे वो अपने २ कार्य्य में प्रवृत्तहोते हैं, सो अस्तु परन्तु आज्ञाके अनुसार कार्य्य करने का अभ्यास न होय तो सो कार्य्य होवे नहीं। ताते जो जीव ब्रह्माकी प्रलय बिषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई पुनःआवतेहैं, नये आवते नहीं॥ पुत्रउवाच॥ हे पिताजी आपके उपदेशानुसार मैंने अनुभव कर देखा कि जो जीव अविद्या काम कर्म्मों के संस्कार अभ्यास अपने साथ ले सुषुप्ति मरण अरु प्रलय इन तीनों स्थानों बिषे सत्को प्राप्त होते हैं सोई फेर आवते हैं। अरु जो जीव जाग्रत् बिषे वैराग्यादि साधन सम्पन्न होय आचार्य्य समीप जाय उन से महावाक्यार्थका सम्यक् ज्ञान पाय तिस बिषे निदिध्यासन द्वारा दृढ़ स्थितिपाय अविद्या काम कर्म्मोंको सहित उनके संस्कार अभ्यास के सम्यक् त्यागपूर्वक जाग्रत बिषेही साक्षात् सत्को प्राप्त होते हैं सो सत्बिषे गयेहुए पुनः आवते नहीं, अरु उनका विनाशभी होता नहीं क्योंकि जिसका परिणाम अविनाशी सत्रूपहै तिसका विनाश कैसे कहिये ॥ पिताउवाच ॥ हे सौम्य जिस सत्चैतन्यबिषे उक्त तीनों स्थानों में यह सर्वजीव समान प्राप्तहोते हैं तहां ज्ञानी उस बिषे प्राप्तहुए फेर के आवते नहीं किन्तु सोई रूपहोते हैं। अरु अज्ञानी उसको प्राप्तहोके भी पुनः जैसे के तैसे निकस आवते हैं, सो सत् आत्मा अणुवत् महासूक्ष्म सर्व्वात्माहै सोई सत् आत्मा हे श्वेतकेतो "। तत्त्वमसि ।" तुही है ॥ श्वेतकेतोवाच ॥ हे प्रभो सोई महासूक्ष्म सर्व्वात्मा सत् चैतन्य मैंहीहों अस्तु, हे भगवन् पुनः मुझको एक संशय हुआ है जो सुषुप्ति आदि उक्तस्थानों बिषे आपने सत् चैतन्य की प्राप्ति सर्व जीवों को समान कही, अरु उस सत्को मधु अरु नदियों के दृष्टान्त द्वारा विशेषज्ञातसे रहित ज्ञान स्वरूप कहा,

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके द्वादशोखंडः १२ ॥

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगवइति भिन्धीति भिन्नं भगव इति किमत्रपश्यसीत्यराव्य इवेमाधाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिंधीति भिन्ना भगव इति किम त्र पश्यसीति किञ्चन न भगव इति १ ॥

अरु तिस विषयक जो विनाशत्वका संशय रहा सो आपने उक्त वृक्ष के दृष्टान्त द्वारा निवारण किया, अरु उस सत् चैतन्य सर्वात्माको ज्ञानस्वरूप अविनाशी सिद्ध किया सो सर्व यथार्थ हुआ। परन्तु हे भगवन् आपने ऐसे निर्विशेष परमसूक्ष्म सत् चैतन्य से इस नाम रूपात्मक समस्त जगत्का होना कहा है सोसंभवे नहीं, क्योंकि साकार से साकार अरु स्थूल से स्थूल होता है 'जैसे स्थूल साकार कारण मृत्तिका से स्थूल साकार घटादि कार्य्य होते हैं, परन्तु आकार विकार से रहित महा-सूक्ष्म सत्तामात्र कारण से इस साकार विकार सहित इस महा स्थूल जगत् का होना संभवे नहीं अतएव हे भगवन् इसको भी आप मुझे पुनः समुझायके कहिये। इस प्रकार जब श्वेतकेतु पुत्रने कहा तब उद्दालक पिता कहता हुआ कि हे पुत्र अब तुम को कह सुनावें या प्रत्यक्ष देखादेवें जो जिसप्रकार महासूक्ष्म से महास्थूल होता है। तब श्वेतकेतुने कहाकि जो आप प्रत्यक्ष दे-खावते हो तो यह सर्वसे श्रेष्ठहै। उद्दालकने कहा अब उसको भी एक वृक्षके दृष्टान्त द्वारा कहताहों सावधान होके श्रवणकरो ३ ॥

इतिछान्दोग्येषष्ठप्रपाठके एकादशोखंडः ११ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य इस बटके वृक्षका एक फल लेआवो, इस प्रकार जब पिताने कहा तब पुत्र फल लेआयके कहता हुआ, हे भगवन् यह फल लेआया, ऐसे पुत्रने कहा तब पिताने कहा इसफलको

तोड़ो, तब वो तोड़के कहता हुआ हे भगवन् तोड़दिया, पुनः पिताने कहा इस बिषे क्या देखता है, पुत्रने कहा हे भगवन् इस बिषे महा सूक्ष्म बीजोंको देखता हौं, पिताने कहा इसमें से एक बीजको तोड़ो, तब पुत्र उसको तोड़के कहता हुआ हे भगवन् तोड़ा, पुनः पिताने प्रश्नकिया अब इसबिषे क्या देखताहै, पुत्रने कहा हे भगवन् इसबिषे मैं कुछ भी देखता नहीं १ ॥

भावार्थ खंड बारहवां मन्त्रपहिलेका ॥

हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो यदि तू उस जगत् के मूल महासूक्ष्म सत् चैतन्य को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा करताहै तो इस अपने आश्रम के आगे जो बड़ा बटका वृक्षहै तिसका एक फल तोड़ लेआव, इसप्रकार जब पिताने आज्ञा किया तब वो श्वेतकेतु उस बटवृक्ष के फलको लेआय के कहता हुआ कि हे भगवन् यह फल मैं तोड़ लेआया, तब पुनः पिता ने कहा हे पुत्र अब इस फलको तोड़डालो, तब पुत्रने उस फलको तोड़ के कहा कि हे पिताजी मैंने इस फलको तोड़ दिया, इसप्रकार जब पुत्रने कहा तब पुनः पिता कहता हुआ कि हे पुत्र अब इस टूटेहुए फल बिषे तू क्या देखताहै सो कह, इसप्रकार जब पिता ने प्रश्न किया तब पुत्र कहता हुआ हे भगवन् मैं इस बिषे महा सूक्ष्म छोटे छोटे बहुतसे बीजोंको देखताहौं । इसप्रकार जब पुत्रने उन सूक्ष्म बीजोंको देखके कहा तब पिताने पुनः आज्ञा किया कि हे सौम्य इन बहुतसे बीजों में से एक बीज को लेके तोड़ो तब पुत्र उस टूटे फलमें से एक बीजले उसको तोड़ पुनः कहताहुआ कि हे भगवन् इस एक बीजको भी तोड़ादिया, पुनः पिताने प्रश्न किया कि हे पुत्र यदि तूने बीजको तोड़दिया तो इस टूटे हुए बीजमें अब तू क्या देखता है । इस प्रकार जब पिताने प्रश्न किया तब पुनः पुत्र कहताहुआ कि हे भगवन् अब इस बीजबिषे तो मैं कुछ भी देखता नहीं ॥ः– अर्थात् उस बट वृक्षके महासूक्ष्म बीजको तोड़के श्वेतकेतुने कहा कि हे पिताजी

तछंहोवाचयं वै सौम्येत माणिमानं ननिभालयसएत स्य वै सौम्येषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोध तिष्ठति ॥ २ ॥
मैंने आपकी आज्ञानुसार इस बट वृक्षके महासूक्ष्म बीजको तोड दिया, तब पुनः पिताने प्रश्नकिया कि हे पुत्र अब इस टूटेहुए बीजबिषे तू क्या देखताहै पुत्रने कहा हे भगवन् सिवाय दो दालों के और कुछ भी देखता नहीं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो पिता कहता हुआ हे सौम्य इस टूटेहुये बीज बिषे इस वृक्षकी कारण भूत महासूक्ष्म बीज सत्ताको तू नहीं देखता तथापि हे सौम्य इस तिस महासूक्ष्म सत्ताकाही यह महान् बड़ा बटका वृक्ष तिष्ठितहै ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

सो उद्दालक पिता अपने पुत्र श्वेतकेतु प्रति कहता हुआ कि इस बट वृक्ष के तोड़े हुए बीज बिषे जो बट वृक्ष होनेका कारण बीज है कि हे सौम्य जिस महासूक्ष्म कारण बीज को तू नहीं देखता, तथापि तिस अदृश्यमान महासूक्ष्म बीज सत्ताका यह कार्य्यभूत महान्यग्रोध (बड़ा बटका वृक्ष) तिष्ठित है सो कैसा है अनेक स्कंध शाखा उपशाखा टांस पत्र फूल फल करके सम्पन्न महा स्थूल महा विस्तारवान् है ॥:–हे सौम्य बट वृक्ष के महासूक्ष्म बीजको तोड के जिन दो दालों को तू देखता है तिनहीं दो दालों के मध्य महासूक्ष्म अरूप सत्ता अंशहै सो तुझको दृष्ट आवता नहीं। तथापि हे सौम्य तिस महासूक्ष्म अरूप अंशकाही यह महान् वृक्ष अपने अनेक स्कंध शाखा उपशाखा टांस पत्र फूल फल आदि अंग अवयवों सहित फैलाहुआ तिष्ठित है। हे सौम्य वो अंश जो तुझको भासता नहीं सो नामरूप से रहित महासूक्ष्म है तिस अंश से हुआ यह बट वृक्ष सो नामरूप सहित महास्थूल है ॥:– हे सौम्य यदि तू ऐसा कहेकि

नामरूप सहित जो दृश्यमान बीज है तिसका यह वृक्ष होताहै, तो सो संभवे नहीं क्योंकि जब बीजको बोवते हैं तब उस बीज की सर्व अवयवों सहित विद्यमानता मेंहीं बीजान्तर से अंकुर पत्रादि निकलते हैं अरु जब उनकी वृद्धि होती है तब बीजके दो कपाल पृथक् २ हो पृथिवी में गिर गलजाते हैं, ताते दृश्यमान बीज का परिणाम वृक्ष नहीं, अरु बीजके गलगये पश्चात् उस नूतन वृक्षसे और नवीन पत्रटांस निकल के बडे विस्तारको पाय स्थित रहताहै, ताते हे सौम्य जो दृश्यमान बीजही वृक्षका कारण होय तो बीजके गलके अभावहुए पश्चात् उस नूतनवृक्ष विषे और नवीन पत्र टांसादिकों का विस्तार न होना चाहिये, परन्तु सो होताहै, अतएव हे सौम्य निश्चयकरके बीजसे पृथक् नामरूपसे रहित बीजान्तर कोई महासूक्ष्म अविनाशी सत्ताहै । हे सौम्य सोई सत्ता यह महान् विस्तारवान् नामरूप सहित अनेक भेद युक्त महास्थूल वृक्षाकारसे सुशोभित है । अरु सोई जीवसत्ताहै ॥ हे प्रियदर्शन देखो उस दृश्यमान बीजान्तर जो बीज (कारण) रूप महा सूक्ष्म सत्ताहै सो इस वृक्षका कारण महा सूक्ष्म है, तिसका कार्य्य यह वृक्ष महास्थूलहै, वो सत्ता नामरूपसे रहित चक्षु आदि करणों का अविषयहै, यह वृक्षनाम रूप सहित चक्षुरादि करणोंका विषय है, वो सत्ता सर्व भेदभाव से रहित एकरस है, यह वृक्ष स्कंध शाखा उपशाखा टांस पत्र आदि अनेक भेदभाव युक्त नानाहै, वो सत्ता नामरूप से रहित महासूक्ष्म निरवयक निराकार होने से अविनाशी है, यह वृक्ष नामरूप सहित महास्थूल साकार होने से नाशवान् है । हे सौम्य इस प्रकार उस कारण भूत महासूक्ष्म सत्ता से अरु इस कार्य्य भूत महास्थूल वृक्ष से बडा भेद है । अरु जो वास्तव परमार्थ दृष्टि से देखिये तो वो अरूप महासूक्ष्म सत्ताही इस महान् वृक्षाकार से सुशोभित है तिस बिषे इस वृक्षका नामरूप केवल वाचारंभणमात्रही है वास्तव से कुछ नहीं ॥

हे सौम्य इस दृष्टान्त प्रमाणही द्राष्टान्तिभूत इस विराट्रूप वृक्षको भी श्रवण करो। हे सौम्य असंभूतिनामा जे प्रकृति सो इस विराट्रूप वृक्षका कारण बीज है तिस बीजान्तर एक "अणोरणियान्" इत्यादि श्रुति प्रमाणसे नानारूपसे रहित चक्षुरादि करणोंका अविषय अति सूक्ष्म सत् चैतन्य सत्ताहै कि जिस सत्ताके आश्रय प्रकृति सर्व कार्य्योंको करेहै। सो सत्ता प्रथम प्रकृतिद्वारा हिरण्यगर्भ नामवाले अंकुररूपसे प्रकट हुई अरु सो अंकुर क्रियाशक्ति अरु ज्ञानशक्ति यह दो शक्तिरूपा प्रथम के दो दल (पत्ते) वालाहै, तिस अंकुरसे पंचमहाभूतरूपस्कंधहुए, पश्चात् पंचभूतों का कार्य चतुर्दश भुवनरूपा शाखाहुई, अरु तिस वृक्षके वेदमन्त्ररूप पत्तेहुए, अरु यज्ञ अग्निहोत्रादि कर्म्मरूप पुष्पहुए अरु चतुर्दश भुवनाश्रित जे जीवोंके शरीर सो सर्व उस विराट्रूप वृक्षके फलहुए तिन फलों बिषे हृदयरूप वा अन्तःकरणरूप महा सूक्ष्म बीजहुआ तिस बीज बिषे वोही नामरूपसे रहित महा सूक्ष्म सत् चैतन्य सत्ताहै कि जो प्रकृति को निमित्त करके इस विराट्रूप वृक्षाकार से सुशोभित है। हे सौम्य देखो उस महासूक्ष्मअरूप निरवयवनिराकार सत्चैतन्य सत्तासे हुआ विराट्रूप वृक्ष सो अतिस्थूल सावयव साकार नामरूपवान् असत् जडहै, वो सत्ता अविनाशी नित्यहै, यह विराट्रूप वृक्ष नाशवान् अनित्य है वो सत्ता देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहितहै, अरु यह विराट्रूप वृक्ष देश काल वस्तुके परिच्छेद सहित है, वोसत्ता उत्पत्ति विनाश रहित एक रसहै, यह विराट्रूप वृक्ष उत्पत्ति विनास सहित नानारूपहै। हे सौम्य व्योहार दृष्टिसे देखिये तो उसकारण सत्तासे अरु इस कार्य्य विराट्रूप वृक्षसे महान्अन्तर है, अरु परमार्थ दृष्टिसे देखिये तो वो ही एक सत् सत्ता इस विराट्के नामरूप आकारसे सुशोभितहै, अरु तिस सत्ता बिषे यह नामरूप क्रियात्मक विराट् केवल वाचारम्भण (कहने) मात्रही है। हे सौम्य समष्टि विराट्रूपसे अरु तदनन्तर व्यष्टि

श्रद्धत्स्व सौम्येति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिद छं सर्व्वं तत्सत्यछं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतोइति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ३ ॥ खण्डः १२ ॥

विराट्रूप से अरु तिन दोनों चिदाभास जीवरूप से वो ही एक सत् नाम्नी परमसूक्ष्म परमार्थ सत्ताही सुशोभितहै और रंचक मात्र भी नहीं। एतदर्थही श्रुतियों ने भी सोई आज्ञा कियाहै "। सर्व्वं खल्विदं ब्रह्म "। "। सद्धिदं सर्व्वं"। "। चिद्धिदं सर्व्वं "। "। पुरुष ये वेदं सर्व्वं "। "। ब्रह्मैवेदं सर्व्वं "। —: ॥ अतएव हे सौम्य श्रद्धा करो २ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य (मेरे वाक्यमें) श्रद्धाकरो, सो जो यह महासूक्ष्म है सो यह सत् आत्मा है जिन सर्वों का सो सर्व इसका अपना आपहै सो सत्यहै हे श्वेतकेतो सोई अणुवत् महासूक्ष्म सत्आत्मा तूही है। इसप्रकार जब पिताने कहा श्वेतकेतु कहताहुआ हे भगवन् पुनःभी मुझको समुझायकेकहिये पिताने कहा तथास्तु ३ ॥ इतिद्वादशोखंडः १२ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

हे सौम्य इस जगत् का कारण जो सत्है सो अणुतर महासूक्ष्म होनेसे चक्षु मनआदि अन्तर बाह्यके करणों का विषय नहीं, तिस महा सूक्ष्म सत्तासे यह महास्थूल नामरूप क्रियात्मक जगत्रूपकार्य्य उत्पन्न हुआहै। यदि न्यायशास्त्र बिषे सूक्ष्म सत्का अर्थ निर्द्धार कियाहै सो तहां अंगीकार है, तथापि, वेदवादियों के, अतिसूक्ष्म अर्थ बिषे ,बाह्य विषयोंबिषे स्वभावही से प्रवृत्त है मन जिनका अरु असत् पदार्थों में ही श्रद्धा अधिक है जिनको उनको महासूक्ष्म सत् सत्ताबिषे गुरुतर श्रद्धाका होना अति कठिन है, अतएव हे सौम्य मैं कहताहौं जो मेरे इस सत्य

वाक्यमें श्रद्धा करो ॥ः—हे सौम्य यह सर्व प्रपंच अपनी उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय सत्ही था, उस महासूक्ष्म मन आदिकों का अविषय सत्‌चैतन्य सत्तासे यह समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् हुआहै, ताते इस जगत्के अधिष्ठान कारण सत् बिषे ,कि जिसको प्राप्त होके भी अज्ञानी ज्योंके त्यों निकल आवते हैं, अरु ज्ञानवान् जिसबिषे पूर्वोक्त प्रकार गयेहुये फेरके आवते नहीं, उस अविनाशी सत्बिषे अपनी श्रद्धाको दृढ़करो ॥ प्रश्न ॥ हे पिताजी जिस महासूक्ष्म सत्‌चैतन्य से यह सर्व नामरूप क्रियात्मक जगत्हुआ आप कहतेहौ सो तो दृष्ट आवता नहीं तब कैसे जानिये जो वो है, अरु जब जिसके अस्तित्वका निश्चय होवे नहीं तब तिसबिषे श्रद्धा कैसे होवे ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य वो सत् सर्व आकार विकार से रहित महासूक्ष्म है एतदर्थ उस बिषे अपनी श्रद्धाको दृढ़करो ॥ हे पिताजी प्रत्या भी तब दृढ़ की जाती है, जब आगे कोई वस्तु दृष्ट आवे जो वस्तु मनादिकों का भी विषय होवे नहीं तब तिस बिषे प्रत्या (श्रद्धा) दृढ़ कैसे होवे ॥ हे पुत्र तुमने पूर्व यह कहाहै कि हमारी दृष्टिमें ऐसा आवताहै जो जो पुरुष अग्निहोत्रादि शुभ कर्म्म करते हैं सो स्वर्गादि उत्तम लोक को प्राप्त होते हैं, अरु जो हिंसादि अशुभ कर्म्मों को करतेहैं सो नरकादि अधम लोकों को प्राप्त होते हैं। हे सौम्य यहां हम तुमसे प्रश्न करते हैं कि यह जो तुमने कर्म्मी पुरुषोंके अविद्यात्मक असत् वाक्योंको मान लियाहै कि अग्निहोत्र के कर्त्ता उत्तरायण मार्गवाले देहत्यागान्तर स्वर्ग सत्यलोक को जातेहैं, अरु दक्षिणायन मार्गके सेवनेवाले पितृलोक को जाते हैं, इत्यादि जो तुमने मान लिया है सो उन कर्मियों के स्वर्गलोक पितृलोक जाते प्रत्यक्ष देखके मानाहै वा किसी के वाक्य श्रवण करके माना है सो कहो ॥ हे भगवन् यह कर्मशास्त्र के वाक्य आचार्यद्वारा श्रवण करके माने हैं जाते आते किसीको देखानहीं हे सौम्य मैंने तुमको श्रुति शिरोमणि वाक्य युक्ति अनुभव पू-

वैक कहाहै अरु दृष्टान्तोंद्वारा अनुभव करायाभी है तिस वाक्य को तुम क्यों नहीं मानते, अरु वो वाक्य तुमने मान लिये हैं जो अग्निहोत्रादिकों के करनेवाले इस प्रकार स्वर्गादिकों को जाते हैं इस प्रकार पुनः लौटके आवते हैं। अरु हे पुत्र तुझको किसी ने कहा कि तुमबड़े पुण्यवान्हौ तबतूने अपने को पुण्यवान् मानलिया अरु किसीने तुझसे कहा तुम बड़े पापी हौ तब तूने अपनेको बड़ा पापी मान लिया, यदि तुझको किसीने कहा तुम सूतकीहौ तब तूने अपने को सूतकी मानलिया। हे सौम्य यह जो सर्व तूने मानलियाहै सो सर्व प्रत्यक्ष देखके मान लिया है कि केवल श्रवण करकेही मानलियाहै॥ हे पिताजी यह सर्व देखानहीं केवल श्रवण करकेही मानलिया है॥ हे सौम्य जो वेद की अपराविद्याके अविद्यात्मक वाक्य हैं तिनको तो तुमने सत्य करके माने हैं, अरु जो वेदकी पराविद्यात्मक सत्य वाक्य हैं अरु जिन वाक्यों से वेद सत् चैतन्य अपने आप आत्माका साक्षात् यथार्थ अनुभव करावता है, अरु सोई वाक्य हम तुमको कहते हैं सो वाक्य तुम क्यों नहीं मानते तुमको मानना योग्यहै क्योंकि तुमको उस परमानन्द की प्राप्ति इन वाक्योंसेही होनी है सो केवल श्रद्धाके आश्रय होनीहै अतएव मेरे कहे वाक्यों बिषे श्रद्धा करो। हे भगवन् उस अतिसूक्ष्म अरूप अविषय सत् चैतन्य बिषे श्रद्धा कैसे होवे॥ हे प्रियदर्शन यह वाक्य तुमने यथार्थ कहा, हे सौम्य उसबिषे श्रद्धा तब होती है जब अन्तःकरण शुद्ध होताहै सो अन्तःकरण तब शुद्ध होताहै जब निष्काम विहित कर्म्मोंको करताहै, ताते विहित निष्काम कर्म्मोंकरके जिसका अन्तःकरण शुद्ध होता है तिन पुरुषों को मेरे इस सत्य परमार्थ बोधक वाक्य बिषे श्रद्धा आवती है॥हे पिताजी–अब श्रद्धा किसवास्ते चाहिये यह तो सर्व पुरुष आपही जानते हैं जो सुषुप्ति से यह सर्व ब्रह्मांड उदय होता है अरु पुनः तिसही बिषे लय होता है सो यह सर्व प्राणी अपने अन्तर नित्य देखते हैं तब श्रद्धा करने का

क्या प्रयोजन है किन्तु कुछ भी नहीं॥ हे पुत्र जैसा तू कहता है तैसाही होता होवे तो ठीक परन्तु तैसा होता नहीं जो तैसा होता होवे तो सर्व जीव मोक्षहुए चाहिये, परन्तु यहतो सर्व अद्यावधि भ्रमते हैं। हे सौम्य जिस मुमुक्षु को सत् बिषे श्रद्धाहै तिस पुरुष को आचार्य करके कहा हुआ एक वाक्य उसके शुद्ध अन्तःकरण विषे सूर्य की किरणोंवत् पसरके अनन्त गुणा होता है। हे पुत्र वो कैसा वाक्यहै जो सत्परब्रह्म उसही को लखावताहै। जब ब्रह्मवेत्ता आचार्य ऐसे वाक्य उस मुमुक्षु को कहताहै तब वो वाक्य उसके शुद्ध अन्तःकरण के भीतर अनन्त गुणा होके मोक्ष करनेवाला होताहै, परन्तु सो वाक्य किनको मोक्ष करता है कि जिनको इस वाक्यबिषे श्रद्धा है। हे पुत्र जिन पुरुषोंको इसवाक्यबिषे श्रद्धा नहीं तिन पुरुषोंको आचार्य किंवा स्वयं ब्रह्मा अनेक श्रुतियोंके वाक्य उपदेश करे तथापि वो वाक्य उन श्रद्धा हीन पुरुषोंके हृदयबिषे ठहरते नहीं (विरोचनवत्)अथवा वो श्रद्धा हीन पुरुष आप सर्वदा वेदान्तों को विचारता भी रहताहै अरु अन्यों को कहता भी रहताहै तथापि उस पुरुषको वेदान्त के कहे ते सुननेका कुछ भी फल नहीं॥ अतएव हे सौम्य जो तुझको सत् चैतन्य अविनाशी के प्राप्तहोनेकी इच्छाहै तो अब तुम उसबिषे अपनी श्रद्धाको दृढ़करो उसविषयक श्रद्धाका त्याग मत करो। हे पुत्र उस परमानन्दकी प्राप्ति के अर्थ तुमको और कुछ कर्त्तव्य नहीं यहां एक श्रद्धाहीका कामहै। हे सौम्य स्वार्थवा परमार्थ इन दोनों की सिद्धिबिषे एक श्रद्धा चाहिये जिसविषे श्रद्धा होगी सोई सिद्ध होगा। अतएव हे सौम्य तुम अपने को परमानन्द की प्राप्तिके अर्थ मुझकरके अनुभव कराये सत्बिषे अपनी श्रद्धाको दृढ़करो॥ हे सौम्य ऐसा जो अणुवत् सर्व्वात्मा है सो महासूक्ष्म सर्व्वात्मा है सोई सत् है हे श्वेतकेतो सोई सत् आत्माहै तूहै॥ प्रश्न॥ हे पिताजी सोई अणुवत् महासूक्ष्म सत् आत्मा मैंहों, अच्छा। हे प्रभो इस बिषे मुझको पुनःएक

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके त्रयोदशो खंडः १३ ॥

लवणमेतदुदकेऽवधायाथा मा प्रातरूपसीदथाइति स ह तथा चकार तछं होवाच तद्दोषा लवण उदके अव धा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद यथा विली न मेवाङ्ग १ ॥

संशयहुआहै जो आपने बट बीजके अन्तरअरूप महासूक्ष्म सत्ता कही अरु तिससूक्ष्म सत्तासे हुआ यह स्थूल वृक्षकहा अरु इसही दृष्टान्त करके महासूक्ष्म सत् चैतन्य आत्मा से यह नामरूप क्रियात्मक ब्रह्मांडका उत्पन्न होना कहा सो अस्तु । परन्तु हे भगवन् यह कार्य रूप ब्रह्माण्ड तो दृश्य आवताहै परन्तु इसका कारण जो महासूक्ष्म सत्ताहै सो तो दृष्ट आवती नहीं तब हम उस महासूक्ष्म सत्ताको कैसे अनुभव करके निश्चय करें जो वो है ॥ हे प्रभो अब हम जिस प्रकार उस सत् चैतन्य आत्मा को साक्षात् यथार्थ अनुभव करें सोई प्रकार पुनः कृपाकर मुझको समुझाय के कहिये ॥ उत्तर ॥ हे पुत्र अब हम तुझे उस सत् चैतन्य को, घटवत् प्रत्यक्ष देखावते हैं सोभी कैसा जो घटसे अति समीप, सो समीप भी कैसा जो विद्यमान अपना आप, सो विद्यमान भी कैसा जो न तो पकडा जावे न देखाजावे न सुना जावेगा अरु होवेगा प्रत्यक्ष विद्यमान अपना आप, हे पुत्र ऐसे सत् चैतन्य आत्माको अब हम तुझे एक दृष्टान्त द्वारा देखावते हैं। हे सौम्य जैसे यह दुःख अरु सुखहैं सो न तो देखे जातेहैं न पकडे जातेहैं, परन्तु हैं दोनों प्रकट विद्यमान हे सौम्य तैसेही वो सत् आत्मा न देखाजावेगा न पकडा जावेगा परन्तु होवेगा विद्यमान अपना आप।हे सौम्य अब हम तुमको एक दृष्टान्त द्वारा कहते हैं तिसको सावधान होके श्रवण करो ॥ ३ ॥ इति द्वादशोखंडः १२ ॥

अक्षरार्थ॥

हे सौम्य इस लवण के खंडको घटमें जलभरके उसमें डालो कल्ह प्रातःकालको मेरे पास ले आइयो, इसप्रकार जब पिताने कहा तब सो श्वेतकेतु तैसेहीकरता हुआ,सोपिता कहताहुआ जो लवण रात्रिको जल बिषे रक्खा है तिसको निकालो तब वो जल बिषे लवणको देखता हुआ परन्तु उसको न जानता हुआ पिताने कहा जैसे लवण विद्यमान था तैसे हे अंग विलीन हुआ है १॥

भावार्थ खंड त्रयोदशो मन्त्र प्रथम का॥

हे सौम्य, यदि विद्यमान वस्तु भी उपलभ्य न होती होवे तो प्रकारान्तर करके तो उपलभ्य होती है, तहां दृष्टान्त को श्रवण कर। हे सौम्य यदि मेरे कहे अर्थ को प्रत्यक्ष करने को इच्छता होवे तो इस पिंड (खंड वा ढेला) रूप लवण को एक घट में पानी भर उसमें डाल (उसका मुहँ बंदकर अपने आश्रम पर लेजावो प्रातःकाल उसको लेके मेरे पास आवना,इस प्रकार जब पिताने आज्ञा किया तब वो अपने पिताकरके कहे अर्थको प्रत्यक्ष करने की इच्छावाला श्वेतकेतु सोई करता हुआ जो पिताने आज्ञा किया ॥ः-अर्थात् उस महासूक्ष्म सत्चैतन्य आत्माको प्रत्यक्ष करने की इच्छावाला जो श्वेतकेतु तिसको सत् चैतन्य का यथार्थ अनुभव करावनेकी इच्छावाला उद्दालक कहता हुआ कि हे पुत्र यदि तुझको मुझ करके कही वस्तुको प्रत्यक्ष करने की इच्छा है तो प्रथम एक घट पानीसे भरलेआवो, तब वो श्वेतकेतु एक घट पानीका भरलेआया। तब पुनः उसको पिताने कहा कि अब एक ढेला लवणका लेआवो, तबवो सोभी ले आया। पिताने प्रश्न किया कि हे पुत्र अब तू इस लवण के नाम रूपको जानता है, पुत्रने उत्तरदिया कि हे पिताजी जानता हों। हे सौम्य अब तू इस लवणखंड को इस जलसे भरे घटबिषे धरदे प्रातःकाल यह लवण तुझको उपदेश करेगा, अब तू इस घटको अपने आश्रमपर लेजा इसके पास कोई आवे

अस्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभि प्राश्यैनदथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्त्तते तछं होवाच वाव किल सत्सौम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति २ ॥

नहीं रात्रिको इसपर जागता रहियो, प्रातःकाल इस घटको मेरे पास ले आवना । इस प्रकार जब उद्दालक ने कहा तब सो श्वेतकेतु सोई करता हुआ, दूसरे दिवस प्रातःकाल उस घटको पिताके समीप लेआया अरु कहता हुआ कि हे पिताजी आपकी आज्ञानुसार यह घट मैं ले आयाहौं—॥ उद्दालक कहता हुआ हे वत्स जो लवण कल रात्रको तूने इस घट बिषे धरा है तिसको निकालो, तब वो श्वेतकेतु उस लवण को घटबिषे ढूंढने लगा परन्तु वो लवण न मिला तब सर्व ओर देखके पिता से कहता हुआ कि हे पिताजी वो लवण तो घट बिषे मिलता नहीं ॥—हे पुत्र उस लवण को इसमें से किसीने निकाल तो नहीं लिया । हे पिताजी रात्रिको इसके निकट कोई भी आया नहीं मैं इस के पास जागता रहा हौं । हे पुत्र जिस लवण को कल्ह सायंकाल को तूने देखा पकडा था अरु इस घटबिषे धराथा सो लवण कहीं गया नहीं इस घटबिषे ही है, यथा लवण विद्यमान होतेसन्तेभी जलबिषे विलीन होने से जाना जाता नहीं, तथापि सो लवण चक्षुकरके हस्त करके पिंड रूपसे अगृह्यमान भी बिद्यमानहै । इसप्रकार जलबिषे विलीन हुआ लवण उपायान्तर करके ग्रहण होवेगा, इस प्रकार विचार के अपने पुत्रको लवणके दृष्टान्त मिस सत् के प्रत्यक्ष करावने की इच्छावाला उद्दालक कहताहुआ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

इस जलके ऊपरसे थोडा जल लेके आचमन करो, कहो

क्याहै, लवणहै, मध्यसे आचमनकरो, क्याहै, लवणहै, अन्त (नीचे) से आचमनकरोकहो क्याहै लवणहै, यदि इसप्रकार अभिप्रायहै तो यह उदक परित्यागकर मुझ समीप आओ, इस प्रकार जब पिताने कहा तब वो तैसेही करके पिता समीप आय कहताहुआ सो लवण तिस जलबिषे नित्य वर्त्तताहै। ऐसे जब पुत्रने कहा तब पिता करताहुआ हे सौम्य तैसेही वो सत् यहां (शरीरबिषे) ही है परन्तु देखा जाता नहीं २॥

भावार्थ मन्त्रदूसरेका॥

हे सौम्य अब इस घटके ऊपरसे थोड़ा जल लेके आचमन करो (चीखो) इस प्रकार जब पिताने कहा तब सो श्वेतकेतु उसघटके ऊपरसे थोड़ा जलले चीखताहुआ, तब पिताने पूछा हे पुत्र क्याहै, पुत्र ने कहा हे पिताजी लवण है, लवण का स्वादहै। तब पुनः पिताने कहा कि हे पुत्र अब इस घटके मध्य से जललेके आचमन करो, तब श्वेतकेतु सोई करताहुआ तब पिताने पुनः प्रश्न किया कि हे पुत्र कहो क्याहै, पुत्रने कहा हे पिताजी लवण है, पुनः पिताने कहा हे पुत्र अब घटके नीचे से जललेके आचमन करो, तबसो श्वेतकेतु पुनः सोई करता हुआ, पुनः पिताने प्रश्न किया हे पुत्र क्याहै, पुत्रने कहा हे पिताजी लवण का स्वाद आवता है. ताते लवण है। पुनः पिताने कहा हे सौम्य यदि इस प्रकारके अभिप्राय का परित्याग कर अर्थात् इस प्रकार अभिप्राय है तो उदक के आचमन को परित्याग कर मेरे समीप आओ। इस प्रकार पिताने कहा तब वो श्वेतकेतु उस लवणोदकयुक्त घटको परित्याग करके पिता समीप आय यह वचन कहता हुआ हे पिताजी सो लवण जो मैंने कलरात्रि को जिस जल बिषे डालारहा सो उसही जल बिषे सम्यक् विलीन हुआ विद्यमान है। इस प्रकार जब श्वेतकेतु पुत्रने कहा तब तिसको श्रवण कर उद्दालक पिता कहता हुआ, हे सौम्य जैसे लवण जलमें डालने से पूर्व दर्शन स्पर्श

करके गृहीतथा पश्चात् वो जलमें डालने से जलबिषे विलीन
होगया, सो जलबिषे विलीन होने से तिन चक्षु हस्त करके अ-
गृह्यमान हुआ भी विद्यमान है, ऐसेही उपायान्तर करके प्राप्त
है, जिह्वा से उपलभ्यमान होनेसे (अर्थात् जो लवण उदकबिषे
डालने से पूर्व चक्षु हस्त करके उपलभ्यथा सो जलमें विलीन
होने से चक्षु हस्त करके उपलब्ध न हुआ, परन्तु उपायान्तर
करके जिह्वासे चीखने करके उपलभ्यमान हुआ) हे सौम्य तै-
सेही यहांही इस तेज जल अन्नके कार्य शरीर बिषे निश्चय क-
रके आचार्य के उपदेश से स्मरण प्रदर्शन होता है (जाना जाता
है) हे सौम्य तेज जल अन्नरूप अंकुर (कार्य्य) का कारण सो
सत् बटके सूक्ष्म बीज बिषे विद्यमानहुआ सताभी भासता नहीं
अर्थात् इन्द्रियों करके ग्रहण होता नहीं, जैसे यहांही जल बिषे
दर्शन स्पर्श करके अनुपलभ्यमान लवण जिह्वा करसे यहां उदक
बिषेही विद्यमान तुझको उपलब्ध हुआ ॥:—हे सौम्य तैसेही वो
सत्चैतन्य न तो आकारों द्वारा देखा जावेगा न पकड़ा जावेगा
एक लवणवत् अनुभव किया जावेगा । हे सौम्य यह शरीर रूप
घट है बुद्धि किंवा लिंग रूप तिस बिषे जल है, तिस बिषे सत्
चैतन्य रूप लवण है सो उक्त जल साथमिलके तद्रूप होरहा
है । अर्थात् मनसाथ मिलके मनरूप हो रहा है, बुद्धिसाथ मि-
लके बुद्धिरूप, चक्षुसाथ मिलके चक्षुरूप, वाणी साथ मिलके
वाणीरूप, इस प्रकार वो सत् जिस जिसके साथ मिलाहै तिस
तिसके आकार हो रहा है । हे सौम्य जैसे जलमें रखने से पूर्व
तुमने लवण को नामरूप सहित देखा था तैसे यह उस सत्
चैतन्य को बुद्धि आदिकों से पृथक् सुषुप्ति बिषे देखो ॥ श्वेतकेतु
रुवाच ॥ हे पिताजी उस सत्को मैंने न देखा न स्पर्श किया हे
पिताजी अब वो सत् साक्षात् प्रतीतमें कैसे आवे, पूर्व आपने
यह कहा था जो हम तुझको सत् देखायके पकड़ाय देवेंगे ॥ हे
सौम्य तुम अपने चक्षुकी श्रेष्ठता नेष्ठता को देखते (जानते)

हौं हे पिताजी मैं अपने चक्षु आदि करणों की श्रेष्ठता नेष्ठता को भली प्रकार देखता हौं॥ हे सौम्य तुम अपने मन बुद्धि आदि अन्तःकरण की चपलता स्थिरता पण्डितता मूर्खता आदिकों को देखते हौ। हे पिताजी सो भी भली प्रकार जानता हौं। हे सौम्य "घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः" इस न्याय प्रमाण जो जिसको जानता है सो तिस जानने योग्य वस्तु से जुदा होता है, ताते तुम जिन अन्तर बाह्य के करणादिकों को जानते हौ तिन सर्व से जुदे हौ। अरु हे सौम्य जो वस्तु जानने योग्य होती है सो जड़ होती है, अरु जाननेवाला चैतन्य होता है, इस न्याय प्रमाण जिन बुद्धि आदिकों को तुम जानते हौ सो सर्व जड़ हैं, अरु जानने वाले तुम चैतन्य हौ। हे सौम्य इस ही न्याय प्रमाण तुम विचार कर देखो कि जिन चक्षुरादिकों को तुम देखते हौ वो जड़ होनेसे तुम्हें देखने को समर्थ नहीं। इस ही प्रकार जिन बुद्धि आदिकों को तुम जानते हौ सो तुमको जानने को समर्थ नहीं। हे सौम्य इसप्रकार तुम बुद्धि मन आदिकों के अविषय हुए हुए भी सर्वके द्रष्टा जानने वाले सर्व में मिले अरु सर्व से पृथक् सर्वदा विद्यमान सत् हौ तुम अपने आपको अनुभव करो तुम्हारा जाननेवाला और सत् कोई नहीं, तुमहीं सर्व के द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता सत् चैतन्य हौ, तुमको यह जड़ मन इन्द्रियादि जानने को समर्थ नहीं। जैसे प्रकाशरूप दीपक जिन अप्रकाशी पदार्थों को प्रकाशताहै सो अप्रकाशी पदार्थ प्रकाशरूप दीपकको प्रकाशने विषे समर्थ होवे नहीं हे सौम्य तैसेही स्वयं प्रकाश सत् चैतन्य स्वरूप जो तुम तिनको विषय करने के अर्थ मन आदि कोई भी समर्थ नहीं। हे सौम्य अपने आप अद्वितीय चैतन्य स्वरूप का देखना अरु ग्रहण करना बने नहीं क्योंकि जो देखा अरु ग्रहण कियाजाता है सो जड़ होताहै। ताते तुम जलमें विलीन हुए लवणवत् अपने आप सत् चैतन्य स्वरूप को सम्यक् यथार्थ अनुभव करो

सय एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्व्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इतिभूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ३ ॥

उस सत् चैतन्य अपने आप आत्माके अनुभव करने का स्थान यह शरीरही है परन्तु वो जलमें विलीनहुए लवणवत् इस शरीर इन्द्रिय मन प्राणादिकों में प्रवेशकर तिन बिषे विलीन हुआ तारूपसे ही स्थित है ताते निश्चयकर उस सत् चैतन्य अपने आपको अनुभव करो २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सोई इन सर्व्वका आत्मा है अरु यह सर्व्व जिसका अपना आपहै, सोई सत् आत्माहै हे श्वेतकेतो सोई महासूक्ष्म सत् सर्व्वात्मा तू है, इसप्रकार जब पिताने कहा तब श्वेतकेतुने कहा हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाय के कहिये, पिताने कहा तथास्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य जो सत् चैतन्य चक्षुद्वारा सर्वका द्रष्टा है श्रोत्रद्वारा सर्वका श्रोताहै जिह्वाद्वारा सर्वका रसयिता है मनद्वारा सर्वका मनन करनेवाला है, बुद्धिद्वारा सर्वका विज्ञाता है, हस्तद्वारा सर्वका गृहीताहै चरणोंद्वारा गंताहै । अरु सुषुप्तिबिषे चक्षु कर्ण जिह्वा घ्राण मन बुद्धि आदिक अन्तर बाह्यके करणों के अभाव हुए न द्रष्टाहै न श्रोताहै न घ्राताहै न रसयिताहै, न गृहीता है न गंताहै न मन्ताहै न बोद्धाहै, सर्व विशेषतासे रहित निर्विशेष केवल विज्ञान घन सर्व अनुभवों का अनुभवी अनुभव रूप महा सूक्ष्म सर्वका सत् आत्माहै-॥ हे सौम्य ऐसा जो अणुसे भी महा सूक्ष्म सर्वका अपना आप आत्मा है हे श्वेतकेतो ऐसा जो महासूक्ष्म सत् चैतन्य सर्व्वात्माहै सो महासूक्ष्म सत् चैतन्य सर्वात्मा तु है इसप्रकार जब उद्दालक पिताने अपने पुत्र श्वेतकेतु

अथ छान्दोग्यषष्ठप्रपाठके चतुर्दशोखंडः ॥ १४ ॥

यथासौम्य पुरुषं गन्धारे भ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वा उदङ्वाऽधरा ङ्वा प्रध्मायिताभिनद्धाक्षआनीतोऽभिनद्धाक्षोविसृष्टः १

को उक्त लवणके दृष्टान्तसे आत्मोपदेश किया तब तिसको श्रवण कर श्वेतकेतु कहताहुआ ॥ श्वेतकेतुरुवाच ॥ हे पिताजी यदि इसप्रकार लवणवत् सो सत् इंद्रियों करके अनउपलभ्यमान भी जगत्का मूलसत् उपायान्तर करके प्राप्त होनेको शक्य है, अरु तिसकी प्राप्तिसे कृतार्थताहै अरु उसकी अप्राप्ति से अकृतार्थताहै। ताते हे भगवन् उसकी प्राप्तिका क्या उपायहै। अरु ऐसे निर्विशेष आनन्दघन सत् चैतन्यने ऐसे दुःखमय संसारबिषे क्यों प्रवेश कियाहै, सो आप पुनः मुझको दृष्टान्त द्वारा समुझायके कहिये। इस प्रकार जब श्वेतकेतुने कहा तब पिता कहताहुआ तथास्तु कहताहौं श्रवणकर ॥ ३ ॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके त्रयोदशोखंडः ॥ १३ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य जैसे किसी पुरुष (बालक) को गंधारदेशसे आंख बांध तस्करोंने लेआयके तिस चक्षुबद्धको अतिविगतजन अरण्य में छोड़दिया, तब सो बद्धनेत्र जैसे उस अरण्यमें कभी पूर्व कभी पश्चिम कभी उत्तर दक्षिणको जाता गिरता पुकारता है मैं बद्धचक्षुहौं मेरी आँखबाँध तस्कर यहां ले आये हैं इसप्रकार पुकारने लगा ॥ १ ॥

अथ भावार्थखंड चतुर्दशोमन्त्रप्रथम ॥

हे सौम्य जैसे इसलोक बिषे किसी राजकुमार बालक पुरुष को गंधारदेशसे तस्करोंने (अर्थात् गंधारदेशके किसी राजकुमार को चोरोंने) हरणकर पश्चात् उसकी आँखपर पट्टीबांध उसके हाथबांध अति जनरहित महाभयानक कंटकों के अरण्यबिषे ले

तस्य यथाभिहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं ब्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसम्पद्येतैवमेवेहाचार्य्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति ॥२॥

आयके छोड़ादिया, तब वो बालक राजकुमार उस अति भयानक जनरहित कंकर कंटकमय अरण्य में अपने नेत्र हस्त बद्ध होने के कारण जैसे दिग्भ्रमको प्राप्तहुआ पुरुष तैसे, कभी पूर्वदिशाको कभी पश्चिम दिशाको कभी दक्षिण उत्तर दिशाको भ्रमता फिरता गर्त कंटक पाषाणों में गिरता उच्चस्वर से पुकारता रोवता कहताहै हा दैव देखो बड़ा कष्टहै मुझको तस्करोंने गंधार देशसे हरणकर मेरे नेत्र हस्त बाँध इस कंटकमय विगतजन अति घोर अरण्यमें त्याग दियाहै अब मैं क्याकरों मेरेनेत्र बद्ध होनेसे कुछ भी सूझता नहीं ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

तिसका जैसे बन्धन छोड़ायके किसी करुणावान् पुरुष ने कहा इस दिशा बिषे तेरा गंधारदेशहै तू इस दिशाको जा तब वो ग्रामसेग्रामको पूछता पंडित मेधावी हुआ गन्धार देशको प्राप्तहुआ (हे सौम्य) ऐसेही आचार्यवान् पुरुष जानता है तिसका यावत् प्राक्तन (प्रारब्ध) कर्म्म भोग के समाप्त होता नहीं तावत्ही जीवताहै पश्चात् तहांही सत्को प्राप्तहोताहै इति २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

हे सौम्य प्रियदर्शन श्वेतकेतो, तिसका (जिस राजकुमारको तस्कर गन्धार देशसे नेत्र हस्त बाँध भूषण हरणकर महाविजन अरण्यमें छोड़गये) किसी परम करुणावान् दयालु पुरुषने उसका रुदन श्रवणकर उसके समीप आय उसके नेत्र हाथके बन्धनखोल सावधानकर कहा कि इस उत्तर दिशामें तेरा गंधार देशहै तू इसदिशाको जा (आगे एकग्राम आवेगा उसग्रामसेअपने

ग्रामको पूछके पंडित,उपदेशवान्, मेधावी,अर्थात् दूसरेने उपदेश किये ग्राम के मार्ग में प्रवेश करनेकी सामर्थ्य वाला, हुआ अपनेगंधार देशको प्राप्तहोता है। हे सौम्य इसप्रकार आचार्य्यवान् पुरुष अपने सत् स्वरूप देशको प्राप्तहोताहै। इस से इतर (अनाचार्य्यवान्) जे मूढ़ बुद्धि पुरुष हैं कि जो देशसे देशान्तर अर्थात् लोकसे लोकान्तर के जानेवाले अविवेकवान् हैं सो अपने उक्त देशको प्राप्तहोते नहीं। हे श्वेतकेतु जैसे तुम्हारे प्रति यह दृष्टान्त वर्णन कियाहै तैसेही अब दार्ष्टांतको भी श्रवणकरो, हेसौम्य जैसे स्वाविषय रूपगंधार देशसेपुरुष तस्करोंकरके बद्धनेत्र अविवेकी क्षुधा तृषावान् व्याघ्र तस्करादि अनेक भय अनर्थ व्रात युत अरण्यमें प्रवेशको पाय दुःख करके अति आर्त पुकारनेलगा, मैं इस बन्धन से छूटनेकी इच्छा वाला हौं, इस प्रकार उस दुःखितकी पुकारको किसी एक दयालु पुरुषने श्रवणकर उसके निकट आय बन्धन छोड़ाय उसको स्वदेशका मार्ग बताया तब वो उस मार्ग से चल अपने गंधार देशको प्राप्तहो सर्व बन्धनोंसे निवृत्त परम सुखी होता हुआ॥ हे सौम्य इस दृष्टांत प्रमाणही जगत् के आत्मा सत् चैतन्य स्वरूप रूप गंधारदेश से चिदाभास जीवको हरणकर तेज जल अन्नादिमय देहरूप अरण्य में जोकि वात पित्त कफ रुधिर मेद मांस अस्थि मज्जा शुक्र कृमि मूत्र पुरीष, इत्यादि कंकर कंटक गर्त पाषाण सिंह सर्प वृश्चिकादि विषधरों करके पूर्ण महादुःखका स्थान,अरु शीत उष्णादि अनेक द्वंद्वरूप उपदुःख करके युक्तहै, तिस देहारण्यमें पुण्य पाप रूप तस्करों ने उसके विवेक रूप चक्षुपर मोहरूप वस्त्रकी पट्टीबांध पुनः भार्य्या पुत्र पशु बान्धव धनादि दृष्टादृष्ट अनेक विषयों की तृष्णा रूपा पाश से उसके हाथ बाँध डालदियाहै। तब वो उक्त अरण्य में प्रवेश पाय पुकारता है कि मैं अमुकेका पुत्रहौं मेरे इतने बांधव हैं मैं कुटुम्बीहौं सुखीहौं दुःखीहौं मूढ़हौं पंडित हौं धार्मिकहौं, जन्माहौं मरताहौं जीर्णहौं पुत्र मेरामरगया धन

मेरा नष्ट होगया हा मैं माराजाता हौं मैं अब कैसे जीवोंगा क्या मेरी गति होगी कौन मेरा रक्षक है । हे सौम्य इस प्रकार अनेक शत सहस्र अनर्थ रूप जाल में फँसा हुआ , पक्षीवत् , चिल्लाता पुकारता रोवता फिरताहै । हे पुत्र इसप्रकार यहजीव देहरूप अति दुर्गम अरण्य में प्रवेशकर उक्त दुःखोंकरके दुःखित होय पुकारता फिरताहै तब कोई एक इसके पुण्य अतिशयकर-के कोई एक दयालु पुरुष जो सत्ब्रह्म आत्मा का जानने वाला सर्व बन्धनों से मुक्त ब्रह्मनिष्ठ है सो उसके दीनतामयरुदन को श्रवण कर इसके समीप आय धीरज देताहुआ तब उसब्रह्म-वेत्ताकी दयाकरके दिखाये संसार विषय दोष दर्शन मार्ग तब संसार विषय से विरक्त हुआ ,अर्थात् गुरु कृपासे जब संसार के विषयों को परिणामी दुःखरूप जाना तब तिनसे विरक्तहो कर्म्म उपासनादि सर्व ओर के भ्रमणों से निवृत्त हुआ, अब उसको परम दयालु ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य ने कहा कि हे पुत्र तू संसारी पुत्रत्वादि धर्म्मवान् नहीं ॥ प्रश्न ॥ तब मैं कौन हौं । हे पुत्र जो सत् चैतन्य सर्वात्माहै सो तू है। इसप्रकार आचार्य्य से उपदेश पाय अविद्यात्मक मोहपाशसे मुक्त हो गंधार देशके पुरुषवत् अपने सत् चैतन्य आत्माको प्राप्तहो अनिर्वाच्य सुखको प्राप्त होताहुआ ॥:— हे भगवन् अब इस दार्ष्टान्तको प्रकारान्तर करके सविस्तर क-हिये कि जिसकरके मुझ अल्पज्ञकी समझमें सम्यक् प्रकार आवे तब मैं अपने सत् आत्मपद को साक्षात् पाय निर्भय होवों ॥ उत्तर ॥ हेसौम्य अबमैं तेरेकहे प्रमाण इस दार्ष्टान्तको प्रकारान्तर से सविस्तरकहताहौं जो यहनगर राजा बालक चोर बन दयालु आदि कौन कौन हैं सो सर्व सावधानहोके श्रवणकरो । हे सौम्य यह सर्व तेरे निकटही रहते हैं । हे पुत्र यह शरीररूप गंधार देशहै तिसविषे सुषुप्तिरूप नगर है तिस नगरविषे सत् चैतन्य देव राजा है तिसका तू चिदाभासरूप बालकहै अरु पाप पुण्य रूप वा संस्कार अभ्यासरूप दो तस्करहैं, सो सुषुप्तिरूप नगर

बिषे अन्तर्द्धान हुए रहते हैं। हे सौम्य जैसे नगरके बाह्य कुछ
अवकाश (मैदान) होताहै तिसके पश्चात् बन होताहै, तैसेही
यहां सुषुप्तिरूप नगरके बाह्य स्वप्नरूप अवकाश है तिसके आगे
जाग्रत्‌रूप बड़ा भयानक वन है तिस बन बिषे कोई एक ब्रह्म-
वेत्ता आचार्य निर्भय हुआ रहताहै, अरु चिदाभासरूप बालक
की आंखपर अज्ञानरूप पट्टी बँधी है, अरु अहंब्रह्मास्मि, भावना
रूप भूषण है, नाना प्रकार के विषयों की तृष्णारूपा रज्जु है
तिस करके उस बालकके हस्त दृढ़ बँध रहे हैं। हे सौम्य अब
श्रवण करो। हेपुत्र पाप पुण्यरूप वा संस्कार अभ्यासरूप चोरों
ने तमोगुणरूप अन्धकारको पाय सुषुप्तिरूप नगरसे चिदाभास
रूप राजकुमार बालकको हरण कर लिया है, अरु उक्त चोरों ने
उस बालकके विवेकरूप चक्षुपर को हम भावनारूप लक्षणवान्
अज्ञान रूपा पट्टी बांध दियाहै, अरु स्वर्ग स्त्री पुत्र धन पशु ग्राम
आदिकों की दृढ़ कामनारूपा रज्जु करके इस बालक की मुश्कैं
बांधलिया है जिस करके वो बालक अपने नेत्रों पर की अ-
ज्ञानरूपा पट्टी खोल सक्ता नहीं। इसप्रकार उक्त चोरों ने इस
बालकको बांध फेर इसके अहंब्रह्मास्मि भावनारूप भूषण उ-
तार लेके इस बालकको जाग्रत्‌रूप महाघोर अरण्यमें ले आयके
छोड़दिया है॥ हे सौम्य सो यह जाग्रत्‌रूप बन कैसाहै कि जिस
बिषे सहस्रावधि प्रकारके अनेक वृक्षहैं। हेसौम्य शब्द स्पर्श रूप
रस गन्ध कर्म्म उपासना स्त्री पुत्र मित्र धन पशु ग्राम आदि यह
सर्व इस जाग्रत्‌रूप अरण्यके उत्तम सुखदायक वृक्षहैं, सो एक
एक जाति के असंख्य असंख्य वृक्षहैं, सो सर्व फलदायक छा-
यावान् वृक्षहैं, तथापि वो रागद्वेषरूप कण्टकों करके युक्त हैं।
अरु काम क्रोध लोभ मोह मत्सरता आदि जो आसुरी सं-
पदा लक्षणरूप वृक्षहैं सो कीकर करोंजुआ कटहरी करील
आदिकों के केवल कंटकमय वृक्षवत् महा दुःखदायी वृक्षहैं, हे
सौम्य यह जाग्रत्‌रूप अरण्य उक्त वृक्षोंकी बाहुल्यताकरके अति

ही सघन गह्वर होरहा है इसका पारावार पायाजाता नहीं । अरु इस अरण्य बिषे अनेक प्रकारके तूलाहंकाररूप बड़े बड़े पाषाण पड़ेहुए हैं अरु अनेक कामनारूप गर्त्त हैं तिनबिषे अनेक प्रकारकी चिंतवनारूप बिषधर जन्तु पड़ेहुए हैं, तीनों गुणरूप तीन नदियां हैं। हे सौम्य इस अरणयबिषे मूलाहंकाररूप बड़े मत्त गजराज फिरते हैं, मृत्युरूप सिंह गर्जताहै, अरु मनुष्यके रुधिरको पान करनेवाले चिन्तारूप भालु फिरते हैं, खांसीरूप बानर उछलते हैं ज्वर प्रलापरूप गीदड़ बोलते हैं तरुणतारूप भील पुण्योंको लूटते हैं, जरारूप पिशाचिनी फिरती मुंहफाड़ के सन्मुख दौड़ती आवतीहै । हेसौम्य उक्त प्रकारके वृक्ष कंटक पाषाण जीव जन्तुओं करके यह बन पूर्ण होरहाहै इनबिना इस का कोई कोना खाली नहीं, यह बन श्रावण भादोंकी नदियों-वत् पूर्ण होरहाहै । हे सौम्य इस बन बिषे जो अनेक प्रकारके कर्म्म उपासना के भेद हैं सोई छोटे बड़े अनेक मार्ग हैं तिन मार्गों बिषे अनेक प्रकारके विधि निषेध कर्तृत्व अकर्तृत्वादि कांटे पड़ेहैं चलनेवालों को चुभते हैं। ऐसा जो यह जाग्रत्रूप महा भयानक बन है तिसबिषे इस अतिसुकुमार राजकुमार चिदाभा-सरूप बालककी विवेकरूपा आँखोंपर अज्ञानरूपा पट्टीबाँध पाप पुण्य रूप तस्करों ने डालदिया है, सो वो राजकुमार बालक इस जाग्रत्रूप घोर अति भयानक अरण्य बिषे अपने नेत्र अरु हस्त बद्धहोने के कारण अतिही खेदको प्राप्त हुआ है। हे सौम्य उक्त अरण्य बिषे बद्धनेत्र जो बालक सो जिधरको जाताहै ति-धरही उसको उक्त कंटक चुभते हैं उन कंटकों से अपने को ब-चाय सक्ता नहीं नेत्रबद्ध होने के कारण कभी शब्दों के वृक्षपर गिरता है कभी स्पर्शों के कभी रूपों के कभी रसों के कभी गंधों के वृक्षोंपर गिरता है तब वहां उसको रागद्वेषरूप कांटे चुभते हैं तब कुछ क्लेशित होता है। अरु उनकी सुखरूप छाया फलको पाय किंचित् हर्षित भी होता है, अरु वहां से जब दुःखितहोय

चलताहै तब कभी कामरूप करोंजुयेपर कभी क्रोधरूप कीकर पर कभी लोभरूप करीलपर कभी मोहरूप कटहरीपर, इस प्रकार सुख रूप फल छाया से रहित केवल कंटकमय महा दुःखादायी वृक्षोंपर गिरताहै तब अति पीड़ाको पाय पुकारके रोवता है हा दैव अब क्या करैं किधर जावैं इस दुःख से कैसे बचैं। इत्यादि पुकारता है। हे सौम्य उक्त कंटकों जन्य पीड़ाके आगे इन जीवों को न तो इसलोक का सुख है न परलोक का सुख है (अरु जो यह सुख मानते हैं सो इनका अविवेक है क्योंकि नाशवान् वस्तु बिषे वास्तव करके सुख कदापि होवे नहीं) जहां जाता है तहांही खेदको पावता है। हे सौम्य पुनः वो बालक उक्त अरण्य में जब आगे को बढ़ता है तब नेत्रबद्ध के कारण अहंकाररूप पाषाणोंपर गिरताहै उनकी चोटों से मस्तक फूटताहै तब और भी पुकारके रोवताहै, फेर आगेको चलता है तब कभी तृष्णारूप गर्तमें गिरताहै तब वहां उसको धन पुत्र स्त्री क्षेत्र आदिकों की अनेक चिन्तारूप विषधर जीव काटते हैं तब तिस करके उसके अन्तर बड़ी जलन अरु पीड़ा उत्पन्न होती है बड़ाही दुःख पावताहै। अरु जिनके अर्थ यह चिन्ता करता दुःखित होताहै, तिनसे जब वियोग पावताहै तब अतिक्लेशित होय उच्चस्वरसे रोवता हाय हाय करताहै, उस अरण्यमें नेत्र बद्धहोनेके कारण किसीको देखताहै नहीं जिधर जाताहै तिधर क्लेशही पावताहै॥हेसौम्य ऐसे क्लेशके समय काकतालीय न्यायवत् अकस्मात् ईश्वर कृपा से वा उसके महान् पुण्यों की सहायतासे कोई एक परमदयालु ब्रह्मवेत्ता आचार्य उस अरण्य में आय निकलता है सो आचार्य कैसा होताहै जिसके नेत्र खुले हैं सर्व बन्धनों से मुक्तहुआहै। हे सौम्य जब वो आचार्य उस बालकका दीनतामयरुदन श्रवण करता है तब उस बालकको अपने निकट बोलाय वा आप उसके पासजाय उसको धैर्य्यदेके कहताहै कि हे बालकअबतू भय मतकरे। हे सौम्य इस प्रकार

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आ
त्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् वि
ज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ३ ॥

वो आचार्य प्रथम उस बालकको धैर्यदे अपने निकट बैठाय
पश्चात् उसकी आँखों से पट्टी खोलताहै अरु उसके और बंधन
भी खोलता है तब प्रथम उस बालक को उक्त अरण्यके सर्व क्लेश
स्पष्ट भानहोते हैं तब वो उनसे दृढ वैराग्यवान्होताहै तदन-
न्तर वो आचार्य उस राजकुमार को श्रवण रूप मार्ग दिखाय क-
हताहै कि हे प्रियदर्शन अब तुम अपने मननरूप चरणोंकरके धीरे
धीरे इस मार्ग से चले जावो इसमार्ग को छोडना नहीं हे पुत्र
जब तुम आगे चलोगे तब तुमको एक निदिध्यासन रूप ग्राम
मिलेगा तहां तुम कछु काल विश्राम करना वहां से तुमको
अपने सत् चैतन्य रूप पिता राजाका ग्राम दिखाई देगा फेर
तू निदिध्यासन रूप ग्राम से आगे बढ अपने साक्षात्कार
रूप नगर को प्राप्तहो अपने पिता के सोहमस्मि भावरूप राज-
सिंहासन पर बैठ इन्द्रादि सर्व राजाओंका महाराज होय सर्व
को अपनी आज्ञा बिषे चलावना=॥ हे सौम्य वो आचार्य-
वान् पुरुष कि जिसके नेत्रादिकों के बन्धन आचार्य ने सम्यक्
प्रकार खोल श्रवण रूप मार्ग पर चलाय निदिध्यासन रूप
ग्राममें ठहराय पश्चात् उसको उसके सत्चैतन्य रूप पिता
के पास पहुंचाय निर्भय किया है । तिसका जिन कर्म्मों ने
शरीररचके अरता भोगदेना है उन कर्म्मों को अपना फल
देके समाप्तहोने पर्यन्त जीवन्मुक्तहुआ जीवता है, प्रारब्ध के
क्षीणहुये शरीरसे उत्क्रमण न होके "तत्रैवसमवलीयन्ते" जहां
हैं तहांही अपने बिम्बरूप सत् आत्मामें अभेद एक विदेह मुक्त
होताहै २ ॥

अथ छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके पंचदशः खंडः ॥ १५ ॥

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्य्युपासते जानासि मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह महा सूक्ष्म है सोई यह सर्वका आत्मा है अरु यह सर्व जिसका अपना आपहै सोई सत्आत्माहै, हे श्वेतकेतो सोई सत्आत्मा तू है, इस प्रकार पिताने कहा तब श्वेतकेतुने कहा हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाय के कहिये, पिताने कहा तथास्तु ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

हे सौम्य जिस महा सूक्ष्म सत् चैतन्य का यह सर्व अपना आपहै अरु जो इन सर्व का सत् आत्मा है, अरु आचार्यवान् पुरुष जिसको पाय पुनरावृत्ति से रहित सोई रूपहोते हैं, अरु अज्ञानी जिसको प्राप्तहोके भी पुनःइस संसाररूप अरण्यको प्राप्त होतेहैं, हे श्वेतकेतो सो सत्आत्मा तू है। इसप्रकार जब पिता ने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा हे भगवन् आचार्यवान्पुरुष जिस क्रम से उस सत् चैतन्यको प्राप्तहोते हैं सो मुझको पुनः भी दृष्टान्त द्वारा समझाय के कहिये, पिताने कहा कहताहौं श्रवणकर ३ ॥

इतिछान्दोग्येषष्ठप्रपाठकेचतुर्दशःखंडः१४॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य पुरुष जब ज्वरादि रोग करके तपायमान होता है तब उसकी ज्ञातिके बाँधवलोक उससे पूछते हैं तू हमको जानता है तू हमको जानता है (वो कहताहै मैं जानताहौं सो तब

अथ यदास्य वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राण स्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति २ ॥

तक कहता है) यावत् उसकी वाणी मनबिषे प्राप्त होती नहीं, मन प्राण बिषे प्राप्त होता नहीं, प्राण तेजबिषे प्राप्तहोता नहीं, तेज सत्रूप पर देवता प्राप्त होता नहीं तावत् वो जानताहै १ ॥

भावार्थ खंड पंचदशम मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य जब इस पुरुष का मरणकाल निकट आवता है तब उसके शरीर बिषे ज्वरादि सर्व रोग एकत्र होय उसको तपावते (व्याकुल करते) हैं तब उसकी ज्ञाति के वा पिता पुत्रादि परिवार उसके निकट आय पूछते हैं कि हे भाई तू हमको जानताहै हमतेरे कौन हैं, तब वो कहता है हां मैं तुमको जानताहौं तुम हमारे अमुक २ हौ । हे सौम्य इस प्रकार वो मरणशील मुमूर्षुपुरुष कब कहताहै कि यावत् उसकी वागादि इन्द्रियां मन बिषे नहीं प्राप्तहोतीं, अरु मन प्राणबिषे नहीं प्राप्तहोता, अरु प्राण तेज बिषे नहीं प्राप्त होता अरु तेज सत्पर देवता बिषे नहीं प्राप्त होता तावत् जानता है १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, जब उस मुमर्षु पुरुषकी वाग् मनबिषे प्राप्तहोती है मन प्राणबिषे प्राण तेजबिषे तेज परदेवताबिषे प्राप्तहोताहै तब जानता नहीं २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य, ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जो संसारी जीवों का मरण क्रम है सोई विद्वानों का भी सत्सम्पत्ति क्रम है, तब अविद्वान् संसारियों से विद्वान् बिषे विशेषता कुछ न हुई ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य मरणसमय विद्वान् अविद्वान् दोनोंकी सत् पर्यन्त गति समान है, परन्तु जो अज्ञानी संसारी पुरुषहैं सो मरणकाल समय सत् को प्राप्तहुए भी वहां से उठके अपने पूर्व के संस्कार अभ्यास

वश व्याघ्र सिंह वृकादि भाव वा देव मनुष्यादि भाव वा कीट पतंगादि भावको प्राप्त होते हैं। अरु विद्वान् तो वेदवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ शास्त्राचार्य्य के उपदेशजन्यज्ञानरूप दीपक करके प्रकाशित सत् चैतन्य ब्रह्म आत्मा बिषे प्रवेश पाय पुनः वहां से फिरते नहीं। इसप्रकारका सत्सम्पत्तिक्रमहै ॥:–हे सौम्य जैसे मरण समय अज्ञानी की वागादि इन्द्रियां मनबिषे जाती हैं, तैसेही ज्ञानीकी भी वागादि इन्द्रियां मनबिषे जाती हैं। अरु जैसे अज्ञानियों का मन प्राणबिषे जाताहै, तैसेही ज्ञानी का भी मन प्राणबिषे जाताहै। अरु जैसे मरणके समय अज्ञानी का प्राण तेजबिषे जाताहै, तैसेही ज्ञानीका भी प्राण तेजबिषे जाताहै। अरु जैसे अज्ञानी का तेज सत्बिषे जाताहै, तैसेही ज्ञानीका भी तेज सत्बिषे जाताहै॥ हे सौम्य इसप्रकार मरण समय अज्ञानी ज्ञानीकी गति सत् पर्य्यन्त समान है। परन्तु हे सौम्य ज्ञानी अज्ञानी का यह भेदहै जो ज्ञानी पुरुष ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य से उपदेशपाय सत् असत्को विचारअसत्यकोत्याग सत्याभिसन्धीहुआ यावत् प्रारब्ध तावत् जीवताहै पश्चात् देहत्यागान्तर वो सत्को प्राप्तहोताहै सो ज्ञानी सत्बिषे गयाहुआ फेरके आवता नहीं॥ अरु यह अज्ञानी पुरुष आचार्य के उपदेश अरु सत्यासत्य के विचारसे रहितहै, अतएव वो असत् काम कर्म्मों के संस्कार अपने साथले सत्बिषे जाताहै सो उसके असत् काम कर्मोंके संस्कारही सत्बिषे प्राप्तहुएको भी खींच ले आवते हैं। अरु इस अज्ञानी पुरुषोंके रज्जुवत् कंठका बन्धनहोय पशुवत् लोक परलोक बिषे भ्रमावे है। हे सौम्य यह अज्ञानी पुरुष व्याघ्र सिंहादि जैसे शरीरोंके अहंकार अभ्यासको अपने साथ ले जाते हैं सो अहंकार अभ्यासरूप उपाधिही उनको सत् से फेर ले आय अपने अनुसारही पुनः व्याघ्र सिंहादि वा देव मनुष्यादि वा कीट पतंगादि शरीराभिमान साथ जोड उन शरीरों के अनुसार क्रिया करावे हैं॥ हे सौम्य जैसे दो डली लवणकी तिनमें एक घृतसाथ मिली

चिकनी होवे अरु दूसरी रूखी होवे, उन दोनों डलियों को जल बिषे डालिये तहां जो घृतसाथ चिकनी हुई है सो तो ज्योंकीत्यों निकस आवती है, अरु जो रूखी होती है सो जलबिषे गयी जल रूपहोती है। हे सौम्य सो लवणकी दोनों डली जलका समान कार्य्य हैं परन्तु जो घृतादि चिकनाई साथ मिलके चिकनी हुई है सो अपने कारण जल बिषे गईहुई भी ज्योंकी त्यों निकल आवती है क्योंकि वो चिकनाई उसको कारण साथ एक होने देती नहीं। अरु जो लवणकी डली रूखी होती है सो चिकनाई रूप उपाधिके धर्म से रहित हुई जल बिषे गई जलरूपही होती है॥ हे सौम्य तैसेही यह ज्ञानी अज्ञानी सर्व जीव सत् चैतन्य का आभासरूप समान कार्य्य हैं, परन्तु जो आभास से बुद्धिरूप उपाधिके धर्म्म काम कर्म्मादि रूप चिकनाई को अपने बिषेले अपने सत्रूप कारण बिषे जाते भी हैं, तथापि वो उक्त चिकनाई करके युक्त होनेसे अपने कारण बिषे गयेहुए भी फेर निकस आवते हैं। अरु जो पुरुष आचार्य्यसे उपदेश पाय विचार रूप अग्निकरके नाना कामनारूप चिकनाई को अशेष अभाव करके अपने कारण सत् बिषे जाते हैं सो पुरुष एकबार सत् बिषे गये हुए फेरकेआवते नहीं। हे सौम्य इसप्रकार सत्सम्पत्तिका क्रम है॥ हेसौम्य यहां जो श्रुतिने कहाहै कि "अथनजानाति" सत् चैतन्य को प्राप्तहोके जानता नहीं, तिस करके सत् चैतन्य देव को ज्ञानरूप क्रियासे रहित केवल चिन्मात्र ज्ञानस्वरूपही लखाया है। उक्त श्रुतिके श्रवण से सत् बिषे जडत्वकी भ्रान्ति करनी नहीं क्योंकि उक्त भ्रांतिका अविचारित संभव होता है, जो यह जीव सत्को प्राप्तहोके भी कुछ जानता नहीं ताते प्रतीत होता है जो सत् जडहै। परन्तु हे सौम्य वास्तव करके सत् चैतन्यमें ज्ञानरूप क्रियाके कारण जे मन बुद्धि आदिक तिनका अभाव है ताते सुषुप्ति आदि उक्त तीनों स्थानों बिषे उक्त करणोंके अभाव हुए शुद्ध निर्विशेष सत् चैतन्य परदेवको ज्ञानरूप क्रियाके कर्तृत्व

का, अरु ज्ञानके विषयत्वपनेका असंभवहै। एतदर्थ शुद्ध अद्वितीय सत् चैतन्य केवल ज्ञानरूप अस्तिमात्र तत्त्वहै। इसप्रकार विचार निश्चय अभ्यास अनुभव करो –:॥ शंका ॥ हे भगवन् कोई एक पुरुष श्रुति प्रमाण ऐसाभी कहते हैं जो "सतश्चैकाच हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" मस्तककी सुषुम्णा नाम्नी नाडीद्वारा जो शरीरसे उत्क्रमणकरते (जाते वा निकलते) हैं सो सत्को प्राप्तहोते हैं, अरु आप मरण समय सर्व जीवोंको सत्की प्राप्ति समान कहतेहौ, अतएव अब यहां जैसा होवे तैसा कहिये ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य वो पुरुष असत्य कहते हैं। हे सौम्य उक्त नाडी के मार्ग से योगी प्रणव के उपासक समाधि के करनेवाले शरीर त्याग सत्यलोक को प्राप्तहोते हैं वहां ब्रह्माके मुखसे ज्ञानोपदेश पाय मोक्ष होते हैं। उनका जो सत्यलोक रूप फलहै सो देशकाल के निमित्त वालाहै उन योगियोंने अपने अर्थ देश कालके निमित्त से प्राप्त होनेवाला सत्यलोकरूप फल अभिसन्धान किया है, अतएव वो अपने उक्त नाडी रूप मार्गसे जानेवाले हैं, जो वस्तु देशकालके व्यवधानवाली होती हैं सो असत्होती हैं तिनका अनुसन्धान करनेवाले असत्याभिसन्ध होते हैं। अरु जो सत्आत्मानुसन्ध ब्रह्म आत्माके अभेददर्शी हैं तिनको जो सुस्वरूपकी प्राप्ति रूप फल सो देशकालके व्यवधानसे रहितहै ताते ज्ञानवान् का शरीर से उत्क्रमण बने नहीं। क्योंकि उत्क्रमणका निमित्त जो अविद्या काम कर्म सो उसने ज्ञानाग्नि करके निःशेष भस्म किया है, ताते उसको शरीरसे उत्क्रमण होने की अप्राप्तिहै। वो ज्ञानवान् गमनकी सर्व उपाधि के अभाव से जहां है तहां सत्रूपही होताहै। वो अविद्या काम कर्मादि सर्वको ज्ञानाग्निसे भस्मकरनेवाला विद्वान् नदी समुद्रवत् सत्रूप समुद्रको प्राप्तहो सत्रूपही होताहै। तथाच। "यथा नद्यःस्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्त परात्परपुरुषमुपैति दिव्यम्" २॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एवमा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यह जिसको महासूक्ष्म कहाहै सोई यह सर्वका आत्मा है अरु यह सर्व जिसका अपना आपहै सोई सत्यहै सो आत्मा है हे श्वेतकेतो सोई सत् सर्वात्मा तू है, इसप्रकार पिताने कहा तब श्वेतकेतु ने कहा हे भगवन् पुनः भी मुझको समझाय के कहिये, पिताने कहा तथास्तु ॥ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार मरण के समय महासूक्ष्म सत् चैतन्य पर्यन्त सर्व जीवोंकी गति समानहै, परन्तु जिस सत्बिषे गया हुआ अज्ञानी ज्योंका त्यों निकल आवताहै अरु ज्ञानीजिसबिषे गयाहुआ पुनरावृत्तिसे रहित सत् चैतन्य विज्ञानघनही होता है, सोई अणुवत् महासूक्ष्म सर्वका सत् आत्माहै हे श्वेतकेतु सोई सत् सर्वात्मा तू है। इसप्रकार जब पितानेकहा तब श्वेतकेतुने कहा। हे भगवन् सो महासूक्ष्म सत् आत्मा मैं हीं हौं, अस्तु। परंतु हे भगवन् मुझको पुनः एक संशयहुआहै कि उस महासूक्ष्म सत् चैतन्यबिषे यह ज्ञानी अज्ञानी सर्वजीव समानप्राप्त होते हैं तहां ज्ञानी पुरुष तो उस सत्बिषे गयाहुआ पुनरावृत्तिसे रहित सत् रूपही होताहै। अरु अज्ञानी पुरुष उसको प्राप्तहोकेभी पुनःवहां से निकस इससंसारके भ्रमबिषे भ्रमते हैं तिसके कारणको जानना मैं इच्छताहौं,अतएव मेरे इससंशयकीनिवृत्ति के अर्थ पुनः भी आप दृष्टान्तद्वारा मुझको समझायके कहिये। इसप्रकार जब श्वेतकेतुने प्रश्नकिया तब उद्दालकने कहा तथास्तु, हे सौम्य तेरे संशयकी निवृत्तिके अर्थ पुनःकहताहौं सावधानहोके श्रवणकर३

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके पंचदशःखंडः ॥ १५ ॥

अथ छान्दोग्ये षष्ठ प्रपाठके षोडशःखंडः ॥ १६ ॥

पुरुषꣳ सौम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्त्ता भवति तत एवानृतमात्मानम् कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्द्धाय परशुं तप्तं प्रति गृह्णाति सदाह्यतेऽथ हन्यन्ते ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे सौम्य, चौर्य्यकर्म के कर्त्ता पुरुषको 'राजकीय पुरुष (सिपाही), हाथ पकडके लेजाता है (तब वो कहताहै मुझकोक्यों लेजातेहो, तब वो कहतेहैं) तैंने इसकी चोरी कियाहै, वो कहता है मैंने चोरी नहीं किया, तब उसकी परीक्षा के अर्थ परशु (लोहमयपिंड) को तपावते हैं, यदि वो उस चौर्य्यकर्मका कर्त्ताहोताहै तब वो अपने आत्माको असत् करताहै, तब वो अनृताभिसन्ध चोर पुरुष अनृतकरके अपने आत्माको अन्तर्द्धाय उस तप्त लोह पिण्डको ग्रहण करता है तब वो जलताहै तब राज पुरुष उसको मारते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ खंडषोडशवें मन्त्र पहिले का ॥

हे सौम्य, किसी एक धनवान् पुरुषके यहां तस्करने चोरी किया परन्तु उस धनी पुरुषने उसको चोरी करते देखानहीं तथापि चोरके भ्रमसे उस धनीने वा राजकीय पुरुष (सिपाही) ने उन दोनों पुरुषों के हाथ बाँध राजाके पास लेचलने को उद्यतहो उनसे कहने लगे कि जो तुमने इसका धन चोरायाहै सो देदेवो तब उन दोनोंने कहा हे भाई हमने इसका कुछ भी चोराया नहीं। तुम इसके कहनेसे हमको बन्धन में क्यों करते हो, तब पुनः राजपुरुषोंने कहा कि तुमने चोरी कियाहै हे

सौम्य उन दोनों पुरुषों के मध्य (कि जिनको चोरके भ्रमसे पकरलिया) एक चोर था अरु दूसरा अचोर (सत्य) था परन्तु चोरके भ्रमसे पकड़ दोनोंको लिये, तब पुनः राजकीय पुरुषने कहा कि यदि तुमने चोरी नहीं किया तथापि हम तुमको तुम्हारी परीक्षाके अर्थ राजाके पास लेजावेंगे जो तुम उस परीक्षा में सत्य ठहरोगे तो बन्धनसे मुक्त होवोगे अरु जो चोर ठहरोगे तो ताड़ना अरु दंड पावोगे। ऐसा कह राजकीय पुरुष उनदोनोंको राजाके पास लेगये अरु उनके साथ वो धनी पुरुष भी गया, उन राजपुरुषों ने उन सर्व को राजा के समक्ष खड़े करदिये तब उस धनी पुरुषने कि जिसका धन चोरोंने हरण किया था राजा से विनय किया कि हे राजन् इन पुरुषों ने हमाराधन हरणकियाहै परन्तु पूछने से हमको यह बतावते नहीं अतएव आप इनसों पूछिये। तब राजाने उन दोनोंमें से एकको प्रथम पूछा कि तूने इसका धन चोराया होय तो हमारे समक्ष सत्य सत्य कहदे, तब उसने कहा हे राजन् मैंने इसका कुछ भी चोराया नहीं अरु हम जानते भी नहीं जो चोरी क्या होतीहै, तब उससे राजा ने पुनः कहा कि अब तू सत्य क्यों नहीं कहता जो सत्य सत्य न कहेगा तो तुझको दंडहोगा, ताते जैसा होय तैसा कहदे, तब पुनः भी उसने वोही उत्तर दिया परन्तु था वो चोर राजा के समक्ष अपने चौर्य्यकर्म को छिपावता था। तब राजाने अपने भृत्यों को आज्ञा किया कि हे भृत्यो यह चोर है इसप्रकार कहने का इनका स्वभाव ही होताहै अतएव अब इसके हाथपर रखने के अर्थ एक लोहमय पिंडको तपावो जब वो लोह पिंड इस के हाथपर रक्खा जावेगा तब यह चोर वा सत्य जैसा होगा तैसा आपही प्रकट हो आवेगा, इस प्रकार जब राजाने कहा तब राजाकी आज्ञासे भृत्य लोग लोह पिंड तपावने लगे अरु पुनः भी उन राजपुरुषों ने उस चोर से कहा कि अब भी तू अपने किये चौर्य्य कर्म्म को राजा के समक्ष कहदे न तु राजा तुझको

अथ यदि तस्याकर्त्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्द्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दाह्यतेऽथ मुच्यते २॥

दंड देवेगा, तब उस चौर्य्यकर्म के कर्त्ता चोर पुरुष ने कहा कि जो तुमको राजा की आज्ञा होय सोई करो हमने तो चोरी त्रिकाल में भी किया नहीं। हे सौम्य इस प्रकार कहके वो चोर पुरुष अपने अन्तर विचारने लगा कि जो यह सर्व मुझको धमकावते हैं सो इसलिये धमकावते हैं जो यह किसी प्रकार कहदेवे सो इनका स्वभावही होता है, अरु यह जो मेरे अर्थ लोह पिण्ड तपावते हैं सो मेरे हाथपर धरेंगे नहीं क्योंकि कोई कोई राजा दयाल भी होते हैं, ऐसा विचार वो चोर पुरुष अपने मनमें कहता हुआ। हे सौम्य जो पुरुष सत्य होता है सो अपने मनमें उक्त प्रकार का विचार कर अनृताभिसन्ध होता नहीं वो अपने सत्यके आश्रय निर्भय रहता है। हे सौम्य जब उस चोर पुरुषने चोरीको स्वीकार (कबूल) न किया तब उस राजा ने लोहका पिण्ड अग्नि बिषे सम्यक्प्रकार तपवाय उस चोरके हाथ में तृणरखवाय सहित मन्त्रके वो गोला रखवाया तब वो अग्नि करके तप्त लोह पिण्ड उस अनृताभिसन्ध चोर पुरुष के हाथ को जलाय आप पृथिवी पर गिरपड़ा, तब उस राजा ने चोर के हाथ जले देख उसको चोर निश्चयकर और भी ताड़ना करवाय कारागार में डाल उसका गृहधनादि सर्व लूटलिया, अरु अन्य लौकिक पुरुषों ने भी उस अनृताभिसन्ध चोर पुरुष के निन्दित कर्मको देख बहुत से धिक्कारी के वचन कहे॥ १॥

अक्षरार्थ॥

हे सौम्य यदि तिस चौर्य्यकर्म का अकर्त्ता होताहै तो तिस करके ही अपने आत्माको सत्य करता है सो सत्याभिसन्ध

हुआ सत्य करके अपने आत्मा में अन्तर्द्धाय तप्त लोह पिण्ड को ग्रहण करता है तब सो जलता नहीं तब उसको छोड़ देते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

हे सौम्य जो सत्य पुरुष है, कि जिसको चोर के भ्रम से पकड़ लियाहै, अरु जो चौर्य कर्म्मका कर्त्ता होता नहीं तिसको भी वो राजा चोरवत् धमकाय के पूछता है कि जो तैंने इस धनिका धन चोराया होय तो हमारे समक्ष सत्य सत्य कहदे नतु तेरे हाथमें भी लोहपिंड तपायके रक्खा जावेगा। तब वो सत्यपुरुष कहता है कि मैंने तो चोरी किया नहीं अरु मैं जानता भी नहीं जो चोरी किसको कहते हैं। इसप्रकार जब वो सत्यपुरुष कहता है तब उसकी परीक्षाके अर्थ वो राजा लोहमय पिंडको अग्निविषे सम्यक् प्रकार तपायके उसके हाथपर रखवावता है। हे सौम्य वो राजा जब उस सत्यपुरुष के हाथपर रखनेके अर्थ लोह पिंडको तपवावताहै तब वो सत्याभिसंध (सत्यको अनुसंधान करनेवाला) पुरुष अपने चित्तविषे विचारता है कि यह राजा एक तो क्या किन्तु शतलोह पिंड तपाय के भी मेरे हाथमें धरेगा तो भी यह अग्निदेव मुझको जलावने का नहीं क्योंकि मैं सत्यहौं मैंने चोरी किया नहीं। इसप्रकार वो सत्यपुरुष सत्याभिसन्ध हुआ अपने आपको सत्य करता है, अरु वो राजा उसके हाथपर भी चोरवत् तप्तलोह पिंड धरवावता है, तब वो सत्यधर्म्मा अग्निदेव उस सत्य पुरुषको जलावतानहीं, अर्थात् वो सत्याभिसन्ध पुरुष तप्तलोह पिंडकरकेजलता नहीं, तब उस सत्य पुरुषको राजा छोड़देता है। अरु अन्य पुरुष भी उस सत्याभिसन्ध पुरुषकी प्रशंसा करते हैं। हे सौम्य उसतप्त लोह पिंडका उन सत्याभिसन्ध अरु असत्याभिसन्ध दोनों पुरुषों के हस्ततल (हथेली) को समान स्पर्श होते सन्तें भी उस चौर्य कर्म के कर्त्ता असत्याभिसन्ध पुरुषका हाथ जलता है

स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्यविजज्ञाविति विजज्ञाविति ३ ॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके षोडशो खंडः १६ ॥

इतिछान्दोग्योपनिषदिषष्ठप्रपाठकः ६ ॥

नतु सत्याभिसन्ध का ,अर्थात् उस सत्याभिसन्ध पुरुषका हाथ अग्निदेव जलावता नहीं २ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जैसे नहीं जलता, सोई महासूक्ष्म सर्वका आत्मा जिसका यह सर्व अपना आप है सोई सत् है सोई सत् आत्मा हे श्वेतकेतु तू है, इसप्रकार जब पिताने उपदेश किया तब पुत्र श्वेतकेतु ने कहा सो स्पष्ट मैंने जाना है, द्विवचन अध्याय समाप्त्यर्थ है ॥ ३ ॥ इति षोडशो खंडः ॥ १६ ॥

इति छान्दोग्योपनिषदिषष्ठप्रपाठकंसमाप्तम् ६ ॥

भावार्थ मंत्र तीसरे का ॥

हे सौम्य सो जैसे सत्याभिसन्ध पुरुष तप्तलोहपिंडके ग्रहण करने करके जलता नहीं अरु तिससे इतर असत्याभिसन्ध पुरुष तप्तलोहपिंडके ग्रहण रूप क्रिया करके जलता है। तैसेही सत् ब्रह्मको सत्याभिसन्ध करनेवाला अरु तिससे इतर असत्य संसाराभिसन्ध करनेवाला यह दोनों पुरुष अपने शरीर पात (मरणकाल) समय सत् चैतन्यको समान प्राप्त होते हैं, परन्तु जो अपने आप आत्मा को यथार्थ अनुभव करनेवाला सत्याभिसन्ध है सो सत् चैतन्य ब्रह्मको प्राप्त होके पुनः व्याघ्रादि भाव वा देव मनुष्यादि भावको प्राप्त होता नहीं, वो सत् विषे गयाहुआ पुनरावृत्तिसे रहित सत्‌ही होता है, अरु जो यथार्थ आत्मानुभव से रहित अविद्वान् असत्य देहादि अनात्म विकाराभिसन्ध पु-

रुषहैं सो सत् बिषे गयेहुए भी पुनःसत्से निकल व्याघ्रादिभाव वा देव मनुष्यादि भाव "यथा कर्म्म यथाश्रुतं" कोही प्राप्त होते हैं ॥ हे सौम्य जो सर्व बन्धनोंसे मुक्त आचार्यवान् सत्याभिसन्ध, समस्त जगत्का मूल (कारण,अधिष्ठान) आयतन (आश्रय) अरु प्रतिष्ठा (लयस्थान) है अरु जो सर्व प्रजाका आत्मा अपना आप है अरु सर्व प्रजा जिसका आत्मभूत अपना आप है अरु जो यह अमृत अभय है अरु जो अद्वितीय शिव (आनन्दघन) है सोई सत् है, हे श्वेतकेतो सोई सत् आत्मा है सोई सत्आत्मा तूहै । इस प्रकार उद्दालक पिताने अपने पुत्र श्वेतकेतु को दृष्टान्त युक्तिपूर्वक नवबार सत् आत्माका उपदेशकिया तब वो श्वेतकेतु सर्व संशय विपर्य्यय से रहित अपने आपको सत्चैतन्य यथार्थ अनुभवकर कहता हुआ कि हे भगवन् अब मैंने आपकी कृपासे अपने आप सत्य स्वरूपको ज्योंका त्यों स्पष्ट जानाहै सो सर्वात्मा सत् मैंहीहौं ॥ ३ ॥

इति छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठकेषोडशो खंडः ॥ १६ ॥

शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् यह आपने दृष्टान्त कहा है अब इसका दार्ष्टान्तभूत सिद्धान्त कृपाकरके कहिये जो यहां चोर कौन है अरु सत्यपुरुष कौन है वस्तु क्या है राजाकौनहै,इत्यादि सर्व समझाय के कहिये ॥ गुरुरुवाच ॥ हे सौम्य हे प्रियदर्शन अब उक्त दृष्टान्तका दार्ष्टान्तभूत सिद्धान्त को भी सावधानहोके श्रवण करो । हे शिष्य जो पुरुष अन्तर से नानाप्रकार की कामनाओंको लेरहेहैं अरु बाहर लोकबिषे अपनेकोविरक्त कहावतेहैं। अथवा जो पुरुष संस्कृत वा भाषाके दो एक ग्रन्थदेखके लोकबिषे वेदान्ती ज्ञानी अपनेको विख्यात करतेहैं अरु यथार्थ आत्मानुभव से शून्य हैं, अरु अन्तर बिषे नानाप्रकारकी वासनाओं को लेरहे हैं सो पुरुष उस सत्राजाके दरबारके चोरहैं ऐसाजानो । अथवा जो पुरुष अपने अन्तःकरण बिषे त्रिगुणात्मक विषयोंकी वासना अरु कर्तृत्व भोक्तृत्वभाव छिपायके लेरहे हैं अरु बाह्य लोकदृष्टि

मात्र अपनी विरक्तता को प्रकटकर साधु कहावते हैं तिन पुरुषों को तुम चोर जानने। अथवा जो पुरुष अपने अन्तर पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा इन तीनों एषणाको छिपायके लेरहे हैं अरु बाह्य संन्यासियों का स्वांग धारणकिये फिरते हैं कहते कुछ और हैं करते कुछ और हैं अन्तर में कुछ और है, ऐसे पुरुषों को भी तुमने उस सत् राजाके दरबारके चोर जानने। हे सौम्य ऐसे चोर पुरुष जब सत् राजाके दरबार में पकड़ेजाते हैं तब वो सत् राजा इनसे पूछताहै जो तुम वहांसे छिपायके कुछ लेआये हौ, वा सर्वको त्यागके खाली आये हौ, अब यहां सत्य सत्य कहदेवो, तब वो पुरुष ऐसा कहते हैं जो हम वहांसे छिपाय के कुछ भी नहीं लेआये खाली आये हैं। हे सौम्य इसप्रकार ये चोर पुरुष जब सत् राजाके दरबार में असत्य बोलते हैं तब उन पुरुषों की मनोवृत्ति जो अन्तके समय अनेक काम कर्म विषय वासना के संस्कारों को अपने बिषे लेके प्राण बिषे लयहुई है सो वहां सत् राजाके दरबार बिषे प्रकटहोय के कहती है जो हे राजन् यह पुरुष असत्य कहताहै तातें जब आप इसको दंड दीजियेगा तब इसका सत्य असत्य आपही प्रकट हो आवेगा दंडदिये विना ये सत्य सत्य कहने का नहीं। हे सौम्य इसप्रकार जब उक्त मनोवृत्ति सत् राजाके दरबार में प्रकट होके कहती है तब तिसको श्रवण कर वो सत् राजा भी तीनों गुणों की साम्यता मायारूपा लोह पिंड आध्यात्मिकादि त्रिविधतापरूप अग्नि बिषे तपायके इन चोर पुरुषों के हाथपर रखवावताहै। हे सौम्य जिस काल में वो मायारूपा तप्त लोह पिंड इन पुरुषों के हाथपर धरागया तिसही काल अध्यात्मिकादि तापोंने इनको जलाया तब तिस ही माया के कार्य्य जे पञ्चविषयात्मक नाना नामरूप तिनकी जो कामना कि जिसको यहां से चोरायके लेगये हैं सोई वहां स्वप्नवत् स्फुरण हो प्रकट हो आवती हैं, तब वहां भोगों की वासनात्मक वृत्ति सत् राजा की अज्ञानुसार उन पुरुषों को अन्य

देहकी प्राप्तिरूप जगत् में फेंक गर्भवास रूप कारागार में डाल देती है, तब जिस अग्नि बिषे तपाहुआ मायारूपी लोह पिण्ड सत् राजा के दरबारमें इन्हों ने उठाया है सोई अग्नि इस असत्यवादी चोरों को अद्यावधि रात्रि दिन जलावताही रहता है, अरु उन चोर जीवों की संसार बिषे निंदाही होती रहती है जो देखो इसने पूर्वजन्म बिषे कोई बड़े भारी पापकिये हैं सो अब तिन पापोंका फल भोगता है अरु यह इसही योग्य है, इत्यादि प्रकार लोक बिषे परस्परमें एक दूसरे की निन्दा करते हैं। हे सौम्य उस सत् राजा का बड़ा भय अरु प्रताप शासन है, देखो सत्के दरबार बिषे असत्य बोलने के अर्थात् सत्के त्यागने के अपराध से इनजीवों को त्रिविध तापरूप अग्नि बिषे जलतेहुए कल्प कल्पान्तर व्यतीत होगये आज पर्य्यन्त भी इनको शान्ति की प्राप्तिहुई नहीं ॥ हे सौम्य माया अरु तिसका कार्य्य आकाशादि पञ्च महाभूत सूर्य्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन्द्र यम कुबेर देव मनुष्य पशु पक्षी पिपीलिकादि जीवों में से जो कोई किसी प्रकार की कामना को अपने अन्तर चोराय के सत् राजा के दरबार बिषे जाते हैं सो सर्व उक्त प्रकार वहां से फेंके जाते हैं। अतएव ब्रह्मादि सर्व देवता उस सत् राजा की अज्ञानुसार अपने सत्य धर्म्म पर खड़ेहुए हैं अरु उसही के भय से अपने अपने कार्य्य में प्रवृत्त होरहे हैं। तथाच। " भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य्यः " " भिषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदयति सूर्य्यः " " एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि " इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से ॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन् अब उन चोरोंको यहां कैसे जानिये जो यह सत्राजा के दरबार के चोर हैं ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य यह जो तुमको स्थावर जंगम जीव दृष्ट आवते हैं सो सर्वही उस सत् राजा के दरबार के चोरहैं, क्योंकि यह सर्व सत् राजाके दरबारसे निकासे हुए इस जाग्रतरूप जगत् बिषे आये हैं, हे सौम्य अब इनको

ऐसे जानो जो पुरुष जिस कामना को अपने बिषे लेके उसही के कर्म में प्रवृत्त रहते हैं सो पुरुष उसही कामनाके संस्कार पूर्व शरीर में अपने बिषे लेके सत् राजाके दरबार बिषे गये हैं सोई कामना इनको सत् राजाके दरबार में इनको चोर ठहराय वहां से निकाल इस जाग्रतरूप जगत् में ले आय त्रिविध तापरूप अग्नि करके जलावती ही रहती है। हे सौम्य जैसे यह जीव जिन काम कर्म्मोंके संस्कार अपने बिषे लेके सुषुप्ति बिषे जाते हैं सो जागके पुनः उसही काम कर्म्मों को करते हैं। तैसेही इस त्रिगुणात्मक जगत् बिषे जो जीव जिन काम कर्म्मों के संस्कार अपने बिषे लेके मरण समय उक्त क्रमसे सत् बिषे जाते हैं सो अपने उनहीं संस्कारोंको लेके पुनः इस जाग्रत जगत् बिषे आय उनहीं के अनुसार कर्म्मों को करते हैं। अतएव हे सौम्य अपने पूर्व संस्कारों करके स्वभावही से जिन काम कर्मोंबिषे लगेहुये हैं सो पुरुष पूर्व जन्म बिषे उनही काम कर्म्मों के संस्कारों को चोरावनेवाले चोरहैं, सो चाहे सात्विकी के होवें चाहे राजसी के होवें चाहे तामसी के होवें इस विषय में नियम नहीं। ताते यह सर्वही जीव चोरहै, इसही करके यह त्रिविध ताप रूप अग्नि करके जलतेही रहतेहैं अरु लोक लोकान्तर में इन की निरादरीही होती है किसी भी स्थान बिषे इनको शान्ति की प्राप्ति होती नहीं। जैसे वायु तृण को अधो ऊर्ध्व सर्व्वत्र भ्रमावता है कहीं भी ठहरने देता नहीं, तैसेही नाना कामना रूप वायु इन जीवरूप तृणोंको स्वर्ग नरकादि अधो ऊर्ध्व को भ्रमावताही रहताहै कहींभी विश्राम लेने देता नहीं॥ हे सौम्य इस ब्रह्मांडबिषे सत्यपुरुष तो एक ब्रह्मवेत्ताहै अन्य नहीं क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से वो ब्रह्म-वेत्ता सत् चैतन्य ब्रह्मस्वरूप होताहै, सो पुरुष जहां जाताहै सत्कार, प्रतिष्ठा, पूजा, आदर को पावता है "ब्रह्मलोकेमहीयते" इत्यादि प्रमाण से, क्योंकि वो मोक्षादि सर्व कामना से

रहित निष्काम हुआहै, ऐसे पुरुष सत्‌बिषे गयेहुए फेरके आवते नहीं । वो नदी समुद्रवत् सत् साथ मिलके सत्‌रूपही होते हैं॥ शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् वो ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य भी अन्य पुरुषों वत् इस संसारबिषेही पायेजातेहैं ताते वो भी पूर्व्वजन्म के चोर होवेंगे आप उनको सत् कैसे कहतेहो ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य यह जो ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य तुमको दृष्ट आवते हैं कि जिनकी नेष्ठा व्यवधान से रहित सर्वदा अपने सत्‌स्वरूप बिषेही रहती है अरु वो जो बोलते हैं सत्यही बोलतेहैं, ऐसे जे सत्‌निष्ठ सत्य-वादी आत्मवेत्ता पुरुष हैं सो पूर्वजन्म बिषे अपने आप सत् आ-त्मस्वरूप की प्राप्तिकी कामना से आत्मकामा हुए विवेकादि साधन सम्पन्न होय आत्माका श्रवण मनन करते हैं अरु तहां उनको आत्म साक्षात्कार हुए विनाही उनका देहपात होताहै तब वो आत्म प्राप्तिकी कामनाके संस्कार अपने बिषे लेके उक्त क्रमसे सत् राजा के दरबार बिषे जाते हैं सो उसही कामना को लेके पुनः यहां आवते हैं, अरु उसही कामना के आश्रय यहां श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथमिल तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का यथार्थ ज्ञानपाय सम्यक् आत्मसाक्षात्कार स्थिति पाय यहांही सत्‌चैतन्य विज्ञानघन सर्व्वात्माहोते हैं, अरु यावत् उनके देहका प्रारब्ध अपना भोगदेकेनाशनहीं होता तावत् जीवन्मुक्तहुये इस संसारबिषे पद्मपत्र वा आकाशवत् सर्व से असंगहुए विचरते हैं, अरु देह प्रारब्ध भोगके आवान्तर जो कोई मुमुक्षु पुरुष उनकी शरण आय प्राप्तहो अपने सर्व दुःखोंको स्पष्ट कहता है तब वो परमदयालु आचार्य्य उसको दुःखी देख प्रथम उसके विवेकरूप चक्षु से अज्ञानरूप पट्टीखोल पश्चात् उसको नानाप्रकार की कामना रूप अन्य बन्धनोंसे छोड़ाय आत्माके श्रवण मननरूप मार्गपर चलावते हैं, तब वो मुमुक्षु उस मार्गपर चलता हुआ प्रथम निदिध्यासनरूप ग्राममें निवासकर पश्चात् अपने आप सत्‌आत्माके साक्षात्काररूप नगरकोप्राप्तहो ,अहंब्रह्मास्मि, भाव

रूप राजसिंहासन पर बैठ आवागमनसे रहित शान्तआत्माहोताहै। हे सौम्य ऐसे जीवनमुक्त ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य देह प्रारब्ध भोगाय विदेहमुक्तहो सत्‌बिषे गये सत्‌रूपही होते हैं वो पुरुष सत्‌बिषे गये फेरके आवते नहीं॥ हे सौम्य जिसको वेदने "अणोरणीयान्" इत्यादि स्ववाक्यसे अणुसे भी अणुतर महासूक्ष्म सत्‌आत्मा कहाहै सोई परब्रह्मसत्‌रूप सर्व्वात्माकहाहै हे सौम्य सोई महासूक्ष्म सत् सर्वात्मा तुही है, तुझसे इतर तेरा सत् आत्मा अन्य कोई नहीं ॥ शिष्यउवाच॥ हे भगवन् सो सत् आत्मा मैंहीहौं अब मैंने आपकी कृपा उपदेशसे अपने आप सत् आत्मस्वरूप को यथार्थ साक्षात् ज्योंका त्यों अनुभव किया है ताते जो आपने अरु वेदने कहाहै सो सत्यं, सत्यं, सत्यं, सत्यही है॥ हे भगवन् यह जो नामरूपात्मक लीला रचीहुई है सो सर्व मेरी सत्ताकी रचीहुई है अरु यह वर्त्तती भी मेरी सत्ता के आश्रयहै, अरु परिणाममें लयभी मेरी सत्ताबिषेही होती है। हे प्रभो अब मेरी सत्ताको मैंने यथार्थ अनुभव कियाहै क्योंकि इस सर्व नामरूपात्मक लीला का अधिष्ठान प्रकाशक साक्षी आत्मा मैंही हौं मुझसे इतर इसका अधिष्ठान प्रकाशक साक्षी अन्य कोई नहीं, ताते यह सर्व नामरूपात्मक जगत् मेरे बिषे कहनेमात्र है मैंहीं अपनी इच्छासे इस प्रकार सुशोभित हुआहौं अतएव सर्व सत्तोंका सत्‌एक अद्वितीय आत्मा मैंहीहौं, सत्‌हौं, सत्‌हौं, सत्‌हौं,॥

हे भगवन् पूर्व श्वेतकेतु अपनेको क्या मानके पिताके समीप आयाथा अरु अब पिताके उपदेशसे अपने आप को क्या मानताहुआ, सो भी आप कृपाकरके कहिये॥ श्रीगुरुरुवाच॥ हे सौम्य पूर्व श्वेतकेतु अपने को यह मानके आयाथा कि मैं श्वेतकेतुहौं उद्दालकका पुत्रहौं मैं चारोवेद पढ सर्व दिशाकाजय करके आयाहौं मेरे समान विद्या बिषे और कोई नहीं अतएव अब मैं किसके आगे नमस्कार करोंगा किन्तु किसी के भी आगे नहीं।

हे सौम्य इस प्रकार असत्य अनात्म अहंकारको अपने बिषेधार नम्रभावसे रहित हुआ वो श्वेतकेतु शुष्ककाष्ठवत् अपने पिताके समक्ष आयखड़ा हुआ। तब उसके पिताने उसको नम्रभाव से रहितशुष्ककाष्ठवत् महा अहंकारी देख उसको अपने शुद्ध कुल बिषे कलंकरूपजान उसके अनात्म असत्य अहंकारको दूरकरने के अर्थ उससे प्रश्न किया कि हे पुत्र तू उस विद्याको पढ़ाहै वा नहीं कि जिस एकके श्रवणसे अश्रवण कियाभी श्रवण किया होता है अरु जिस एकके मननकरनेसे अमनन किया भी मननकिया होताहै अरु जिस एकके जाननेसे अविज्ञात भी जानाजाताहै । तब श्वेतकेतुने कहा कि हे भगवन् उस विद्याको मैं नहीं पढ़ा आप उसको कृपाकरके कहिये । तब उद्दालक ने पूर्वोक्त तेज जल अन्न इनतीनों तत्त्वों के स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणात्मक सर्व संघात को कहके कहा कि हे सौम्य इस नामरूपात्मक लीलाको प्रकट करनेकी इच्छासे जिस सत्चैतन्यने आदर्श बिषे पुरुषके अरु जलादिकोंबिषे सूर्य्यादिकोंकेप्रतिबिम्बवत्प्रवेश कियाहै, ऐसाकहपश्चात् उसश्वेतकेतुशब्दकेवाच्यसंघातविशिष्ट चैतन्यको स्थूल सूक्ष्म सर्व उपाधिसे पृथक् करकेकहा कि हेश्वेतकेतो जिस सत्चैतन्य आत्माने इसनामरूपात्मक लीलाकेप्रकट करने के अर्थ इस संघात को प्रकटकर प्रवेश कियाहै सो महा सूक्ष्म सत्चैतन्य सर्वात्मा तूही है ॥ इस प्रकार जब उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतु को कहा तब तिसके श्रवण से वो श्वेतकेतु प्रथम तो उस सर्वात्मा को न जानके कहता हुआ कि हे भगवन् पुनः भी मुझको समझायके कहिये, तब पिताने उसके संशय विकल्पकी निवृत्तिके अर्थ अरु सत्स्वरूपकी प्राप्तिके अर्थ दृष्टान्त युक्तिपूर्वक नव बार सत् आत्मा का उपदेश किया कि हे श्वेतकेतो जो महासूक्ष्म सत्चैतन्य सर्वात्मा है सोई सत्चैतन्य सर्वात्मा तू है ॥ हे शिष्य इसप्रकार जब उद्दालकने अपने पुत्र श्वेतकेतुको नव बार उपदेशकिया तब वो श्वेतकेतु अपने आप

सत् आत्मा को यथार्थ अनुभव कर पिता से कहता हुआ कि हे भगवन् अब मैंने अपने आप सत् स्वरूप को सम्यक् प्रकार ज्यों का त्यों जाना है मैं ही सत् आत्मा हौं मुझसे इतर मेरा सत् आत्मा और कोई नहीं, सत्यं, सत्यं, सत्यं,॥ शिष्य उवाच ॥ हे भगवन् श्वेतकेतु को सत्की प्राप्त बिषे क्या लाभ होता हुआ॥ श्री गुरुरुवाच ॥ हे शिष्य उस श्वेतकेतु को सत्की प्राप्ति बिषे यह लाभ होता हुआ जो त्वंपद के वाच्य जीवत्व भावका अभाव अरु तत् पदके वाच्य सत्चैतन्य सर्वात्म भाव की प्राप्ति, उस तत्पद के वाच्य सत् बिषे त्वं आरोपमात्र था तिस आरोपका अभाव होके जो अवशेष तत्रहा सोई तत् सत् श्वेतकेतु ज्योंका त्यों होता हुआ। हे सौम्य जो सत्मन वाणीका विषय नहीं सो सत्आत्मा श्वेतकेतु आपही था सो पिता रूप आचार्य के उपदेश द्वारा अपने आप को आपही श्रवण करता हुआ, अपने आपको आपही मननकरताहुआ, अरु अपने आपको आपहीसाक्षात् विस्पष्ट जानताहुआ, इस प्रकार श्वेतकेतु अपने आपबिषे द्वैतके अभावपूर्वक अपने आपको सत्चैतन्य सर्वात्मा अनुभव करताहुआ ॥ शिष्यउवाच॥ हे भगवन् जब वो श्वेतकेतु आपही सत्स्वरूपथा तब पितासे बारम्बार क्यों प्रश्नकरताहुआ, अरु उस सत्का स्वरूप कैसाहै सोभी आप कृपाकरके कहिये॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य वो श्वेतकेतु प्रथमसे सत्स्वरूप तो थाही परन्तु उसको अज्ञानकृत अनात्माबिषे अहंभाव होनेसे वो अपने आपको भूलाथा, अरु तिसकरके अपनेको अहंकर्त्ता अहंभोक्ता अहंजीव इत्यादि मानताथा, सोई उसके आगे अनात्म अहंकार रूप परदाथा ताते वो विवेकशून्यथा, अतएव उसके पिताने उसके उक्त आचरणको गिरायके, कि जिसके प्रतिभाससे अनात्म बिषे आत्मप्रतीतिथी, आप उद्दालक तूष्णीं हो रहा क्योंकि वो श्वेतकेतु सत्स्वरूप तो आगेही सिद्धथा, उसके पिताने उससे यह नहीं कहा कि हे श्वेतकेतु वो सत् किसी अन्य स्थान में है

तिसको तुम अन्वेषणकरो। उसके पिताने तो उसके सर्व विकल्पोंको गिरायके यही उपदेश किया कि हे श्वेतकेतो सो सत् आत्मा तू है, तब उसने भी अन्त बिषे यही कहा कि सो सत् आत्मा मैंहींहों अब मैंने अपने आपको अनुभव कियाहै ॥ शिष्यउवाच ॥ हे भगवन् जब वो श्वेतकेतु सत्स्वरूपहीथा तब वो अपने आप सत्स्वरूपको भूलाकैसे सोभी आप कृपाकरके कहिये॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य अब इसको हम एक दृष्टान्तद्वारा कहतेहैं तिसको भी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन जैसे यह जीव अपनेको जीवमानते संतेभी अपने जीव भावसे भूलेहुए हैं क्योंकि यह जीव साक्षात् अपने देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों से पृथक् होके ऐसा कहते हैं कि हे भाई अब हमारा शरीर दुर्बल अशक्त वृद्ध होगयाहै, हमारी सर्व इन्द्रियां शिथिल होगईहैं, प्राण व्याकुल होरहाहै, हमारा मन अमुक वस्तुको इच्छताहै, इस अवस्थामें हमारी बुद्धि विवेक शून्य जड़वत् होरहीहै कुछ भी समझ बिषे आवता नहीं। इत्यादि प्रकार सर्व जीव बुद्धिआदिकों से आपको पृथक् भी कहते हैं तथापि अपने जीव भावको जानते नहीं। हे शिष्य तैसेही यह मलिन अन्तःकरण अनात्माभिमानी अज्ञ पुरुष उपनिषदादि सत्शास्त्रको श्रवण विचारकरके भी अपने आप वास्तविक सत्यस्वरूपको जानते नहीं तिसका कारण यह भी है कि मन इन्द्रियों के साथ मिल अनादि कालसे विषयादिकोंके सम्मुख बहिरमुख होरहे हैं, जब यह आत्माकी ओर अन्तरमुख होवें तब अपने सत्यस्वरूपको यथार्थ ज्योंका त्यों अनुभव करके जाने, परन्तु इनको अन्तरमुखहोना दुर्लभ है क्योंकि इनका बहिरमुख स्वभाव अनादिकाल से हो रहाहै। हे सौम्य यह सर्व पुरुष अपने आपको अनादिकालसे जानबूझके भूलेहुएहैं, क्योंकि सज्ञात सत्पुरुष अरु सत्शास्त्रद्वारा अपने सत्चैतन्य आत्मस्वरूपको श्रवण करते हैं अरु तिस श्रवणके अनुसार विचारते भीहैं तथापि मानते नहीं जब इनके पूर्व

जन्मों के अति उत्तम मोक्ष करनेहारे पुण्य कर्म्म एकत्रहोय अपना फल देनेके अर्थ सम्मुख होते हैं तब इनके अन्तःकरणबिषे असाधारण वैराग्यपूर्वक आत्म जिज्ञासा उत्पन्न कर इनको ब्रह्मवेत्ता आचार्य्य के समीप प्राप्त करतेहैं, तब उस परमदयालु आचार्य्य की कृपाकरके यह जीव अपने सत्चैतन्य आत्मस्वरूपको यथार्थ साक्षात् अनुभवकर परमनिर्वाण ब्रह्मानन्द शान्तिको प्राप्तहोते हैं। अतएव हे सौम्य अब तुमभी ब्रह्मनिष्ठ आचार्य्य साथ मिल अपने सत्यस्वरूपको प्राप्तहोवो॥ अलम्॥

इति छान्दोग्यउपनिषदे षष्ठप्रपाठकं समाप्तम् शुभम्॥

हरिः ॐ तत्सत्॥

अथ सामवेदीय छान्दोग्यउपनिषद्का सप्तम अरुउत्तरार्द्धका तृतीय प्रपाठक की भाषाटीका प्रारभ्यते

इस प्रपाठकमें भगवान् योगेश्वर सनत्कुमार अरु देवऋषी नारदके सम्बादरूप आख्यायिकाद्वारा मध्यम अधिकारीके परमश्रेयार्थ भूमाख्य आत्मविद्या अरु तिसकी सर्वोत्तमता प्रकाशित है। अरु इसबिषे भगवान् सनत्कुमारने नारद के प्रति सोपानारोहण क्रम करके आत्मोपदेश कियाहै। अर्थात् जैसे कोई पुरुष ऊंचे स्थानपर चढ़ताहै तब नसेनी (सीढ़ी वा जीने) के नीचेके पादरखने के डंडेसे क्रमसाध्य चढ़ताहुआ ऊपरके स्थानको प्राप्त होता है। तैसेही परमाचार्य्य योगेश्वर भगवान् सनत्कुमारने नारदको नामसे लेके प्राणपर्य्यन्त पंचदश उपासनाकहके पूर्व पूर्वसे उत्तरोत्तर को अधिकतरदेखाय प्राणसे पूर्व पूर्वोंकी अपेक्षा प्राणको सर्वका आश्रय होनेसे उसकी सर्वसे अधिकता देखाय पश्चात् भूमाका उपदेश किया है॥

इति

अथ छान्दोग्य उपनिषदे सप्तम प्रपाठके प्रथमखंडः ॥

ॐ ॥ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्त छं होवाच यद्वेत्थतेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सनत्कुमार से नारदने कहा कि हे भगवन् मुझको उपदेश करिये, सनत्कुमार ने कहा जो तू जानता है सो मुझसे कह तिसको श्रवण किये पश्चात् मैं कहोंगा ॥ १ ॥

भावार्थ खंड प्रथम मन्त्र पहिलेका ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे सौम्य एक समय देवऋषि नारद जो सर्वविद्या सम्पन्न था सो आत्मविद्या की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) अपने चित्त बिषे धार विचारताहुआ कि मैं वेदादि सर्व वद्या पढ़ा हौं परन्तु चित्त बिषे शान्ति नहीं अतएव अब आत्म वद्या अध्ययन करनी चाहिये वो शान्तिका कारणहै तिसविना शान्ति होने की नहीं, परन्तु वो विद्या किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आत्मानुभवी आचार्य्य से अध्ययन करनी योग्यहै, सो उक्त प्रकार के आचार्य्य भगवान् सनत्कुमार हैं, अरु वो मेरे ज्येष्ठ भ्राता भी हैं अतएव जैसा वो उपदेश करेंगे तैसा और कोई भी करने का नहीं, ऐसा विचार वो नारद अपने ज्येष्ठ भ्राता योगेश्वर ब्रह्मनिष्ठ सनत्कुमारके समीप प्राप्तहोय प्रणामकर विनयपूर्वक यह कहता हुआ कि हे भगवन् आप आत्मविद्या जानते हौ सो मुझको अध्ययन कराइये, अर्थात् आत्मविद्या मुझको उपदेश करिये। हे सौम्य उक्त प्रकार जब सर्व विद्या सम्पन्नसो सर्व विद्या के अहंकार को त्याग नम्रभावपूर्वक आत्मविद्या का जिज्ञासु होय यथान्याय (समिधादि ग्रहणकर) अपने निकट आय प्राप्त हुआ जो देवऋषि नारद तिसको सनत्कुमार कहते-

स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदछं सामवेद मा थर्व्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यछं राशिं दैवं निधिं वाको वाक्य मेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याछं सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥ २ ॥

हुए कि हे नारद जो कुछ तुझने अध्ययन कियाहै सो सर्व प्रथम मुझको कह सुनाव तिसको मैं भली प्रकार जानलेवोंगा तब तिसके उपरान्त जो कुछ मुझको कहना होगा सो सर्व तेरे प्रति कहोंगा ॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो नारद स्पष्ट कहताहुआ हे भगवन् ऋग्वेद मैंने अध्ययन कियाहै, यजुर्वेदसामवेद चौथा अथर्वणवेद पञ्चम इतिहासपुराण (भारत) वेदोंका वेद (व्याकरण) श्राद्धकल्प गणितशास्त्र दैवी उत्पात शास्त्र निधिशास्त्र तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र निरुक्त वेदों का ब्राह्मण भाग वा शिक्षा कल्पादि वेदांग भूततन्त्र धनुर्वेद ज्योतिष शास्त्र गारुडी विद्या गन्धर्वविद्या शिल्पविद्या। हे भगवन् यह सर्व मैंने अध्ययन किया है ॥ २ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य। उक्त प्रकार जब भगवान् योगेश्वर सनत्कुमारने देवऋषि नारदसेकहा कि जो कुछ तुझने अध्ययन किया होय सो सर्व प्रथम मुझको कह सुनाव तिसके श्रवण किये पश्चात् जो कुछ मुझे कहना होगा तुम्हारे प्रति कहोंगा। इसप्रकार जब योगेश्वर ब्रह्मवेत्ता सनत्कुमार ने कहा तब वो देवऋषि नारद कहता हुआ कि हे भगवन् मैंने ऋग्वेद अध्ययन कियाहै सो सर्व मुझको अर्थ सहित याद है, तैसेही यजुर्वेद भी मैं पढ़ाहौं सो भी मुझको स्मरण है, सामवेद भी मुझको स्म-

सोऽहं भगवो मंत्रविदेवास्मि नात्मवित् श्रुतꣳह्येव मे भगवद्दृश्येभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्यपारं तारयत्विति होवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठानामैवैतत् ३ ॥

रण है, अरु चतुर्थ अथर्वण वेद भी मैं पढ़ाहौं सो स्मरण है, हे भगवन् सर्व वेदोंका समुच्चय जो पंचम प्राचीन इतिहास भारतहै सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु जिसकरके पदविभागसे वेदादिक सर्व के अर्थ जाने जातेहैं ऐसा जो वेदोंका वेद व्याकरण सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु पित्रियों के अर्थ श्राद्धादिकों का बोधक जो श्राद्धकल्प सो भी मैं पढ़ाहौं, हे भगवन् गणितशास्त्रकि जिसकरके सूर्यादिकों की गति अरु ग्रहोंका वेध ग्रहण आदिक जाने जाते हैं सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु जिस शास्त्रसे दैवी उत्पात दुर्भिक्षादि जाने जाते हैं सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु महाकालादि निधि शास्त्रभी मैं पढ़ाहौं, अरु वाकोवाक्य कहिये तर्कशास्त्र सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु एकायन कहिये नीतिशास्त्र सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु देवविद्या जो निरुक्त सो भी मैं जानताहौं, अरु ब्रह्मविद्या जो ऋग् यजु साम इन वेदत्रयीका ब्राह्मण भाग वा शिक्षाकल्पादि वेदांग सो भी मैं जानताहौं, अरु भूतविद्या कहिये भूततन्त्र (तन्त्रविद्या) सो भी मैं पढ़ा जानताहौं, अरु क्षत्रविद्या कहिये धनुर्विद्या जिस करके अस्त्र (समन्त्र) शस्त्र (अमन्त्र) बाणादि शस्त्र चलावने की क्षत्रियों की विद्या सो भी मैं पढ़ा जानताहौं, अरु नक्षत्र विद्या ज्योतिष शास्त्र जिसकरके जीवोंका भविष्यत् शुभाशुभ जाना जाताहै सो भी मैं पढ़ाहौं, अरु सर्प देवजन विद्या कहिये सर्पादिकों के विष उतारने की गारुडी विद्या, अरु नृत्यगायन आदि गन्धर्व विद्या, अरु गृहादि रचनेकी शिल्पविद्या मैं जानता हौं । हे भगवन् इत्यादि सर्व विद्या मैंने अध्ययन किया है अरु सर्वही मुझको स्मरण है (तथापि शान्तिनहीं) २ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे भगवन् सो मैं मन्त्रवेत्ताही हौं आत्मवेत्ता नहीं, हे भगवन् मैंने आप सारिखे आत्मवेत्तासे ही श्रवण कियाहै कि आत्माका जाननेवाला शोक से तरजाताहै, हे भगवन् सो मैं शोकको प्राप्त हुआ जो मैं तिस मुझको हे भगवन् आप शोकके पारको प्राप्त करो। इस प्रकार जब नारद ने कहा तब सो सनत्कुमार कहते हुए कि जो कुछ तुमने अध्ययन किया है सो सर्व यह नाममात्रही है ॥ ३ ॥

भावार्थ मन्त्र तीसरेका ॥

नारदउवाच ॥ हे सौम्य, नारद कहता हुआ कि हे भगवन् सो मैं कि जिसने उक्त सर्वविद्या अध्ययन किया है तिन सर्व विद्या के जानते सन्ते भी मैं केवल मन्त्रवेत्ताही हौं अर्थात् उक्त सर्व विद्याओं का केवल शब्दार्थमात्र जाननेवाला मैं हौं। अरु सर्वही शब्द अभिधान (नाम) मात्रही है सो सर्व मंत्रके अंतर होताहै ताते मैं मन्त्रवेत्ताहौं अर्थात् मन्त्रवेत्ता कहने से केवल कर्म्म वेत्ताही हौं। तथाच ॥ मन्त्रेषु कर्म्माणीति"। मैं आत्मवेत्ता (आत्मानुभवी) नहीं ॥ शंका ॥ ननु आत्मा भी तो मंत्र करके प्रकाशित (प्रतिपाद्य) है तब कैसे सो नारदमन्त्रवेत्ताही है आत्मवेत्ता नहीं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य तुमने जो शंकाकिया सो नहीं क्योंकि नाम नामीका वा प्रतिपाद्य प्रतिपादक का जो भेद है तिसको बिकारी होने से, अरु शुद्ध आत्मा बिषे उक्त विकार कोई नहीं ॥ शंका ॥ ननु जिसको तुम निर्बिकार आत्मा कहते हौ सो भी ,आत्मा, इस शब्द करके कहा जाता है। समाधान ॥ यह भी शंका बने नहीं क्योंकि "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" "यत्र नान्यत्पश्यतीति" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से आत्माको वाणी आदिकों का विषय न होने से आत्माबिषे अभिधेय अभिधान नहीं ॥ शंका ॥ जो ऐसेही है तो कैसे "आत्मा वै अधस्तात् स आत्मेति"। इत्यादि श्रुतियां शब्द करके अर्थात्

नामकरके आत्माको कहती हैं ॥ समाधान ॥ हे बादी यह जो तैंने कहा सो दोष नहीं क्योंकि देह युक्त प्रत्यगात्माको भेदका विषय होनेसे आत्मा शब्दकी प्रवृत्ती है ॥:—अर्थात् अनात्म देह बिषे व्याप्त जे प्रत्यगात्मा तिसको देहरूप अनात्माके सम्बन्धसे पृथक् करके लखावने के अर्थ आत्मा शब्द से कहते हैं बास्तव करके उस अशब्दबिषे आत्माआदि शब्दोंकी प्रवृत्ति बने नहीं-:॥ जैसे अदृश्यमान राजाके दृश्यमान जे छत्र ध्वज पताकादि तिनके देखनेसे अदृश्यमान राजाके बिषे यह राजा दृश्य आवता है इस शब्दकी प्रवृत्ति होती है, तहां इस शब्दका प्रयोग होता है कि यह कौन राजा है, दृश्यमान जे राजाके विशेष छत्र ध्वज पताकादि तिनके निरूपण करके अदृश्यमान जे राजा तिसबिषे यह कोई राजाहै इसप्रकारकी प्रतीति होवे है। तैसेही देहादिक जे अनात्मा आत्म शब्दकावाच्य तिसबिषे शब्दकी प्रवृत्ति होती है, अशब्द आत्मा निर्विशेष चैतन्यबिषे नहीं, अरु अनात्मा जड़ देहादिकों के सर्व व्यापारमें प्रवृत्त देखने से यह कथन होताहै कि इन जड़ देहादिकों की स्वस्व व्यापार में प्रवृत्तिहै सो किस सत्ताकी कीहुई है, इनकी प्रवर्त्तक कोई चैतन्य सत्ताहै। इसप्रकार शब्दादिकोंका विषय जे देहादिक तिनबिषे शब्दकी प्रवृत्ति होनेसे तद्विशिष्ट आत्मा में भी शब्दकी प्रवृत्ति है, स्वयंशुद्ध आत्माबिषे शब्दादिकों की प्रवृत्ति नहीं। अतएव नारद केवल वेदादिकों के मन्त्रके शब्दार्थ अरु तिनमन्त्रों का जिनकर्म्मों बिषे विनियोग है तिनही का ज्ञाताहै आत्मवेत्ता नहीं—:॥ एतदर्थही नारदने कहा कि हे भगवन् मैं केवल मन्त्रकरके लक्षित जे कर्म्म तिनही का जाननेवाला हों। अर्थात् मन्त्रकरके लक्षित जे कर्म्म तिनही का कार्य्यरूप विकार यह समस्त प्रपंचहै, अरु मैं कर्म्मोंका वेत्ता हों ताते मैं विकारावित् (जाननेवाला) हों, मैं आत्मवेत्ता नहीं, अर्थात् मैं अपने आप आत्मस्वरूप को जाननेवाला आत्मज्ञ नहीं। हे भगवन् मैंने आप सारिखे वेदवेत्ता आचार्य्यों से इस

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः आथर्वणश्च
तुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशि
दैवी निधिर्वाको वाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूत
विद्याक्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पजनदेवविद्या नामैवैतन्ना
मोपास्स्वेति ४ ॥

प्रकारके श्रुति वाक्य श्रवण किये हैं कि।"यतोवाचो निवर्त्तन्ते"।
जहांसे वागादि इन्द्रियां निवृत्त होती हैं (फिर आवती हैं) अ-
र्थात् जो आत्मतत्त्व मन इन्द्रिय आदिकोंका विषय नहीं, तिस
आत्मतत्त्व को ।"आचार्यवान् पुरुषो वेद"। आचार्यवान् पु-
रुष सम्यक् प्रकार जानताहै। अरु आत्मवित् पुरुष सर्वशोकोंसे
तर जाताहै। हे भगवन् सो मैं (जो केवल विकारवेत्ता हौं) सो
अकृतार्थबुद्धिकरके सर्वदा अन्तर से तपायमानही रहताहौं, हे
भगवन् तिस शोकाविष्ट मुझको आप आत्मविद्या उपदेश
करके इस दुस्तर शोकसागर से पारकरिये, अर्थात् मुझको कृतार्थ
बुद्धि उपजाय अभयपदको प्राप्तकरिये, अब मेरे परम आचार्य
आपही हौ॥ हे सौम्य इस प्रकार देवऋषि नारदने अपनेको
कृतार्थबुद्धिकी प्राप्तिपूर्वक अतिदुस्तर शोकसागर से पार अभय
पद प्राप्तिके अर्थ ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ योगेश्वर भगवान् सन-
त्कुमार आचार्य से प्रार्थनाकिया तब तिसको श्रवणकर भगवान्
सनत्कुमार कहतेहुए कि हे नारद जो किंचित् तैंने अध्ययन किया
है अरु जिसका तुझको अर्थज्ञानहै सो सर्व नाममात्रही है -॥
अर्थात् ऋग्वेदादि विद्या अध्ययन करके जो तैंने जानाहै सो सर्व
नाममात्रही जानाहै, अरु।"वाचारंभणं विकारो नामधेयम्"।
इत्यादि श्रुति प्रमाण से नाम जो है सो केवल वाचारंभण
मात्रही है ३ ॥

अक्षरार्थ॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद

चतुर्थ अथर्वणवेद पंचम प्राचीन इतिहास (भारत) व्याकरण श्राद्धकल्प गणित विद्या दैवी उत्पात विद्या निधिविद्या तर्कविद्या नीतिविद्या निरुक्त ब्राह्मण भाग वा शिक्षा कल्पादि वेदांग भूत तन्त्र विद्या धनुर्विद्या ज्योतिषविद्या गारुडीविद्या गन्धर्वविद्या शिल्पविद्या । यह सर्व नामही है यह नाम उपास्य (उपासना करने योग्य) है ४ ॥

भावार्थ मन्त्र चौथे का ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब नारदजी ने अपनी अध्ययन करी ऋग्वेदादि सर्वविद्या भगवान् सनत्कुमार को कहसुनायी तब ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ सनत्कुमारों ने विचार किया कि यह नारद अनेक प्रकार की विद्या पढ़ाहै अरु उन विद्याओं बिषे कहे जे नाना सिद्धान्त सो सर्व संस्काररूप से इसके अन्तःकरण बिषे स्थित हैं ताते तिनके अनुसार इसके अन्तःकरण बिषे अनेक प्रकार के संशय विकल्प स्थितहैं, यावत् उन सर्वका अभावहोगा नहीं तावत् इसको आत्मसाक्षात्कार भी होने का नहीं । अरु यह नारद अन्य सर्व आचार्य्य को त्याग के श्रद्धापूर्वक समित्पाणि हुआ मेरे निकट आया है ताते इसको आत्मोपदेश करके शोकसागर से पार भी अवश्य करना है, अतएव इसको बाह्य स्थूल नामोपासना से लेके अन्तर सूक्ष्म प्राणोपासना पर्य्यन्त देखाय उन सर्वको गिराय इसके सर्व संशयादि दूरकर पश्चात् इसको सर्व का आश्रय महासूक्ष्म भूमाख्य सत् चैतन्य आत्मा का उपदेश करें । हे सौम्य इस प्रकार विचार भगवान् योगेश्वर सनत्कुमार नाम ब्रह्म की उपासनासे प्रारम्भ प्राण ब्रह्म की उपासना पर्य्यन्त कहेंगे तहां पूर्व पूर्व उपासना को कह तिसका फल देखाय पश्चात् उसको उत्तरोत्तर उपासना से गिराय पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर की विशेषता देखाय नारद के सर्व संशय दूरकर प्राणोपासना की मुख्यता देखाय तिसके पश्चात् सर्वाधिष्ठान भूमाख्य सत आत्मोपदेश कर उस नारदको अ-

सयो नामब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्ययथा कामचारो भवति यो नामब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ५ इति प्रथमखंडः १ ॥

कृतार्थता बुद्धिरूपा शोकसागर से पारकरेंगे तहां प्रथम नामोपासना कहते हैं-:॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद ऋग्वेद आदि यावत् विद्या तू पढ़ा है सो सर्व नामही है, अरु नाम जो है सो ब्रह्मबुद्धि करके उपास्य है, अर्थात् जैसे शालिग्रामादि प्रतिमा विष्णुआदि देवता बुद्धि करके उपासनीय हैं तैसे नाम भी ब्रह्म बुद्धि करके उपासनीय है ४ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जो नामब्रह्मकी उपासना करताहै यावन्नामका विषय है तिस बिषे जैसी कामना होती है सोई उसको प्राप्त होता है जो नाम ब्रह्मको उपासता है हे भगवन् यह नामही ब्रह्म है वा इसका कोई और ब्रह्महै, हां नामका भी कोई और ब्रह्म है, हे भगवन् तिसको भी आप मेरेप्रति कहिये ५ ॥

भावार्थ मन्त्र पांचवें का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई नाम ब्रह्मकी उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्तहोताहै सो श्रवण कर यावत् नामका विषय है तहां तिस नाम के विषय बिषे जैसी कामना होती है, अर्थात् नाम के विषय बिषे जिस वस्तुकी कामना होती है, सोई उसको प्राप्तहोता है। जो नाम ब्रह्म की उपासना करता है। हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह नामही ब्रह्म है किंवा इस नामका भी कोई और ब्रह्म है। इस प्रकार जब नारद ने प्रश्न किया तब पुनः सनत्कुमारने कहा हां नामका भी कोई और अधिकतर ब्रह्म है, तब पुनः नारद ने कहा

अथ छान्दोग्यउपनिषदि सप्तमप्रपाठकेद्वितीयखंडः ॥

वाग्वा नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदछं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पितृछंराशिं दैवं निधिं वाकयोवाक्य मेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्र विद्या सर्प देवजन विद्या, देवाछंश्च मनुष्याछंश्च पशुछंश्च वयाछंसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीट पतङ्गपिपीकंधर्म्मंचाधर्म्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु च हृदयज्ञञ्चाहृदयज्ञञ्च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्म्मोनाधर्मो व्यज्ञाविष्यन्न सत्यंनानृतं न साधुनासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्व्वं विज्ञापयति वाच मुपास्स्वेति १ ॥

हे भगवन् सो भी आप मुझको कहिये ५ ॥

इतिछान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके प्रथमखंडः १ ॥

अथ अक्षरार्थ भावार्थ खंडदूसरे मन्त्र पहिलेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद वागिन्द्रिय नामका भूय (अधिकतर) ब्रह्महै । अर्थात् नाभिका हृदय कंठ जिह्वा तालु आदि छः स्थानों बिषे स्थित होत समस्त स्वर व्यञ्जनादि अक्षरों की अभिव्यंजक (प्रकाशकरनेवाली) है तिसको वागिन्द्रियकहते हैं, अरु नाम जोहै सो वर्णात्मकही है, अतएव वाग्को नामका भूमा कहते हैं । क्योंकि लोकबिषे कार्यका भूमा कारणकोही देखते हैं । जैसे पुत्रसे पिता अधिकतर होताहै तैसे ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् कैसे वाणी नामका भूमाहै ॥ उत्तर ॥ हे नारद वाणी करकेही ऋग्वेद जाना जाताहै कि यह ऋग्वेद है ॥:-अर्थात् ऋग्वेद का अध्ययन

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचोगतं तत्रास्ययथा कामचारो भवति योवाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्तिभगवो वाचो भूय इति वाचो वावभूयोऽस्तीतितन्मे भगवान् ब्रवीत्वि ति २ ॥ इति द्वितीयखंडः २ ॥

करता पुरुष जब वाणी करके ऋग्वेद का उच्चारण करताहै तब जाना जाता है जो यह ऋग्वेद है-॥ हे नारद तैसेही यजुर्वेद सामवेद आदि सर्व वेदशास्त्र इतिहास पुराणादि वाणी करकेही जानाजाताहै, अर्थात् यावत् वाणीका विवर्त्त शब्दमात्रहै सो सर्व वाणीसे उच्चार हुआही जाना जाता है, अरु हृदय का विषय अर्थात् जिस वार्त्ता के कहनेकी हृदय में इच्छा होती है, तिस को जब वाणी करके प्रकट कहता है तबहीं वो स्पष्ट जाना जाता है अरु तैसेही तिससे विपरीत अहृदयज्ञं इत्यादि सर्व वाणी करकेही जाना जाता है॥ हे नारद जो कदापि वाणी न होवे तो अध्ययनका अभाव होवे अध्ययन के अभाव से अर्थ के श्रवण का अभावहोवे तिस अर्थ श्रवणके अभावसे न धर्म्म जाना जाय न अधर्म जाना जाय न सत्यजानाजाय न असत्यजानाजाय न साधु (श्रेष्ठ) जाना जाय न असाधु (अश्रेष्ठ) जानाजाय न हृदयज्ञ जानाजाय न अहृदयज्ञ जानाजाय। एकवाणी करकेही यहसर्व जानाजाताहै, अर्थात् यावत् नामोंकेविषयहैं सो सर्वनाम करकेही जानाजाता है अरु सो नाम वाणी करकेही प्रकट होता है, अतएव यावत् नामकाविषयहै सो सर्वनामसहित वाणीकरके हीं जाना जाताहै। ताते हे नारद यह वाणी ब्रह्मबुद्धिकरके उपासना करने योग्य है। जैसे प्रतिमा देवबुद्धिकरके १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई (।"वाग्वै ब्रह्मेति"।) इस श्रुत्यन्तरके प्रमाण से भी, वाणी ब्रह्मकी अर्थात् वाणीविषे ब्रह्मबुद्धिकरके उपासना करताहै तिसको जो फलप्राप्त

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके तृतीयखंडः ॥

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वेवाकोले द्वौ वा क्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचञ्चनाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयेत्यथाधीते कर्म्माणि कुर्व्वीयेत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोका मनो हि ब्रह्ममन उपास्स्वेति १ ॥

होताहै सो श्रवण करो हे नारद यावत् वाणी का विषय है तहां जिस विषयबिषे जैसी कामना होती है सोई उसको प्राप्तहोता है जो वाणी ब्रह्मको उपासता है । इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह वाणीही ब्रह्म है अथवा इस वाणीका भी कोई अधिकतर ब्रह्महै । तब पुनः सनत्कुमारने कहा कि हे नारद इसवाणी का भी कोई और ब्रह्म है, इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब पुनः नारदने कहाकि हे भगवन् जो वाणी का भी कोई अधिकतर ब्रह्महै तो हे भगवन् सो भी मुझको कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके द्वितीयखंडः २ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके तृतीयखंडप्रारम्भः ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद मन जो अन्तःकरण है सो वाणी का भूमा (अधिकतर) है क्योंकि मनही वाणी को वक्तृत्व व्यापारबिषे प्रेरणाकरे है, अरु मनको वाणी बिषे व्याप्त होने से मन वाणी का भूमाहोता है जैसेही लोकबिषे किसी पुरुषकी मुष्टिके अन्तर (भीतर) दो आंवलेके फल अथवा दो बदरी (बैर) के फल होवें अथवा दो भिलावें के फल होवें तिनबिषे मुष्टि व्यापी होती है, अर्थात् सो मुष्टिकेही अन्तर

सयो मनोब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतंतत्रास्ये यथा कामचारो भवति यो मनोब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनोभूय इतिमनसो वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥ इति तृतीय खंडः ॥ ३ ॥

होते हैं। हे नारद इसही प्रकार वाणी अरु नाम इन दोनों को आमलादि फलोंवत् मन अनुभव करता है ॥:— अर्थात् मनके आधीन वाणी अरु वाणी के आधीन नामहै ताते इन दोनों का प्रवर्त्तक अनुभव कर्त्ता मनको होनेसे मन इनका भूय (अधिकतर) है—:॥हे नारद तिस कालमें पुरुष अन्तःकरण करके अर्थात् मनोपलक्षित विवक्षा बुद्धिकरके प्रथम विचार करता है कि किस प्रकार मन्त्रको अध्ययन करों (वेदअध्ययन करना चाहिये) इस प्रकार प्रथम विवक्षा करके पश्चात् अध्ययन करताहै। तैसेही प्रथम कर्म्मकरने को विचारके पश्चात् कर्म्म करताहै। अरु जो पुत्र पशु आदिकों की इच्छाहोती है तब प्रथम इच्छा करता है कि अपने को पुत्र पशु आदि होना चाहिये पश्चात् तिनके अर्थ कर्म्म करके उनको प्राप्तहोता है। तैसेही इसलोक परलोक की इच्छासे प्रथम उनकी प्राप्तिके उपायको विवक्षा करलेता है तब उस उपाय से यथेष्ट लोक को प्राप्तहोता है। हे नारद आत्माको जो कर्त्तृत्व भोक्तृत्व है सो मन करकेही है अन्यथा नहीं, मनको आत्मा कहते हैं मनही लोक है, सत्य ऐसाही है मन विषे लोक होता है क्योंकि जिस लोकको मन इच्छता है तिसकी प्राप्तिके उपाय को अनुष्ठान करने से मन तिसलोक को प्राप्त होता है ॥:—अर्थात् मनके आधीन वाणी हैं वाणी के आधीन मन्त्र हैं मन्त्रके आधीन कर्म है कर्म्माधीन लोक है, अतएव लोककी प्राप्ति परम्परा करके मनके आधीनही है—:॥ ताते मन ही ब्रह्म है जिस करके ऐसा है तिसही करके मन उपासना करने के योग्य है ॥ १ ॥

अथ छान्दोग्यउपनिषदि सप्तमप्रपाठके चतुर्थखंडः ॥

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथवाचमीरयति तासु नाम्नीरयतिनाम्नि मन्त्रा एकं भवति मन्त्रेषु कर्म्माणि १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई ("मनोब्रह्मेत्यु-
पासीत्" इत्यादि अन्यश्रुतियों के प्रमाण से भी) मनको ब्रह्म
जानके, अर्थात् मनविषयक ब्रह्मबुद्धि करके, मनकी उपासना क-
रता है तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवण कर, हे नारद
यावत् मनका विषय है तहां जिस विषय बिषे जैसे कामना होती
है सोई उसको प्राप्तहोता है, जो मनकी उपासना करता है (तिस
को) हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न
करता हुआ कि हे भगवन् यह मनही ब्रह्म है अथवा मनका भी
कोई और ब्रह्म है। तब सनत्कुमारनेकहा हे नारद इस मनका भी
अधिकतर इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद पुनः
कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस मनका भी कोई अधिकतर
(ब्रह्म) है तो हे भगवन् सो भी मेरे प्रति कहिये ॥ २ ॥

इतिछान्दोग्येसप्तमप्रपाठके तृतीयखंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडचौथे मन्त्र पहिले का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद संकल्प मनसे अधिकतर है
(अर्थात् संकल्प जो कर्तृत्वसम्बन्धी अन्तःकरण की वृत्ति कि
अब कर्म करना योग्य है) इस संकल्प से पश्चात् मनकरके
विचारता है कि अब यह कर्म्म करना युक्त है, ताते प्रथम
संकल्प होता है पश्चात् मनके विचार बिषे आवता है जो अब
अध्ययनकरें, तिसके अनन्तर वाणी समर्थ होती है मन्त्रादिकों
के उच्चार करने बिषे तब उसका नामहोता नाम से सम्पूर्ण वेद

तानि ह वैतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशश्च समकल्पतामापश्च तेजश्च तेषा छं संक्लृप्त्यै वर्षछं संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यौ प्राणाः संकल्पन्ते प्राणाना छं संक्लृप्त्यौ मन्त्राः संकल्पते मन्त्राणां छं संक्लृप्त्यै कर्म्माणि संकल्पन्ते कर्म्माणि संक्लृप्त्यौ लोकाः संकल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्व्व छं संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्येति २॥

है सो वेद नाम बिषे एक होते हैं (अर्थात् सामान्य नाम के बिषे सम्पूर्ण वेद है सो वेद मन्त्र अन्तर्गत होता है। अर्थात् सामान्य के अन्तर्गत विशेष होता है) वेद में सर्व कर्म्म एक होता है (अर्थात् एक सामान्य वेद के अन्तर विशेष मन्त्र है अरु सामान्य मन्त्र के अनन्तर सर्व कर्म्म होते हैं) १॥

अक्षरार्थ भावार्थ मंत्र दूसरे का॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद तिन प्रसिद्ध इन मन्त्रादिकों का संकल्प आयन (स्थान वा आश्रय) वाले होने से संकल्पायन कहते हैं, अर्थात् संकल्प में जिनका गमन कहिये लय होय तिनको कहिये संकल्प एकायन अरु नामादि सर्वको संकल्पात्मक होनेसे सर्वका उत्पत्ति स्थान भी संकल्पही है। अरु संकल्पही उनका स्थितिकालमें आश्रय है (अर्थात् नामादि सर्वका एक संकल्पही कारण है, संकल्पही आश्रय है अरु संकल्पही लयका स्थान है) सर्व संकल्पसे ही है। द्यौ (स्वर्ग लोक) अरु पृथिवी को संकल्पही करता है, तैसे वायु अरु इस भूताकाशको संकल्पही करता है, तैसे वायु आकाश के संकल्पसे जल अरु तेजको संकल्पही करता है, तिनका संकल्प करके वर्षा को संकल्प करता है, वर्षाका संकल्प करके अन्नको संकल्प करता

स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते संक्लृप्तान् वैस लोकान् ध्रुवान् ध्रुवःप्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानामव्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्सङ्कल्पस्यगतंतत्रास्ययथाकामचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति सङ्कल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ३॥ इति चतुर्थ खंडः ॥

है, अन्नके संकल्प से प्राणको संकल्प करता है, क्योंकि अन्नमयही प्राण है। प्राणको संकल्प कर तिससे मन्त्रों को संकल्प करता है (क्योंकि प्राण करकेही मन्त्रादिकों के उच्चार करने में समर्थ होता है, अप्राणवान से मन्त्र शब्दके वाच्य वेदादिकों के अध्ययनका संकल्प बने नहीं) मन्त्रों का संकल्प करके अग्निहोत्रादि कर्म्मों को संकल्प करता है, (अर्थात् वेद करके प्रकाशित अनुष्ठान करने के योग्य अग्निहोत्रादि कर्म्मों को संकल्प करता है) तिन कर्म्मों को संकल्प के तिनके फल स्वर्गादि लोकोंको संकल्प करता है, लोकों को संकल्प के सर्व जगत् को संकल्पकरताहै, ताते हे नारद सो यह द्युलोकसेलेकर तृणपर्य्यन्त समस्त जगत् संकल्पही है संकल्प से इतर कुछ नहीं, ताते संकल्प ब्रह्मबुद्धिसे उपास्य है॥ २॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र तीसरे का॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद सो जो कोई संकल्प को ब्रह्मबुद्धिसे उपासता है तिसको जो फल प्राप्तहोताहै सो श्रवणकर। हे नारद संकल्प ब्रह्मके उपासकको संकल्पकरके रचित ध्रुवप्रतिष्ठित लोककी प्राप्तिहोतीहै अरु वो भी वहां अपने संकल्पपर्य्यन्त ध्रुव प्रतिष्ठित होता है, अरु उनलोकोंकी प्रजा भी अचल है अरु वो भी सर्व व्यथा (दुःख) सेरहित अव्यथमान होताहै, अरु यावत् संकल्प से रचित संकल्पका विषयहै तिन विषे इसकी

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचमखंड प्रारभ्यते ॥

चित्तं वाव सङ्कल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्म्माणि ॥ १ ॥

जैसी कामना होती है सोई इसको प्राप्तहोता है, जो संकल्प ब्रह्मकी उपासना करता है। इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह संकल्पही ब्रह्म है अथवा इस संकल्पका कोई और भी अधिकतरहै। तब सनत्कुमार ने कहा हे नारद संकल्प का भी कोई अधिकतर है इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद पुनः कहताहुआ कि हे भगवन् जो इस संकल्पका भी कोई और अधिकतरहै तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कहिये ॥ ३ ॥

इतिछान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके चतुर्थ खंडः ॥

अथ अक्षरार्थ भावार्थ खंडपंचम मन्त्रप्रथमका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद चित्त संकल्पका भूय (अधिकतर) है जब चित्तचेतताहै तब संकल्प होता है। अर्थात् यह वस्तु मुझको प्राप्तहै, इसप्रकार प्राप्तिकालमें वस्तुका अनुसंधान अन्तःकरण की जिस वृत्तिकरके होताहै तिसको चित्त कहते हैं। सो चित्त जब चेतता (वस्तुके अनुसंधान के सम्मुख होता) है तब संकल्प होता है जब संकल्प होता है तब तिसके अनन्तर मनमें विचार होता है, जब विचार होताहै तब पश्चात् वाणी प्रकट होती है, तब तिसके अनन्तर वचनका नाम होता है, तिस नाम बिषे मन्त्र शब्दके वाच्य ऋगादि वेद एक होते हैं ॥:- अर्थात् सामान्य नामके अन्तर्गत विशेष वेदहोतेहैं अरु सामान्य वेदके अन्तर विशेष मन्त्रहोते हैं -:॥ अरु मन्त्र बिषे कर्म्म होते हैं। अर्थात् सामान्य मन्त्र बिषे विशेष कर्म्म एक होते हैं ॥ १ ॥

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तोभवति नायम स्तीत्येवैनामाहुर्यदयं वेद यद्वाऽयंविद्वान्नेत्थमचित्तः स्या दित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्मा एवोत शुश्रुष न्ते चितह्ध्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तेप्रतिष्ठिता चित्तमुपास्स्वेति ॥ २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद तिन प्रसिद्ध इन संकल्पसेलेके नामपर्य्यन्तका चित्त एक आयन है। अर्थात् चित्त में जिनका गमन कहिये परिअवसान (लय) होय तिनको कहिये "चित्ते-कायनानि" अरु नामादिसंकल्पपर्य्यन्त सर्वको चित्तात्मक (चित्तसे रचित) होने से सर्वका उत्पत्तिस्थान भी चित्तही है, अरु चित्तही के आश्रय हैं। अर्थात् नामसे लेके संकल्पपर्य्यन्त सर्व चित्तहीसे उत्पन्न होतेहैं चित्तहीके आश्रय वर्त्तते हैं, अरु चित्तही में लयहोते हैं ताते सर्व चित्तही है। हे नारद अब चित्तका माहात्म्य श्रवणकर, जिसकरके चित्त संकल्पादिकोंका मूलहै तिसही करके बहुतसे शास्त्र अरु तिनके अर्थका परिज्ञाता होतसन्ते भी जो चित्त बिनाकाहोय, अर्थात् प्राप्तादि चेतायितृत्व रहित ॥:— अर्थात् प्राप्तकरने योग्य वस्तुके अनुसंधान सामर्थ्यसे रहित —:॥ होय तो तिसके अर्थ, जो चित्तवान् निपुण लोक है सो ऐसा कहते हैं कि यह चित्तबिनाका पुरुष विद्यमान होतसन्ते भी है नहीं यह असद्वत् है। अरु जो कोई थोडेशास्त्र का जाननेवाला होके भी अनुसंधान लक्षणवान् चित्त करके युक्तहोय तो निपुण लोक उसको अचित्त पुरुषसे श्रेष्ठ जानके उसके वचनोंको श्रवण करते हैं अरु उसके वचनोंको मानके प्रशंसा करते हैं। हे नारद तिसही करके यह चित्त संकल्पादिकों का एकायन (लयस्थान) है, अरु चित्तही उनका उत्पत्तिस्थान है, अरु चित्तही संकल्पादि-

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान् वै स लोकानध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभि सिद्ध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भव ति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इतिचित्ता द्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ ३ ॥

इति पञ्चम खंडः ॥ ५ ॥

कोंकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है। ताते चित्त उपासना करने योग्य है चित्तकी उपासना करो ॥ २ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र तीसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई चित्तब्रह्मकी उपासना करता है तिस चित्तके उपासकको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवणकर। हे नारद चित्तब्रह्मके उपासक को चित्तकरके रचित व्यथासे रहित ध्रुवलोककी प्राप्तिहोती है अरु उन लोकोंकी प्रजाभी व्यथासे रहित ध्रुव होतीहै, अरु वो उपासक उनलोकों को प्राप्तहो व्यथा से रहित ध्रुव होताहै, अरु यावत् चित्त करके रचित चित्तका विषय है तिन बिषे इसकी जैसी जिस वस्तु की कामना होती है सोई उसको प्राप्तहोता है, जो चित्तको ब्रह्मजानकर उपासना करताहै 'तिसको'। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह चित्तही ब्रह्म है अथवा इसका भी कोई अधिकतरहै। तब सनत्कुमारने कहा हे नारद इस चित्तका भी कोई अधिकतरहै। तब नारद ने पुनः कहा कि हे भगवन् जो इस चित्तका भी कोई अधिकतर है तो सोभी आप मुझको कहिये ॥ ३ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचम खंडः ॥ ५ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षष्ठ खंडः ६ ॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौ ध्यायतीवापो ध्यायतीव पर्वता ध्यायतीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महतां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानपादांशा इवेव ते भवन्ति ध्यान मुपास्स्वेति १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडषष्ठ मन्त्र पहिले का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद ध्यान चित्तका भूय कहिये अधिकतर है, अर्थात् शास्त्रोक्त देवताओं के स्वरूप के आलम्बन करके तिनके स्वरूपाकार चित्त जिस उपाय से होवे तिसको ध्यान कहते हैं, ॥ः—अर्थात् देवतादिकों के ध्यान से चित्त एकाग्र अचल होताहै तब अनुसंधानात्मक होय आगे संकल्पको करता है, ताते ध्यान चित्तका अधिकतर है—ः॥ हे नारद ध्यानका माहात्म्य लोक बिषे प्रकट देखते हैं ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् लोक बिषे ध्यानका माहात्म्य प्रकट क्या देखते हैं ॥ उत्तर ॥ हे नारद जिसकाल में योगी ध्याननिष्ठ होता है तिसकाल में ध्यानका फल जो चित्त की निश्चलता तिसको प्राप्त होता है ॥ः—अरु निश्चल चित्तहोने के प्रभाव से सिद्धियोंको भी देखता है—ः॥ हे नारद जब इसप्रकार है तब ध्यान करके ही यह पृथिवी निश्चल दृष्ट आवती है, ध्यान करकेही अन्तरिक्ष निश्चलहै, ध्यानकरके ही द्युलोक (स्वर्ग) निश्चल है, ध्यानकरकेही जल निश्चल है ध्यान करकेही पर्वत निश्चल हुए हैं, ध्यानकरकेही देव मनुष्य हैं, अर्थात् देवता अरु मनुष्य ध्यान करके ही निश्चल चित्तहैं। अथवा शम आदिक दैवीसम्पदा लक्षणरूपस्वभाव ग्रहण करके सम्पन्न मनुष्य देवभावको प्राप्तहोता है सो ध्यानबल करके

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद् ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इतिध्यानाद्वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २॥ ६॥

निश्चल हुआ अपने स्वभाव रूप देवभावको त्यागता नहीं। हे नारद जब देवविशिष्ट ध्यानहै तब तिसही करके इस लोक बिषे मनुष्योंके मध्य जो धन करके विद्याकरके गुणकरके महत्त्व (श्रेष्ठपने) को प्राप्तहोतेहैं सो ध्यान ही का फलहै। हे नारद ध्यानकी बहुतसी पाद कला अंशहैं तिन में से जो कदापि ध्यान की एक कलाको भी प्राप्तहोता है तो सो मनुष्योंके मध्य महत्त्वपनेको पावताहै॥ हे नारद मनुष्योंके मध्य जो कोई ध्यानकी एक कलासे भी रहित है (ध्यानका कर्त्ता नहीं) सो ,, कलहिनः,, कलहके स्वभाववाला, अरु ,, पिशुनः ,, परायेदोषों को देखनेवाला, अरु ,, उपवादिनः ,, अर्थात् दूसरे के दोषोंको उसके समक्षही कहने के स्वभाव होवे जिसका तिसको उपवादी कहते हैं॥:—अर्थात् जो ध्यानकलासे रहित होता है तिसका चित्त स्थिर न होनेसे वो पुरुष उक्त दोषों करके युक्त होताहै—:॥ अरु जो धनादिकों के निमित्त से महत्त्वको प्राप्तहुएहैं सो अन्यों के अर्थ विद्यादान के आचार्य अरु ईश्वरवत् पूजनीय होते हैं। अतएव ध्यानका माहात्म्य प्रकट दृष्ट आवताहै जो चित्तसे अधिकतर है ताते ध्यान उपासना करने के योग्य है (ध्यान की उपासना करो) १॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद सो जो कोई ध्यानको ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवणकरो। हे नारद ध्यानके उपासकको जो कुछ ध्यानका विषय है (अर्थात् ध्यान करके साध्य है) सो सर्व प्राप्त होता है

अथ छान्दोग्यसप्तमप्रपाठके सप्तमखण्डः ॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदछं सामवेदमाथर्व्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यछं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांसर्पदेवजनविद्यां दिवंच पृथिवींचवायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाछंश्च मनुष्याछंश्च वयाछंसिच तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्या कीट पतंग पिपीलकं धर्म्मञ्चाधर्म्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधुचासाधुच हृदयज्ञञ्चाहृदयज्ञञ्चान्नञ्च रसञ्चेमञ्चलोकममुञ्च विज्ञानेनैवविजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति १ ॥

॥ः—अर्थात् ध्यान ब्रह्म की उपासना करने से चित्तकी एकाग्र निश्चलता अरु तिस करके धन विद्या प्रतिष्ठा पूजनीयता आसि सिद्धि फल ध्यानब्रह्म के उपासक को प्राप्तहोताहै —ः॥ ध्यानके विषय बिषे जिस उपासक को जिसकी कामना होती है तिसको सोई प्राप्तहोता है, यह ध्यानब्रह्म की उपासनाका फल है । इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह ध्यानही ब्रह्म है अथवा इस ध्यान का भी कोई अधिकतर है । तब सनत्कुमार कहते हुए कि हे नारद इस ध्यानका भी कोई अधिकतर है । इसप्रकार जब सनत्कुमार ने उत्तर कहा तब पुनः नारद कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस ध्यानका भी कोई अधिकतर है तो उसको भी आप मेरे अर्थ कृपाकरके कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके षष्ठ खण्डः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खण्ड सप्तम मन्त्र प्रथमका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद विज्ञान ध्यानकाभूय, कहिये

अधिकतर है ॥ अर्थात् शास्त्रों के अर्थविषयक ज्ञानको विज्ञान कहते हैं, अरु शास्त्रों के अर्थविषयक यथार्थ ज्ञानही ध्यानका कारण है क्योंकि ध्यान करने की रीति शास्त्र के अर्थ ज्ञान से ही होती है ताते विज्ञान ध्यान का अधिकतर है ॥ प्रश्न ॥ सो विज्ञान ध्यान का अधिकतर कैसे है ॥ उत्तर ॥ हे नारद विज्ञान करके ही ऋग्वेद जाना जाताहै जो यह ऋग्वेद है, इस प्रकार ऋग्वेदके लक्षणक्रमको जानने से तिसके अर्थ क्रमका ज्ञानहोताहै, तैसेही यजुर्वेद, सामवेद, अरु चतुर्थ अथर्वणवेद, यह चार वेद अर्थसहित एक विज्ञानकरके ही जाना जाताहै। अरु तैसेही, इतिहासपुराण (भारत) जिसको पंचमवेद कहते हैं सो अरु वेदोंका वेद (व्याकरण), पित्र्यं, श्राद्धकल्प, राशिं, गणितशास्त्र, दैवं, दैवी उत्पात ज्ञानशास्त्र, अरु, निधिं, महाकालादि निधिशास्त्र। अरु, वाकोवाक्यं, न्याय शास्त्र। अरु, एकायनं, नीतिशास्त्र। देवविद्या, निरुक्त। ब्रह्म विद्या, ब्राह्मणभाग वा शिक्षाकल्पादि वेदांग। अरु, भूतविद्यां, भूततन्त्रशास्त्र। क्षत्रविद्यां, धनुर्वेद। नक्षत्रविद्यां, ज्योतिष शास्त्र। अरु, सर्पदेवजनविद्यां, गारुडीविद्या गन्धर्वविद्या, शिल्प विद्या। यह सर्वविद्या उक्त लक्षणवान् विज्ञानकरके ही जानी जाती है॥ हे नारद स्वर्गलोक, पृथिवीलोक, वायु, आकाश, जल तेज, यह सर्व विज्ञान करके ही जाना जाताहै। अरु देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, तृण, वनस्पति, भ्रमर, कीट, पतंग पिपीलिका आदि सर्व स्थावर जंगम प्रजा सोभी एक विज्ञान करके ही जाना जाताहै। हे नारद तैसेही, धर्म्म, (शास्त्रविहितकर्म्म), अधर्म्म, (शास्त्रनिषिद्धकर्म्म), सत्य, (सत्यभाषण वा वस्तुका यथार्थ ज्ञान), असत्य, (सत्यसे विपरीत) अरु साधु, (सत्यादिधर्म्मका साधनेवाला), असाधु, (धर्म्मादिसाधन रहित) 'हृदयज्ञ, अरु, अहृदयज्ञ, अरु सर्व का आश्रय' अन्न अरु 'रस' यह लोक 'परलोक, आदि जो कुछ पदार्थ जाना

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वैसलोकान् ज्ञानवतोऽभिसिद्ध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इतिविज्ञानाद्वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥ इति सप्तमखंडः ७ ॥

जाताहै सो सर्व एक विज्ञान करके ही जाना जाताहै । अतएव हे नारद विज्ञान उपासना करने योग्यहै, ताते विज्ञानकी उपासना करो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई जिज्ञासु पुरुष विज्ञानको ब्रह्मजानकर उपासना करताहै तिसको जो फल प्राप्तहोताहै सो श्रवणकर । हे नारद जो विज्ञानको ब्रह्मबुद्धिसे उपासताहै सो उन लोकों को प्राप्तहोताहै कि जहां सम्पूर्ण बुद्धिमान् विज्ञानी रहते हैं । अरु उसको भी उस स्थान में सर्व विज्ञान प्राप्तहोताहै । हे नारद उस उपासकको यावत् विज्ञानके अन्तर पदार्थ है ,अर्थात् यावत् विज्ञान का विषय है, तिन सर्व में से जिसकी कामना करताहै सो उसको प्राप्त होता है (अथवा यावत् विज्ञानका विषयहै तिन सर्वका वो अधिष्ठाता होताहै) इस प्रकार जब योगेश्वर सनत्कुमारने कहा तब तिसकोश्रवणकर नारद प्रश्न करताहुआ ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह विज्ञान ही ब्रह्महै अथवा इस विज्ञानका भी कोई और अधिकतर है ॥ उत्तर ॥ सनत्कुमारने कहा हे नारद इस विज्ञानकाभीकोई अधिकतरहै। इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब पुनः नारद कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस विज्ञानका भी कोई और अधिकतरहै तो हे भगवन् सो भी आप मुझको कहिये ॥ २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके सप्तमखंडः ॥ ७ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके अष्टमखण्डः ॥

बलंवाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते स यदा बलीभवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोताभवति मन्ताभवति बोद्धाभवति कर्त्ताभवति विज्ञाताभवति बलेनवै पृथिवीतिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेनद्यौ बलेनपर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसी च तृणवनस्पतयःश्वापदान्या कीटपतंगपिपीलकं बलेन लोकास्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खण्ड अष्टम मन्त्र प्रथमका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद बल विज्ञानका अधिकतर है, अर्थात् बल जो है सामर्थ्य सो विज्ञानका अधिकतर है, हे नारद हे सौम्य अन्नके भोजन करनेसे उत्पन्न होता है जो मन अरु शरीर का सामर्थ्य तिसको बल कहते हैं, भोजनके न करने से मन वागादिकों के निर्बल होनेसे वेदादिक कुछ भी स्मरण होवे नहीं ॥ "नवैमा प्रतिभाति भो, इतिश्रुत्यन्तरे" ॥ ताते हे नारद यह लोकविषे प्रकट है कि एक बलवान् पुरुष सौ विज्ञानवान्को कम्पायमान (अपने वश) करताहै, जैसे एक सिंह बहुत से हाथियों को अरु जब शरीरविषे बल होताहै तब आचार्यकी सेवाशुश्रूषा होती है अरु जब आचार्य्य की सेवाशुश्रूषा करताहै तब सो सेवक आचार्य्य को प्रिय होताहै, अरु जब आचार्य्यको प्रिय होताहै तब आचार्य्यके निकटवर्त्ती होताहै। अर्थात् आचार्य्य उस अपने प्रिय सेवकको अपने निकटवर्त्ती करताहै, अरु जब आचार्य्यके निकट होताहै तब उसको सूक्ष्मदृष्टि होती है। अर्थात्

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारोभवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्तिभगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्र वीत्विति २ इति अष्टमखण्डः ८ ॥

सूक्ष्म वस्तुके जानने की सामर्थ्य वाला होताहै, अरु जब सूक्ष्म दृष्टि होतीहै तब आचार्य्य के उपदेश के श्रवण करनेका अधिकारी होताहै, अरु जब आचार्य्य के उपदेश को श्रवण करनेका अधिकारी होताहै तब निश्चयका अधिपति होताहै, अरु जब आचार्य्य के वाक्योंमें दृढ़ प्रतीतिवाला होताहै, तब (वेदादिकों का) ज्ञाता होताहै, जब जाननेवाला होताहै तब कर्मों का कर्त्ता होताहै, अरु जब कर्म्मों का कर्त्ता होताहै तब कर्म्मों के फल स्वर्गादि लोकोंका अधिपति (जय करने वा पावनेवाला) होताहै ॥ हे नारद बल जो है सामर्थ्य तिस करकेही पृथिवी स्थितहै, बलहीसे अन्तरिक्ष स्थितहै, बलही से द्यौ (स्वर्ग) स्थितहै, बलकरकेही पर्वत स्थितहैं, अरु बलकरकेही देवता अरु मनुष्य स्थितहैं, अरु बलकरकेही पशु, पक्षी, तृण, वनस्पतियां स्थितहैं, बलकरकेही भ्रमर, कीट, पतंग, पिपीलिका आदि जन्तु स्थितहैं, अरु बलकरकेही सर्वलोक स्थितहैं, (अर्थात् लोक परलोक अरु तदाश्रित स्थावर जंगम सर्वप्रजा स्थितहै) अतएव हे नारद बल उपास्य है (बलकी उपासनाकरो) १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्रदूसरेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई बलको ब्रह्मजान कर उपासनाकरताहै तिस उपासक को जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवण करो। हे नारद जो पुरुष बलबिषे ब्रह्मबुद्धिकरके तिसकी उपासना करता है तिसको यावत् बलका विषय (बलकरके साध्यवस्तु) है तिनमें से जिस वस्तुकी जैसी कामना वो उपा-

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके नवमखंडः ॥

अन्नंवाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्री नाश्नि याद्यद्युह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्त्ताऽविज्ञाता भवत्यथाऽन्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवत्य न्नमुपास्येति १ ॥

सक करता है सोई उसको उपासनाके प्रभावसे प्राप्त होता है, जो बलको ब्रह्म जानकर उपासना करता है 'तिसको, हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् यह बलही ब्रह्महै अथवा इस बलका भी कोई और अधिकतर है। इसप्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद इस बलका भी कोई अधिकतरहै। तब पुनः नारदने कहा कि हे भगवन् जो इस बलका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कहिये २ इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठकेअष्टमखंडः ८ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडनवम मन्त्र प्रथमका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद अन्न बलका भूय, कहिये अधिकतर है, अन्न को बलका हेतु होने से ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् अन्नको बलका हेतुपना कैसे है, इस प्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार उत्तर कहते हुए ॥ उत्तर ॥ हे नारद जिस करके बलका कारण अन्नहै तिसही करके अन्न बलका अधिकतरहै यद्यपि कोई पुरुष दश दिवस भोजन न करे तब अन्न भोजन करने के उपयोग से होता जो बल तिस बलके अभाव हुए सो पुरुष मरजावे अरु जो कदापि जीवता भी रहे तथापि वो बलके अभाव से इन्द्रियादिकों के अशक्त हुए 'अद्रष्टा'

सयोऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वैस लोकान् पानवतो ऽभिसिद्ध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगवो अन्नाद्भूय इत्य न्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके नवमखंडः ९ ॥

अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्त्ता, अविज्ञाता, होता है ॥ अर्थात् अन्न भोजन किये विना बलहीन हुआ पुरुष जो कदापि जीवता भी है तो इन्द्रियादिकों के अशक्त हुए न तो यथार्थ देखता है न यथार्थ सुनता है न यथार्थ मनन करता है न यथार्थ स्मृति होती है न यथार्थ उससे कर्म होता है न वो यथार्थ कुछ जानता है, मृतकप्रायः हुआ जीवता है, उसका सर्व्व व्यापार पूर्व से विपरीत होताहै । अरु जब बहुत दिवसपर्यन्त अन्न भोजन करता है तब पूर्ववत् द्रष्टाहोता है श्रोता होता है मन्ता होता है ज्ञाता होता है कर्त्ता होता है विज्ञाता होता है। ताते हे नारद अन्नको बलका हेतु होने से उसको ब्रह्म जानकर उपासना करो ॥ १ ॥

॥ अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष अन्नको ब्रह्मभाव से उपासता है तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवणकर । हे नारद जो पुरुष अन्नको बलका हेतु होने से ब्रह्म जानकर उपासना करता है सो पुरुष उस लोक को प्राप्तहोताहै कि जहां अन्न जलके दानकर्ता पुरुष प्राप्त होते हैं। अरु यावत् अन्नके अन्तर्गत (अन्न का विषय) वस्तु है तिस सर्व को अथवा तिनमें से जिसकी जैसी कामना करताहै तिस अपनी कामना के अनुसार प्राप्तहोता है, जो अन्नको ब्रह्म जानकर उपासना करता है। हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके दशमखंडः॥

आपोवाअन्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्या धीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्या नन्दिनः प्राणा भवंत्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्त्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्यौर्यत्पर्वता य द्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाछंसिच तृणवनस्पतयः श्वापदान्या कीट पतंग पिपीलकमाप एवेमा मूर्त्ता अ प उपास्स्वेति॥ १॥

तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यह अन्नही ब्रह्म है अ-थवा इस अन्न का भी कोई अधिकतर है। तब सनत्कुमारने उत्तर कहा कि हे नारद इस अन्न का भी कोई अधिकतर है। इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद ने पुनः कहा कि हे भगवन् यदि इस अन्न का भी कोई अन्य अधिकतरहै तो हे भगवन् सो भी आप मुझको कृपाकरके कहिये॥ २॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके नवमखंडसमाप्तः॥ ९॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडदशम मन्त्र प्रथमका॥

सनत्कुमार उवाच॥ जल अन्न का अधिकतर है क्योंकि जल अन्न का कारण है ताते। हे नारद जिस करके इस प्रकार है तिसही करके जिस कालमें अन्नकी हितकारी सुन्दर (यथेष्ट) वृष्टि नहीं होती तब तिस काल में सर्व प्राण (सर्वप्राणधारी जीव) अतिदुःखित होते हैं॥ प्रश्न॥ किस निमित्त से सर्व प्राणधारी दुःखित होते हैं॥ उत्तर॥ हे नारद जब जिस संव-त्सर बिषे यथेष्ट वृष्टि नहीं होती तब थोड़े अन्न के होने से वा थोडेभी अन्नके होने की आशाके न होने से (दुर्भिक्ष के त्रासले) सर्व प्राणी अन्नका अभाव अनुमानकर (जो सर्व

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्ते आप्नोति सर्व्वान् कामाछं स्तृप्तिमान् भवति यावदपांगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्योभूय इत्य द्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥

का जीवन है) अतिदुःखित होते हैं ॥ हे नारद जिसकाल में अन्नकी हितकारी सुन्दर यथेष्ट वृष्टि होती है तिसकालमें सर्व प्राणी अतिप्रसन्न सुखी होते हैं, क्योंकि धान्यादि अन्नकी हितकारी यथेष्ट वृष्टि होने से उनको बहुत से अन्नहोने की आशा अरु दुर्भिक्षके भयकी निवृत्ति होती है, ताते सुवृष्टिको देख सर्व प्राणी प्रसन्नचित्त होते हैं ॥ हे नारद यह जो जल से संभव हुए मूर्त्तहैं अर्थात् जलही भेदाकार मूर्त्त परिणामको पायाहोनेसे ,यह पृथिवी, यह अन्तरिक्ष, यह द्यौ, जो पर्वतहैं जो देवता हैं जो मनुष्य हैं, अरु जो पशु पक्षी तृण वनस्पतिहै, अरु जो चतुष्पादहै अन्य सर्पादि कीट पतंग पिपीलिकादि जो मूर्त्तहै सो जलही इनमूर्त्ताकार से सुशोभितहै । ताते हे नारद यह जल उपासना करने योग्यहै इसकी उपासनाकरो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जो कोई पुरुष इस जलको ब्रह्म जानकर उपासना करताहै तिसको जो फल प्राप्तहोता है सो श्रवण करो । हे नारद जो कोई पुरुष जलको ब्रह्मबुद्धि से उपासता है तिस उपासक के सर्वमनोरथ सिद्धहोते हैं अरु जो कुछ मध्य जल के है, अर्थात् यावत् जलका विषय है सो सर्व उसको प्राप्तहोता है । अथवा यावत् जलका विषय (कार्य्य) है तिन में से जिस वस्तुकी जैसी यह कामना करता है तिसके अनुसार इसको प्राप्त होताहै जो जल को ब्रह्म जानकर उपासना करता है, तिसको, हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमार ने

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकादशःखण्डः॥

तेजो वा अद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमुपगृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेजएव तत्पूर्व्वं दर्शयित्वाऽथापस्सृजते तदेतदूर्द्ध्वाभिश्च विद्युद्भिरह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेजउपास्येति १॥

जल ब्रह्मकी उपासना कही तब नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् हे नमस्कार करनेके योग्य यह जलही ब्रह्महै अथवा इस जलका भी कोई और अधिकतरहै। तब पुनः सनत्कुमार ने कहा हे नारद इस जलका भी कोई और अधिकतर है। तब पुनः नारदने कहा हे भगवन् जो इस जलका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कृपाकरके कहिये॥ २॥ इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके दशमःखंडः १०॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड एकादश मन्त्र प्रथमका॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद तेज जलका अधिकतर है क्योंकि तेज जलका कारण है ताते, अरु जिसकरके जल की योनि (उत्पत्ति स्थान) तेज है तिसही करके यह तेज वायुको रोकके अपने को निश्चलकर वायुको आकाशमें व्याप्त करता है॥ अर्थात् तेज (अग्नि) वायुको आकाशमें अवरोध कर अपनी ऊष्माको प्रकट करताहै॥ तिस काल में लौकिक पुरुष कहते हैं कि हे भाई इस समय वायुका अवरोध है अरु ऊष्मा (उमस) अधिक है अतएव प्रतीत होताहै जो अब वर्षा होवेगी। हे नारद यह लोक बिषे प्रसिद्ध ही है जो कारण के अभ्युदय देखने से कार्य्य का अनुमान विज्ञान होता है। ताते

सयस्तेजोब्रह्मेत्युपास्तेतेजस्वी वैसतेजस्वतोलोकान् भास्वतो ऽपहततमस्का नभिसिद्ध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्तिभगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २॥ इति एकादशोखंडः ११॥

तेजही वर्षासें पूर्व अपने ऊष्मारूप आत्माको (अपने ऊष्मारूप स्वरूपको) प्रकट देखायके तिसके अनन्तर जलको प्रकट करता है ॥ अर्थात् हे नारद वायु के अवरोधपूर्वक ऊष्मा के अधिक होनेसे अरु मेघकी दृष्टिगोचर न होके अन्य देशमें होने से उस मेघकी गर्जना अरु विद्युत्का वारंवार चमकना दूरसे देखके लौकिकपुरुष परस्पर में ऐसा कहते हैं कि हे भाई मेघकी गर्जना श्रवण होतीहै अरु यह बिजुली भी अतिशीघ्र शीघ्र वारंवार चमकती है, ताते अवश्य वर्षा होवेगी। अरु यह अग्नि ही है जिसने प्रथम अपनेको ऊष्मा अरु विद्युत् रूप से प्रकट देखाया है। अरु यह अग्नि जलका कारण होनेसे प्रथम अपने कारण रूपको देखाय तदनन्तर अपने कार्य्य जलको प्रकट करता है। ताते हे नारद अग्नि जलका अधिकतर (कारण) होने से उपासना करने योग्य है अग्नि को ब्रह्म जानकर उपासना करो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष तेजको ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिस उपासक को जो फल प्राप्त होता है सो श्रवण करो। हे नारद जो तेज को ब्रह्म जानकर उपासता है सो आप निश्चय करके तेजवान् होता है अरु तेजवान् लोक को पावता है। अर्थात् जो सूर्य्यादिवत् स्वयं प्रकाश लोक है कि जहां तमका अभाव है तिस लोक को प्राप्त होता है। अर्थात् तेज ब्रह्म के उपासक का अन्तर बाह्य

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसा वुभौविद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेनशृणोत्याकाशेनप्रतिशृणोत्याकाशेरमत आकाशेन रमतआकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्वेति ॥ १ ॥

का अन्धकार दूरहोताहै अरु वो स्वयंप्रकाश तमवर्जित दिव्य लोक को पावताहै। हे नारद जो तेज के अन्तर्गत (तेजका विषय वा तेज करके प्रकाशित) वस्तु हैं तिनमें से जिनकी जैसी कामना करता है सो उसको कामना के अनुसार प्राप्त होताहै, जो तेज को ब्रह्म जानकर उपासता है। हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने तेज ब्रह्म की उपासना सहित फल के कहा तब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह तेजही ब्रह्म है वा इस तेज का भी कोई और अधिकतर है। तब सनत्कुमारने कहा हे नारद इस तेज का भी कोई और अधिकतर है। तब पुनः नारद कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस तेजका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरेको कृपा करके कहिये ॥ २ ॥ इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकादशःखंडः ११ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खण्ड बारहवें मन्त्र पहिलेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद आकाश तेजका अधिकतरहै, क्योंकि वायु करके सहित तेजका कारण आकाशको होने से ॥:- अर्थात् पूर्व जो तेजको जल का अधिकतर कहा है तहां वायु सहित तेजको जानना क्योंकि तेजका अधिकतर (कारण) वायु है। तिसको यहां न कहके तेजका अधिकतर आकाश को कहाहै अतएव यहां ऐसा जानना कि वायु करके सहितही तेज का अधिकतर आकाश है-:॥ जैसे घटादिकों से मृत्तिका तैसे वायु करके सहित तेजका कारण आकाश है ॥:- अर्थात् तेजका कारण वायुहै, तिस अपने वायु रूप कारण करके सहित जो

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वैसलो कानूप्रकाशवतोऽसम्बाधानुरगायवतोऽभिसिद्धचति या वदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाश भूय इत्या काशाद्वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥

इति द्वादशःखंडः ॥

तेज है तिस तेजका अधिकतर आकाश है–:॥ अतएव तेजका कारण जो वायु तिससे भी अधिकतर आकाश तेजका अधिकतर है ॥ प्रश्न ॥ कैसे आकाश तेजका अधिकतर है ॥ उत्तर ॥ हे नारद आकाश बिषेही सूर्य्य चन्द्रमा दोनों तेजरूप अरु विद्युत् नक्षत्रगण अरु अग्नि, यह सर्व तेजरूप हुए आकाश के ही आश्रय आकाश के ही अन्तर्गत होते हैं। अर्थात् जो वस्तु जिसके अन्तर्गत होता है सो उस वस्तुका अधिकतर होता है (आश्रय होने से) ताते सूर्य्य चन्द्रादिक यावत् आकाश के अन्तर्गत वस्तु हैं तिन सर्वका अधिकतर आकाश है ॥ हे नारद आकाशही सें एक दूसरे को शब्द करता (पुकारता) है अरु आकाशही से दूसरा श्रवण करता है ॥:– अर्थात् बाह्याकाश के आश्रय शब्द होता है, अरु श्रोत्रान्तर अन्तर आकाश से श्रवण होताहै, अरु उभय आकाश की एकता से एक आकाशहीमें शब्द अरु श्रवण होताहै–:॥ अरु आकाश बिषेही अन्योन्य रमणकरते हैं, अरु बांधवादि वा स्त्री आदिके वियोगसे आकाश बिषेही रमण नहीं भी करते। अरु आकाशमें ही उत्पन्न होताहै अवकाश विना कुछ भी होता नहीं, ताते विशेष करके अंकुरादि आकाश केही आश्रय उपजते हैं ॥:–अर्थात् संयोग वियोग उत्पत्ति लय आदिक यावत् व्यवहार होताहै सो सर्व आकाश केही आश्रय आकाशही में होताहै अन्यत्र नहीं—: ॥ ताते हे नारद यह आ-

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके त्रयोदशःखंडः ॥

स्मरो वा आकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्नस्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन् यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथविजानीरन् स्मरेणवैपुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

काश उपासना करने योग्य है, आकाशको ब्रह्म जानकर उपासना करो १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष आकाशको ब्रह्म जानकर उपासना करता है तिसको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवण करो। हे नारद जो पुरुष आकाशको ब्रह्म जानकर उपासना करताहै सो उन लोकों को जो आकाशवत् हैं। अर्थात् आकाशका अरु प्रकाशका नित्य सम्बन्ध होनेसे अवकाश प्रकाश अरु अपाररूप लोकों को प्राप्त होता है, अरु अभय अरोग होताहै। जैसे आकाश अभय अरु अरोग है तैसेही वो उपासक होताहै। हे नारद जो कुछ आकाशके अन्तर्गत है तिनमें जिसकी जैसी कामना वो उपासक करताहै तिसको सो कामना के अनुसार प्राप्त होताहै, जो आकाशको ब्रह्मजानकर उपासना करता है,तिसको,हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने नारद से कहा तब नारद प्रश्न करता हुआ कि हे भगवन् यह आकाश ही ब्रह्म है वा इसका भी कोई और अधिकतरहै। तब सनत्कुमारने उत्तर दिया कि हे नारद इस आकाशका भी कोई और अधिकतरहै। इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद पुनः कहता हुआ कि हे भगवन् जो इस आकाशकाभी कोई और अधि-

कतर है तो हे भगवन् सोभी आप मेरे प्रति कृपाकरकेकहिये॥२॥

इति द्वादशःखंडः ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद स्मरण (स्मृति) आकाशका अधिकतरहै । अर्थात् स्मरण अन्तःकरणका धर्म्म है, जिसकरके आचार्यादिकों से श्रवण किया वचन सदा अन्तःकरण बिषे रहे ऐसा जो स्मरण वा स्मृति सो आकाशका अधिकतरहै, हे नारद जो स्मृतिहै तो आकाशादि सर्व हैं अरु जो स्मृति नहीं आकाशादि कुछ भी नहीं, क्योंकि आचार्य से श्रवण किया आकाशादिवस्तु अरु तिनके स्वरूप धर्म्म गुण लक्षण आदि सो जो स्मरणमों हैं तो आकाशादि सर्व हैं अरु जो कदापि श्रवण किये उन आकाशादिकों का स्मरण नहीं तो आकाशादिकों के विद्यमान होते सन्ते भी उसलेखे आकाशादि कुछ भी नहीं । अतएव हे नारद आकाशका अधिकतर स्मरणहै । हे नारद इस लोक बिषे स्मरण का अधिकतरपना प्रकटही दृश्य आवता है जिस करके तिस करकेही यद्यपि बहुत से पुरुषों का समूह एक स्थान बिषे स्थित होवे अरु वो अन्योन्यमें भाषणकरे अरु उनके भाषण किये वचनोंका स्मरण न होवे तो मानों उस पुरुषने किंचिन्मात्र कुछ भी शब्द श्रवण किया नहीं अरु तैसेही जो स्मृति नहीं तो प्रतीत भी उनको नहीं क्योंकि स्मरणसेही प्रतीत होती है तिसके अभाव से नहीं अरु स्मरणके अभावसे जानता भी नहीं अरु हे नारद जिसकालमें यथार्थ स्मरण होताहै तिस काल में श्रवणकरता होता है, प्रतीतकाकर्त्ता होताहै, जाननेवाला होता है । अर्थात् पूर्वकालमें श्रवणादि किया विस्मरण होजावे सो पुनः जिसकालमों स्मरणमों आवे तिसकाल मेंही वो श्रवणादिकिया होता है । हे नारद स्मरण से पुत्र पशुओंको पावता है॥ः–अर्थात् किसी पुरुषके पुत्रादिक चिरकाल से प्रदेशमें होवें अरु उस पुरुषको उन पुत्रादिकों का स्मरण होवे तो उन पुत्रादिकों को प्रदेशमें होतेसन्ते भी वो उस पुरुषको प्राप्तहै, अरु जो

सयः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति त्रयोदशःखंडः ॥

उस पुरुषको अपने पुत्रादिकों का स्मरणनहीं अरु उसके पुत्रादि प्रदेश से आय प्राप्तहुए भी होवैं तो भी उसको स्मरणके अभाव से प्राप्तहुए भी पुत्रादिक अप्राप्तही हैं-:॥ तातें हे नारद जो आकाशका भी अधिकतर स्मरण को जानके स्मरणकी उपासना करो ॥ १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरेका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जो कोई पुरुष स्मरणको ब्रह्म जानकर तिसकी उपासना करता है तिस उपासकको जो फल प्राप्त होताहै सो श्रवण करो। हे नारद जो पुरुष स्मरणको, जो आकाशका अधिकतर है, ब्रह्मजानकर उपासना करता है तिसको यावत् स्मरणके अन्तर्गत है सो सर्व प्राप्त होता है। अथवा यावत् स्मरणके अन्तर्गत (स्मरणका विषय) है तिनमें से जिसकी जैसी कामना वो उपासक करता है तिसकामनाके अनुसार प्राप्त होताहै। जो कोई स्मरण को ब्रह्मजानकर उपासना करता है, तिसको,। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् यह स्मरणही ब्रह्म है अथवा इसका कोई और अधिकतर है। तब सनत्कुमारने कहा हां इस स्मरण का भी कोई और अधिकतर है। तब पुनः नारद ने कहा हे भगवन् जो इस स्मरणका भी कोई और अधिकतर है तो हे भगवन् सो भी आप मेरे प्रति कृपाकरके कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके त्रयोदशःखंडः १३ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके चतुर्दशःखंडः ॥

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वैस्मरोमन्त्रानधीते कर्म्माणि कुरुते पुत्रछंश्च पशूछंश्चेच्छत इमञ्चलोक ममुञ्चेच्छत आशामुपास्येति १ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंडचौदहवां मन्त्रपहिला ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद आशा स्मरण का अधिकतर है। अर्थात् अप्राप्त वस्तुकी जो आकांक्षा तिसको आशा कहते हैं। ताते, आशा, तृष्णा, कामना, यह सर्व एकही के पर्य्याय नाम कहते हैं। अतएव आशा स्मरणका अधिकतरहै, क्योंकि जिस वस्तुकी आशा होती है तिसही का स्मरण होताहै, ताते अन्तःकरण विषे जब फलकी आशा होतीहै तब कर्म्मोंका स्मरणहोताहै तब तिन कर्म्मोंके करने के अर्थ प्रथम ऋग् यजु साम अरु अथर्व इन चारो वेदोंका सहित अंगोंके अध्ययनकरताहै (क्योंकि वेदके अंगोंके अध्ययन किये विना कर्म्मोंकी विधियथार्थ जानने में आवे नहीं) पश्चात् उसकर्म्मकी आशाके अनुसार कर्म्मोंको करताहै, तब तिन कर्म्मोंके आश्रय पुत्र पौत्रादिकोंको अरु गो अश्वादि पशुओं को ,अर्थात् इसलोक परलोकके विषयपदार्थोंको अपनी आशाके अनुसार इच्छताहै (तब तिसके अनुसार कर्म्मकरके तिसको प्राप्तहोताहै। अतएव हे नारद यह आशा स्मरणका भी अधिकतर होनेसे उपासना करने योग्यहै ताते आशाकी उपासना करो १॥

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति २ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई पुरुष आशा ब्रह्मकी उपासना करताहै तिस को जो फल प्राप्तहोताहै, सो श्रवण करो । हे नारद जो आशाको स्मरणसे भी अधिकतर ब्रह्म जान कर उपासना करताहै उसकी यावत् कामनाहै सो सर्वपूर्ण होती है, अर्थात् वो उपासक धनादि जिस वस्तु की प्रार्थना (इच्छा) करताहै सो आशाकरकेही पावताहै ॥:-नामसे स्मरण पर्यन्तपूर्व पूर्वसे उत्तरोत्तर जो अधिकतरहै सो सर्व एक आशाकरकेही सिद्ध होताहै अन्यथा नहीं -:॥ हे नारद आशा ब्रह्म के उपासकको यावत् आशाके अन्तर्गत पदार्थ (आशाका विषय, आशासे प्राप्त होने योग्य) है तिनमें से जिसकी कामना करताहै सो उसको कामनाके अनुसार प्राप्तहोताहै, जो आशाको ब्रह्मबुद्धि से उपासताहै 'तिसको' हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद प्रश्न करताहुआ कि हे भगवन् यह आशाही ब्रह्महै अथवा इस आशाका भी कोई और अधिकतरहै । तब सनत्कुमार ने उत्तरदिया कि हे नारद हां इस आशाका भी कोई और अधिकतरहै । इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब तिसको श्रवण कर पुनःनारद कहताहुआ कि हे भगवन् जो इस आशाका भी कोई और अधिकतरहै तो हे भगवन् सो आप मेरे प्रति कहिये २ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके चतुर्दशःखंडः ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तम प्रपाठके पंचदशःखंडः ॥

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्व्वꣳ समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणोहपिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्य्यः प्राण ब्राह्मणः १ ॥

अक्षरार्थ ॥

प्राण आशाका अधिकतरहै जैसे अरानाम काष्ठ (रथचक्र की) नाभि बिषे अर्पित होते हैं, तैसे प्राण बिषे (इन्द्रियादि) सर्व अर्पित हैं, प्राण जो है सो प्राणकरके आवता है प्राणजो है सो प्राणको देता है प्राणके अर्थ देता है प्राणही प्रसिद्ध पिताहै प्राण माताहै प्राणभ्राताहै प्राणस्वसाहै प्राणआचार्य्यहैप्राण ब्राह्मणहै १ ॥

भावार्थ खंड पन्द्रहवें मन्त्र पहिले का ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद प्राण आशाका अधिकतर है । क्योंकि नामसे लेके आशापर्य्यन्त कार्य कारणता करके वा निमित्त नैमित्तिकता करके उत्तरोत्तर अधिकतरत्व करके स्थित है ॥:—अर्थात् पूर्व पूर्वका उत्तरोत्तर कारण वा निमित्तहै, अर्थात् कर्म्मका कारण मन्त्रका कारण नाम नाम उच्चारणका कारण वा निमित्त वाणी वाणी के प्रवृत्त होनेका निमित्त कारण मन । इसप्रकार पूर्व पूर्वका उत्तरोत्तर जो जिसका कारण वा निमित्त है सोई उसका अधिकतर है —:॥ सो नामसे आशापर्य्यन्त सर्व जैसे सूत्रबिषे मणिगण तैसे प्राणबिषे परोये हुए प्राणके आश्रय स्थितहै ॥:— वागादि इन्द्रियों का सर्व व्यापार प्राण के आश्रय होताहै प्राणविना किसी का भी व्यापार बने नहीं ' जैसे सूत्रसे पृथक् हुए मणिगण बिखर जाते हैं तैसेही प्राण

विना वागादि सर्व इन्द्रियां बिखर जाती हैं किसी भी कार्य में समर्थ होवे नहीं, ताते इन्द्रियादि सर्व प्राण बिषे ग्रथित (परोये) हुए स्थितहैं—:॥ ताते हे नारदजी ऐसा जो प्राण है सोई आशाका अधिकतर है॥ प्रश्न॥ हे भगवन् इस प्राणको आशाका अधिकतरपना कैसे है सो आप कृपाकरके आज्ञा करिये॥ हे सौम्य इसप्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार उत्तर कहतेहुए॥ उत्तर॥ हे नारद अब हम तुमको प्राण का अधिकतरपना एक दृष्टान्त द्वारा कहताहौं तिसको श्रवण कर। हे नारद जैसे लोकबिषे निश्चय करके रथके चक्र (पहिये) के अरानाम काष्ठदंड रथचक्र की नाभि (मध्यके काष्ठ) बिषे समर्पित कहिये सम्यक् प्रकार प्रवेशको पाय स्थित होते हैं हे नारद तैसेही इस लिंग संघात प्राणबिषे कि जो देह बिषे मुख्य है, अरु जिसबिषे सत् चैतन्य परादेव ने इस नामरूप के प्रकट करने की इच्छासे, जैसे आदर्श बिषे पुरुषका अरु जलादिकों बिषे सूर्यादिकों का प्रवेश होताहै तैसे अपने आभास जीवरूप से आपही प्रवेश करताहै। अरु जैसे किसी महाराजा का तैसे सर्वाधिकारी ईश्वरका॥ :—अर्थात् जैसे किसी महाराजाधिराज चक्रवर्ती राजाका सर्वाधिकार सम्पन्न मुख्य प्रधान होताहै—:॥ तैसेही॥ "कस्मिन्न्वह उत्क्रांतेउत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत इति"॥ यह प्रश्न उपनिषद्की श्रुतिप्रमाण सर्व के प्रथमके एक अद्वैत सत् परमात्माने विचार किया कि किसके उत्क्रमण (निकलने) से मेरा उत्क्रमणहो अरु किसके स्थिर होनेसे मेरा स्थित रहनाहो (अर्थात् गति स्थिति से रहित सर्वविक्रिया वर्जित जो मैं तिस मेरी किसके निमित्त से गति स्थितिहो, ऐसा विचार अपनी गति स्थितिके अर्थ अरु अन्य दर्शन श्रवणादि व्यापार की सिद्धि के अर्थ प्रथम अपना मुख्य प्रधान स्थानापन्न प्राणको सृजताहुआ जो चैतन्य परमात्माकी छायावत् है। अथवा जिस प्राण बिषे

अपनी छाया (आभास)रूपसे प्रवेश कियाहै । वा जो राजाके प्रधानवत् परमात्माकी छाया इन्द्रियादि सर्वसंघात का ईश्वर है ॥ हे नारद सो जैसे रथके चक्र (पहिये) के अरानाम काष्ठ बिषे नेमि (पहिये के ऊपरका काष्ठ चक्र जो मार्ग से स्पर्श करता घूमता चलताहै) अर्पित होताहै, अरु वो अराचक्र के मध्य की नाभिबिषे अर्पित होते हैं। हे नारद तैसेही इतनी भूतमात्रा (शब्दादि तन्मात्रा अरु पृथिव्यादि महाभूत बिषे) अरु प्रज्ञामात्रा (शब्दादि विषय अरु बुद्धि विषे अरु तिनकी जनक इन्द्रियों विषे प्राण प्रवेशितहै । अथवा प्राणरूप सूत्रबिषे उक्त भूतमात्रा अरु प्रज्ञामात्रा समष्टि व्यष्टिसर्व) अर्पित हैं ॥ तथाच ॥ "प्रज्ञामात्रा प्राणे अर्पिता स एव प्राणएव प्रज्ञात्मेति । कौशीतकी उपनिषद् बिषे " ॥:—अर्थात् जैसे रथचक्र की नाभि के आश्रय अरा अरु अराओं के आश्रय चक्रकी नेमि होती है तहां जो चक्रके मध्यकी नाभि टूटजाय तो तदाश्रित अरा अरु अराश्रित नेमि यह सर्व छिन्न भिन्न होजावे, तैसेही हे सौम्य प्राणरूप नाभिके आश्रय मन इन्द्रियादि अरा अरु तदाश्रित शरीररूपा नेमि अपने २ व्यापार में चलते हैं, अरु जो कदापि उनसे प्राणरूप नाभि पृथक् होजावे तो यह सर्व अरा नेमि छिन्न भिन्न होके अभाव होजाय, अतएव यह सर्व प्राणही के आश्रय है—:॥अतएव हे सौम्य जिस यह प्राण बिषे सर्व समर्पित हैं सो यह प्राण अपरतन्त्रहै (परतन्त्र नहीं) प्राण अपनी स्वशक्ति करकेही जो जो आवता है प्राण बिषे जो गमनादि क्रियाहै सो अन्य किसीकी भी करीहुई नहीं किन्तु प्राण अपनीही सामर्थ्य से गमनादि क्रिया करता है । अरु सर्वक्रियाकारक फल इनका जो भेदहै सो प्राणही है अर्थात् प्राणसे बहिर्मुख कुछ भी नहीं, यह इस प्रकरणका अर्थहै ॥ अतएव हे नारद प्राण जो है सो प्राणको (अपने आत्मभूतको) देता है ,अर्थात् प्राण जो देता है अपने से उद्भूतहुए वा प्राणधारी को देताहै । अरु जिसकेअर्थ

सयदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वा चार्य्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्य्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसि २॥

देता है सो भी प्राणही है, एतदर्थ प्राणही पिताहै प्राणही माता है प्राणही भ्राता है प्राणही स्वसाहै प्राणही आचार्य्यहै प्राणही ब्राह्मण है, ॥:-अर्थात् माता पिता भ्राता भगिनी आचार्य्य ब्राह्मण, यह सर्व जो धनादि देनेके पात्रहैं सो भी सर्व प्राणही है अरु इनके अर्थ जो कुछ दियाजाता है सो भी प्राणही है, अरु जो देताहै सो भी प्राणही है, प्राण विना कुछ भी नहीं॥ प्रश्न॥ नारद उवाच, हे भगवन् पिता आदि शब्दों का प्रसिद्ध अर्थ का विषय जे देह तिस बिषे प्राण शब्दका विषयपना कैसे है सो आप कृपाकरके कहिये॥ उत्तर॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जिन शरीरों बिषे पिता आदि शब्दों का प्रयोग है सो प्राणके होते संतेही है प्राणके उत्क्रमण हुए शरीरों बिषे पिता आदि शब्दों का प्रयोग अघटित है ॥:--अर्थात् यावत् शरीर में प्राण रहताहै तावत् वो शरीर पिता आदि नामों से कहाजाताहै, अरु जब शरीर से प्राण निकल गया अरु शरीर विद्यमान भी रहा तथापि उस शरीर बिषे पिता आदि शब्दोंका प्रयोग बने नहीं, अरु यदि उस शरीर को पिता आदि शब्दों से कहते भी हैं तो भी मेरा पिता मरगया इसप्रकार मृतक विशेषण युक्तही पिता शब्दका प्रयोग मृतकशरीर बिषे होता है, ताते पिता आदि शब्दोंका विषयत्व मुख्यता करके प्राणबिषेही घटित है-:॥ १ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो यदि पिताको वा माता को वा भ्राता को वा स्वसा को

वा आचार्य्य को वा ब्राह्मण को किंचित् निन्दाके वाक्य कहै तब उसको विवेकी पुरुष धिक्कार कहते हैं तू निश्चय करके पिता माता भ्राता स्वसा आचार्य्य अरु ब्राह्मण इनका हनन कर्त्ताहै २ ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरेका

नारद उवाच ॥ हे भगवन् पितादि शब्दका विषयपना प्राण को कैसे है ॥ उत्तर॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद अब इसको भी श्रवणकरो, जो कोई पुरुष अपने पिता माता भ्राता भगिनी आचार्य्य ब्राह्मण जो पूजने योग्य हैं तिनको अनकहना वचन (मर्मभेदी वाक्य) कहै कि जिस करके श्रोताके अन्तःकरण बिषे अतिखेद उपजे, तब उस वक्ताके निकटवर्त्ती विवेकी पुरुष (जो उसको मर्मभेदी कठोरवाक्य कहने के जानने वाले हैं) सो उसको कहते हैं कि तूने यह अतिनिन्दित कर्म किया है ताते तुझको धिक्कार है, मानो अपने पिता आदिकों का हनन कर्त्ता तुही है, माताका हननकर्त्ता तुही है, भ्राताका हननकर्त्ता तुहीहै, स्वसाका हननकर्त्ता तुहीहै, आचार्य्य का हननकर्त्ता तुहीहै, ब्राह्मण का हननकर्त्ता तुहीहै । अर्थात् जिन प्राणधारियों को दुर्वचन कहके तू उनके अन्तःकरण बिषे खेद उपजावता है तिनका मानो तू हननकरने वालाहै, अतएव तुझको धिक्कार है । हे नारद इस प्रकार प्राण के माहात्म्य को जानने वाले जे विवेकी पुरुष हैं सो उस निन्दक अविवेकी पुरुष के प्रति कहते हैं । हे सौम्य इस श्रुति के कहने का तात्पर्य्य यहहै जो कोई पुरुष अपने माता पिता आदि ज्येष्ठ श्रेष्ठों को न कहने योग्य दुर्वाक्यकहके उनके प्राणको दुःख देताहै सो अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठों के हननरूप पापकर्मों का कर्त्ता होताहै तिसही करके वो प्राण के वेत्ता विवेकी पुरुषों करके धिक्कार करने योग्य होताहै । अतएव अपने माता पिता आदि ज्येष्ठ श्रेष्ठ पूजनीय पुरुषों को, अरु साधारण सर्व प्राणधारियों को दुर्वाक्य कहके उनके चित्तको खेद कदापि उपजावना (देना) नहीं २ ॥

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यति सन्दहेन्नैवेनं ब्रूयुः पितृहासीति नमातृहासीति न भ्रातृहा सीतिनानास्वसाहासीति नाचार्य्यहासीति न ब्राह्मणहा सीति ३ ॥

अक्षरार्थ॥

हे नारद यद्यपि पितृ आदि अन्य शूल (व्यथा) करके शरीरको त्यागते हैं तब उनके मृतक शरीरों को वोही पुरुष दग्ध (भस्म) करता है अरु प्राण उस मृतक शरीर बिषे नहीं होते तब उसको कोई भी ऐसा नहीं कहता जो तू पितादिकों का हननकरनेवाला है ३॥

भावार्थ मन्त्र तीसरे का॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद जब उस निन्दक पुरुषके कि जो अपने मातापिता आदिकों को दुर्वाक्यकहके मर्मवेधी क्लेशकादेने वालाहै, पिता आदिक जब शरीर को त्यागते हैं तब वोही पुरुष उनके शरीरों को दाह भस्मकरने रूप अतिक्रूरकर्म्म को करता है तथापि उन मृतक हुए शरीरों में प्राण के न होने से उस पुरुष को कोई भी विवेकी पुरुष ऐसा नहीं कहता जो तूने यह अपने पिता आदिकों के शरीर दाह करने रूप निकृष्ट कर्म किया है तू अपने पिता माता भ्राता भगिनी आचार्य्य ब्राह्मण आदिकों का हनन कर्त्ता है॥ अतएव हे नारद पिता माता भ्राता स्वसा आचार्य्य ब्राह्मण आदि सर्व प्राणही है, शरीर नहीं ॥:-हे सौम्य उक्त श्रुति के कहने से यह जानना जो किसी भी प्राणधारी को किसी भी प्रकार का खेद देना नहीं, अरु किसी भी अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठों को दुर्वाक्य कहके उनके प्राणको क्लेशदेना नहीं क्योंकि दुर्वाक्य कहके जो अपने ज्येष्ठ श्रेष्ठों को क्लेश पहुँचा-वना है सोई उनका हनन करना है ताते किसी भी प्राणधारी

प्राणोह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नति वादी भवति तञ्चेद् ब्रूयुरति वाद्यसीत्यति वाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ४ ॥

इति पंचदशः खंडः ॥

को कायिक वाचिक मानसिक अर्थात् काया वाचा मनसा, करके खेद देना नहीं ३ ॥

अक्षरार्थ ॥

सो जो कोई इसप्रकार इस प्राणको श्रेष्ठ जाने जो प्राणही यह सर्व होता है ऐसा देखे ऐसा मनन करे ऐसा जानके कहै सो अतिवादी होता है। अरु जो कोई उसको कहै जो तू अति वादी है, तब वो इच्छता है जो इसको अंगीकार कर कहो जो मैं अतिवादी हौं ४ ॥ इति पञ्चदशः खंडः ॥

भावार्थ मन्त्र चतुर्थका ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो जो कोई निश्चय करके सम्यक् प्रकार प्राणका जाननेवाला है जो प्राणही यह सर्व हुआ है ऐसे जैसा श्रुतिने कहा है तैसे प्राण विद्याके फल को प्रत्यक्ष देखता है अरु प्राण की उपपत्ति (समीप प्राप्ति से मनन करता है, अरु प्राण की उपपत्ति से संयोग करके यह ऐसेही है इसप्रकार निश्चय मनन विचारसे प्राणको जानता है, क्योंकि सम्यक् मनन विचार से ही उत्पन्न हुए विज्ञान करके ही शास्त्र का अर्थ निश्चित देखा होता है, अथवा मनन विज्ञान दोनों करके ही सम्यक् प्रकार शास्त्रका अर्थ निश्चय अरु देखा (अनुभवकिया) होता है। अतएव इस कहे प्रकार प्राण के माहात्म्यका यथार्थअनुभावि अतिवादी होताहै अर्थात् नामसे आदि लेके आशान्तपर्य्यन्त जो पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर अधिकतर हैं तिन सर्वको उल्लंघन करके सर्वसे अधिकतर प्राणके माहात्म्यको

अथछान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षोडशःखंडः ॥

एषतु अति वदति यःसत्ये नाति वदति सोऽहं भग वःसत्ये नाति वदानीति सत्यन्त्येव विजिज्ञासितव्यमि ति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति षोडशःखंडः ॥१६॥

कहने के स्वभाववाला होताहै। अरु जो कोई विवेकी पुरुष उसको ऐसा कहे कि तू अतिवादी है, अर्थात् सर्वदा सर्व करके प्राण जो सर्व्वात्मा सर्व्व से ज्येष्ठ श्रेष्ठ है तिसके कहने के स्वभाववाला होने से तू अतिवादी है, क्योंकि नाम से आशा पर्य्यन्त सर्व से पृथक् सर्व्वका अधिकतर वर्तमान प्राण को ही कहताहै ताते। हे सौम्य इस कहे प्रकार प्राणके देखने का स्वभाव है जिसका तिसको लोक अतिवादी कहते हैं, कि तू अति वादी है। तब वो उक्त प्रकार का प्राणवित् पुरुष ब्रह्मा से तृण पर्य्यन्त समस्त जगत्का आत्मा प्राण मैं हूं, इस प्रकार कहता है कि मैं अतिवादी हों ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् ऐसा वो क्यों कहताहै ॥ उत्तर ॥ हे नारद यथोक्त प्रकार प्राणको यथार्थ जान के अहमग्रे उपासना करनेवाला उपासकहै सो ब्रह्मा से तृण पर्य्यन्त समस्त जगत्के ईश्वर प्राण को अपना आप आत्मा जानता है ताते अपने आप को अतिवादी कहताहै ॥ ४ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचदशःखंडः १५ ॥

अक्षरार्थ॥

हे नारद यह तो सत्य को जाने तिसको अतिवादी कहते हैं ॥ नारद उवाच ॥ हे भगवन् सो मैं उस सत्को जानने की इच्छा करता हों ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वो सत्य भाषण अरु सत्यके विज्ञान सें जानने योग्यहै ॥ नारद उवाच॥ हे भगवन् मैं विज्ञानके जानने को इच्छताहों ॥ १ ॥ इति षोडशःखंडः ॥

॥ भावार्थ खंड षोडशवेंका ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब सनत्कुमारने नारदकेप्रति प्राणका सर्व्व से अधिकतरपना सहित प्राण विद्या के माहात्म्य के वर्णन किया तब सो यह नारद (जो सनत्कुमार के पास आत्मविद्याके अर्थ जिज्ञासापूर्वक आयाहै) सो अपने उपास्य प्राणात्माको सर्व से अधिकतर श्रवणकर उसको सर्व से अधिकतर जान उससे अधिकतर अन्य कोई नहीं ऐसा निश्चयकर आगे प्रश्नकरने से उपराम तूष्णींहोताहुआ ॥:—अर्थात् नारद पूर्वप्राण कोही सर्वसे अधिकतर परमश्रेयजानता मानताथा परन्तु तिसके जानने मानने से अपनेको कृतकृत्यशान्तात्मा न मानताथा प्राण को चंचल अरु जड अनात्म धर्म्मवान् होनेसे, ताते सनत्कुमार के पास प्राप्तहो आत्मज्ञानार्थ प्रश्न करताहुआ, तब सनत्कुमार ने सोपानक्रम से प्रथम नामादिकों को ब्रह्मज्ञानके उपासना कर्त्तव्य कहा अरु जिसको जिसको सनत्कुमारने ब्रह्मभाव से उपास्य कहा तहांही तहां नारदने प्रश्नकिया कि हे भगवन् यही अधिकतरहै वा इसका भी कोई और अधिकतरहै जो होय तो सो भी आप मेरे प्रति कहिये। अरु जब सनत्कुमारने प्राणको अरुतिसके माहात्म्यको नामादि सर्वसेअधिकतर सर्व्वात्माकहा तब तिसको श्रवणकर अपने उपास्य प्राणात्माको सर्व से श्रेष्ठ जान इससेपरे और कोई नहीं ऐसा निश्चयकर आगे को प्रश्न करने से उपराम तूष्णीं होताहुआ, ताते नारद पूर्व से प्राणको ही सर्व्वात्मा ब्रह्म जानकर उपासना करनेवाला प्राणका उपासकथा—:॥ प्राणके माहात्म्यको श्रवणकर पुनः यह प्रश्न नारद ने पूर्ववत् न किया कि हेभगवन् इसप्राणसेभी कोई और अधिकतर है (जो होय तो सो भी आप मेरेप्रति कहो) प्रश्न करनेसे उपराम तूष्णीं होताहुआ॥ तब नारदको प्रश्न करनेसे उपरामहुआ देख सनत्कुमारने विचारकिया कि यह नारद विकारभूत अनृत(मिथ्या) ब्रह्मके विज्ञानसे सन्तुष्टहो तूष्णींहुआहै। परन्तु यह प्राणके

विज्ञानसे अपनेको कृतार्थ मानके तूष्णींहुआ है अतएव यह वास्तवसे कृतार्थहुआ नहीं, अरु यह कृतार्थ होनेके अर्थ मेरे निकट आयाहै, अरु कृतार्थ तो सो होता जो परमार्थ सत्य को जानके तिसके कहनेके स्वभाववाला अतिवादी होताहै तातें इसनारदके प्रश्न किये विनाही भूमाख्य परमतत्त्वका उपदेशकर इसको वास्तवसे कृतार्थकरनाचाहिये,अरु अतिवादी तो सो होताहै जोमैं आगे कहौंगा तिसको सम्यक् प्रकार जानके कहनेके स्वभाववाला होताहै क्योंकि वोवस्तु प्राणादिसर्वसे अतिशय अधिकतरहै,तातें परमार्थ करके प्राणहीको जानके तिसके कहनेके स्वभाववाला अतिवादी होता नहीं, अरु मैंने जो प्राणके ज्ञाताको अतिवादी करके कहाहै सो नामादि आशापर्यन्त के जाननेवाले की अपेक्षासे कहाहै वास्तवसे नहीं, जो भूमानामवाले परमार्थ तत्त्वको सम्यक् प्रकार जानके जो अन्य जिज्ञासुओं प्रति कहताहै सोअतिवादी होताहै ॥:—अर्थात् जो भूमानामवाला परमार्थ तत्त्व शास्त्रों के संस्काररहित साधारण पुरुषों की वाणी आदिकों का विषय नहीं, अथवा " यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे जिसके प्रतिपादन करने में असमर्थ वाणी जहांसे लौट आवती है तिस तत्त्वको आचार्य्य द्वारा श्रवण मनन द्वारा यथार्थ अनुभव करके जो अन्य जिज्ञासुप्रति कहताहै तिसको अतिवादी कहते हैं—: ॥ हे सौम्य इस प्रकार विचार योगेश्वर परमब्रह्म निष्ठ भगवान् सनत्कुमार नारद प्रति कहते हुए ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद यह तो सो पुरुष अतिवादी होता है जो सत्य भाषणादि साधन सम्पन्न हुआ परमार्थ सत्य वस्तुका सम्यक् विज्ञानवान् हुआ सत्य को कहताहै हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब तिस को श्रवणकर नारद कहताहुआ कि हे भगवन् जो परमार्थसत्य वस्तुके विज्ञानकरके कहताहै सो परमार्थ से अतिवादी होताहै तो सो मैं जो अपने को कृतकृत्यता के अर्थ आपकी शरण को

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके सप्तदशःखंडः ॥

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदती नाविजानन् सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विजानन्त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति १॥ इति सप्तदशःखंडः १७॥

प्राप्त हुआहौं सो परमार्थ सत्यकरके परमार्थ से अतिवादी होना इच्छताहौं, ताते जिस प्रकार मैं परमार्थसे सत्यके कहनेके स्वभाववाला अतिवादी होवों सो आप मुझको उपदेश करिये। हे सौम्य इसप्रकार जब नारदनेकहा तब पुनः सनत्कुमार कहते हुए ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जो तू इसप्रकार सत्य करके अतिवादित्वपने को इच्छताहै तो तहां प्रथम परमार्थ सत्यही जानना योग्यहै जो परमार्थ सत्य क्याहै । इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब वो नारद पुनः कहताहुआ कि हे भगवन् जो आप आज्ञाकरतेहौ सो सत्यही है, हे भगवन् मैं विशेष करके सत्यको जानने की इच्छा करताहौं ताते आप मुझको सत्य जनाइये १ ॥

इति छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षोडशःखंडः ॥

अक्षरार्थ ॥

जबहीं सत्यको जानताहै तब सत्य कहताहै सत्यको न जानके भी सत्यकहताहै सो परमार्थसे सत्यको नहीं कहता ताते सत्यको जानके कहताहै सोई सत्यका कहताहै । ताते विज्ञानही जाननेयोग्यहै । हे भगवन् मैं विज्ञानको जानना इच्छताहौं ॥१॥ इति सप्तदशःखंडः ॥ १७ ॥

भावार्थ खंड सप्तदशवें का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जब यह जिज्ञासु पुरुष परमार्थ सत्यको विशेषकरके जानताहै कि यह परमार्थसे सत्य है

तब मिथ्या जो विकारजात वाचारम्भणमात्र (तेजादि) तिस को त्यागके तिस नामरूप विकार बिषेही स्थित वा विकारका आश्रय परमार्थ से एकही सत् सत्य है ॥:-अर्थात् जैसे नाम रूपात्मक घटरूप उपाधिका आश्रय सत्य एक मृत्तिकाही है, तिस परमार्थ सत्यरूप मृत्तिका बिषे नामरूपात्मक घटरूप उपाधि जो केवल वाचारंभणमात्रही है तिसको त्याग के तिस उपाधि बिषेही स्थित अरु तिस उपाधि का आश्रय जो परमार्थ से सत्य एक मृत्तिका तिसको यथार्थ जानके कहता है सोई सत्य कहताहै-:॥ शंका ॥ ननु ॥ "प्राणावै सत्यं तेषामेष सत्यमिति" ॥ इस अन्य श्रुतिकरके प्राणादि विकारको भी सत्य कहा है ताते जो प्राणको सत्य कहताहै सो सत्यवादी क्यों नहीं ॥ समाधान ॥ तू सत्य कहताहै परन्तु श्रुत्यन्तरमें प्राणादि विकार को सत्य करके कहा है सो परमार्थ से सत्यनहीं कहा (उत्पत्ति विनाशवान्होनेसे)॥ प्रश्न ॥ तब उसको सत्य कैसे कहाहै ॥ उत्तर ॥ विकारजात नामरूप कार्य्यको वा प्राणादिकोंको सत्यता है सो उनके सत्य अधिष्ठानकी सत्यता से है परमार्थ से नहीं हे सौम्य विज्ञान उसको कहते हैं कि जो वास्तव में सत्य है तिसको सत्य अरु जो असत्यहै तिसको असत्य यथार्थ जानना। अर्थात् उपनिषदोंके सूक्ष्म रहस्यों को यथार्थ जानने से वास्तव करके सत्यहै सो सत्य अरु असत्यहै सो असत्य भासता है, अतएव उपनिषदोंके यथार्थज्ञानको विज्ञान कहते हैं। ताते हे नारद विज्ञानही प्रथम जानने योग्य है। हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने नारदसे कहा तब नारदने कहा कि हे भगवन् जो ऐसेही है तो मैं विज्ञानका ज्ञाता होना इच्छता हौं, ताते मैं विज्ञानको जानौंगा ॥ हे सौम्य इसप्रकार सत्यादि पूर्वपूर्वके उत्तरोत्तर हेतुहै। अर्थात् परमार्थ सत्यके जानने के विषय में विज्ञान हेतुहै, विज्ञानकी प्राप्तिके विषय में मनन हेतु है ॥ इस प्रकारजानना ॥ १ ॥ इति सप्तदशःखंडः १७ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके अष्टादशःखंडः ॥

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति १ ॥ इतिअष्टादशःखंडः १८ ॥

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकोनविंशो व विंशःखंडः ॥

यदा वै श्रद्दधत्यथ मनुते नाश्रद्दधन् मनुते श्रद्दध देव मनुते श्रद्धत्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति १ ॥ १६ ॥

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठंश्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेवश्रद्दधाति निष्ठित्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति १ ॥ २० ॥ इति १६–२० खंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड अष्टादश का १८ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जबहीं यह जिज्ञासु पुरुष मनन करता है तबहीं विज्ञानको प्राप्त होता है, न मननकरने से विज्ञान को पावता नहीं। अरु मनन उसको कहते हैं जो आचार्य्यते श्रवण कियाहै तिसको सहित विचार के अरु तर्कके अरु उक्तियोंके दृढ करना, अतएव मननकरकेही विज्ञानको प्राप्तहोताहै ॥ नारद उवाच ॥ हे भगवन् मैं मननको जाननेकी इच्छा करताहौं मैं मनन करोंगा ॥ इति अष्टादशःखंडः १८ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड उन्नीस व बीस का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जबहीं यह जिज्ञासुपुरुष श्रद्धा (अपने आचार्य्य के वाक्यपर दृढ विश्वास) करता है तब मननको प्राप्त होताहै, अरु आचार्य्य का वाक्य उपदेश, वोही

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके एकविंशो व द्वाविंशःखंडः॥

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति २१॥

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखंलब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखंत्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति २२॥

होताहै जो वेदोक्त होताहै। अरु जो आचार्य्यों के वाक्यमें विश्वास नहींकरता तो मननकोभी नहीं पावता। अतएव हे नारद श्रद्धाही से मननको प्राप्त होताहै। अतएव श्रद्धाको जानना योग्य है। इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद कहता हुआ कि हे भगवन् मैं श्रद्धाको जानना इच्छताहौं अर्थात् मैं श्रद्धा करोंगा १। १६॥

सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद जब यह जिज्ञासुपुरुष निष्ठा को करता है तब श्रद्धाको प्राप्त होताहै अरु जो निष्ठाको नहीं करता तो पारमार्थिक श्रद्धाको पावतानहीं। तहां निष्ठा उसको कहते हैं आचार्य्य (गुरु) की शुश्रूषा (सेवा) अरु गुरुके कहे प्रमाण ब्रह्मचर्य्यादि साधनपूर्वक मनन विचारका दृढ़ अभ्यास करना। जब उक्तप्रकारकी निष्ठाको करताहै तब पारमार्थिक श्रद्धाको पावता है, अतएव हे नारद निष्ठाही जानने योग्यहै। इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद कहताहुआ कि हे भगवन् मैं निष्ठाको जानना इच्छताहौं, मैं निष्ठाकरौंगा १। २० इति एकोनविंशो व विंशःखंडःसमाप्तः॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड इक्कीस व बाईस का॥

सनत्कुमार उवाच॥ हेनारद जो कोई जिज्ञासु पुरुष जबहीं

कृतिको करता है तबहीं निष्ठादिकों को प्राप्त होताहै । अर्थात् कृति कहिये इन्द्रियों का संयम (दमन वा इन्द्रियों को विषयों से रोंकना) अरु चित्तकी एकाग्रता करनी, इसका नाम कृतिहै, सो यह कृति निष्ठाआदिकोंका कारण है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् इन उत्तरोत्तरों को पूर्व पूर्वका कारणपना कैसेहै, सो आप कृपाकरके कहिये ॥ उत्तर ॥ हे नारद पूर्व पूर्वका उत्तरोत्तर को जो कारणपना है सो सत्यही है क्योंकि उत्तरोत्तर बिषे निष्ठा आदिक जो कहे हैं तिनका संभवहै ताते । अरु जो उक्त कृतिको नहीं करता अरु निष्ठा करता है सो निष्ठा पारमार्थिकी होती नहीं, ताते उक्त कृतिसेही निष्ठा होती है, अतएव कृतिको जानना योग्य है । हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमार ने कहा तब नारद ने कहा कि हे भगवन् मैं कृतिको जानना इच्छताहौं मैं कृतिको जानोंगा (करोंगा) २१ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद सो उक्त प्रकार की कृतिभी तब होतीहै जब सुखका लाभ होताहै, अर्थात् जब यह पुरुष निरतिशय सुख (परमानन्द) प्राप्ति की इच्छा करता है कि मुझको निरतिशय आत्मानन्द सुख की प्राप्ति होय, तब कृतिको, अर्थात् अपनी इन्द्रियों का निग्रह अरु चित्तकी एकाग्रता को, करता है । जैसे लोकबिषे दृष्ट फल की सुख की प्राप्ति की जब दृढ़ इच्छा होती है तब तिसके उद्देश से तिसकी प्राप्ति के उपाय में प्रवृत्त होता है । अरु सुखके प्राप्तिको इच्छा विना करताहै सो कृति निरतिशय सुखको साधक होती नहीं । अथवा जो विना सुख लाभ की इच्छा के उक्त कृति को करता है तो वो भविष्यत् फल लाभके उद्देश से उक्त कृतिमें प्रवृत्त होना प्राप्तहोता है ॥ हे सौम्य सत्से कृतिपर्यन्त उत्तरोत्तर बिषे सत्य जो है सो स्वयं आपही प्रकाशताहै तिसके विज्ञानार्थ उक्त साधनों से इतर कुछ भी प्रयत्न कर्तव्य नहीं । अर्थात् परमार्थ सत्यके जाननेवाला अतिवादी होता है (प्राणके जाननेवाला

नहीं) तिस परमार्थ सत्यके जानने का साधन (कारण) सत्य का विज्ञानहै, तिस विज्ञान का साधन मनन है क्योंकि जब श्रवण करीहुई बस्तु का मनन होताहै तब तिसका यथार्थ ज्ञान होताहै, तातें विज्ञानका कारण मननहै। अरु मननका कारण श्रद्धा (विश्वास) है क्योंकि जब आचार्य के वाक्यमें विश्वास होताहै तब गुरुके कहे वाक्य का मनन होताहै। अरु श्रद्धा का कारण निष्ठा है अर्थात् जब गुरुके बिषे निष्ठा होती है तब विश्वास (श्रद्धा) होताहै, अरु निष्ठा तब होती है जब उक्त प्रकार की कृति होती है अर्थात् जब इन्द्रियों का संयम अरु चित्तकी एकाग्रता रूप कृति को करता है तब निष्ठा होती है, जब निष्ठा होती है तब श्रद्धा होती है, जब श्रद्धा होती है तब मनन होता है, जब मनन होता है तब विज्ञान होताहै जब विज्ञान होताहै तब परमार्थ सत्यको जानताहै तब उस परमार्थ सत्यको जानके तिसको कहनेके स्वभाववाला अतिवादी होताहै। तातें सत्यादि पूर्व पूर्वकी प्राप्तिका कारण उत्तरोत्तरको जानना। अरु इनहीं साधनों बिषे परमार्थ से सत्य जो भूमानाम वाला अपना आप आत्म सुख (परमानन्द) है सो स्वयं अपने आपको आपही प्रकाशताहै, उसके प्रकाशनार्थ उक्त साधनों से अतिरिक्त कुछ भी प्रयत्न कर्त्तव्य नहीं। एतदर्थ यहां कहते हैं कि वास्तविक परमार्थ सत्य सुखही जानने योग्यहै॥ हे सौम्य इस प्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब तिसको श्रवणकर नारद कहताहुआ कि हे भगवन् हे पूजाके योग्य मैं सुखके जानने की इच्छा करताहौं मैं पारमार्थिक सुखको जानोंगा॥ हे सौम्य उक्त प्रकार भगवन् योगेश्वर परम ब्रह्मनिष्ठ सनत्कुमारने अपने उपदेशात्मक वाक्योंसे उस नारदको 'जो कि कृतार्थ होने के अर्थ अपने बिषे आत्मजिज्ञासा धार सनत्कुमार के समीप आयाहै, पारमार्थिक परमानन्द निरतिशय सुखके जानने की दृढ़जिज्ञासा उपजाय अपने वाक्यके सन्मुख किया, अरु सो नारद पारमा-

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके त्रयोविंशोखंडः ॥

यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखंभूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥ इतित्रयोविंशोखंडः ॥

र्थिक अतिशय सुखके जानने के अर्थ एकाग्र चित्तसे सम्मुख हुआ तब सो सनत्कुमार कहताहुआ ॥:- हे सौम्य जैसे वस्त्रके सीवनेवाला दरजी जब अपनी सुई में डोरा परोवने को होताहै तब प्रथम उस सुई के नके (छिद्र) को अपने नेत्रके सम्मुख करलेताहै तब उस सुईके छिद्रमें डोरा शीघ्र प्रवेश करताहै। तैसेही आत्मोपदेष्टा गुरु अपनी युक्ति प्रमाण वाक्यसे प्रथम जिज्ञासुके श्रोत्रेन्द्रियको अपने उपदेशात्मक वाक्यके सम्मुख करलेताहै तब उसको उपदेश करताहै तब वो आचार्य्यका किया उपदेश जिज्ञासुके अन्तः करण में शीघ्रही प्रवेशको पाय उसके कल्याणका करता होताहै-:॥ १ ॥ इतिद्वाविंशोखंडः ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड तेईसवें का ॥

हेसौम्य, उक्तप्रकार सत्यसे कृति पर्यन्त पूर्वपूर्वकी प्राप्तिका उत्तरोत्तरको कारण कहके सनत्कुमार ने नारदकी चित्तवृत्तिको अपने वाक्यके सम्मुख एकाग्रकर कहतेहुए॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद निश्चयकरके जो भूमाहै कि जिससे अतिशय और कुछभी नहीं सोई सर्व से श्रेष्ठ निरतिशय परमानन्द सुख है, तिससे जो अन्य (नीचे) सातिशयहै सो अल्प तुच्छहै अतएव तिस तुच्छ अल्पमें सुख नहीं, क्योंकि अल्पकी हेतु अधिक तृष्णाहै, अरु तृष्णा जो है सो दुःखका बीजहै ॥:-अर्थात् जो सुख स्वरूप भूमानामवाले आत्मासे इतरहै सो सर्व असत्य अल्पहै अरु जो अल्पहै सो सर्व तृष्णा का विषय होनेसे परिणाम में दुःखरूपहै क्योंकि तृष्णारूप बीजसे परिणाम दुःखरूपही फल

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यँ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥

उपजताहै । जैसे लोकविषे ज्वरादि रोग दुःखका हेतु होनेसे उनसे दुःखही उपजताहै, तैसे तृष्णाको दुःखका बीजहोनेसे जिनका हेतु तृष्णाहै तिनसेदुःखहीउपजताहै, एतदर्थही कहाहै कि अल्पमेंसुख नहीं अल्पको नाशवान् होनेसे—॥ अतएव हे नारद निश्चयकरके भूमाही सुखहै और नहीं क्योंकि अपने आप सुखस्वरूप भूमाख्य आत्माबिषे तृष्णादि दुःखके बीजोंका असंभव है ताते । हे नारद भूमाही तो जानने योग्य है । हे सौम्य इसप्रकार जब सनत्कुमारने कहा तब नारद कहताहुआ कि हे भगवन् जो सर्व से अधिकतर निरतिशय भूमाख्य सुखहै तिसके जाननेकी मैं इच्छा करताहौं, मैं उस भूमाको जानोंगा ॥ १ ॥ इति सप्तमप्रपाठके त्रयोविंशो खंडः ॥ २३ ॥

अक्षरार्थ ॥

जहां अन्यको देखता नहीं अन्यको सुनतानहीं अन्यको जानतानहीं सो भूमाहै, अरु जहां अन्यको देखताहै अन्यको सुनता है अन्यको जानता है, सो अल्पहै जोही भूमाहै सो अमरहै अरु जो अल्पहै सो नाशवान् है । हे भगवन् वो भूमा किसबिषे रहता है । हे नारद वो कहीं नहीं रहता यदि रहता है तो अपनी महिमाबिषे रहताहै ॥ १ ॥

भावार्थ खण्ड चौबीस मन्त्र प्रथम का ॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब सनत्कुमारने नारदको निरतिशय भूमाख्य सुख कहा तब तिसके जानने की इच्छावाला नारद

सनत्कुमारसे कहताहुआ कि हे भगवन् उस भूमाका लक्षण क्या है सो आपकहिये । इस प्रकार जब नारदने प्रश्न किया तब सनत्कुमार उत्तर कहते हुए ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद जहां अन्यको देखता नहीं (सो भूमाहै) अर्थात् जिस भूमानामवाले तत्त्व बिषे चक्षुरादि बाह्यकरण अरु मनआदि अन्तःकरण करके देखने जानने योग्य अन्यवस्तु कुछ भी नहीं, क्योंकि जो दृष्टिसे देखाजाता है सो दृश्य अन्यही होताहै । अर्थात् उस भूमानाम वाले अद्वैत तत्त्व बिषे दृश्य दर्शन दृष्टि इत्यादि अन्य विशेषभावनहीं । हे नारद तैसेही उस भूमाख्य तत्त्व बिषे अन्यको सुनत नहीं, क्योंकि उस बिषे अन्य श्रुतवस्तुका अभाव है । अर्थात् उस भूमानाम वाले एक अद्वैत तत्त्व बिषे दृश्य अरु श्रुतआदि विषय अरु चक्षुकर्णादि करणोंका अभाव होनेसे न अन्यको देखताहै न अन्यको सुनताहै । तैसेही उस बिषे मननकरने योग्य वस्तुके अभाव से मनन भी होतानहीं, अथवा उसको मनका अविषयहोने से मनन होतानहीं । तैसेही अन्यको जानता नहीं, उस बिषे अन्यज्ञेयवस्तुके अभाव से अथवा उसको बुद्धिका अविषयहोने से अर्थात् प्रायशः विज्ञानको मनन पूर्वक होनेसे उस भूमाख्य तत्त्व बिषे मननके अभाव से विज्ञानका भी अभाव है अर्थात् उस बिषे मननकरनेयोग्य अन्यवस्तु के अभावसे मनन के अभावहुए मननपूर्वक होनेहार विज्ञानकाभी अभावहै ॥ः—हे सौम्य उसएक अद्वैत निर्विशेष भूमाख्य आत्मतत्त्वबिषे देखने सुनने मननकरने अरु जाननेयोग्य अन्य वस्तु के अभावसे न अन्यको देखताहै न अन्यको श्रवणकरताहै न अन्यको मननकरताहै नअन्यकोजानताहै—ः॥ हे नारद उसएकअद्वैत भूमानामवाले आत्मतत्त्वबिषेअन्यअन्यकोदेखतानहीं, अन्यकोअन्य सुनता नहीं, अन्यको अन्य मननकरता नहीं, अन्यको अन्य जानता नहीं, क्योंकि उस बिषे द्वैतका अभाव है । हे नारद इसप्रकारका लक्षण है जिसका सो कहिये भूमा ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यह लोक प्रसिद्ध दर्शनादि

बिषयपने के अभाव मात्रको भूमाका लक्षणपना कैसे है॥ उत्तर॥ हे नारद उस भूमातत्त्व बिषे दर्शनादिकों का अभाव कहने से उसको स्वविषय (अपने आपको विषय करने) पने का अभाव जानना क्योंकि भूमाख्य आत्मा ज्ञानस्वरूप है वो ज्ञानक्रिया का करता अरु ज्ञान का विषय नहीं, अतएव उस बिषे ज्ञेयपनेका अभाव है, ज्ञेयत्व अरु ज्ञातत्व को परस्पर में जड़ चेतन धर्म्मपना होने करके परस्पर में विरोधी होने से सो दोनों एकही बस्तुको आश्रय करें नहीं। अरु जो कदापि उस एक अद्वैत भूमाख्य तत्त्वबिषे दर्शनादि मानोगे तो क्रिया कारक फल भेदकी प्राप्ति होवेगी ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् यदि उस भूमा बिषे दर्शनादि व्यापार होने से क्रिया कारक फल भेदकी प्राप्ति होवेगी तो तिस करके क्या दोष होवेगा ॥ उत्तर ॥ हे नारद यदि उस भूमाबिषे दर्शनादि व्यवहारसे क्रिया कारक फल भेद की सिद्धि मानोगे तो संसारकी अनिवृत्तिरूप महान् दोषकी प्राप्ति होवेगी, अरु दर्शनादि व्यवहार क्रिया कारक फल का भेदही संसार है, अरु तिस संसार की भूमाख्य आत्मतत्त्व बिषे अनिवृत्ति हुई तब मोक्षका अभाव आया। अतएव हे नारद उस निर्विशेष अद्वैत भूमा तत्त्व बिषे अन्य को देखता नहीं, अन्य को सुनता नहीं, अन्य को मनन करता नहीं, अन्य को जानता नहीं। जैसे शून्य गृह में प्रवेश को पाया पुरुष अन्य को देखता सुनता मनन करता जानता नहीं तैसेही एक भूमा नामवाला तत्त्व अपने निर्विशेष स्वरूप बिषे अन्य को देखता सुनता जानता नहीं ॥ शंका ॥ हे भगवन् जैसे शून्य गृहमें प्रवेशको पाया हुआ पुरुष स्तंभादिकों से अन्यको देखता सुनता जानता नहीं तैसे भूमा अपने आपबिषे अनात्मा को न देखता सुनता जानता होगा, परन्तु अपने आपको तो देखता सुनता जानता होगा॥ समाधान ॥ सो बने नहीं क्योंकि उस एक अद्वैत निर्विशेष भूमातत्त्व बिषे दृग् दर्शन दृश्य आदि भेद

विशेषता नहीं क्योंकि ॥ "सदेकमेवाद्वितीयं तत्सत्यं" ॥ इसप्रकार एक अद्वैत निर्विशेष सत्यचैतन्य आत्मतत्त्वको निर्धारकिया है ॥ तथाच ॥ " अदृश्येऽनात्मे, न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य, विज्ञातारमरेकेन विजानीयात्" ॥ इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे उस एक अद्वैत भूमा नामवाले तत्त्वविषे दर्शन दृश्य श्रवणश्रुत इत्यादि व्यापारकी अनुपपत्ति (अप्राप्ति) है। अतएव हे नारद दर्शनादि संसार व्यवहार उस निर्विशेष भूमा तत्त्वविषे है नहीं, यह सर्व कथनका सिद्धान्त जानना ॥ सोई निर्विशेष भूमानाम वाला तत्त्व आत्माहै उस बिषे सर्व विशेषताके अभावसे वो सुख स्वरूप है ॥ हे नारद जहां अन्यको देखताहै जहां अन्यको सुनताहै जहां अन्यको मनन करताहै जहां अन्यको जानता है सो अल्प नाशवान् होताहै, अर्थात् उस एक अद्वैत निर्विशेष भूमाख्य आत्मतत्त्व विषे कि जिसबिषे नेत्रगोलक, चक्षुइन्द्रिय, दर्शनादि क्रिया अरु दृश्य पदार्थ, अरु तिस करके आया जो द्रष्टा विशेषण सो कुछ भी नहीं । अरु तैसेही श्रोत्रादि इन्द्रियों का अरु मन आदि अन्तःकरण का कुछ भी व्यापार नहीं। हे नारद जहां तिस सर्वाधिष्ठान भूमाख्यतत्त्व बिषे तिससे पृथक् करके नामरूपादि प्रपंच को देखते हैं सुनते हैं मनन करते हैं जानते हैं सो नाशवान् हैं अथवा जो उस एक अद्वैत भूमातत्त्व बिषे नानात्वको देखता सुनता मानता जानताहै सो अति अल्प अज्ञानी नाशवान् (बारंबार मरण से भी मरणको पावनेवाला) है। तथाच। "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यइहनानेव पश्यति"॥:— अथवा हे सौम्य। "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं शृणोति" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे जहां एक अद्वैत निर्विशेष भूमाख्य सत् चैतन्य आत्मतत्त्व विषयक अविद्या होती है तहां और का और देखताहै और का और सुनताहै, और का और मनन करता है और का और जानता है, सो नाशवान् अल्प असत्यहै, अपने कारण अविद्याको अल्प असत्य नाशवान्

गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दास भार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति ह होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति २॥

इति चतुर्विंशो खंडः॥

होने से-:॥ हे नारद जो वस्तु अविद्या काल भावीहोती है सो अल्प नाशवान् होती है जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत्होने के पूर्व कालबिषेही भासते हैं जाग्रत् हुए अभाव होजाते हैं। तैसे भूमाख्य आत्मतत्त्व के यथार्थ सम्यक् ज्ञानहोने के पूर्व अविद्या कालबिषे यह नामरूप क्रियात्मक प्रपंच जो केवल वाचारंभण मात्रहै सो आत्मासे इतरवत् देखा सुना जाना जाताहै, आत्मज्ञान होनेके पश्चात् नहीं ताते सो नाशवान् है अरु जो नामरूप क्रियात्मक प्रपंच से विपरीत सर्व का प्रकाशक अधिष्ठान साक्षी भूमाहै सो अमृत अविनाशीहै॥ हे सौम्य इसप्रकार जब भगवान् योगेश्वर सनत्कुमारने नारद के प्रति सुखस्वरूप परमानन्द भूमाख्य आत्मतत्त्व का उपदेश किया तब तिसको श्रवण करके नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् वो भूमा किसबिषे रहताहै, इसप्रकार जब नारद ने प्रश्नकिया तब भगवान् सनत्कुमार कहतेहुए कि हे नारद वो भूमा वास्तवकरके एक अद्वैत परिपूर्ण सर्वाधिष्ठान है अतएव वो कहीं नहीं रहता जो रहताहै सो उस सर्वाधिष्ठान भूमासत्ता बिषे रहताहै उसको सर्वका आश्रय सर्वाधिष्ठान होने से। अरु जो वो सोपाधिहुआ रहताहै तो अपनी महिमा बिषे रहताहै, महिमाकहिये अपनेआप माहात्म्यबिषे वा बिभूतिबिषे रहताहै। सोभी जो तू उसके रहनेको इच्छतापूछताहै तो, अरुजो वास्तव से पूछे तो भूमा अन्याश्रित नहीं (अन्यके आश्रय विना) है अतएव वो कहीं भी नहीं रहता। जो अन्य के आश्रय रहताहै सो अल्प परिच्छिन्न नाशवान् होताहै ताते भूमा अन्यके आश्रय विना अपने आप बिषे आपही रहताहै॥ हे भगवन् यदि वो

भूमा अपनी महिमा बिषे रहताहै तो सो महिमा क्याहै सो आप कृपा करके कहिये १ ॥

अक्षरार्थ

यह गो अश्व हस्ति हिरण्य (सुवर्ण) दास भार्य्या क्षेत्र गृह इत्यादि महिमाहै तिसबिषे रहताहै सो हम ऐसा नहीं कहते क्योंकि अन्य अन्य बिषे प्रतिष्ठितहोता है अरु भूमासे इतर कोई है नहीं, तब क्यों ऐसा कहते हौ, तेरे प्रश्न के उत्तर के अर्थ व्यवहार सत्तासे कहते हैं २ ॥ इति चतुर्विंशो खंडः ॥

भावार्थ मन्त्र दूसरे का ॥

हे सौम्य पूर्वोक्त प्रकार जब नारद ने सनत्कुमार से प्रश्न किया कि वो सुख स्वरूप भूमा किस बिषे रहताहै, तब सनत्कुमारने उसके उत्तरके अर्थ व्यवहार सत्ताको स्वीकारकरके कहा कि हे नारद वो भूमा अपनी महिमा बिषे रहताहै । तब तिसको श्रवणकर पुनः नारद ने प्रश्न किया कि हे भगवन् यदि वो भूमा अपनी महिमा बिषे रहताहै तो उसकी महिमा क्याहै सो आप कहिये, तब सनत्कुमार पुनः उत्तर देतेहुए ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ हे नारद यह जो लोक बिषे गो अश्व हस्ति रथादि पशूयान, अरु सुवर्ण रत्नादि धन, अरु क्षेत्र उपलक्षण करके भूमि ग्राम राज्यादिक, अरु आयतन (गृह) आराम (बाग) आदिक, अरु दास दासी सेवकादिक, अरु भार्या उपलक्षण करके स्त्री पुत्र पौत्र आदि कुटुम्ब, इन सर्व को महिमा (विभूति) कहते हैं ॥ तिस अपनी महिमा बिषे वो भूमा रहता है ॥:—अर्थात् हे सौम्य पूर्व षष्ठ अध्याय बिषे भूमाख्य सत् चैतन्य परमात्म देवने अपने बिषे बहुत रूप होने की इच्छाकर तेजादि तीन तत्त्वों को प्रथम उत्पन्न किया, पश्चात् सर्वके नाम रूप पृथक्पृथक् प्रकट करने की इच्छासे तीनों तत्त्वोंमें आभासरूप से प्रवेशकर उनका त्रिधाकरण कर उनके पृथक्पृथक् त्रिवृत्त करण से सर्वके नाम रूपको पृथक् पृथक् प्रकटकर तिन सर्व बिषे अपने आभासरूप से प्रवेश

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके पंचविंशःखंडः॥

स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदछं सर्व्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहंपश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदछं सर्व्वमिति ॥ १ ॥

कर सर्व के नामरूप का सिद्धकर्ता सर्वात्माहुआ स्थितहै, ऐसा कहाहै। अतएव व्यवहार सत्तासे जीवरूप करके भूमाही अपनी नाम रूपात्मक उक्त महिमा विषे प्रतिष्ठितहै—:॥ हे नारद परमार्थ दृष्टिसे वो भूमा कहीं भी रहता नहीं क्योंकि जो अन्य के आश्रय रहता है सो अल्प परिच्छिन्न विकारी नाशवान् होताहै, अतएव भूमा किसी बिषे किसीके आश्रय रहता नहीं न किसी महिमा विभूति करके प्रतिष्ठित होताहै ताते भूमा अविनाशी अमृतरूप अपने बिषे आपस्थितहै। अरु जो रहताहै सो सर्वाधिष्ठान भूमा बिषे भूमाके आश्रय रहता है अरु भूमा करके प्रतिष्ठित होताहै, ताते अन्यके आश्रय रहनेवाला नामरूप क्रियात्मक जगत् सो वाचारम्भणमात्र होने से अल्प नाशवान् है २॥ इति चतुर्विंशः खंडः॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड पच्चीसवां मन्त्र प्रथम का॥

हे सौम्य उक्तप्रकार जब भगवान् सनत्कुमार ने नारद से कहा कि हे नारद वास्तव परमार्थ दृष्टि करके वो भूमा कहीं भी रहता नहीं, तब नारदने प्रश्न किया कि हे भगवन् भूमाके कहीं भी न रहने का हेतु क्याहै सो आप कृपाकरके कहिये, तब सनत्कुमार उत्तर कहते हुए॥ सनत्कुमार उवाच॥ हे नारद निश्चय करके जिस कारणसे भूमा नीचे है तिससे इतर नीचे कुछ भी नहीं कि जिसबिषे भूमा रहै वा होवे, अर्थात् जिस

बिषे वो भूमा रहे ऐसा उससे इतर कुछ भी है नहीं अत-
एव नीचे भूमाही है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् तो वो भूमा ऊपर
किसीबिषे रहता होवेगा ॥ उत्तर ॥ हे नारद ऊपरभी भूमाही है
उससे इतर कुछ नहीं कि जिसबिषे वो रहै । हे नारद तैसेही
पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर वो भूमाही है तिससे व्यतिरेक कुछ
भी नहीं कि जहां वा जिसबिषे वो भूमारहै ताते सर्व ओर भू-
माही है ॥ प्रश्न ॥ हे भगवन् जिस वस्तुके नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम
दक्षिण उत्तर अन्य स्थान नहीं कि जिसबिषे वो भूमारहै परन्तु
उस वस्तु बिषे तो वो भूमा रहता होवेगा ॥ उत्तर ॥ हे नारद
उस भूमासे इतर कुछ भी वस्तु नहीं कि जिसबिषे वो रहै,
अर्थात् यह जो नामरूप क्रियात्मक जगत् भासताहै सो वो एक
अद्वैत भूमाही इसप्रकार से सुशोभित हो भासताहै वास्तव कर-
के उस भूमासे इतर कुछ भी नहीं । अतएव हे नारद नीचे
ऊपर पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर अरु तिनके मध्य जो है सो
एक अद्वैत भूमाख्य तत्त्वही है ॥ हे सौम्य इसप्रकार उस एक
अद्वैत परिपूर्ण भूमाख्य तत्त्वका नारदके प्रति परोक्षतासे उपदे-
शकर पुनः वो सनत्कुमार विचार करतेहुए कि इस मेरे परोक्ष-
ता से भूमाके बोधक उपदेशको श्रवणकर इस नारदको यह
शंका होवेगी कि इस जीवतत्त्व से इतर कोई भूमानाम वाला
तत्त्व सर्वओर सर्वरूपसे रहता होवेगा, सो ऐसी शंका किसीको
भी न हो ऐसा विचार ॥ तिसके अनन्तर भगवान् सनत्कुमार
अहंकारादेश (अहंपूर्वक उपदेश) करतेहुए ॥:–अर्थात् अहं
शब्दका विषय चैतन्य आत्मतत्त्वका उपदेश करते हुए कि जिस
करके किसी भी मुमुक्षु की बुद्धिबिषे द्वैतकी भ्रान्ति न होवे ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद मैं ही नीचे हौं मैं ही ऊपरहौं मैं
ही पूर्वहौं मैं ही पश्चिमहौं मैंही दक्षिणहौं मैंही उत्तरहौं। हे ना-
रद विशेष क्या कहौं ऊपर नीचे आगे पीछे दायें बायें जो कुछ
यह सर्वशब्दका विषयहै सो सर्व एक मैंहीहौं मुझसे इतर नीचे

अथात आत्मादेश एव आत्मैवाधस्तादात्मो परिष्ठा दात्मा पश्चादात्म पुरस्तादात्मादक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदछं सर्व्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवंविजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्मामिथुनआत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्व्वेषु लोकेषु कामचारो भवति अथ येऽन्यथातो विदुरन्य राजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाछं सर्व्वेषु लोकेष्व कामचारो भवति २॥ २५॥

ऊपर आगे पीछे दायें बायें कहीं भी और कुछ भी नहीं, (इस प्रकार तू अपने आपको अनुभवकर) १ ॥

अक्षरार्थ ॥

हे नारद अथ तिसके अनन्तर आत्मआदेश को श्रवण करो। निश्चयकरके आत्माही नीचे है आत्माही ऊपर है आत्माही पश्चिमहै आत्माही पूर्व है आत्माही दक्षिण है आत्माही उत्तरहै, आत्माही यह सर्व्व है सो विद्वान् इसप्रकार देखताहुआ मनन करताहुआ जानताहुआ आत्मरति आत्मक्रीड़ आत्मामिथुन आत्मानन्द होताहै सो स्वराड् होताहै तिसका सर्व्व लोकबिषे काम पूर्ण वा प्राप्तहोता है अरु जो उक्त प्रकार से अन्यथा जानता है सो अन्य राजा वाला होताहै अरु क्षयलोक वाला होताहै तिसको सर्व लोकबिषे अकाम होताहै (उसकी कहीं भी कामना सिद्ध नहीं होती) २ ॥ २५ ॥

भावार्थ मंत्र दूसरे का ॥

हे सौम्य उक्त प्रकार भगवन् सनत्कुमार नारद को अहंकारादेश करके भूमाख्य तत्त्व का उपदेश कर पुनः विचारते हुए कि जो पुरुष यथार्थ आत्मानुभव से शून्य बहिर्बुद्धि अविवेकी हैं तिनको अहंकार का विषय देहादि अनात्म भासता है अतएव इस अहंकारादेशकरके देहादि संघात उपदेश किया होगा इस

प्रकारकी शंका किसीको भी मतहो, ऐसा विचारके तिसके अनन्तर केवल एक शुद्ध सत्य स्वरूपकरके सर्वत्र एक आत्मादेश (आत्मोपदेश) कहतेहुए ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद जो सजातीय, विजातीय, स्वगत, भेद रहित एक अद्वितीय अविद्यादि मलरहित परमशुद्ध निर्विशेष सत् चैतन्य परमानन्द स्वरूप आत्माहै सो आत्माही नीचे है, आत्माही ऊपरहै, आत्माही पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तरहै, अर्थात् सर्व्वत्र सर्व्व जो है सो एक अद्वैत अज अविनाशी अखंड आकाशवत् परिपूर्ण अरु अजड शून्यतारहित होनेसे आकाशसे विलक्षण महासूक्ष्म चैतन्यआत्माहै तिससे इतर रंचकमात्रभी कुछ नहीं, इसप्रकारके अपनेआपको जो देखता है, अर्थात् आत्मवेत्ता आचारसे श्रवण करताहै, पुनः तिसको मनन करताहै, पुनः तिस श्रवण मनन कियेहुए अपने आत्माको सम्यक् प्रकार जानता (अनुभवकरता) है। सो आत्मविद्विद्वान् आत्मरति आत्मक्रीड़ होता है, अर्थात् आत्माही बिषे है रमण जिसका सो कहिये आत्मरति, अरु तैसेही आत्माके साथही है क्रीड़ा नतु स्त्री आदिकों के साथ सो कहिये आत्मक्रीड़। अथवा आत्माबिषे ही है चित्तका अनुसन्धान सर्वदा जिसका तिसको कहिये आत्मरति, अरु जैसे लोकबिषे जिन पुरुषोंको स्त्रियों के साथ विहार करते देखते हैं तिनको स्त्रीक्रीड़ कहते हैं, तैसेही सविकल्प समाधिरूपा स्त्री के साथ विहार वा क्रीड़ा है जिसकी तिसको कहिये आत्मक्रीड़॥ हे नारद जैसे लोकबिषे पुरुष विषय सुखके अर्थ स्त्री आदिकों में रति अरु क्रीड़ा करते हैं, तैसेही परमानन्द सुखकी प्राप्तिके अर्थ आत्मवेत्ता विद्वान् की अपनी आप आत्मसत्ताके साथ सविकल्प वा निर्विकल्प समाधिरूप एकान्त स्थान बिषे रति क्रीड़ा होती है। अरु मिथुन कहिये द्वंद्वजनित सुख 'अर्थात् स्त्री पुरुषके संयोग निमित्तक जे सुखहैं सो दूसरेकी अपेक्षावाला होताहै अरु विद्वान्का जो आत्म सुखहै सो दूसरेकी अपेक्षासे रहित नित्य सुखहै, अतएव सो विद्वान् का परम-

नन्द सुखहै॥:--हे सौम्य जैसे स्त्री अरु पुरुष दोनों के संयोग से विषयानन्द सुख होताहै तैसे विद्वान् कहिये शास्त्र संस्कार बुद्धि युक्त आभास (चिदाभास जीव) सो जब सज्ञात निर्विकल्प समाधिरूप एकान्त गृहमें वा विचार समाधिरूप एकान्त गृहमें अपनी बिम्बरूपा सामान्य चैतन्य सत्ताके साथ अभेद एकताको प्राप्तहोताहै तब उसको निरपेक्ष अविनाशी अखंड नित्य परमानन्द सुख प्राप्तहोताहै-:॥ हे नारद शब्द स्पर्शादि विषय भोग निमित्तका जो क्षणिक सुखहै सो अल्प नाशवान्है सो अविद्वान् विषय लम्पटों का सुखहै, तैसा आत्मवेत्ता विद्वान् का सुख नहीं विद्वान्का सुख शब्दादि विषय निरपेक्ष परमानन्द सुख है। हे नारद उक्त प्रकारके लक्षणवाला विद्वान् जीवतेही अपने स्वाराज्य पद (सर्वात्म पद) विषे राज्याभिषेक पाया होताहै, अरु सो देहके पातहुए भी स्वराट् होताहै। हे नारद जब इस प्रकार होताहै तब तिसही करके सर्व लोक सब शरीरों बिषे सर्व काम पूर्ण होताहै वा सर्व कामका कर्त्ता होता है। अर्थात् उस आत्मभूत विद्वान्को सर्वत्र सर्व का आत्मा होने से सर्वही प्राप्त (अपना आप)होताहै॥ हे नारदजी 'अथ, पुनः उक्त प्रकार के आत्मभूत विद्वान् से इतर अविद्वान् उक्त प्रकार के आत्म दर्शन से अन्यथा (विपरीत) भाव से आत्म तत्त्व को देखता है अर्थात् कहे प्रकार से आत्मतत्त्व को सम्यक् प्रकार नहीं जानता सो अन्य राजावालाहोता है ॥:-अर्थात् पराधीन अन्य के भय युक्त होता है-:॥ अथवा अन्य कहिये दूसराहै राजा (स्वामी) जिसका तिसको कहिये अन्यराजावाला॥:-अर्थात् जो अविद्वान् आत्मरती न होके केवल अपने देहमात्र मेंही रतिमान् होताहै, अरु आत्मक्रीडनहोके स्त्री आदिकों में क्रीडावाला होताहै, अरु जो आत्मानन्द को न प्राप्तहोके विषयानन्द में ही रहता है। सोअज्ञ अन्यस्वामीवालाहोके तिसकेभयमेंहीरहताहै॥ अरु जो उक्तप्रकार का आत्मदर्शी विद्वान्है सोस्वयंआपहीराजा

अथ छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके षड्विंशः खंडः ॥

तस्य हवा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतःप्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतो कर्म्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति ॥ १ ॥

होता है उसका अन्य ईश्वरादि स्वामी कोई नहीं वो सर्व का स्वामी सर्व करके पूजनीय सदा निर्भय पद में स्थित रहता है –:॥ अरु वो अविद्वान् क्षयलोक वाला होता है अर्थात् अन्त में वो नाशवान् लोक को पावता है क्योंकि भेद दर्शन का फल अल्प है अतएव जो अल्प है सो नाशवान्है ऐसा मैंने पूर्व कहा है हे नारद जिस करके वो अविद्वान् पुरुष भेद दर्शनके कारण क्षय (नाशवान्) लोक वाला होताहै तिसही हेतु से उसका किसी भी लोक वा शरीर बिषे काम पूर्ण नहीं होता (अर्थात् उस अविद्वान् की कहीं भी कामना समाप्त होही नहीं, २ । २५ ॥

अक्षरार्थ भावार्थ खंड छब्बीसवें मन्त्र प्रथम का ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद तिस प्रसिद्ध विद्वान् का जो (अपने स्वस्वरूप रूप) स्वाराज्य पदको प्राप्त हुआ है ॥ अर्थात् जो आत्मवेत्ता विद्वान् सर्वत्र अपने आपही को देखता है, अपने आप ही को निश्चय करता है, अपने आप ही को जानता है, अपने आपही में रत है अपने आपसेही क्रीडा करता है ,अपने आपमेंही सदा आनन्दित रहता है उसही विद्वान् के आत्मा से प्राण उत्पन्न हुआ है, "॥ एतस्माज्जायते प्राणो ।"

तद्देश श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति नरोगं नोत दुःखताछं सर्व्वंछं ह पश्यःपश्यति सर्वमाप्नोति सर्व्वश इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधाचैव पुनश्चैकादश स्मृतः शतञ्च दशचैकश्चस हस्राणिच विछंशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्व्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदित कषायाय तमसः पारंदर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तछंस्कन्दे इत्याचक्षते तछं स्कन्दइत्याचक्षते२॥

इति षड्विंशः खण्डः ॥

इति छान्दोग्ये उपनिषदि सप्तमप्रपाठकः ७॥

उसही के आत्मा से आशा है, उसही के आत्मा से स्मृति होती है, उसही के आत्मा से आकाश होता है, "। एतस्मादात्मन आकाशः संभूत"। अरु उसही के आत्मासे तेजहोता है "। तत्तेजमसृजत।" उसही के आत्मा से जल उसही के आत्मा से आविर्भाव तिरोभाव (उत्पत्ति प्रलय वा प्रकटहोना छिपना) होता है उसही के आत्मा से अन्न होता है, उसही के आत्मा से बल होता है, उसही के आत्मा से विज्ञान उसही के आत्मा से ध्यान होता है, उसही के आत्मा से चित्त होता है, उसही के आत्मा से सङ्कल्प उसही के आत्मा से मन होता है, उसही के आत्मा से वाणी उसही के आत्मासे नाम होता है, अरु उसही के आत्मा से वेदों के मन्त्र अरु उसही के आत्मा से सम्पूर्ण कर्म होता है, हे नारदजी और विशेष क्या कहिये उसही विद्वान् के ही आत्मा से ही यह सर्व नामरूप क्रियात्मक जगत् उत्पन्न स्थित लय होता है। क्योंकि जिस आत्मपदको वो विद्वान् प्राप्त हुआ है सो सर्व जगत् का मूल सर्वात्मा है ताते १॥

अक्षरार्थ भावार्थ मन्त्र दूसरेका

सनत्कुमार उवाच ॥ हे नारद तिस कही हुई उक्त विद्या के अर्थ बिषे यह श्लोक (वेदका मन्त्र) भी प्रमाण होता है। उक्त प्रकारके भूमाख्य अपने आप आत्मतत्त्वका सम्यक्प्रकार यथार्थ अनुभवी विद्वान् अपने बिषे मृत्युको देखता नहीं (अमरभाव को प्राप्तहुआ है ताते) अरु ज्वरादि रोग निमित्तके दुःखों को भी अपने बिषे देखता नहीं (देहादि संघात अरु तिनके धर्म्मों से पृथक् हुआहै ताते) अरु सर्वको अपना आप आत्मा देखता है, अतएव सर्व्वको प्राप्त होताहै । अर्थात् सर्वात्मभूत विद्वान् को सर्वका आत्माहोने से उससे इतर उसके प्राप्त होने योग्य कुछ भी अवशेष रहता नहीं अतएव सर्व्वत्र सर्वही उसको प्राप्त है । हे नारद आत्मभूत विद्वान् सर्व सृष्टिभेदकी उत्पत्ति से पूर्व एक अद्वितीय होताहै सो एक हुआही तीन भेदको पावता है ॥ :-अर्थात् सो सत् आत्मा सृष्टिसे पूर्व एक अद्वितीय हुआ भी अपनी बहुतरूप होनेकी इच्छा से , तेज , जल, पृथिवी, प्रथम इन तीन कारण भेदको पावता है-: ॥ हे नारद सोई आत्मा पांच प्रकारके भेदको पावताहै ॥:-अर्थात् ऐतरेय आदि उपनिषदों के प्रमाण से आकाशादि पंचभूत रूप पांच प्रकारका होता है-: ॥ अरु सोई आत्मा सात प्रकारका होताहै अर्थात् महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा इन सातप्रकार का होताहै-: ॥ अरु सोई आत्मा नव प्रकारका होताहै ॥ :--अर्थात् तैतरेय उपनिषद् के प्रमाणसे आत्मासे , आकाश , वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, औषधि, अन्न, वीर्य, पुरुष, (शरीर) इसक्रम से नव होतेहैं एतदर्थ आत्मा नव प्रकारका भी होता-: ॥ हे नारदजी एक अद्वैत आत्मा सृष्टिकाल बिषे अपनी इच्छासे तीन वा पांच वा सात वा नव वा कारण भूतहुआ अनेक प्रकारके कार्य्य भेदसे आपही स्थित होताहै (जैसे एकमृत्तिका कार्य्यकाल बिषे घटशरावआदि अनन्त भेद भाव से सुशोभित होता है तैसे) अरु सोई आत्मा

संहार (प्रलय) कालबिषे सर्वको अपनेबिषे लयकरके पारमार्थिक एक रूपता कोही प्राप्त होताहै (अर्थात् वो भूमानामवाला सत् चैतन्य देव एक अद्वैत ज्ञानस्वरूप स्वतन्त्र है, अतएव वो अपनी इच्छा से सर्वकार्य्य कारणात्मक अनेक प्रकार का होत सन्ते भी वास्तवसे एकहीहै, तिसएक अद्वैत सर्वके मूलकारण परमात्मा बिषे कार्य्य कारणात्मक सर्व प्रपंच केवल कहने मात्रही है, मृत्तिका बिषे घट शराव आदिकोंवत्,। हे नारदजी ऐसे अपने आप आत्मस्वरूपके अथवा उक्तविद्या सम्यक्प्रकार दर्शनके वा धारन होनेका कारण (उपाय) श्रवण करो। हे नारदजी जैसे अपने मुखको स्पष्ट देखनेके अर्थ आदर्श (दर्पण) का सम्यक् प्रकार शुद्ध होना कारणहै, तैसेही अपने आप आत्मस्वरूपके साक्षात् यथार्थ स्पष्ट अनुभव होनेके अर्थ बिषे अन्तःकरणरूप दर्पणका शुद्ध होना कारणहै, सो अन्तःकरण तब शुद्ध होताहै जब आहार भोजन शुद्धहोताहै, सो आहार तब शुद्धहोताहै जब व्यवहार शुद्ध होताहै ' अर्थात् जिस द्रव्यसे अन्नादिक भोजन सामग्री क्रय (खरीदना) होवे सो धन धर्म्म पूर्वक न्याय करके उपार्जित होवे, पश्चात् वो अन्न चाल पछोड़ बीन के शुद्ध संस्कृत किया होवे, पश्चात् पवित्र किये स्थान में पवित्रता से उस अन्नका पाक हुआहोवे, तिसके पश्चात् उस पक्क अन्न से बलिवैश्व देवादि भूतयज्ञ अरु अतिथिको भोजन देनेरूप मनुयज्ञ किया होवे। इस प्रकार के शुद्ध संस्कृत अन्नके भोजनकरने से अन्तःकरण शुद्धहोताहै, क्योंकि "अन्नमयꣳहिसौम्यमनः" इत्यादि इसही उपनिषद् के षष्ठ अध्यायबिषे कहाहै, तहां, मन उपलक्षण करके अन्तःकरणको अन्नका कार्य्य होनेसे आहारके शुद्ध हुए सत्त्व (अन्तःकरण शुद्ध होताहै। अरु अन्तःकरणके शुद्धहुए शुभ अशुभ कर्तृत्व अकर्तृत्व आदिकोंका विवेक होताहै, तब तिस विवेकसे अशुभ व्यापार से मन उपराम हो शुभ व्यापार में प्रवृत्त होताहै, अरु जब मन शुद्धहुआ श्रवणादि शुभमार्ग में प्रवृत्त हो-

ताहै तब इन्द्रियां विषयों से उपरामहुई अन्तर्मुख होती हैं। अर्थात् उस शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष को विषयादि किसी भी पदार्थ में राग द्वेष होतानहीं, अरु रागद्वेषके अभावहुए काम क्रोध लोभ मोहादि दोषोंका भी अभाव होताहै। अरु इसही हेतुसे वो विद्वान् किसीभी पदार्थ में आशक्तहुआ बन्धवान् होतानहीं "लिप्यते न सपापेभ्यो पद्मपत्रमिवांभसि" गीता बिषे। अतएव हे सौम्य उक्त प्रकार के साधनों से उक्त प्रकार का शुद्ध अन्तःकरण जिस पुरुषका होताहै तिस शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषके प्रति आचार्य्य करके उपदेश करीहुई ब्रह्मविद्या अचलस्थिती को पावती है, अर्थात् उक्त प्रकार के शुद्धहुए अन्तःकरणवाले पुरुषको आचार्य्यकरके एकबार भी उपदेश करीहुई ब्रह्मविद्या विस्मृति को पावती नहीं॥ हे सौम्य, पूर्व कहा जो सत्य से सुखेच्छा पर्यंत पूर्व पूर्वकीप्राप्तिमें उत्तरोत्तर साधन तिन सर्व साधनोंकी प्राप्तिका मूल उक्त प्रकारके शुद्ध आहारका होनाहै, क्योंकि आहारके शुद्ध हुए अन्तःकरणकी शुद्धि अरु अन्तःकरणकी शुद्धिसे उक्तसाधनों की प्राप्ति अरु उक्त साधनोंकेहुए भूमाख्य सत् चैतन्य आनन्दघन अपने आप आत्माकी साक्षात्कार(ब्रह्मभाव) रूप प्राप्ति होतीहै, अतएव सर्व साधनों का मूल जो आहार शुद्धि सो अवश्य कर्तव्यहै॥ हे सौम्य यहां पर्य्यन्त भगवान् योगेश्वर परमब्रह्मनिष्ठ आत्मवेत्ता सनत्कुमार ने आत्मजिज्ञासु नारद के प्रति वेदान्त (उपनिषद्) शास्त्रका तात्पर्य्यार्थ अशेष उपदेश किया, अब श्रुति भगवान् सनत्कुमार नारद के संवाद रूप आख्यायिका को समाप्त करहै॥ हे सौम्य जिस शुद्ध हुए अन्तःकरण वाले अधिकारी पुरुषके अर्थ यह (विद्या) होतीहै, अर्थात् जैसे रेह वा साबुन आदि क्षारसे प्रथम वस्त्रके मैलको सम्यक् प्रकार अशेष दूरकरके पश्चात् उस वस्त्रपर केसरका रंग देते हैं तब उस शुद्धहुए वस्त्रपर केसरका रंग अति उत्तमता से अति शीघ्र चढ़ताहै, तैसेही भगवान् सनत्कुमारने आत्मजिज्ञासुदेव-

ऋषि नारदके (जोकि अपनेको कृतार्थ होने के अर्थ भगवान् सनत्कुमारके समीप प्राप्त हुआ है) तिसके अन्तःकरण से राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोह आदिक अथवा संसारके प्रवर्त्तक अन्य विद्याओं के (जोकि॥ "अन्यावाचो विमुञ्चथ"॥ "नानुध्याया-न् बहूञ्छब्दान्"॥ इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से मुमुक्षु करके त्यागने योग्यहै) संस्कार रूप कषाय (दोष) को प्रथम विज्ञान वैराग्य के सम्यक् अभ्यासरूप क्षारकरके भलीप्रकार प्रक्षालन कर उस नारदके अन्तःकरण बिषे आत्मविद्या देने की योग्यता देख पश्चात् सत् चैतन्य परमानन्द आत्मतत्त्व के उपदेशरूप अलौकिक केसरका रंग चढ़ाय उसको संसारबिषे परमशोभ-नीय देवादिकों करके पूज्य बन्दनीय किया अरु जिस अवि-द्यात्मक अकृतार्थताजन्य शोक सागरके पार आत्मतत्त्वके प्राप्त होने के अर्थ वो सर्व वेदादि विद्यासम्पन्न ब्रह्मऋषि नारद श्रो-त्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगेश्वर भगवान् सनत्कुमार की शरणको प्राप्त हुआ तिस महाशोकसागर के पार भूमाख्य परमार्थ आत्मतत्त्व को देखायप्राप्तकरतेहुए। अर्थात् भगवान् सनत्कुमारशुद्ध अन्तः-करणवाले साधन सम्पन्न नारदको भूमाख्य आत्मविद्यारूप दृढ़ नौकापर दृढ़ विश्वासतारूपसे आरूपकर आत्मोपदेष्टा आचा-र्य्यरूपसे आप उस नौकाको चलावने वाले कैवर्त्तक (मल्लाह) होय उस पार कामी नारदको अविद्यात्मक अथाह अपार शोक सागरसे ,कि जिस शोकसागरसे पारहोनेके अर्थ सिवाय एकब्रह्म आत्माकी अभेद बोधक विद्यारूप नौकाके अरु श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ उपदेष्टाआचार्य्यरूप कैवर्त्तकके अन्य कोई भी उपाय समर्थ नहीं। पारकरतेहुए॥ तब वो नारद भगवान् सनत्कुमार से सोपान आरोहणवत् नामसे ले के प्राणपर्य्यंत सर्व की उपासना अरु तिनके फलको जानके तिनको उल्लंघनकरके पश्चात् आचार्य्य भगवान् सनत्कुमारसे भूमाख्य अपने आप आत्मतत्त्वकोसम्यक् प्रकार साक्षात् सोहमास्मिभावसे अनुभव पाय अज्ञानजन्य अ-

कृतार्थतारूप महाशोक सागर से तर कृतकृत्य शान्त आत्मा निर्भय पदको प्राप्त होय अपने आत्मोपदेष्टा भगवान् योगेश्वर सनत्कुमार को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम स्तुति बन्दनाकर उन से आज्ञाले जीवन्मुक्तता को पाय ब्रह्मलोकादि लोक लोकान्तरविषे निर्भयनिःशंक विचरता यथाधिकारियों को उपदेश करता स्वतन्त्र विचरनेलगा ॥ हे सौम्य यहां जो मूल श्रुति के अन्तविषे कहाहै कि ॥ "तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते तꣳ स्कंद इत्याचक्षते" ॥ सो इस सप्तम प्रपाठककी परिसमाप्ति के अर्थ जानना २ ॥ इति षड्विंशः खंडः २६ ॥

इति छान्दोग्य उपनिषदि सप्तमःप्रपाठकःसमाप्तः, ॥
हरिःॐतत्सत् ॥

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
जुलाई सन् १९०२ ई० ॥

कठवल्ली उपनिषद् ॥

इस उपनिषद्में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषीश्वरकेपुत्र श्रीउद्दालक ऋषिनेजिसप्रकारसे विश्वजित्नामायज्ञ की और उसीयज्ञकेदक्षिणामें ऋत्विजादि ब्राह्मणोंको अपरिमित धन व गौओंको दानदिया और उसी यज्ञमें अपने परमप्रियपुत्र ज्ञानशिरोमणि श्रीनचिकेताको मृत्युके अर्थ दानदिया और नचिकेता यमालयमें गया और मृत्युने सावधान पूजनकिया और परस्पर वार्त्तालापहुआ वह सब वृत्त संवित मंत्रों में वर्णित है ॥

माण्डूक्योपनिषद् ॥

ॐकारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदता का निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणों में निरूपण कियागया है अवलोकन करने योग्य है ॥

तैत्तिरीयउपनिषद् ॥

यहउपनिषद् यजुर्वेदसम्बन्धी है--इसउपनिषद्में श्रीसच्चिदानन्द घन परब्रह्म परमेश्वर निराकार के साकार रूप होने का प्रतिपादन है ॥

ईशावास्योपनिषद् ॥

जिसे बाजसनेयीसंहिताभी कहतेहैं--इस उपनिषद्में यावत् नाम रूपात्मक जगद्भावहै सब ईशही में घटित कियाहै ॥

केनोपनिषद् ॥

अब इसबार अत्यन्त शुद्धतापूर्व्वक सरलभाषा तिलक से युक्त मुद्रित कीजाती है--इसमें आत्मविद्योपदेश श्रीप्रजापति द्वारा वर्णन किया गयाहै ॥

मनुस्मृतिसटीकका विज्ञापनपत्र ॥

इसपुस्तकको श्रीमान् मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) ने बहुतसीद्रव्य व्ययकरके धर्मशास्त्राग्रगण्य सकलगुणिगणमण्डलीमण्डन महामहोपाध्याय श्रीपण्डित मिहिरचन्दजी से अन्यधर्मशास्त्रग्रंथों के तात्पर्यों से संबलित व सारों से मिश्रित और सकलटीकाओं के रहस्योंसे युक्त उक्तग्रंथका पदच्छेद अन्वय तात्पर्य व भावार्थसे भूषित अच्छेप्रकार देशभाषामेंविवरणकराय मन्वर्थभास्करनाम तिलक मूलश्लोकों सहित लक्ष्मणपुरस्थ स्वयंत्रालयमें मुद्रितकर प्रकाशितकियाहै--संसार में यावत् कर्म धर्म्म चतुर्वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र व चतुराश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य्य,गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासादि के हैं सविस्तार इसमें वर्णन कियेगये हैं--इसके सिवाय और भी सारे जगत् का वृत्त अर्थात् जगदुत्पत्ति स्वर्ग भूम्यादि सृष्टि वर्णन देवगणादिकों की सृष्टि धर्माधर्मविवेक मनुजीकी उत्पत्ति व यक्ष गंधर्वादिकों की उत्पत्ति व मेघ, पशु,पक्षी,कृमि,कीट,जरायुज, अण्डज, स्वेदज,उद्भिज,वनस्पति, गुल्मलतावृक्षादिकोंकी उत्पत्ति,दिनरात्रिप्रमाण व युगोंका प्रमाण व्रतादिकों के करनेका नियम व फल देशोंका कथन मनुष्यों के जातकर्म व नामकरण व चूड़ाकरण यज्ञोपवीतादि की क्रिया कथन वेदके अध्ययन करने का ढंग व नियम व इन्द्रियोंके संयमोंके उपायोंका कथन आचार्य्य उपाध्याय व गुरु आदिका वर्णन पितृकर्ममें श्राद्धादि करने का नियम भक्ष्याभक्ष्य वस्तुओंके भोजनकरनेका नियम निषेध व प्रायश्चित्त ऋणलेने देने के नियम व दायभागादि दीवानी फ़ौजदारीके मुक़द्दमों का यथाविधि निपटारा करना यहसब वार्त्तायें अच्छे प्रकारसे इसमें दर्शाईगई हैं जिनसे प्रत्येक मनुष्योंके कार्यहोते चलेआते हैं और भी बहुतसी राजनीति सम्बन्धी वार्त्तायें जोकि राजाओं को करना योग्यहैं वह सब इसमें उत्तम रीतिसे सविस्तार वर्णनकीगई हैं--आशाहै कि जो विद्वज्जनदेखेंगेप्रसन्नतासे इसे ग्रहणकरेंगे ॥

———